* ॐ नमः सिद्धेभ्यः *

# आचार्य बुद्धघोष

## और

# उनकी अट्ठकथाएँ

( Published with the financial assistance from the Ministry of Education, Government of India. )

लेखक :

**डा० शिवचरणलाल जैन,**

एम० ए०, पीएच० डी०, साहित्याचार्य.

प्राध्यापक, राणा पद्मचन्द्र सनातनधर्म भार्गव कालेज, शिमला

प्रकाशक :
अल्पना प्रकाशन
४२३६ अन्सारी रोड, दरयागंज
देहली।





प्रथम संस्करण
सं० २०२५ वि०
मूल्य [illegible] रुपया



मुद्रक :
राधिका प्रिंटिंग प्रेस,
२७, कृष्णापुरी, मथुरा।

# दो शब्द

—डा० भरतसिंह 'उपाध्याय'

डा० शिवचरण लाल जैन ने वर्षों के अध्यवसाय के बाद बड़ी लगन से आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाओं का यह महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह एक दुस्तर कार्य है जिसे उन्होंने योग्यता पूर्वक सम्पन्न किया है। बल्कि इस प्रकार का अध्ययन समय से बहुत आगे है, ऐसा मैं मानता हूँ। महास्थविर बुद्धघोषाचार्य स्थविरवाद बौद्धधर्म के एक दृढ़ स्तम्भ हैं और पालि तिपिटक के एक महान व्याख्याकार। पालि तिपिटक पर उन्होंने जो विशाल अट्ठकथाएं लिखो हैं वे बीसों जिल्दों में हैं और उनकी पृष्ठ संख्या सहस्रों में है। अभी हाल में उनमें से केवल दो-एक अट्ठकथाऐं नागरी अक्षरों में प्रकाशित हुई हैं और अनुवाद तो अभी हिन्दी में उनके भी नहीं हुए। ऐसी अवस्था में उनका अध्ययन विशेषत: रोमन, सिंहली और वर्मी लिपियों के माध्यम से ही किया जा सकता है। यह कितना कठिन और परिश्रम सापेक्ष कार्य है, इसे स्वत: समझा जा सकता है। बिना गहरी प्रेरणा के ऐसा कार्य सम्भव नहीं है और यह प्रेरणा स्वत: महास्थविर वृद्धघोष के जीवन में विद्यमान है। वे एक भारतीय थे जो मूल बुद्ध वचनों के अध्ययन हेतु श्री लंका गए और वहाँ बर्षों रहकर उन्होंने मूल भाषा मागधी (पालि) में उन पर अट्ठकथाएं लिखीं, जिनके बिना हम आज बुद्ध के जीवन और आदेशों को उनके पूरे परिपार्श्व में नहीं समझ सकते। बर्षों के कठिन परिश्रम के दौरान यह प्रेरणा डा० जैन को बल देती रही है, ऐसा मैं उनकी दीर्घकालीन कठिन साधना को देखकर सोचता हूँ।

आचार्य बुद्धघोष की सभो अट्ठकथाओं का नानाविध महत्व है। उसे विवरण दे-देकर डा० जैन ने सुप्रकाशित किया है। मुझे यह जानकर सन्तोष है कि इतिहास और संस्कृति पर उनकी विशेष दृष्टि रही है और आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाओं के अध्ययन के माध्यम से यहाँ विशेषत:

श्री लंका और भारत के मधुर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध उद्घटित हुए हैं।

अट्ठकथाओं की परिभाषा, मूल स्त्रोत और उनके विकास और कालक्रम आदि पर भी डा० जैन ने चिन्तना की है जो महत्वपूर्ण है और इसी प्रकार अन्त में बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का जो मूल्यांकन उन्होंने किया है वह योग्यतापूर्वक लिखा है।

हिन्दी में पालि-अट्ठकथा साहित्य के अध्ययन का यह ग्रन्थ एक प्रकार से प्रवेश-द्वार है। मैं इसका अभिनन्दन करता हूँ और इस प्रकार के महत्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखने के लिये बधाई देता हूँ। शुभमस्तु।

दिल्ली, १६-४-१९६६ —भरतसिंह 'उपाध्याय'

---

The book, entitled 'Acharya Buddha Ghosha Aur Unki Atthakathayen . . . . . . deals with the Encyclopedic Literature of commentaries produced by Buddha Ghosha on the original Pali literature which is regarded as a stupendous feat of scholarship by its extensive volume, range and preservation of the ancient traditions . . . . . . The author has given us a critical evaluation of the contents of these voluminous commentaries, discussing their sources, chronology and the authenticity of the historical material contained in them. This is a book which has its own value for giving a clear statement about this ancillary literature of Pali Buddhism.

The book is successful in the collection of material, its systematic classification, critical assessment and facile presentatian. It is a piece of research work characterised by a fresh approach towards interpretation of text about the Atthakatha literature. It evinces the author's capacity for critical examination and sound judgement.

Dr. Vasudeo Sharan Agrawal,
Head of the Deptt. of Indology,
Banaras Hindu University, BANARAS.

# भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मूलरूप में आगरा विश्वविद्यालयके द्वारा पीएच०डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत निबन्ध 'आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का ऐतिहासिक अध्ययन' के रूप में थी। डा० श्रीवास्तव के परामर्श तथा अन्य विद्वानों और मित्रों के अनुरोध पर इसमें परिवर्द्धन तथा कुछ परिवर्तन करके अब इसका प्रस्तुत रूप 'आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाऐं' बन सका है। अब इसमें केवल ऐतिहासिक ही नहीं, अपितु भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विविधि विषयों की सामग्री का भी समावेश है। इसमें बुद्ध भगवान के पूर्वकालीन तथा उत्तरकालीन भारत तथा श्रीलङ्का के इतिहास की झाँकियाँ तो मिलती ही हैं, दोनों देशों की तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक अवस्था के दर्शन भी प्रचुर रूप में होते हैं। उस समय के रीति-रिवाजों, शिल्पों और शिक्षा-पद्धति का भी इसमें वर्णन है।

पुस्तक छः अध्यायों में बंटी हुई है। प्रारम्भ में आचार्य बुद्धघोष की जीवनी, काल तथा पाण्डित्य आदि का सप्रमाण वर्णन दिया गया है। दूसरे अध्याय में अट्ठकथाओं के उद्गम, विकास तथा उनके आधुनिक रूप का विस्तृत तथा शोधपूर्ण वर्णन है। तीसरे, चौथे और पांचवें अध्यायों में आचार्य बुद्धघोष की क्रमशः विनयपिटक, सुत्तपिटक तथा अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाओं का परिचय तथा उनमें आई हुई विविध विषयों की सामग्री का पर्यवलोकन दिया गया है। इनमें क्रमशः विनयपिटक की समन्त-पासादिका और कंखावितरिणी; सुत्तपिटक की सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी, सारत्थप्पकासिनी, मनोरथपूरणी, जातकट्ठकथा वण्णना, धम्मपदट्ठकथा वण्णना और परमत्थजोतिका तथा अभिधम्मपिटक की अट्ठसालिनी, सम्मोहविनोदनी और पञ्चप्पकरणट्ठकथा आती हैं। जिन अट्ठकथाओं के आचार्य बुद्धघोष के कर्तृत्व होने के बारे में विरोध है उसका परिहार करके सिद्ध किया गया है कि वे भी उनकी ही कृतियाँ हैं। अन्तिम अध्याय में समस्त अट्ठकथाओं में आई हुई विविध विषय सम्बन्धी सामग्री का सामूहिक रूप में मूल्यांकन दिया गया है, जिसमें आचार्य बुद्धघोष का

पाण्डित्य, बौद्धवाङ्मय की महान सेवा तथा इतिहास, अर्थ-शास्त्र तथा समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये उस सामग्री की महत्वपूर्ण उपयोगिता का पता लगता है। वास्तव में इन अट्ठकथाओं में विविध विषय के विद्वानों के लिये बहुत भारी भण्डार भरा पड़ा है। जितना अधिक उसका अध्ययन किया जाय उतना ही अधिक वह उपयोगी होगा। मेरे निबन्ध का विषय सीमित होने के कारण मैं इस पुस्तक में और अधिक सामग्री नहीं दे पाया हूँ।

इस पुस्तक में प्रकरण प्राप्त अट्ठकथाओं के उद्धरण देते समय इनके संस्करण की लिपि का नाम—सिंहली, देवनागरी, आदि कोष्ठक में दे दिया गया है। जहाँ कोई नाम नहीं दिया गया वहाँ रोमन लिपि का संस्करण समझना चाहिये।

इस पुस्तक के प्रकाशन के समय यदि मैं अपने पथप्रदर्शक, सहायक और प्रेरकों का स्मरण न करूं तो अवश्य ही अकृतज्ञता का अपराधी बनूंगा। सबसे पहले मैं अपने पथ प्रदर्शक डा० भरतसिंह उपाध्याय का आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक और इसके आधार स्वरूप निबन्ध के लिये पथप्रदर्शन ही नहीं किया, इसकी रूपरेखा तैयार करके दी और समय-समय पर उपयोगी सुझाव भी दिये। यही नहीं, उन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति भी इस पुस्तक के सम्बन्ध में 'दो शब्दों' के रूप में प्रदान की। इसके पश्चात् मैं अपने निबन्ध के परीक्षकों स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, अध्यक्ष, भारतीय विद्या विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा डा० श्रीवास्तव अध्यक्ष संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मेरे निबन्ध का मूल्याङ्कन करके इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और उसके ऊपर अपनो सराहनापूर्ण सम्मति दी।

मैं पाली साहित्य के उन अर्वाचीन विद्वानों का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनके ग्रन्थों का अध्ययन इस पुस्तक की रचना में अत्यन्त सहायक हुआ है। इनमें डा० बी० सी० ला, डा० आदिकरम, डा० बापट, आ० धर्मरक्षित, डा० मललसेकर, प्रो० रायस् डेविड्स, श्रीमती रायस् डेविड्स, डा० विण्टरनिज, प्रो० कॉवेल, डा० रतीराम, डा० बरुआ प्रभृति मुख्यरूप से उल्लेखनीय हैं। इनके ग्रन्थों के अध्ययन का ही परिणाम है कि यह पुस्तक इतनी उपयोगी बन सकी है।

मैं उन विद्वानों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय लगाकर और इस पुस्तक का अध्ययन करके अपनी अमूल्य सम्मतियां प्रदान की हैं। उन पाठकों के प्रति भी मैं आभार मानूंगा जो इसका अध्ययन करके, लाभ उठावेंगे और अपने सुझाव देकर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

शिक्षा मन्त्रालय के संस्कृत विभाग के अधिकारियों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की उपयोगिता को आँक कर इसके लिये अनुदान स्वीकृत किया, डा० रामकरण शर्मा का नाम इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इसके साथ अपने पुत्रों चि० विमल चन्द्र और चि० रवीन्द्रकुमार के योगदान की भी मैं सराहना करूंगा: पहले ने अपने देहली विश्व-विद्यालय के अध्ययन काल में वहाँ के पुस्तकालय से मुझे वे पुस्तकें प्राप्य कर दीं जिनका अन्यथा मुझे मिलना कठिन था, दूसरे ने प्रेस कापी तैयार करने और प्रूफ पढ़ने के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को किया। श्री रामबाबू सिंघल ने इस पुस्तक के प्रकाशन और मुद्रण में रुचि के साथ योगदान दिया जिसके लिये उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना मेरे लिये आवश्यक है।

अन्त में मैं बुद्ध भगवान तथा आचार्य बुद्धघोष और अन्य बौद्धाचार्यों को अपनी श्रद्धा का अर्घ्य समर्पित करता हूँ। जिनका वाङ्मय इस पुस्तक का आधार है।

सेण्ट मार्क्स चर्च बिल्डिङ्ग, शिवचरण लाल जैन

शिमला—३

# विषय सूची

# प्रथम अध्याय

## आचार्य बुद्धघोष

### (१) परिचय

जो महत्वपूर्ण कार्य श्री यास्काचार्य ने वेदों की व्याख्या के द्वारा किया है अथवा जो कार्य जैनागमों को प्रकाश में लाने के लिये श्री शीलांग ने किया है, वही महत्वपूर्ण कार्य आचार्य बुद्धघोष ने बौद्ध धर्म को प्रकाश में लाने के लिये त्रिपिटक ग्रन्थों की सारगभित व्याख्या के द्वारा सम्पादित किया है। उन्होंने त्रिपिटक के ग्रन्थों के ऊपर लिखी गई अपनी अट्ठकथाओं में केवल कठिन शब्दों की व्याख्या मात्र ही नहीं की, अपितु बौद्ध-सिद्धांतों का स्पष्टीकरण तथा गूढ़ पाठों की ठीक-ठीक अर्थसंगति भी हमारे समक्ष रखी है। इस कार्य में उन्होंने अपनी स्वेच्छापूर्ण प्रवृत्ति से काम नहीं लिया, अपितु बुद्ध भगवान् के वचनों और पूर्वाचार्यों के मतों का पूर्णरूप से अनुसरण किया है। कहीं भी उनमें तिलमात्र भी अन्तर नहीं आने दिया है। यह कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि यदि इनकी अट्ठकथाएें न होतीं, तो त्रिपिटक का समझना लोगों के लिये असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य हो जाता। इनकी अट्ठकथाओं ने बुद्ध वचनों को चिरस्थायी तथा बुद्धशासन को अक्षुण्ण बना कर बौद्ध धर्म की जो महत्वपूर्ण सेवा की है, तथा अन्य बौद्ध आचार्यों को जो प्रेरणा दी है उससे यदि हम इन्हें अनुपिटक साहित्य का युगप्रवर्त्तक तथा पाली साहित्य का उद्धारकर्त्ता कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी[1]।

साहित्यिक महापुरुषों का ध्यान सर्वदा लोकोपकार के ऊपर केन्द्रित रहता है। इसी कारण वे अपनी प्रसिद्धि की चिन्ता न करके, हाथ में लिये हुए कार्य को पूरा करने की ओर ध्यान देते हैं। वे अपने यश की परवाह तनिक भी नहीं करते। उनके ग्रन्थ ही उनके स्मारक बन जाते हैं। इसी कारण प्राचीन कवियों और साहित्य निर्माताओं का परिचय हमें उनके ग्रन्थों

१. डा० भरतसिंह उपाध्याय—पाली साहित्य का इतिहास (आचार्य बुद्धघोष)

में नहीं मिलता। यही बात आचार्य बुद्धघोष के साथ भी है। उन्होंने भी अपने व्यक्तिगत परिचय के बारे में अपने ग्रन्थों में कुछ नहीं लिखा। उनके ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्ग' के निगमन (उपसंहार) में "बुद्धघोसोति गुरुहि नामधेय्येन थेरेन मोरखेटकवत्तव्वेनकतो विसुद्धिमग्गोनाम" केवल इतना परिचय मिलता है। और यह परिचय भी उनका न होकर किसी अन्य लेखक के द्वारा क्षेपक रूप में लिखा गया है, ऐसा 'थेरेन' इस पद से ज्ञात होता है, क्योंकि वे स्वयं अपने लिये 'थेरेन' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते थे।

उनका अपने ग्रन्थों में परिचय न मिलने के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों ने उनके विषय में वेतुकी कल्पनाऐं की हैं। पाश्चात्य विद्वान् श्री फाल्केस का अनुमान है कि बुद्धघोष कभी नहीं हुए, किन्तु विद्यमान अट्ठकथाऐं बुद्ध भगवान् का "घोष अथवा ध्वनि" के नाम से प्रसिद्ध हुईं[१]। इसी प्रकार श्री वी० ए० स्मिथ कहते हैं 'व्यक्तिगत रूप से मैं ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में बुद्धघोष—बुद्ध का घोष या ध्वनि—की विद्यमानता में विश्वास नहीं करता[२]।' श्री एल० फाईनॉट इससे भी आगे बढ़ते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि "आचार्य बुद्धघोष की मगध से श्रीलङ्का तक की यात्रा के विषय में कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है तथा ये अट्ठकथायें कुछ सिंहली अनुवादकों की रचनाऐं हैं, जिनको कि परम्पराओं ने कुछ कम अथवा अधिक वास्तविक बुद्धघोष के नाम के चारों ओर इकट्ठा कर लिया है। इन वेतुकी कल्पनाओं का खण्डन करते हुए श्री विण्टरनिज् का कहना है कि "आचार्य बुद्धघोष के विषय में जो वर्णन हैं, वे उनसे आठसौ वर्ष बाद के हैं और वे भी पौराणिक कथाओं से पूर्ण हैं। इसी प्रकार उनकी बरमा और पेगु की यात्रा का भी

---

१–Faulkes' conjecture is that Buddhaghos never lived at all but that the existing commentaries were ascribed to the voice of Buddha: Winternitz—History of Indian literature, Part II.

२–Personally I do not believe in the existance of Buddhaghos,—the voice of Buddha—as a historical personage—वहीं।

कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है और इसी प्रकार कुछ अट्ठकथाऐं भी त्रुटिवश उनके नाम पर प्रसिद्ध कर दी गई हैं । जिस प्रकार शंकराचार्य के विषय में भी बिल्कुल पौराणिक तथाकथित जीवनियाँ हैं और बहुत से ग्रन्थ, जोकि उनके द्वारा नहीं लिखे जा सके होंगे, उनके नाम से प्रसिद्ध कर दिये गये हैं; फिर भी कोई सन्देह नहीं कर सकता कि दार्शनिक शंकराचार्य नहीं हुए । इसी प्रकार सर्वत्र-जहाँ कहीं भी प्रसिद्ध अट्ठकथाकार बुद्धघोष नाम आया है, विश्वसनीय है, क्योंकि यह नाम मथुरा के शिला लेखों में भी आया है, जोकि ईसवी सन की प्रारम्भिक शताब्दियों में लिखे गये थे ।[1] आई० सी० बी० ई० एफ० ई० ओ० पृ० ४, १४६, ४१२ में संकेत किया गया है कि फाहियान और चेमोंग का एक रेवत नाम के ब्राह्मण से पाटलीपुत्र में परिचय हुआ जोकि संभव है कि बुद्धघोष के गुरू'रेवत' ही हों ।

फाहियान श्री लंका में राजा बुद्धदास के समय में आये थे जो कि राजा महानाम के पिता थे । महानाम ४०९ई० में सिंहासन पर बैठे । इसलिये फाहियान ४०९ ई० से पहले श्री लंका में आये होंगे । अपने श्री लंका में जाने से पहले उन्होंने जिन रेवत ब्राह्मण को देखा था वे सम्भवत: अचार्य बुद्धघोष के गुरू हो सकते हैं । आचार्य बुद्धघोष भी दीक्षित होने के बाद भारत में पढ़ते रहे होंगे और उसके बाद 'णाणोदय' और 'अट्ठसालिनी' लिख चुकने के पश्चात् राजा महानाम के समय में ईसवी सन् ४२२—२३ में श्री लंका में गये होंगे ।

यद्यपि भारतीय विद्वानों और मनीषियों की परम्परा के अनुसरण में आचार्य बुद्धघोष का भी निर्वैयक्तिक होना स्वभाविक है तथापि पाठकों को उनके व्यक्तित्व के विषय में जानने की आकांक्षा रहना भी स्वाभाविक है । उनके व्यक्तित्व के बिषय में उनकी अट्ठकथाओं से थोड़ी बहुत सहायता मिलने के अतिरिक्त हमें निम्नलिखित साधन और उपलब्ध हैं:—

महावंस, बुद्धघोसुप्पत्ति, गन्धवंस सासनवंस, सद्धम्म संगह । इनमें गंधवंस तथा सासनवंस तो उन्नीसवीं शताब्दी की रचनाऐं हैं, अतएव उनके जीवन काल से भारी अन्तर होने के कारण वे पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनमें पौराणिकता का समावेश अधिक सम्भव है । "सद्धम्म संगह" तथा "बुद्ध घोसुप्पत्ति" अपेक्षाकृत इनसे प्राचीनतर रचनाऐं

१—Winternitz—Histrty of Indian Literature Part. II
२—वहीं

हैं, तथापि वे महावंस ( चुल्लवंस ) के बाद की हैं । उपर्युक्त चारों ग्रन्थों में लोक कथाओं का अनुसरण किया गया है और तथ्य काल्पनिक तथा आलंकारिक वर्णनों से ऐसे आच्छादित हो गये हैं कि हम उनको अलग नहीं कर सकते ।

'बुद्धघोसुप्पत्ति' के अनुसार बुद्धघोष का जन्म स्थान बोधिगया के समीप स्थित घोस गाम था । इनके पिता का नाम 'केसी' था और वे किसी राजा के यहाँ पुरोहित थे । इनकी माता का नाम 'केसिनी' था । इस समय एक थेर ने,जिनमें कि असाधारण आध्यात्मिक शक्ति थी, सोचा कि भगवान् बुद्ध के उपदेश सिंहली भाषा में होने के कारण लोगों के लिए दुरूह हैं । कौन ऐसा व्यक्ति है जो भगवान् के इन उपदेशों को सिंहली से मागधी भाषा में लिख सके । उन्होंने अपने दिव्य चक्षु से देखा कि 'तावतिंस' स्वर्ग में 'घोस' नाम का देव इस कार्य को करने में समर्थ है । इसलिये उन्होंने स्वर्ग में जाकर इन्द्र को अपना संदेश सुनाया । इन्द्र के पूछने पर घोस देव ने, यद्यपि वह और ऊँचे स्वर्ग मे जाना चाहता था, किन्तु बुद्ध भगवान् के उपदेशों को सर्व साधारण के समझने के योग्य करने के लिये मध्यलोक में जाना स्वीकार कर लिया । इसके बाद थेर ने 'केसी' ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने के लिये कहा, क्योंकि उनके यहाँ एक गुणी और मेधावी पुत्र आने को था । सातवें दिन माता 'केसिनी' के गर्भ में बुद्धघोष अवतीर्ण हुए और दस महीने के बाद उन्होंने जन्म लिया । इनके जन्म के समय नौकरों और ब्राह्मणों का "खाओ पीओ" इत्यादि मधुर शब्दों का घोस ( शोर ) हुआ, इस कारण इनका नाम 'घोष' पड़ गया[1] ।

सात वर्ष की ही अवस्था में ये तीनों वेदों में पारंगत हो गये । एक दिन बुद्धघोष बिष्णु भगवान् की मूर्ति के ऊपर बैठ कर उड़द की दाल खा रहे थे । ब्राह्मण यह देख कर नाराज होने लगे । तब उन्होंने उनसे कहा— तुम लोग विष्णु को नहीं जानते । 'माष' ( उड़द ) स्वयं विष्णु है । इस पर ब्राह्मण चुप हो गये और उन्होंने इनके पिता 'केसी' से जाकर इनकी शिकायत की । केसी ने उनको यह कह कर कि "बालक है, इसे क्षमा कीजिये" शान्त किया ।

इनके पिता राजा को वेद पढ़ाने जाया करते थे । एक दिन बुद्धघोष भी उनके साथ गये । पढ़ाते समय इनके पिता किसी कठिन पाठ पर अटक

---

१—'खादथ भोन्तो, पिवथ भोन्तोति' आदि ब्राह्मणानां अञ्ञामञ्ञम् घोस काले विजायनता 'घोसेति' नाम अकासी ।

गये और राजा की आज्ञा लेकर घर आये । बुद्धघोष ने पिता जी की उस पुस्नक में उस कठिन पाठ का अर्थ लिख दिया । पिता को जब मालूम हुआ कि यह कार्य बुद्धघोष का ही था तो वह बहुत प्रसन्न हुये और राजा कोसारी घटना जाकर सुना दी । राजा ने हर्षित होकर बुद्धघोष को हृदय से लगा लिया और यह कह कर कि तुम मेरे पुत्र हो और मैं तुम्हारा पिता उनको एक गाँव पुरस्कार में दिया।

एक दिन केसी के मित्र एक थेर आकर बुद्धघोष के आसन पर बैठ गये । बुद्धघोष ने नाराज होकर कहा—यह मुण्डित मस्तक श्रमण निर्लज है, अपनी औकात नहीं समझता । यह न तो वेदों को जानता है और न किसी और मत को । इस पर थेर ने उत्तर दिया—मैं वेदों को भी जानता हूँ और अन्य मतों को भी । इस पर बुद्धघोष ने जब उनसे वेदपाठ करने को कहा तो थेर ने बड़े मधुर और प्रभावपूर्ण स्वरमें वेद पाठ किया तथा कठिन पाठों का अर्थ भी स्पष्ट किया । इससे बुद्धघोष बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने महाथेरसे उनका धर्म पूछा और कुछ सुनानेको कहा । थेर ने कहा—मैं बौद्ध धर्मका उपासक हूँ और उन्होंने अभिधम्म पिटकके 'कुसलधम्म' अकुसलधम्म तथा'अव्यक्त धम्म'सम्बन्धि स्थलका पाठ उनको सुनाया। साथमें बुद्ध दर्शन के गूढ़ तत्वों को भी स्पष्ट किया। इससे बुद्धघोष इतने प्रभावित हुये कि बुद्ध के धर्म को ही एक मात्र दु:ख मोचन का साधन समझ कर उन्होंने महाथे से दीक्षा देने की प्रार्थना की और पिता की अनुमति लेकर वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये। थेर ने इनको 'तचकम्मट्ठान'(शरीर की अनित्यतादि) के ध्यान का उपदेश दिया, जिसके ऊपर इन्होंने ध्यान लगाया और बुद्धधर्म और संघ की शरण प्राप्त को तथा बुद्ध बचनमें पूर्ण श्रद्धा प्राप्तकी। आनन्द विभोर होकर इन्होंने थेर सेकहा — 'भन्ते,बुद्ध भगवान्का उपदेश ही संसार' से पार उतारने वाला है, वेद व्यर्थ हैं,इसी कारण आपने इनको त्यागा था बुद्धघोसुप्पत्ति में इन थेर का नाम नहींदिया, किन्तु सद्धम्म संगह में थेर का नाम 'रेवत' दिया है।

'सद्धम्मसंगह' में प्रकरण इस प्रकार है:—बुद्धघोष ब्राह्मण युवा के रूपमें वेदों और शास्त्रों में पारंगत होकर जम्बू द्वीप देश देशान्तरोंमें भ्रमण करते हुए और जगह२ शास्त्रार्थमें लोगोंको पराजित करतेहुए एकदिन किसी

बौद्ध विह।र में पहुँचे। यहाँ अनेक बौद्ध श्रमण विद्वान रहते थे। जिनमें थेर रेवत सर्वाधिक विद्वान गुणी और पवित्र थे। एक दिन वह आगन्तुक ब्राह्मण युवा वेद मन्त्रों का पाठ कर रहा था तो थेर रेवत ने कहा—"यह कौन गधे की तरह रेंकता है ?" इस ब्राह्मण युवा ने कहा—'यदि तुम समझते हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।" ब्राह्मण ने वेद और इतिहास सम्बन्धि बहुत से कठिन प्रश्न किये और थेर ने उसको उनका समुचित उत्तर दिया। फिर बदले में थेर ने 'चित्त यमक' के बारे में ब्राह्मण युवा से प्रश्न किया। ब्राह्मण युवा उसका उत्तर न दे सका और उसने थेर से अपना शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। थेरने उसको अपना शिष्य स्वीकार कर लिया।

इस ग्रन्थ में एक मनोरंजक कथा और है कि एक बार बुद्धघोष के हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि वह अपने गुरू से बुद्ध भगवान के उपदेशों में अधिक ज्ञानी है। गुरू ने उनके मनकी बात जानली और कहा—यदि तुम्हारे ऐसे बिचार हैं ता यह तुम्हारे लिए अनुचित बात है। बुद्धघोष उनके चरणों पर गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे। गुरू ने कहा कि 'क्षमा तब मिलेगी जबकि तुम सिंहल द्वीप में जाकर अट्ठकथाओं का मागधी में भाषान्तर कर लाओगे।" बुद्धघोष ने उत्तर दिया—"मैं भी यही चाहता था,किन्तु मुझे कुछ दिन और यहाँ ठहरने की अनुज्ञा दीजिये,जिससे कि मैं अपने पित के मिथ्या विश्वासको दूर कर दूं।"इसके बाद वे घर गये और पिताको एक प्रकोष्ठमें बन्द करके तब निकाला जब उन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पिता को बौद्ध धर्म में श्रद्धालु बनाकर तथा अपने दुर्व्यवहार के लिये उनसे क्षमा माँगकर ये गुरू के पास आये और उनकी अनुज्ञा लेकर उन्होंने सिंहल द्वीप के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में इनको श्री लंका से वापिस आते हुए थेर बुद्धदत्त मिले। उन्होने इनके उद्देश्य को सुनकर इनसे कहा—"मैं भी श्री लंका द्वीप इसी उद्देश्य से गया था,किन्तु आयु थोड़ी रह जाने के कारण मैं इस कार्यको समाप्त न कर सका। जब तुम सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी भाषान्तर करके लौटो तो मेरे पास उन्हें अवश्य भिजवाना।" इतने में ही दोनों की नावें प्रतिकूल दिशा में चल पड़ीं। बाद में बुद्धघोष ने श्री लंका से लौट आने पर अपनी अट्ठकथाएें इनके पास भेज कर थेर बुद्धदत्त की प्रार्थना पूरी की और उन अट्ठकथाओं का अध्ययन करके थेर बुद्धदत्त ने अभिधम्मावतार" तथा 'विनयविनिच्छय' नाम के दो ग्रन्थ क्रमशः धम्म और विनय के उपर लिखे।

बुद्धघोष अपने गुरु थेर से विदा लेकर श्री लंका में सही सलामत पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर वे महाविहार के संघपति महाथेर के पास गये और अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। महाथेर श्रमणों को अभिधम्म और विनय का उपदेश दिया करते थे। एक दिन उपदेश देते समय एक गूढ़ पाठ उनकी समझ में नहीं आया और वे मौन होकर अपनी कुटी के भीतर सोचनेके लिये चले गये। इसी बीचमें बुद्धघोषने श्याम पट पर उस गूढ़ पाठ का अर्थ स्पष्ट करके लिख दिया और कहीं चले गये। महाथेर ने कुटीसे निकल कर उसे पढ़ा और यह मालूम करके कि वह अपरिचित व्यक्ति ही इस अर्थ का लिखने वाला है, उसकी खोज करवाई और उसको संघ के श्रमणों को त्रिपिटक पढ़ाने का कार्य सौंपा। किन्तु जब बुद्धघोष ने कहा कि वे तो सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी भाषान्तर करने के उद्देश्य से श्री लंका में आये हैं तो महाथेर ने उनकी जाँच करने के लिये उनको निम्नस्थ दो गाथायें दी और उनका त्रिपिटक के अनुसार अर्थ स्पष्ट करने को कहा। इनमें पहली गाथा किसी देवता के प्रश्न रूप में है और दूसरी उस प्रश्न का भगवान के द्वारा दिये गये उत्तर के रूप में है :—

अन्तोजटा वहिजटा जटाय जटिता पजा।
तं तं गौतम, पुच्छामि कोइमं विजटयेजटं ति॥
सीले पतिट्ठाय नरो समञ्ञो चित्तं समञ्ञंभावये।
आतापी निपको भिक्खु सो इमं विजटयेजटं ति॥

बुद्धघोष इन दोनों गाथाओं को लेकर चले गये और उसी दिन उन्होंने उन दोनों गाथाओं के ऊपर अपने 'विसुद्धिमग्ग' नाम के प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की, जिसमें कि तीनों पिटकों का सार उन्होंने भर दिया। देवताओं के स्वामी इन्द्र ने इनकी परीक्षा करने के लिए इनके सो जाने पर उस ग्रन्थ को चुरा लिया। जब रात में इनकी आँख खुली और पुस्तक को न देखा तो दीपक की रोशनी में बैठकर इन्होंने फिर उस ग्रन्थ को उसी प्रकार आद्योपान्त लिख डाला और सो गये। इन्द्र ने वह पुस्तक भी चुरा ली। इस पर इन्होंने फिर तीसरी बार उस ग्रन्थ को उसी तरह लिखा। इस पर इन्द्र ने पहली दोनों प्रतियों को भी लाकर इनके सोते हुए के सिर पर रख दिया। दूसरे दिन इन्होंने तीनों प्रतियों को ले जाकर

महाथेर के सामने रख दिया। तीन प्रतियों का कारण पूछने पर इन्होंने इन्द्र वाली घटना सुना दी। महाथेर ने तीनों पुस्तकों को मिलाकर देखा तो कहीं भी प्रत्यय उपसर्गादिक का भी अन्तर नहीं पाया। इस पर महाथेर बहुत ही आश्चर्यान्वित और प्रसन्न हुए। महाथेर ने इनको सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी में भाषान्तर करने की अनुमति दे दी। महाथेर ने इनकी बहुत प्रशंसा की और तभी से श्री लंका द्वीप में ये पुजने लगे और स्वयं बुद्ध भगवान् के समान इनकी मान्यता होने लगी।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष की अतिशयता दिखाने के लिये यह कथा घड़ी गई है, नहीं तो 'विसुद्धिमग्ग' सरीखे ग्रन्थ को एक रात में तीन बार लिखना कैसे सम्भव हो सकता था। यद्यपि आगे दिये हुए चुल्ल वंस के वर्णन में एक रात शब्द नहीं है, फिर भी वह वर्णन भी अतिरंजित मालूम पड़ता है। इसी प्रकार छह माह में सारी सिंहली अट्ठकथाओं का अनुवाद भी अतिशयोक्ति पूर्ण है। सत्य तो यह मालूम पड़ता है कि पहले वहाँ जाकर इन्होंने वहाँ की भाषा सीखी, फिर अलग २ सिंहली अट्ठकथाओं के विशेषज्ञ आचार्यों से उन-उन अट्ठकथाओं को पढ़ा। इसके बाद 'विसुद्धिमग्ग' नामका स्वकीय स्वतन्त्र ग्रन्थ श्रीलंका में लिखा। शायद यह भारतमें लिखे गये 'ञाणोदय'का परिष्कृत रूप ही हो। इसके बाद इन्होंने अट्ठकथायें लिखीं। उपर्युक्त कथन की पुष्टि इससे भी होती है कि 'विसुद्धिमग्ग' में अनेक सिंहली अट्ठकथाओं के उल्लेख और अवतरण आते हैं। यदि यह ग्रन्थ लङ्का जाने से पहले भारत में ही सिंहली अट्ठकथाओं को बिना पढ़े लिखा गया होता तो सिंहली अट्ठकथाओं के उल्लेख और उद्धरण इतनी प्रचुर मात्रा में इसमें नहीं आ सकते थे।

इसके बाद इन्होंने ताड़ पत्रों पर अटठकथाओं को मागधी में लिखना प्रारम्भ किया। भोजनोपरान्त ये अखण्डित ताड़पत्र चुन लाते और अनुराधपुर के विहार की नीचे की मंजिल में बैठकर लिखा करते। ऊपर की मंजिल में ५ और थेर रहते थे। एक टोडी बेचने वाले ने इनकी जाँच करके कि ये ताड़ पत्र किस लिये ले जाते हैं, इनको श्रद्धा पूर्वक भोजन का भरा पात्र दिया। इन्होंने उसे ऊपर वाले थेरों के पास ले जाने को कहा। ऊपर वाले थेरों ने यह कहकर कि नीचे वाले थेर हम सबसे अधिक पूज्य हैं, क्योंकि वे भगवान् बुद्ध के वचनों का प्रति दिन मागधी में अनुवाद

करते हैं, उस भोजन को बुद्धघोष के पास ही भिजवा दिया। बुद्धघोष ने उसे छः बराबर भागों में बाँट कर सबको दिया। जब छः माहमें ये अट्ठकथाओं का मागधी में भाषान्तर कर चुके तो इन्होंने महाथेर से भारत लौट जाने की अनुमति मांगी। महाथेर ने इनकी बहुत प्रशंसा की और महिन्द थेर की अट्ठकथाओं को जला दिया। इसी समय कुछ श्रमणों ने निन्दा पूर्वक कहा—हमारी राय में ये त्रिपिटकों के तो ज्ञाता हैं, किन्तु संस्कृत का ज्ञान इनको बिलकुल नहीं है। इस पर इन्होंने अगले सव्वाथ (पूर्णिमा के व्रत)के दिन चार प्रकारके संघको इकट्ठा करने के लिए महाथेर से प्रार्थना की और सबके इकट्ठा होने पर सबके सामने वेदी पर खड़े होकर धर्माचरण के विषय पर संस्कृत में व्याख्यान दिया। तब से श्रमणों का इनके संस्कृत न जानने विषयक सन्देह दूर हुआ।

इनकी स्मरण शक्ति के विषय में भी एक घटना अवश्य वर्णनीय है। एक बार लङ्का में दो दासियाँ आपस में लड़ पड़ीं। तालाब से एक पानी भरे घड़े को ऊपर ला रही थी, और दूसरी खाली घड़े को भरने के लिए नीचे ले जा रही थी। दोनों के घड़े आपस में टकराये और उनमें से एक का घड़ा फूट गया। उसने दूसरी को गालियाँ दी, इस पर दूसरी ने भी गालियाँ दीं। बुद्धघोष वहीं पर थे, उन्होंने यह सोचकर कि यहाँ और कोई नहीं है, मैं ही साक्षी के रूप में बुलाया जाऊँगा, उन दोनों की वे सब बातें उन्हीं की बोली में बिना उनका अर्थ समझे क्रमशः याद करली और लिख लीं। हुआ भी ऐसा ही। जिस दासी का घड़ा फूट गया था उसके स्वामी ने अधिकरण में मुकद्दमा पेश किया और बुद्धघोष साक्षी के रूप में बुलाये गये। बुद्धघोष ने कहा—हम श्रमण लोग ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं देते और न इन लोगों की बोली को ही समझते; किन्तु साक्षी में मुझे बुलाया जायेगा, यह सोचकर मैंने इनकी बातें लिख लीं थीं। यह कह कर उन्होंने राजा के सामने उन दासियों की क्रमशः गाली गलौच की सारी लिखी हुई बातें रख दीं। राजा ने उसी के अनुसार अपना निर्णय किया। जब हारे हुए ब्राह्मण ने श्रमण की निन्दा की तो राजा ने उनकी प्रशंसा की और कहा कि उसने ऐसा धार्मिक, तीव्रबुद्धि और ध्यानी श्रमण अब तक नहीं देखा।

इस के पश्चात् अपना कार्य समाप्त करके बुद्धघोष जम्बू द्वीप लौट आये और पहले सीधे अपने गुरु के पास पहुँचे। उन्होंने उनसे निवेदन किया कि 'आपका सौंपा हुआ कार्य मैंने पूरा कर दिया है और आज्ञानुसार सारी सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी में भाषान्तर कर दिया है।' इसके बाद वे अपने माता पिता के पास पहुँचे जहाँ कि उनके पिता ने उनको बढ़िया भोजन दिया।

बुद्धघोसुप्पत्ति और धम्म सगह के उपरोक्त वर्णन को पढ़कर यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि वर्णन मनघड़न्त कथाओं से भरा पड़ा है और इसमें मिलिन्द पञ्हो के थेर 'नागसेन' और 'मोग्गलिपुत्ततिस्स' थेर की कथायें नाम मात्र के अन्तर के साथ जोड़ दी गई हैं। जिस प्रकार थेर नागसेन बुद्ध भगवान् के उपदेशों के प्रसार तथा स्पष्टीकरण के लिए स्वर्ग से आये थे और ब्राह्मण के घर अवतीर्ण हुए, उसी प्रकार ये भी तावतिंस स्वर्ग से अवतीर्ण होकर केसी ब्राह्मण के यहाँ पैदा हुए। जिस प्रकार नागसेन की बौद्धधर्म में दीक्षा हुई, उसी प्रकार बुद्धघोष की भी बौद्ध धर्म में दीक्षा हुई। जिस प्रकार थेर नागसेन के मन में आया था कि वे गुरु से अधिक अभिधम्म को जानते हैं, उसी प्रकार आ० बुद्धघोष को भी यही अभिमान हुआ था। नागसेन के गुरु ने जिस प्रकार अपने अलौकिक ज्ञान से नागसेन के मन की बात जान ली थी और शिष्य को सावधान करके सम्राट् मिलिन्द को धर्म में दीक्षित करने का दण्ड दिया था, उसी प्रकार आ० बुद्धघोष के गुरु ने भी बुद्धघोष के मन की बात जानकर बुद्धघोष को सावधान किया, और दण्डस्वरूप सिंहली अट्ठकथाओं को मागधी में भाषान्तर करने का दण्ड दिया।

आ० बुद्धघोष और बुद्धदत्त के नावों में परिचय के बारे में इतना ही कहना है कि यदि बुद्धदत्त अल्पायु होते तो बुद्धघोष की अट्ठकथाओं को देखकर अपने 'अभिधम्मावतार' तथा 'विनयविनिच्छय' को लिखने के लिए इतने दीर्घ समय तक कैसे जीवित रहते। महावंस के परिशिष्ट 'चुल्लवंस' में भी इस घटना का उल्लेख है और बुद्धदत्त बुद्धघोष को 'आवुस' (आयुष्मान्) कहकर सम्बोधित करते हैं। इन दोनों कथनों से इतना तात्पर्य अवश्य निकलता है कि आयु में बुद्धदत्त बुद्धघोष से बड़े अवश्य थे,

चाहे लंका से वे किसी भी कारण से जल्दी चले आये हों। अनुमानित कारण यह भी हो सकता है कि अधिक आयु होने के कारण बुद्धदत्त सिंहली भाषा सीखने और फिर उससे अट्ठकथाओं का मागधी भाषा में उद्धार करने की क्षमता अपने में अनुभव न करते हों अथवा श्री लंका का जलवायु उनको अनुकूल न आया हो।

एक बहुत ही असंभव प्रतीत होने वाली बात बुद्धघोसुप्पत्ति में यह है कि महाथेर महिन्द के हाथी के बराबर ऊँचे अट्ठकथाओं के ढेर को महाथेर संघराज ने जलवा दिया था। एक तो यह इस कारण सम्भव नहीं कि महिन्द थेर की उन अट्ठकथाओं का केवल लंका के ही थेरों में नहीं, अपितु भारत के भी बौद्ध संघ में पर्याप्त आदर था। दूसरे बुद्धघोष की मागधी अट्ठकथाओं का भी आधार वे ही अट्ठकथायें थी। इसी कारण उनको और भी आदर के साथ सुरक्षित रखना चाहिए था। इस अत्युक्तिपूर्ण बात का अभिप्राय केवल यह निकल सकता है कि बुद्धघोष की अट्ठकथायें सिंहली अट्ठकथाओं से अधिक स्पष्ट, विस्तृत और सारगर्भित थी और उनके सामने सिंहली अट्ठकथाओं की पूछ न रही और वे स्वयं लुप्त हो गई।

बुद्धघोसुप्पत्ति तथा धम्मसंगह से पहले आचार्य बुद्धघोष का वर्णन आचार्य-धम्मकित्ति ने 'महावंस' के परिशिष्ट चुल्लवंस में किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दी का अर्थात् बुद्धघोष के ८०० वर्ष बाद का है, फिर भी इसके वर्णन को हम सर्वथा अविश्वसनीय नहीं कह सकते। अवश्य ही बुद्धघोष का यह चुल्लवंस में किया गया वर्णन किन्हीं ऐसी प्राचीन सिंहली भाषा में लिखित परम्पराओं के वर्णन के ऊपर आधारित होगा जो कि महा विहार में सुरक्षित तथा मान्य होंगी। इसलिए चुल्लवंस के अनुसार भी बुद्धघोष का वर्णन नीचे दिया जाता है। आ० धम्मकित्ति ने अपने चुल्लवंस में पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले लङ्का के राजा महानाम का वर्णन करते समय आचार्य बुद्धघोष के जीवन और ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिसका संक्षेप निम्मलिखित प्रकार से है :—

आचार्य बुद्धघोष का जन्म ब्राह्मण कुल मे हुआ था। इनका जन्म-

स्थान मगध में बोधगया के समीप था। इन्होने विद्या, शिल्प और कला इन तीनों की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की थी। ये तीनों वेदों और पातंजल योग दर्शन के ज्ञाता और शास्त्रार्थ में निपुण थे। चारों ओर शास्त्रार्थ करते हुए एक बार ये किसी विहार में आ पहुँचे। दिन में शास्त्रार्थ करना और रात को पातंजल योगदर्शन के सूत्रों का ऊँचे स्वर में दुहराना इनका नित्य का दैनिक कार्य था। उसी विहार में एक 'रेवत' नाम के थेर रहते थे। उन्होंने मन मे सोचा कि यह व्यक्ति बड़ा विद्वान् है, इसे बौध्द धर्म में दीक्षित करना चाहिए। यह सोचकर थेर ने उस ब्राह्मण युवक बुद्धघोष को लक्ष्य करके कहा—यह कौन गधे की भाँति रेंकता है? इस पर बुद्धघोष ने कहा—इस रेंकने में जो गूढ़ अर्थ है, उसकी तुम व्याख्या नहीं कर सकते। थेर ने इस पर उसके उन योग सूत्रों की स्पष्ट और विद्वत्तापूर्ण व्याख्या और आलोचना की तथा यह भी बताया कि वे सूत्र क्यों गलत (अशुद्ध) हैं। इससे बुद्धघोष बहुत प्रभावित हुए और थेर से प्रार्थना की कि वे अपने धर्म के सिद्धातों को उन्हें सुनावें। थेर ने उसको 'अभिधम्म पिटक' के कुछ उद्धरण सुनाये, जिनका अर्थ बुद्धघोष की समझ में नहीं आया। उसने थेर से पूछा—ये किसके सूत्र हैं? थेर ने कहा ये बुद्ध भगवान् के सूत्र हैं। बुद्धघोष ने कहा—'मुझे इनका अर्थ समझाइये।' इस पर थेर ने कहा—'बिना नियमानुसार बौद्ध धर्म में दीक्षा लिये, इनका अर्थ नहीं समझाया जा सकता है।' इस पर बुद्धघोष यह सोचकर कि यही एक सच्चा मार्ग है,[1] बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये। क्योंकि इनका स्वर बुद्ध भगवान् के स्वर के समान प्रभावपूर्ण, मधुर और गम्भीर था; इस कारण इन का नाम बुद्धघोष रखा गया।[2] (बुद्धघासेति सो सोभि बुद्धोविय महीतले)। पहले ये 'ब्राह्मणमाणव' रूप से प्रसिद्ध थे, अब ये संसार में बुद्ध भगवान् के समान सुशोभित हुए। इसी विहार में इन्होंने 'णाणोदय' (ञाणोदय) की अपनी सर्व प्रथम रचना की और 'धम्मसंगणि' के ऊपर 'अटठसालिनी अट्ठकथा लिखी। थेर ने यह देखकर कि अब ये परित्त अट्ठकथायें (पिटकत्रय के ऊपर

---

१. एकायणो अयं मग्गो।

२. बुद्धस्सविय गम्भीर घोसत्तानं वियाकदं।
बुद्धघोसेति सो सोभि बुद्धोविय महीतले॥

अट्ठकथायें) लिखने वाले हैं, इनसे कहा—'यहाँ जम्बू द्वीप में 'पिटकत्त्रय' का केवल पाठ मात्र ही सुरक्षित है, अट्ठकथायें यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। अट्ठकथायें तो सिंहल द्वीप में सिंहली भाषा में ही उपलब्ध हैं, जिनको कि प्रतिभाशाली महाथेर महिन्द ने तीनों सङ्गीतियों में प्रमाणित बुद्ध भगवान् के सुत्तों (व्याख्यानों) को देखकर लिखा था। तुम भी वहाँ जाकर और उन्हें पढ़कर उनका मागधी भाषा में भाषान्तर करो। यह तुम्हारा कार्य संसार का कल्याण करने वाला होगा।' इस बात को सुनकर बुद्धघोष बहुत प्रसन्न हुए और महानाम' राजा के शासन काल में श्रीलङ्का पहुँचे। वहाँ अनुराधपुर के महाविहार में जाकर ये 'महापधान' हाल में प्रविष्ट हुए तथा महाथेर संघपाल के द्वारा प्रतिपादित अट्ठकथाओं को और थेर वाद के सिद्धान्त की परिपाटी को प्रारम्भ से लेकर अंत तक सुना, और यह सोचकर कि ये ही बुद्ध भगवान् के सिद्धान्तों का यथार्थ अभिप्राय और ठीक-ठीक अर्थ प्रतिपादन करने वाली हैं, महाथेर से प्रार्थना की—भन्ते, मैं इन अट्ठकथाओं का मागधी में भाषान्तर करना चाहता हूँ, कृपया मुझे इन अट्ठकथाओं को पढ़ने की अनुमति दीजिए। इस पर महाथेर ने इनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिए इनको दो गाथायें स्पष्ट व्याख्या करने के लिए दीं। बुद्धघोष ने पिटकत्रय तथा अट्ठकथाओं का परिशीलन करके उनके सार रूप में (उन दोनों गाथाओं की व्याख्यास्वरूप) अपना लङ्का में सर्व प्रथम ग्रंथ 'विसुद्धिमग्ग' रचा और महाथेर के पास ले गये। महाथेर ने उस ग्रंथ को विद्वान् श्रमणों के संघ के समक्ष पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु देवताओं ने यह सोचकर कि यह विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ संसार में प्रसिद्ध हो जाय, इसको लुप्त कर दिया। इस पर इन्होंने उसे दुबारा ज्यों का त्यों ही लिख डाला। देवताओं ने इसे फिर लुप्त कर दिया। इस पर जब ये तीसरी बार इसे लिखने लगे तो देवताओं ने पहली दोनों प्रतियाँ लाकर इनको लौटा दीं। तब श्रमणों ने दोनों प्रतियों को पढ़कर सुनाया। उनमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन न था। यहां तक कि थेरों के विचारों के उद्धरणों में तथा प्रकृति-प्रत्यय और उपसर्गों में भी कोई अन्तर न था। यह देखकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए और जोर से चिल्ला कर कहने लगे—'निश्चय ही ये तो स्वयं मैत्तेय्य (आगामी बुद्ध) हैं। महाथेर ने इनको सिंहली अट्ठकथायें दीं और इन्होंने अनुराधपुर विहार के ग्रंथागार में (गंधागार में) बैठकर सिंहली भाषा की उन सब अट्ठकथाओं

का सर्व भाषाओं की मूलभूत मागधी भाषा में व्याकरणानुसार रूपान्तर किया। इसके बाद थेरों और आचार्यों ने इनकी मागधी अट्ठकथाओं को वही सम्मान दिया जो स्वयं पिटकत्रय को देते थे। अपने अभीष्ट कार्य को पूरा करके वे बोधिवृक्ष की अर्चना के लिए जम्बू द्वीप में वापिस आ गये।

यह पहले भी कहा जा चुका है, जैसा कि श्रीमती रायस् डेविड्स् का भी सुझाव है, कि 'चुल्ल वंस' के रचयिता आचार्य धम्मकित्ति के पास, जिन्होंने कि इस ग्रंथ को तेरहवीं शताब्दी में लिखा था, अवश्य ही कुछ परम्पराएँ ऐसी होंगी जिनका उन्होंने बुद्धघोष की जीवनी लिखने में सहारा लिया होगा। और वे परम्पराएँ जो कि अब अप्राप्य हैं, अवश्य ही अनुराधपुर के विहार में लिखित रूप में सुरक्षित रहीं होंगी। यद्यपि 'चुल्लवंस' का यह वर्णन उपर्युक्त बात की सचाई को प्रमाणित करता है, फिर भी कुछ बातों के ऊपर अभी और खोज की आवश्यकता है।

ऊपर के वर्णन से हमें आचार्य बुद्धघोष के विषय में निम्नस्थ बातें ज्ञात होती हैं :—बुद्धघोष महानाम राजा के शासन काल में अर्थात् पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्री लङ्का में पहुँचे और वहां भिन्न-भिन्न सिंहली अट्ठकथाओं के विशेषज्ञ गुरुओं से सिंहली अट्ठकथाओं का अध्ययन किया। इसके पश्चात् उन्होंने 'विसुद्धिमग्ग' की रचना के द्वारा अपनी विद्वत्ता की परीक्षा देकर भदन्त संघपाल से सिंहली अट्ठकथाओं के पाली में भाषान्तर करने की अनुमति प्राप्त की और उनका पाली में भाषान्तर किया।

इनका जन्म स्थान बोधिगया के पास घोस ग्राम था। ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। वेद पुराण तथा पातंजलयोग दर्शन के ये विद्वान् थे। थेर रेवत से इन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली और गुरु के आदेशानुसार इन्होंने श्री लङ्का में जाकर सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी में अनुवाद किया। श्री लङ्का जाने से पूर्व ये दक्षिण भारत में रहे थे और वहीं पर इनका परिचय थेर बुद्धदत्त और जोतिपाल से हुआ था, जिन्होंने इनसे क्रम से मज्झिम निकाय तथा संयुत्तनिकाय और अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथाओं-पपंचसूदनी 'तथा सारत्थप्पकासिनी और मनोरथपूरणी अट्ठकथाओं-की रचना करने की प्रार्थना की थी और परिणामस्वरूप

श्रीलङ्का में जाकर इन्होंने सर्व प्रथम विसुद्धिमग्ग की रचना करने के पश्चात् अन्य अट्ठकथाएँ लिखीं। इनके जीवन काल के निर्णय के बारे में आगे विस्तृत विचार किया जायेगा, पहले अन्य बातों का विचार यहाँ कर लेना उचित है :—

इनकी जन्म भूमि के बारे में प्रो० कोसम्बीजी का मत है कि ये दक्षिण भारत के रहने वाले थे, उत्तर भारत के नहीं। इन्होंने विसुद्धिमग्ग की भूमिका पृष्ठ १५ में उनको मोरण्डखेट के तिलगु प्रदेश के तैलंग ब्राह्मण माना हैं। उनके उत्तर भारतीय होने के बारे में कोसम्बीजी कहते हैं कि उत्तर भारत का उनका भौगोलिक वर्णन आँखों देखा प्रतीत नहीं होता और न ही उनको उत्तर भारत की गर्मी का अनुभव है। बुद्धघोष मगध और विदेह के बीच गङ्गा में बालू के टीलों का वर्णन करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बुद्धघोष ने श्रीलङ्का की महावलि गङ्गा के आधार पर ही गङ्गा का वर्णन किया है, भारत को वास्तविक गङ्गा का नहीं।

श्री बी० सी० ला का भी इससे मिलता जुलता विश्वास है। उनका कहना है कि 'बुद्धघोष के रचे हुए ग्रंथों के भौगोलिक वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये उत्तर भारत के मगध प्रान्त के नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने मगध और उत्तर भारत का वर्णन, श्रीलङ्का में प्रचलित लोक कथाओं और किंवदन्तियों के आधार पर किया है। विशाख की यात्रा में पाटली पुत्र को समुद्र के किनारे बन्दरगाह बतलाना, गया को मण्डलवापीस्थानतित्थ कहना, प्रयाग को त्रिवेणी न कहकर गङ्गा के किनारे स्थित केवल स्नानघाट के रूप में वर्णन करना, बोधिवृक्ष का पौराणिक वर्णन, फल्गु (गया की नदी का अन्य नाम) शब्द को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से जोड़कर मनोरंजक व्याख्या करना, कि यहाँ लोग उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में स्नान करने आते थे, इसलिए इसलिए इसका नाम 'फग्गु' (फल्गु) पड़ा, राजग्रह की पंचपहाड़ियों में से तपोदा के स्थान में बभार में उष्ण स्रोत का (और वह भी तपोदा के प्रसङ्ग में जिसके कि नाम से भी स्पष्ट रूप से उष्ण स्रोत का होना ज्ञात है) वर्णन करना आदि बातें

स्पष्ट बतलाती हैं कि ये वर्णन व्यक्तिगत ज्ञान के ऊपर आधारित नहीं, बल्कि सिंहली अट्ठकथाओं से सूचनाएँ लेकर लिखे गये हैं और इससे परिणाम निकलता है कि ये मगधवासी नहीं थे, इसलिए श्री बी०सी० ला उनको बिन्ध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग से सम्बन्धित करते हैं और अपने कथन की पुष्टि में कहते हैं कि 'सातवाहन' के लम्बे वर्णन[1] तथा समन्तपासादिका में रुद्रदामक तथा अन्य सिक्कों का कुछ कम कीमत के रूप में वर्णन करना आदि बातें बतलाती हैं कि वे पश्चिमी भारत में विन्ध्याचल के पश्चिमी किनारे के नर्मदा और गोदावरी के प्रदेशों में पैदा हुए थे। इसी कारण अपनी जन्मभूमि को उत्कर्ष देने के लिए उन्होंने अराडा के सांख्य विद्यालय को राजगृह में वर्णन न करके उसी प्रदेश में वर्णन किया है तथा अस्सगुत्त (अश्वगुप्त) के आश्चर्य प्रदर्शन की घटना को भी उसी प्रदेश में वर्णन किया है। बौद्धधर्म में दीक्षित होने से पहले उनका शास्त्रार्थ करते हुए उसी प्रदेश में घूमने का चुल्लवंस का वर्णन भी उपरोक्त तथ्य की सचाई को प्रमाणित करता है। बुद्धघोष रचित ग्रंथों में आये हुए व्यक्तिगत निर्देशों से भी इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ये पश्चिमी भारत और विन्ध्य प्रदेश से घूमते हुए दक्षिण भारत में आये और अन्त में श्रीलङ्का पहुँचे। दक्षिण भारत में प्रचलित मृत पुरुषों की हड्डियों को धोने की[2] जंगली प्रथा का वर्णन भी बुद्धघोष ने इसी पर्यटन में देखकर किया है।

उपरोक्त वर्णन को चुनौती देते हुए आ० धर्मरक्षित विसुद्धिमग्ग के हिन्दी अनुवाद की भूमिका में कहते हैं कि बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में भारत का भौगोलिक दिग्दर्शन, पूर्ण और तथ्ययुक्त है। उन्होंने श्रावस्ती, ऋषिपत्तन, मृगदाय, राजगृह, बुद्धगया आदि सभी स्थानों का स्पष्ट वर्णन किया है। विसाख थेर की यात्रा के वर्णन में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे पाटलीपुत्र का बन्दरगाह होना सिद्ध हो। उस वाक्य की उचित व्याख्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दूसरी बात यह भी हो सकती है

१. सुमंगल बिलासिनी–भाग १, पृ० ३० तथा समन्तपासादिका
—भाग १, पृ० १७२।

२. अट्ठिधोपन—सुमंगलविलासिनी–भाग १, पृ० ८६।

कि वह यात्री पाटलीपुत्र से नाव में सवार हुआ हो और आगे जाकर उसने बन्दरगाह से समुद्र यात्रा प्रारम्भ की हो।

गङ्गा के टीलों का वर्णन अर्थ को स्पष्ट करने के लिए है। 'उण्हस्साति अग्गिसन्तापस्स' का 'अर्थ सूर्य की गर्मीके और अग्नि सन्तापके' ऐसा है। वातातपादि शब्द के ऊपर भी कोसम्बीजी ने ध्यान नहीं दिया। 'डंसमसकवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं परिधानाय' यहाँ आतप का अर्थ सूर्य की गर्मी है।

कोसम्बीजी के विसुद्धिमग्ग के संस्करण में दिये हुए-मोरण्ड खेटकवत्तव्वेन इत्यादि पाठ को आ० धर्मरक्षित क्षेपक बताते हैं, जो किसी भक्त ने जोड़ दिया होगा; अन्यथा इस प्रशंसात्मक वाक्य को आ० बुद्धघोष अपने लिए प्रयुक्त नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त सिंहली संस्करण में 'मोरण्डचेतक' तथा बर्मी संस्करण में 'मुदन्त खेटक' पाठ हैं।

उपर्युक्त तीनों विद्वानों के वर्णनों को पढ़कर निष्कर्ष यह निकलता है कि आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का वर्णन सिंहली अट्ठकथाओं के ऊपर अधिक अ धारित है। उनकी अट्ठकथाओं में पूर्वी भारत का वर्णन उतना स्पष्ट, विशद तथा तथ्यपूर्ण नहीं है, जितना पश्चिमी विन्ध्य प्रदेश तथा दक्षिण प्रदेश का है। श्रावस्ती राजगृह आदि का बर्णन बौद्ध ग्रंथों में भरा पड़ा हैं, इस कारण यह संभव ज्ञात होता है कि आ० बुद्धघोष ने वह वर्णन वहीं से लिया हो और इसी कारण अधिक स्पष्ट हो। किन्तु पश्चिमी विन्ध्य प्रदेश तथा दक्षिण का वर्णन बौद्धग्रंथों में अधिक नहीं है और यह अधिक सम्भव है कि वे स्थान उनके अपने देखे हुये हों, क्योंकि वे उस प्रदेश में पैदा होने और पर्यटन करने के कारण उससे अच्छी तरह परिचित होंगे। इसी कारण श्री बी० सी० ला के कथन से सहमत होना पड़ता है कि वे पश्चिमी भारत में विन्ध्याचल के पश्चिमी किनारे के नर्मदा और गोदावरी के प्रदेशों में पैदा हुए और वहीं से दक्षिण का भ्रमण करते हुए अनेक विहारोंमें ठहर-ठहर कर तथा उन विहार' के थेरोंसे प्रेरणा लेते हुए श्रीलङ्का गये। उन्हीं थेरों में भदन्त बुद्धमित्त और ज्योतिपाल थे, जिनके साथ ये श्रीलङ्का जाते समय रहे थे और जिन्होंने क्रम से 'पपंचसूदनी, सारत्थप्पकासिनी तथा मनोरथपूरणी' के लिखने की इनसे प्रार्थना की थी,

जोकि श्रीलङ्का में जाकर इन्होंने पूरी की थी। इसी कारण इनकी प्रस्तावनाओं की गाथाओं में 'पुब्बे मया सद्धि वसन्तेन' पद दिये गये हैं।

कोसम्बीजी इनके ब्राह्मण होने तथा वेदों और पातंजल योगदर्शन के ज्ञाता होने के विरोध में कहते हैं कि न तो ये ब्राह्मण थे और न इनको वेदों और संस्कृत का ही ज्ञान था। गहपतियों अर्थात् किसानों के जीवन की प्रशंसा और सराहना करने के कारण कोसम्बीजी उनका किसान के कुल में पैदा होना सिद्ध करते हैं। श्री बी० सी० ला का कहना है कि 'बुद्धघोष की विद्वत्ता और प्रतिभा से ज्ञात होता है कि पूव ब्राह्मणाचार्यों (मोग्गलान,सारिपुत्त,महाकस्सप आदि) के समान ये भी वेदवेदाङ्ग षड्दर्शन तथा व्याकरण के विद्वान् ब्राह्मण हो सकते हैं।' अन्यथा संस्कृत के विद्वान् हुए बिना पाली भाषा पर अधिकार और इसमें इतनी विद्वत्तापूर्ण अट्ठ-कथाओं की रचना कैसे सम्भव हो सकती है।

तिपिटकाचार्य धर्मरक्षित ने श्री कोसम्बीजी की दी हुई युक्तियों का निम्न प्रकार खण्डन किया है। उनका कहना है कि वे ब्राह्मण थे। श्री कोसम्बीजी ने जो यह कहा है कि उनको प्रसिद्ध पुरुषसूक्त के अर्थ का भी ज्ञान नहीं था—असङ्गत है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रोऽजायत' इस ऋचा को बुद्धघोष बौद्ध परम्परा के अनुसार लेते हैं। बौद्ध काल में वर्णों की उत्पत्ति ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय उर (हृदय) से, वैश्य नाभि से, शूद्र घुटनों से तथा श्रमण पैर से पैदा हुए—इस प्रकार वर्णन की गयी है।[1] सम्भव है पहले यह ऋचा बौद्धकालीन अर्थ के अनुसार ही हो और बाद में बदला हुआ यह उपर्युक्त रूप हो गया हो जो आजकल प्रसिद्ध है। इसलिए बुद्धघोष का यह वचन-तेसं किर अयं लद्धि-ब्राह्मणा ब्रह्मुनो मुखतो निक्खन्ता खत्तिया उरतो,वेस्सा नाभितो, सुद्दा जानुतो, समणा पिट्ठि पादतो-'ति-सर्वथा उस काल की बौद्ध परम्परा के अनुसार है।

गहपति (गृहपति) की प्रशंसा का भी यह कारण है कि जहाँ कहीं भगवान् बुद्ध ने शील, समाधि और प्रज्ञा की भावना की विधि बतलाई है,

१. देखें—अम्बट्ठसुत्त-दीघनिकायमें।

प्राय: गृहपति अथवा गृहपतिपुत्र को ही सम्बोधित करके प्रारम्भ की है– उस धर्म को गृहपति या गृहपतिपुत्र या किसी दूसरे कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है और सुनकर तथागत के प्रति श्रद्धालु हो जाता है।[1] गृहपति साधारण रूप से गृहस्थ के भी अर्थ में हो सकता है तथा यह भी सम्भव है कि यह सम्बोधन किसानों का ही हो, क्योंकि प्रारम्भ में ब्राह्मणों ने उनके धर्म का विरोध किया था और किसानों ने ही उसे स्वीकार किया था।

बुद्धघोष को कोसम्बीजी संस्कृत का ज्ञाता नहीं मानते, क्योंकि बुद्धघोष ने 'भ्रूणहा' शब्द का भी ठीक अर्थ नहीं करपाया है। किन्तु आ० धर्मरक्षित कहते हैं कि संस्कृत के शब्द पाली भाषा में आकर अन्यार्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसा कि संस्कृत भाषा के शब्दों का आधुनिक भाषाओं में आकर अर्थ परिवर्त्तन देखा जाता है। महाभारत का–'ऋतुं वै याचमानाया: न ददाति पुमान् वृतः। भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स इह ब्रह्मवादिभिः॥' का भ्रूणहा शब्द पाली में आकर 'वासना को नष्ट करने तथा चक्षु आदि इंद्रियो को संयत रखने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसाकि मज्झिमनिकाय के मागन्दियभारद्वाज सवाद से पूर्णतः स्पष्ट है।[2] हे मागन्दिय, चक्षु अच्छे रूप में मुदित होने वाला है, वह तथागत का संयत और गुप्त है। यही तो सोचकर तूने कहा—श्रमण गौतम भूनहू (भ्रूणहा) है।

मागन्दिय—'हे गौतम' यही सोचकर मैंने कहा। सो किस हेतु, ऐसा ही हमारे सूत्रों में आता है।[3]

भ्रूणहा शब्द त्रिपिटक में अन्य अनेक स्थलों में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[4] इसलिए यह कथन कि आ० बुद्धघोष संस्कृत के विद्वान् नहीं थे—असङ्गत है।

---

१. हिन्दी दीघनिकाय पृ० २३।

२. हिन्दी मज्झिमनिकाय २, ३, ५।

३. भूनहुनो हतवड्ढिनो मरियादकारकस्स षड्द्वारगुत्तस्सेत्यर्थः-पपंच-सूदनी २, ३, ५।

४. देखें—सङ्किच्च जातक १६–२, खण्डहालजातक २२-५, भूरिदत्तजातक २२–६, महावेस्सन्तर जातक २२–१० इत्यादि।

पातंजलयोग आदि दर्शन ग्रन्थों का ज्ञान भी बुद्धघोष का अच्छा था। उन्होंने ब्रह्मजाल आदि सुत्तों की व्याख्या करत समय अपनी अट्ठकथाओं में उनके मतों पर अच्छा गम्भीर प्रकाश डाला है। श्री बी० सी० ला तथा अन्य विद्वान् भी इस बात को मानते हैं। अविद्या की व्याख्या और प्रकृति का स्वरूप तथा हेतु शब्द की व्याख्या क्रम से उनके वेदान्त, योग, सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनों के ज्ञान के साक्षी हैं। इन शब्दों को इन्होंने अपने ग्रंथों में उन-उन मतों का खण्डन करते समय लगभग उसी अर्थ में प्रयुक्त किया है, जिसमें वे उन-उन दर्शनों में प्रयुक्त हुए हैं। महाभाष्य की वर्णन शैली को अपनाकर इन्होंने अपने व्याकरण के ज्ञान का भी पूर्ण रूप से परिचय दिया है तथा 'इन्दियट्ठ' आदि शब्दों की व्याख्या तो उन्होंने महाभाष्य का आधार लेकर ही की है और महाभाष्य तथा बुद्धघोष की व्याख्या में केवल संस्कृत और पाली शब्दावली के प्रयोग मात्र का ही अन्तर है। महाभाष्य के पूर्ण ज्ञान के बिना एक ही पद की व्याख्याओं में इतना अधिक साम्य असम्भव है।[1]

कोसम्बीजी कहते हैं कि उनको रामायण तथा महाभारत का भी ज्ञान नहीं था, किन्तु इसके बारे में आ० धर्मरक्षित कहते है कि ये दोनों ग्रंथ प्रवृत्तिपरक हैं, क्योंकि इनमें युद्धों की हिंसा प्रवृत्ति का तथा सांसारिक और शृङ्गारिक बातों का वर्णन अधिक है। इसलिए अधिक वर्णन नहीं देकर जितना दिया है वही पर्याप्त है, क्योंकि इन ग्रंथों की कथाओं को आसक्ति को बढ़ाने वाली तथा अहिंसा और वैराग्य के स्थान पर हिंसा तथा भोग विलासकी ओर ले जाने वाली बताया गया है, और जहाँ पर इनका उल्लेख है वहाँ प्रकरण निवृत्तिपरक भिक्खु को वैराग्य का उपदेश देने का है।

इसी प्रकार आचार्य बुद्धघोष के बारे में यह कहना कि वे संस्कृत के

---

१. महाभाष्य में इन्द्रिय शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—
इन्द्रियम्=इन्द्रलिङ्गम्, इन्द्रदृष्टम्, इन्द्रसृष्टम्, इन्द्रजुष्टम्, इन्द्रदत्तम् इतिवा। जबकि आचार्य बुद्धघोष विसुद्धिमग्ग में इन्द्रियट्ठो पदकी व्याख्या में लिखते हैं इन्दलिङ्गट्ठो, इन्ददेसितट्ठो, इन्ददिट्ठट्ठो, इन्दसिट्ठट्ठो, इन्दजुट्ठट्ठो।

विद्वान् नहीं थे—ठीक नहीं है। वे संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे और व्याकरण, सांख्य, योग, वेदांत तथा न्याय दर्शनों के पूर्ण ज्ञाता थे। यह बात उनकी अट्ठकथाओं में दी गई तत्तद्विषयक व्याख्याओं से भली-भाँति प्रत्यक्ष है। बुद्धघासुप्पत्ति सप्तमोऽध्याय में दिये गये प्रसङ्ग से तो यह बात और भी अधिक पुष्ट हो जाती है कि जिस समय लङ्का के भिक्षु संघ ने उनके संस्कृत ज्ञान के बारे में सन्देह प्रकट किया तो उन्होंने आचार्य के द्वारा भिक्षु संघ को एकत्रित करवाकर सस्कृत में भिक्खुओं के आचरण के विषय में व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान को सुनकर संघ ने उनके संस्कृत ज्ञान की मुक्तकंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।[1]

'मोरण्डखेटकवत्तब्बेन' इस वाक्यांश के द्वारा श्री कोसम्बीजी इनको दक्षिण चोल देश का निवासी मानते हैं। किन्तु आ० धर्मरक्षित का कहना है कि यह पाठ 'विसुद्धिमग्ग' के अतिरिक्त अन्यत्र उनके किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलता। इसलिए वे कहते हैं कि यह प्रशंसा सूचक वाक्य क्षेपक प्रतीत होता है, क्योंकि बुद्धघोष ने अपने ग्रन्थों में अपनी इतनी प्रशंसा कहीं भी नहीं की, यहीं वे क्यों करते? इसके बारे में इतना और ध्यान देना चाहिए कि विसुद्धिमग्ग के सिंहली संस्करण में 'मोरण्डचेतक वत्थब्बेन' और बर्मी संस्करण में 'मुदन्तखेटकवत्तब्बेन' पाठ है। इससे यह स्थान उत्तर भारत में पश्चिम की ओर भी हो सकता है, यह बात पहले भी कही जा चुकी है। रही उनके दक्षिण में रहने की, सो वे उत्तर-भारत से श्रीलङ्का जाते समय दक्षिण में जगह-जगह रहे थे और 'मयूरसुत्त-पट्टन' बन्दरगाह में उनकी भेंट भदंतबुद्धमित्त से हुई थी। इनके पास वे बहुत दिनों तक रहे और उनकी प्रार्थना पर ही आचार्य बुद्धघोष ने मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा लिखी थी जैसाकि मज्झिमनिकाय की अटठकथा पपंचसूदनी की प्रस्तावना में दी गई निम्नस्थ गाथा से स्पष्ट है :—

आयाचितो सुमतिना थेरेन बुद्धमित्तेन।
पुब्बे मयूरसुत्तपट्टनम्हि सद्धिं वसन्तेन॥

---

१. बुद्धघोसुप्पत्ति सप्तमोऽध्याय, पृ० २४।

इसी प्रकार अंगुत्तरनिकाय की प्रस्तावना से प्रकट होता है कि वे कंजीवरम् में भदन्त जोतिपाल के साथ रहे थे और उनकी प्रार्थना पर ही उन्होंने मनोरथपूरणी अट्ठकथा लिखी थी :—

आयाचितो सुमतिना भदन्तजोतिपालेन।
काञ्जीपुरादिसु मया पुब्बेसद्धिं बसन्तेन ॥

यहाँ यह बात भी अवश्य उल्लेखनीय है कि उस समय में यातायात साधन बहुत ही सीमित होने के कारण ग्रन्थकारों को अपने भौगोलिक वर्णन का आधार या तो अन्य ग्रन्थ थे अथवा उस समय की किम्वदन्तियाँ थी। इसी कारण तपोदा आदि के वर्णन में त्रुटि हो सकती है। दूसरी बात यह भी है कि आचार्य बुद्धघोष अनुवादक थे और ऐसे अनुवादक थे जो आर्ष परंपरा को पूर्ण रूप से अनुसरण करने वाले थे। इसी कारण उन्होंने सिंहली आर्ष अट्ठकथाओं के वर्णन को कहीं भी परिवर्तित नहीं किया है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि 'पुब्बे सद्धिं वसन्तेन' यह पाठ स्पष्ट बताता है कि श्रीलङ्का जाने से पहले वे इन स्थानों में उन-उन आचार्यों के साथ रहे थे और उस समय की इन दोनों थेरों की प्राथना के कारण उन्होंने बाद में श्रीलङ्का में ये उपर्युक्त दोनों अटठकथाएं लिखीं। 'पुब्बाचरियानं सन्तिकायथा-परियत्ति पञ्ञाय' इत्यादि लेख भी इसी बात को पुष्ट करता है कि उपर्युक्त थेरों के साथ ये दक्षिण में काफी समय तक रहे थे और उनसे शास्त्रों का अभ्यास किया, जिससे दक्षिण प्रदेश का वर्णन इनकी अट्ठकथाओं में स्पष्ट और विशद हुआ है।

श्री बी० सी० ला का कथन उनके जन्म स्थान के बारे में अधिक संगत प्रतीत होता है, यह पहले भी स्पष्ट रूप में कहा जा चुका है।

संक्षेप में उपरोक्त वर्णन का यह सार निकलता है:—आचार्य बुद्धघोष पश्चिमी भारत में विन्ध्याचल के पश्चिमी किनारे के नर्मदा और गोदावरी के प्रदेश में अथवा उसके इधर-उधर कहीं पास के ही प्रदेश में पैदा हुए थे। उनका अराड़ा के वट्टनीय आश्रम का विन्ध्य प्रदेश में स्थापित करना तथा अस्सगुत्त (अश्वगुप्त) के आश्चर्य प्रदर्शन की घटना के वहीं घटने का वर्णन करना भी उनको विन्ध्य प्रदेश से सम्बन्धित करता है।

चुल्लवंस का वर्णन भी कि बुद्ध धर्म में दीक्षित होने से पहले ये शास्त्रार्थ करते हुए उन्ही प्रदेशों में घूमते थे, उपरोक्त वात के तथ्य को प्रमाणित करता है। आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थों में आये हुए व्यक्तिगत निर्देशों से तो यह बात और भी स्पष्ट और पुष्ट हो जाती है कि वे पश्चिमी भारत और विन्ध्य प्रदेश के रहने वाले थे।[1] वहाँ से घूमते हुए कृष्णा नदी के किनारे होकर ये दक्षिणमें आये। दक्षिणमें प्रचलित मरे हुए पुरुषोंकी हड्डियोंको धोने (अत्थिधोवन)के जंगलीं रिवाजका वर्णनभी उन्होंने इसी पर्यटन के समय में देख कर किया है।

सारिपुत्त मोग्गलान, महाकस्सप आदि अनेक बौद्ध आचार्यों के के समान आचार्य बुद्धघोष भी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे; नहीं तो उनका इतना संस्कृत साहित्य व्याकरण, ज्योतिष तथा साँख्य, योग, नैयायिक और वेदांत दर्शनों का ज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है। यह तथ्य भी कि वे गुरु की प्रेरणा पर ही अट्ठकथाओं का मागधी में अनुवाद करने के लिये श्रीलंका गये-सत्य है, चाहे यह बात कि उनके गुरु का नाम 'रेवत' ही था, उनके ग्रन्थों के अन्तरंग साक्ष्यसे सिद्ध न हो। वे संस्कृत और पाली या मागधी दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते थे और पाली भाषा को तो उन्होंने अपने ग्रन्थों से केवल समृद्ध ही नहीं किया, अपितु उसको परिष्कृत करके उसकी वर्णन शैली को सुन्दर और आदर्श रूप दिया है।

यद्यपि बर्मी परंपरा उनके बर्मा जाने का भी वर्णन करती है, किन्तु यह बात निराधार है और इसके सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। उन लोगों का कथन है कि अपनी अट्ठकथाओं को लिख चुकने के बाद वे बुद्ध भगवान् के उपदेशों का प्रचार करने के लिए बर्मा गये और साथ में आ० कच्चान के पाली व्याकरण को भी वहाँ ले गये और उसके ऊपर एक टीका भी लिखी थी और उनके बर्मा में आने के समय के उपलक्ष्य में बर्मा में एक सम्वत् भी प्रचलित हुआ था। किन्तु न तो पाली वैयाकरण 'मोग्गलान' ही और न 'हेमचन्द्राचार्य' ही इस बात का समर्थन करते हैं। उनके बर्मा जाने की न तो इतिहास ही पुष्टि करता है और न वहाँ के

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ८४।

शिलालेख ही। इस परम्परा का आधारभूत कारण उनकी अट्ठकथाओं की मान्यता तथा महत्व ही हो सकता है, जिन्होंने बर्मा के बौद्धधर्म में एक नया युग पैदा कर दिया था। अब भी वहाँ उनकी 'अट्ठसालिनी' और 'विसुद्धिमग्ग' की इतनी मान्यता है कि मालूम पड़ता है कि वे उनके बीच में आकर रहे होंगे। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि इस नाम के कोई अन्य आचार्य वहाँ गये होंगे या वहीं पैदा हुए होंगे जो बाद में प्रसिद्ध आ० बुद्धघोष ही समझे गये।

उनकी मृत्यु के बारे में उनकी अट्ठकथाओं में और बुद्धघोसुप्पत्ति के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ में कोई लेख नहीं मिलता। बुद्धघोसुप्पत्ति में लिखा है कि इनको अपनी मृत्यु के बारे में पहले से ही ज्ञान हो गया था। इसलिए अपनी मृत्यु के समय ये अपने हृदय में मृत्यु समयमें आचरण करने योग्य भगवान् की आज्ञाओं का पालन करते हुए स्वर्गवासी हुए और इन्होंने तुषित स्वर्ग में जन्म लिया। उनकी मृत्यु के बाद उनकी चिता चन्दन की बनवाई गई और ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों ने उनकी अस्थियों को बोधि-वृक्ष के पास ले जाकर स्थापित कर दिया और उनके ऊपर स्तूप बनवाये। उनके बर्मा जाने की बर्मी परम्परा के समान, कम्बोडिया की परम्परा भी कहती है कि वे अन्तिम समय में कम्बोडिया गये और वहीं स्वर्गवासी हुए और वहाँ उनकी अस्थियों के ऊपर स्तूप बनवाया गया। यह भी बर्मी परम्परा के समान किंवदन्ती है और इसका भी आधार कुछ वैसा ही है जैसा कि बर्मी परम्परा का, क्योंकि उनके ग्रन्थों की वहाँ भी बहुत अधिक मान्यता है।

## (२) जीवन-काल

विसुद्धिमग्ग के रचयिता प्रसिद्ध अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष के जीवनकाल के बारे में निर्देश महावंस के परिशिष्ट चुल्लवंस में मिलता है। चुल्लवंस आचार्य धम्मकित्ति की तेरहवीं शताब्दी

ई० पश्चात् की रचना है। उनका कथन है कि आचार्य बुद्धघोष श्रीलङ्का के राजा महानाम के समय में श्रीलङ्का में रहे थे। राजा महानाम का समय इतिहास में ई० सन् ४०६ से ४३१ दिया गया है। इसलिए आचार्य बुद्धघोष का श्रीलङ्का का निवास-काल भी ४०६ से ४३१ से बीच निश्चित होता है। उसमें यह भी वर्णन है कि विसुद्धिमग्ग की रचना के समय अनुराधपुर के महाविहार के अध्यक्ष प्रसिद्ध थेर संघपाल थे और इन्हीं के आदेश को गृहण करके उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'विसुद्धिमग्ग' लिखा था, जोकि श्रीलङ्का में उनकी सबसे पहली रचना है। श्रीलङ्का के अर्वाचीन विद्वान् बौद्ध भिक्खु थेर बुद्धदत्त श्रीलङ्का के विश्वविद्यालय की पत्रिका (Review) के अप्रेल १९४५ के भाग ३ संख्या १ के पृ० ४० में संकेत करते हैं कि थेर बुद्धदत्त ने अपने विनयविनिच्छय की प्रस्तावना में थेर संघपाल का प्रायः उन्हीं शब्दों में उल्लेख किया है जिनमें कि भदन्त संघपाल का आचार्य बुद्धघोष ने अपने विसुद्धिमग्ग की प्रस्तावना में किया है :—

खन्तिसरच्च सोसील्य बुद्धि सद्धादयादयो,
पतिट्ठता गुणा यस्मि रतनानीव सागरे।
विनयाचारयुत्तेन तेन सकच्चसादरं,
याचितो संघपालेन थेरेन थिरचेतसा॥
सुचिरट्ठितिकामेन विनयस्स महेसिनो।[1]

भदन्त संघपालस्स सुचिसल्लेखवुत्तिनो,
विनयाचारवुत्तस्स युत्तस्स पटिपत्तियम्।
खन्तिसरच्चं मेत्तादिगुणभूसितचेतसो,
अज्झेसनम् गहेत्वाव करोन्तेन इमं मया॥[2]

उपरोक्त पद्यांशों की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों आचार्यों की विशेषण पदावली थेर संघपाल के विषय में एक सी ही है, किन्तु जहाँ आचार्य बुद्धदत्त उनके लिये 'थेरेन' शब्द देते हैं, वहाँ आचार्य बुद्धघोष उनका 'भदन्त संघपालस्स' कहकर उल्लेख करते हैं। आचार्य बुद्धदत्त कहते हैं कि संघपालेन-थेरेन 'सकच्च सादरं याचितो' अर्थात्

१. Buddha Datta Mannual, Part I P.16; Part II, P. 303.
२. विसुद्धिमग्ग भाग २, पृ० ७११।

विनयविनिच्छय ग्रन्थ की रचना करने के लिए आदर सत्कार पूर्वक थेर संघपालने मुझसे प्रार्थना की। किन्तु आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि 'भदन्तसघपालस्स अज्भेसनं गहेत्वाव' अर्थात् भदन्त संघपाल की आज्ञा या आदेश को गृहण करके ही मैंने विसुद्धिमग्ग की रचना की। उपरोक्त पद्यों से दो बातें स्पष्ट हैं:-( १ ) कि आचार्य बुद्धदत्त तथा बुद्धघोष समकालीन हैं और बुद्धदत्त दोनों में बड़े हैं ( २ ) आचार्य बुद्धदत्त के श्रीलंका निवास काल में थेर संघपाल विहार के अध्यक्ष नहीं थे, किन्तु आचार्य बुद्धघोष के समय में वे अध्यक्ष हो गये थे। साथ में यह भी सिद्ध है कि आचार्य बुद्धदत्त श्रीलंका में पहले गये थे और आचार्य बुद्धघोष बाद में जैसा कि बुद्धघोसुप्पत्ति आदिमें भी कहा गया है। इसी से यह भी प्रतीत होता है कि थेर संघपाल, आचार्य बुद्धदत्त के समय सर्वोच्च विद्वान थेरे होंगे और बुद्धघोष के समय वे विहार के अधिपति बन गये थे।

बौद्ध ऐतिहासिक परम्परायें भी दोनों को समकालीन बताती है- चाहे कोई किसी को छोटा या बड़ा बतलायें। यदि आचार्य बुद्धदत्त का समय ज्ञात हो जाय तो आचार्य बुद्धघोष के भी समय का निर्णय हो जाये।

आचार्य बुद्धदत्त का जन्म स्थान त्रिचनापल्ली के पास उरगपुर अथवा उरैपुर में था, ऐसी प्रसिद्धि है, यह स्थान चोल देश में है और आचार्य बुद्धदत्त चोल देश का वर्णन देशप्रेम पूर्वक करते हैं, इससे यह उपर्युक्त प्रसिद्धि और भी पुष्ट हो जाती है। इन्होंने अपने ग्रन्थों का रचना काल राजा 'अच्चुतविक्कान्त' अथवा 'अच्चुतविक्कम' के शासन-समयमें बताया है, जोकि कलब्भ (कलभ्र) अथवा कलम्ब (कदम्ब) वंश के थे। अपने निवास स्थान के बारे में ये कहते हैं कि ये कावेरीनदी के किनारे पर वेण्हुदास ( विष्णुदास ) अथवा कण्हदास ( कृष्णदास ) के द्वारा बनवाये हुए एक बड़े विहार में रहते थे। इस लिये यह स्थान कावेरी- पट्टन के पास, जो कि कावेरी नदी के पतन-स्थान ( मुहाने )पर है, होना चाहिये। स्थान के निश्चय के बाद अब राजा 'अच्चुतविक्कान्त' या 'अच्चुत-विक्कम' के समय के बारे में निश्चय करने के लिये कोई निश्चित निर्देश

नहीं मिलते। पल्लव राजाओं में प्रसिद्ध राजा सिंहविष्णु के बारे में यह प्रसिद्धि है कि उसने 'कलभ्र' के राजा को छठी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थ भाग में हराया था। इससे इतना तो सिद्ध हो गया कि कलभ्र के राजा इससे पहले चोलदेश पर शासन करते थे। कलम्ब अथवा कदम्ब लोगों ने शासनके रूपमें कनाड़ा अथवा कनारा और मैसूरके पश्चिमी भाग पर तीसरी से छठी शताब्दी तक अपना प्रभुत्व स्थापित किया था, ऐसी भी प्रसिद्धि है और इसके बाद विजयनगरमें अच्युतरायोंकी शासन परम्परा स्थापित हुई। हो सकता है सिंहविष्णु से हार कर उन्होंने अपनी राजधानी विनय नगर में स्थापित की हो। इससे इतना निष्कर्ष तो निश्चय पूर्वक निकल चुका कि,चाहे वह कलभ्र हो अथवा कलम्ब, राजा 'अच्युत विक्रान्त' अथवा 'अच्युत विक्रम ने जोकि आचार्य बुंद्धदत्तके समकालीन थे,चोल देश परछठी शताब्दी के अन्तिम भाग से पहले शासन किया था, इसलिये आचार्य बुद्धदत्त कम से कम ५७५ ईसवी से पहले सिद्ध हुए।

स्कन्द पुराण में चोल देश के अज्ञात नाम किसी प्राचीन समृद्ध राजा के बारे में यह परम्परा सुरक्षित है कि उसके समय में एक पवित्र वैष्णव महात्मा विष्णुदास हुए थे और उन्होंने वैदिक ब्राह्मणों के खर्चीले पशुयज्ञों के विरुद्ध आन्दोलन किया था और उसमें वे सफल हुए थे। हो सकता है आचार्य बुद्धदत्त के द्वारा निर्दिष्ट वेण्हुदास ये ही हों और वे बोद्ध हों, जिनको कि स्कन्दपुराण वालों ने (पक्षपात पूर्वक) वैष्णव महात्मा के रूप में वर्णन कर दिया हो; क्योंकि यज्ञों के विरोध में बौद्ध महात्मा का खड़ा होना अधिक सम्भव है, वैष्णव महात्मा का कम। क्योंकि वैष्णव लोग चाहे अहिंसा वादी हैं, परन्तु इन्होंने कभी यज्ञों का इतना खुलकर विरोध नहीं किया। स्कन्दपुराण भी छठी शताब्दी से पहले का है, इससे भी आचार्य बुद्धदत्त छठी शताब्दी से पहले सिद्ध होते हैं।

काञ्चीपुर अथवा आधुनिक काञ्जीवरम् उस समय की चोलदेश की राजधानी कही गई है और आचार्य बुद्धघोष ने भी उसको चोलदेश के महत्वपूर्ण नगर के रूप में वर्णन किया है, किन्तु आचार्य बुद्धघोष ने अभाग्यवश श्रीलङ्का के अथवा भारत के किसी समकालीन राजा का वर्णन अथवा नामोल्लेख नहीं किया है।

विनयपिटक की अट्ठकथा–समन्तपासादिका के उपसंहार में इसके रचयिता निश्चित रूप से कहते हैं कि उन्होंने इस ग्रंथ की रचना सिरिकुड्ड, सिरिपाल अथवा सिरिनिवास की पदवी धारण करने वाले श्रीलङ्का के तत्कालीन राजा के शासन के २० वें वर्ष में प्रारम्भ की थी और २१ वें वर्ष के प्रारम्भ में समाप्त कर दी थी।[1] डॉ० बी० सी० लॉ के अनुसार हो सकता है कि ये सिरिकुड्डादि पदवी धारी राजा कित्तिसिरी मेघवण्ण ही हों, किन्तु इसके समर्थन में कोई ठोस आधार नहीं। कित्तिसिरी मेघवण्ण का शासन समय ई० सन् ३६२ से ४०९ से पहले तक बताया गया है और इनके बारे में इतिहासज्ञ कहते हैं कि ये भारतीय सम्राट् समुद्र गुप्त के समकालीन थे। यदि विसुद्धिमग्ग और समन्तपासादिका के रचयिता एक ही हो, और आचार्य बुद्धघोष ने राजा कित्तिसिरि मेघवण्ण के शासन समय में समन्तपासादिका की रचना की हो, तो उनका समय चौथी शताब्दी के अन्तिम भाग में निश्चित होता है, क्योंकि इस राजा का बीसवाँ वर्ष ई० सन् ३८२ ठहरता है। किन्तु इसमें दो आपत्तियाँ उठती हैं—एक तो यह बात चुल्लवंश के क़थन से, तथा बौद्ध परम्परा से (कि आ० बुद्धघोष बुद्ध भगवान् के निर्वाण से ९६५ वें वर्ष में अर्थात् ई० सन् ४२२-२३ में श्रीलङ्का में आये थे) मेल नहीं खाती। दूसरे यदि आचार्य बुद्धघोष सन् ३८२ में विसुद्धिमग्ग और समन्तपासादिका लिख चुके होते तो भारत के सम्राट् चन्द्रगुप्त और श्रीलङ्का के राजा बुद्धदास (जो कि राजा मेघवण्ण के पुत्र और राजा महानाम के पिता थे) के समय में आने वाले चीनी यात्री फाह्यान इनका अवश्य उल्लेख करते।[2] किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसलिए चुल्लवंस और बौद्ध परम्परा का कथन ही ठीक मानना चाहिए। वैसे भी कित्तिसिरी आदि पदावियाँ हैं जिनको कि राजा मेघवण्ण के उत्तराधिकारी भी धारण कर सकते हैं। अतएव यह भी संभव है कि राजा महानाम ने भी यह पदवी धारण की

---

१. पालयन्तस्स सकलं लंकादीपं निरब्बुदं।
रञ्ञो सिरिनिवासस्य सिरिपालयसस्सिनो ॥
समवीसतिमे खेमे जयसम्वच्छरे अयं।
आरद्धा, एकवीसम्हि सम्पत्तेपरिनिट्ठिता ॥

२. डॉ० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ९७।

हो और समन्तपासादिका ने रचयिता का संकेत उन्हीं के लिए हो। दूसरे राजा मेघवण्ण की पदवी कित्तिसिरी है, सिरिकुड्डादि नहीं, जबकि समन्तपासादिका सिरिनिवास अथवा सिरिकुड्डादि पदवीधारी राजाके समय लिखी गई है।

अब इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि 'क्या चुल्लवंस के द्वारा निर्दिष्ट श्रीलङ्का के राजा महानाम का शासन काल आचार्य बुद्धघोष की श्रीलंका में ग्रन्थ रचना के लिए असम्भव है?' प्राचीन चीनी यात्री फाह्यान सम्राट् समुद्रगुप्तके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीयके शासनकालमें भारतमें आये थे। उस समय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन राजा बुद्धदास श्रीलंका के राजा थे। इनके पिता राजा कित्तिसिरी मेघवण्ण ने बोधगया में श्रीलंका के भिक्खु यात्रियों के लिए महाबोधि संघाराम बनवाया था। इन्हीं राजा मेघवण्ण के समय में भगवान् बुद्ध का दन्तावशेश भारत के कलिंग देश के दन्तपुरा से श्रीलंका में लाया गया था और तभी से यह श्रीलंका में पुजता चला आ रहा है। चीनी यात्री फाह्यान ने बोधगया के महाबोधि संघाराम को भारत में देखा तथा तत्पश्चात् दन्तावशेष के उत्सव की यात्रा को श्रीलंका में दो वर्ष तक देखा था। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि फाह्यान श्रीलंका में राजा मेघवण्ण के शासन के अन्तिम समय में अथवा उनके स्वर्गवासी होने के बाद राजा बुद्धदास के शासन कालमें आये थे। उन्होंने आ० बुद्धदत्त और आ० बुद्धघोष किसीका भी वर्णन नहीं किया। इससे सिद्ध हुआ कि आचार्य बुद्धघोष, फाह्यानकी श्रीलंका की यात्रा के बाद ही श्रीलंका में आये थे और उस समय राजा महानाम का ही शासनकाल हो सकता है। फाह्यान ने उस उत्सव के वर्णन में यह भी लिखा है कि उसने इस उत्सव में एक भारतीय अच्छे वक्ता बौद्ध भिक्खु को लोगों को पुण्य कार्य करने के लिए उपदेश देते स्वयं सुना था और उसने यह भी लिखा है कि उसका यह उपदेश बुद्ध भगवान् के पात्र के विषय में था जोकि भविष्य में भगवान् मेत्तेय्य बुद्ध के उत्पन्न होने के समय तक घूमता रहेगा। उन्होंने यह भी लिखा है कि तत्कालीन अभयगिरि विहार के अधिपति थेर धम्मकित्ति थे और महाविहार के अधिपति उस समय एक अर्हत् थे जिनको उसीसमय निर्वाण लाभ हुआथा और जिनकी अन्त्येष्टि क्रिया बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई थी। निश्चय ही ये भारतीय शक्तिशाली

वक्ता न तो विनयविनिच्छय के रचयिता आचार्य बुद्धदत्त ही थे और न विसुद्धिमग्ग के रचयिता प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ही थे, किन्तु कोई अन्य बौद्ध विद्वान थे, नहीं तो इतने प्रसिद्ध ग्रंथकारो में से किसी का तो नाम निर्देश फाह्यान के द्वारा अवश्य किया जाता। अतएव आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का रचनाकाल कित्तिसिरी राजा मेघवण्ण के शासन काल के, तथा चीनी यात्री फाह्यान के श्रीलङ्का में यात्रा के पश्चात् ही सिद्ध होता है। फाह्यान ने महाविहार के अधिपति जिन थेर अर्हन्त के निर्वाण लाभ का उल्लेख किया है, वे अवश्य ही थेर संघपाल से काफी पहले महाविहार के अधिपति रहे होंगे, नहीं तो भदन्त संघपाल के समय आचार्य बुद्धघोष का श्रीलङ्का में आना कैसे सम्भव हो सकता था।

आचार्य बुद्धघोष ने अपने 'विसुद्धिमग्ग' में एक अन्य भारतीय का वर्णन किया है कि इसने श्रीलंका में आकर दीक्षा ली थी और दो पातिमोक्खों को पढ़कर समाप्त करने के पश्चात् ध्यान का जीवन स्वीकार किया था तथा एक स्थान पर चार माह से अधिक न ठहरने का व्रत लिया था। इसके अतिरिक्त उसके धार्मिक जीवन के बारे में और आगे अधिक उल्लेख नहीं मिलता है। इससे भी आचार्य बुद्धघोष के समय के निर्णय करने में कोई सहायता नहीं मिलती।

आचार्य बुद्धघोष की कथावत्थु की अट्ठकथा तथा समन्तपासादिका की प्रस्तावनाओं में दीपवंस का उल्लेख है, जोकि महावंस से प्राचीनतर है। महानाम के महावंस के अतिरिक्त एक अन्य महावस अट्ठकथा को ये दोनों ही इतिहास (वंस) प्राचीनतर स्वीकार करते हैं। दोनों ही इतिहासों में वर्णन राजा महासेन के शासन काल तक होकर समाप्त हो जाता है। ये राजा महासेन उन्हीं राजा कितितसिरी मेघवण्ण के पिता हैं, जिन्होंने बोधिगया में महाबोधि संघाराम सम्राट् समुद्रगुप्त के समय में बनवाया था और जो सम्राट् समुद्रगुप्त के समकालीन थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान सम्राट् समुद्रगुप्त के पुत्र विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय भारत में आया था। उसने आचार्य बुद्धघोष का कोई उल्लेख नहीं किया। इसलिए आचार्य बुद्धघोष कित्तिसिरी मेघवण्ण के शासन काल में न होकर फाह्यान के भी पश्चात् कालीन श्रीलंका के किसी राजाके शासन-

काल में ठहरते हैं। श्री आदिकरम् के अनुसार फाह्यान कित्तिसिरी मेघवण्ण के पुत्र राजा बुद्धदास के समय में श्रीलंका में आये थे। इसलिए आचार्य बुद्धघोष का श्रीलंका में आने का समय राजा बुद्धदास के पुत्र सिरिकुड्ड अथवा सिरीनिवास पदवी धारी राजा महानाम के समय में ही स्थापित होता है।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है और वह यह है कि राजा मेघवण्ण की पदवी कित्तिसिरी है, जबकि समन्तपासादिका में तत्कालीन राजा की पदवी सिरिकुड्ड अथवा सिरिनिवास है। इन पदवियों के भेद के कारण भी आचार्य बुद्धघोष की समन्तपासादिका राजा मेघवण्ण के शासन काल का निर्देश नहीं करती, अपितु उनसे भिन्न सिरिकुड्ड पदवी-धारी किसी और राजा को निर्दिष्ट करती है, और वे राजा महानाम ही हो सकते हैं। इसलिए आचार्य बुद्धघोष का समय उनके ग्रन्थों में भारत अथवा श्रीलंका के किसी राजा अथवा अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति के उल्लेख के अभाव में राजा महानाम के ही शासन काल में निश्चित होता है। इनके ग्रन्थों में राजा महानाम के पश्चात्कालीन किसी राजा अथवा ऐतिहासिक व्यक्ति का नामोल्लेख नहीं मिलता, इसलिए ये राजा महानाम के पश्चात्कालीन भी निश्चित नहीं किये जा सकते। महावंस के परिशिष्ट चुल्लवंस के द्वारा भी उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि होती है, जिसमें कि स्पष्ट रूप से कथन है कि आचार्य बुद्धघोष ने राजा महानाम के शासनकाल में अपनी अट्ठकथाओं को लिखा था।

आचार्य बुद्धघोष ने जितने भी श्रीलंका अथवा भारत के राजाओं का वर्णन अपने विसुद्धिमग्ग तथा अन्य ग्रन्थों में दिया है, उनमें से कोई भी तीसरी शताब्दी ई० पश्चात् से बाद के नहीं है। इसलिए तीसरी शताब्दी से ये पहले के तो हो ही नहीं सकते। एक बात यह भी है कि कथावत्थु अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने पूर्वकालीन १८ बौद्ध सम्प्रदायों का तथा इनके बाद में प्रचलित हुए अन्य सम्प्रदायों का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया है जिससे शंका के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता कि वे सम्प्रदाय उनके समय में विद्यमान थे (सेय्यथापि इतरेहि अर्थात् जैसा कि ठीक अब भी)। इन बाद के सम्प्रदायों में अन्धक सम्प्रदाय अपने प्रभेद पुब्बसेलिय, अपर सेलिय, राजगिरिक तथा सिद्धत्थिक के साथ हेमवत्तिक,

उत्तरा पथक तथा वेतुल्लक (जिसका मुख्य सिद्धांत वास्तविक तौर पर महासून्ञता (महाशून्यता) वाद बताया गया है) का उल्लेख है। इन सम्प्रदायों का उल्लेख भारतीय शिलालेखों में, जो कि सारे पूर्व गुप्तकालीन है, मिलता है तथा उनका अभाव बाद के पश्चात् गुप्तकाल में स्पष्ट रूप से दीखता है। इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि आचार्य बुद्धघोष पश्चात् गुप्तकाल से पहले तथा पूर्व गुप्तकाल के बाद में ही रहे होंगे। इस प्रकार यह समय भी उनको चुल्लवंस के द्वारा उल्लिखित समय के निकट ही पहुँचाता है।

नीचे के समय के बारे में कहा जा चुका है कि ये आचार्य बुद्धदत्त के समकालीन ठहरते हैं और आचार्य बुद्धदत्त का समय छठी शताब्दी ईसवी पश्चात् के अन्तिम भाग से अवश्य पहले पाँचवीं शताब्दी में निश्चित हो चुका है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित है कि विनयअट्ठकथा समन्तपासादिका ४८६ ई० पश्चात् से पूर्व लिखी जा चुकी होगी क्योंकि यह समय उसके चीनी अनुवादका है। मुख्य रूपमें यह ग्रंथ अब भी वैसा ही है जैसा चीनी अनुवाद से पहले था। यदि ६० वर्ष का अन्तर इस अट्ठकथा की रचना और इसके चीन में पहुँचने और अनुवादित होने को दिया जाय, तो भी समन्तपासादिका की रचना का समय सन् ४२६-३० ई० पश्चात ही ठहरता है और चुल्लवंस के निर्दिष्ट समयसे मेल खाता है। समन्तपासादिका के उपसंहार में लेखक एक ऐसे संकटकाल का उल्लेख करते हैं, जिसमें से देश गुजरने वाला था और जिसने लेखक के मस्तिष्क में संशय या अविश्वास पैदा कर दिया था कि उससे आगे कभी अच्छा समय भी आवेगा। इससे यह प्रगट होता है कि लेखक अपने ग्रंथ को पूरा करने के लिए कितने उत्कण्ठित हैं। इस प्रकार के भाव आचार्य बुद्धघोष ने अपनी समन्तपासादिका के अतिरिक्त अन्य किसी भी अट्ठकथा में नहीं प्रदर्शित किये। इससे यह बात सिद्ध होती है कि यदि आचार्य बुद्धघोष ही समन्तपासादिका के रचयिता है, तो यह उनकी अन्य अट्ठकथाओं से पूर्व की रचना है। और जिस संकटमय समय की वे आशङ्का कर रहे हैं, वह राजा महानाम के स्वर्गवास के पश्चात् का है। सम्भव है समन्तपासादिका

लिखते समय वेतुल्लकों ने श्रीलङ्का में पैर जमा लिए हों और आचार्य बुद्धघोष के तथा थेर सम्प्रदाय वादी प्रजा के हृदय में उनका डर पैदा हो गया हो।

श्री बी० सी० ला के अनुसार समन्तपासादिका में आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का उल्लेख नहीं है और जिन स्थलों में है, वे क्षेपक समझने चाहिए। इसके विपरीत उनकी अट्ठकथाओं में और विसुद्धिमग्ग में समन्तपासादिका का उल्लेख जगह-जगह मिलता है। इससे वे समन्तपासादिका को आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं से बहुत प्राचीन तथा किसी अन्य आचार्य की रचना सिद्ध करते हैं। किन्तु यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार समन्तपासादिका में श्री बी० सी० ला आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के उल्लेखांश को क्षेपक मानते हैं, उसी प्रकार विसुद्धिमग्ग में भी समन्तपासादिकाविषयक अंश क्षेपक हो सकते हैं। डा० बापट ने अट्ठसालिनी की भूमिका में स्पष्ट रूप से बताया है कि समन्तपासादिका बार-बार परिवर्द्धित होती रही है और उसमें क्षेपक अंश बहुतायत से हैं, क्योंकि जिस विद्वान् लेखक ने इसका नवीन संस्करण लिखा उसी ने इसमें क्षेपक अंश जोड़ दिया है। श्री बी० सी० ला सिरिकुड्ड, सिरिपाल अथवा सिरिनिवासकी पदवीको राजा मेघवण्णकी पदवी कित्तिसिरीके साथ मिला देते हैं, जबकि तथ्य यह प्रतीत होता है कि ये दोनों भिन्न-भिन्न पदवी हैं और भिन्न-भिन्न राजाओं के द्वारा धारण की गई प्रतीत होती हैं। अर्थात् कित्तिसिरी राजामेघवण्ण की पदवी और सिरिकुड्डादि राजा महानाम की पदवी प्रतीत होती है। कुड्ड और निवास समानार्थक हैं, इसलिए दोनों पदवियाँ एक ही हैं।

इसी प्रकार श्री बी० सी० ला के हृदय में थेर संघपाल के विषय में भी भ्रम है। उनका कहना है कि महानाम के महावंस में परिवेण के अधिपति थेर संघपालका उल्लेख है जो कि राजा गोथाभय (३०२–३१५ई०) केशासनकाल में विद्यमान थे। राजागोथाभय राजा महासेन के पिता थे। थेर संघपाल का वहाँ उल्लेख एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध में है। राजागोथाभय के समय अनुराधपुर के महाविहार और अभयगिरि विहार में स्पर्द्धा बढ़ रही थी। अभयगिरि विहार महाविहार की थेरवादी

परम्पराओं की विरोधी मान्यताओं का केन्द्र बन गया था और विशेषतः चोल देश के वेतुल्लकों (वैतुल्यकों) के लिए लाभप्रद तथा आकर्षक केन्द्र बन गया था। वैतुल्यकों ने राजा वोहारतिस्स (ई० सन् २६९ से २९१) के शासनकाल में पहले से भी अपनी जड़ जमा रखी थी। समन्तपासादिका में राजा भातिक अथवा भातिकाभय (ई० सन् ३८–६६ के बारे में उल्लेख है कि इसने वेतुल्लकों और थेरवादियों के मध्य विनय के ऊपर उठे हुए एक विवादस्थ विषय के निर्णय करने के लिए अपनी व्यक्तिगत मध्यस्थता के द्वारा प्रयत्न किया था। महावंस में इस तथ्य का और स्पष्ट रूप से वर्णन है कि वेतुल्लकों ने अपनी बढ़ती हुई शक्ति के कारण थेरवाद की स्थिति को संकट में डाल दिया था और इस प्रकार वे लोग महाविहार वालों के लिए भय का कारण बन गये थे। इसलिए राजागोथाभय मेघवण्ण के समय में महाविहार वालों से राजा के द्वारा वेतुल्लकों की को द्वीप के बाहर निकलवा दिया था। इसके बाद अपने सिद्धांत की पुष्टि केलिए भारतके चोल प्रदेशसे एक कोलियान भिक्खु-संघमित्त द्वीपमें आया। उसके बारे में कहा जाता है कि वह मन्त्र-तन्त्र में कुशल था। वह एक योग्य और समर्थ शास्त्रार्थी के रूप में आया और उसने महाविहार के थेरों को शास्त्रार्थ में थूपाराम के स्थान पर हरा दिया। इस शास्त्रार्थ में श्रीलङ्का की महाविहार परम्परा की ओर से थेर गोथाभय थे। ये तत्का-लीन राजा गोथाभय के नामराशी तथा मामा थे और थेर संघपाल के परिवेण के थेर थे। यह परिवेण शायद महाविहार के अन्तर्गत कोई अधीनस्थ संस्था या भवन था और इसके अध्यक्ष महाविहार के अधिपति के आधीन होंगे। इस शास्त्रार्थ में महाविहार की हार ने राजा गोथाभय मेघवण्ण को महायानी थेर संघमित्त का पक्षपाती बना दिया।

इन दोनों विहारों के विरोध की स्मृति महान् अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं में तथा समन्तपासादिका में बहुत ताजे रूप में मिलती है। डा० बी० सी० ला का कहना है कि यह सम्भव है कि थेर संघपाल राजागोथाभय मेघवण्ण के समय में परिवेण के अधिपति रहे हों और बाद में महाविहार के अधिपति के स्वर्गवास के बाद वहाँ के अधिपति बन गये हों। वे कहते हैं कि यद्यपि परिवेण के अधिपति थेर संघपाल तथा महाविहार के अध्यक्ष भदन्त संघपाल के सामान्य व्यक्तित्व के स्थापित

करने के लिए कोई विध्यात्मक साक्ष्य प्राप्त नहीं है, फिर भी कोई भी व्यक्ति राजा गोथाभय के समय के थेर संघपाल में महाविहार के समय के भदन्त संघपाल के व्यक्तित्व को पा सकता है, जोकि आचार्य बुद्धदत्त और आचार्य बुद्धघोष दोनों के लिए सामान्य हैं। श्री बी० सी० ला का उपर्युक्त कथन सोचने पर ठीक नहीं जचता। राजा गोथाभय मेघवण्ण का समय ई० सन् ३०२ से ३१५ तक है,[1] जबकि राजा महानाम का समय ४०९ से ४३१ है। यदि थेर संघपाल और भदन्त संघपाल एक ही मान लिये जायें तो उनकी आयु शास्त्रार्थ के समय परिवेण के अधिपति होने के कारण लगभग ५० वर्ष की होनी चाहिए (चाहे अधिक कितनी भी हो) और राजा महानाम के समय लगभग १५० वर्ष की। किन्तु उनकी इतनी आयु नहीं हो सकती। इसलिए राजा गोथाभय के समय के थेर संघपाल कोई अन्य व्यक्ति हैं, तथा भदन्त संघपाल कोई अन्य। केवल नाम की समानता से दोनों व्यक्तियों की सामान्यता नहीं मानी जा सकती है। श्री बी० सी० ला स्वयं भी स्वीकार करते हैं कि इन दोनों संघपालों के सामान्य व्यक्तित्व के स्थापित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

इस लिए आचार्य बुद्धघोष के श्रीलङ्का में निवास का समय राजा महानाम के शासनकाल में ही निश्चित होता है। चुल्लवंस इसकी पुष्टि करता है, और बौद्ध परम्परा इसका समर्थन करती है। उनके ग्रन्थों के अन्तरंग साक्ष्य से भी यही बात प्रमाणित होती है। उन्होंने जितने भी ग्रंथों का अपनी अट्ठकथाओं में उल्लेख किया है, वे सब उनसे पहले के ही हैं, बाद का कोई भी नहीं है। बर्मा के बौद्ध विद्वान् श्री विगेनदत्त के द्वारा उल्लिखित बर्मी परम्परा से भी उनका समय पाँचवीं शताब्दी का पूर्व भाग ही ठहरता है। डाक्टर आदिकरम् भी अपनी 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में कहते[2] हैं कि राजा उपतिस्स और राजा महानाम के पिता राजा बुद्धदास हैं, जो कि प्रसिद्ध वैद्य भी थे और जिनके समय प्रसिद्ध धम्मकथी हुए जिन्होंने सुत्तों का सर्व प्रथम सिंहली में अनुवाद किया। सम्भवतः फाह्यान इन्हीं धम्मकथी को विद्वान् थेर कहता है।

---

१. डा० बालगोपाल राहुल के अनुसार राजा गोथाभय मेघवण्ण का समय ३०९ से ३२२ ईशवी पश्चात् है।

२. अर्ली हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म इन सीलोन पृ० ९७।

और उनका समय पाँचवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। उनके अनुसार प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान इन्हीं के समय श्रीलङ्का में आया था। और क्योंकि वह आचार्य बुद्धघोष का उल्लेख नहीं करता, इसलिए यह स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष उसके श्रीलङ्का से चले जाने के बाद श्रीलङ्का में आये, जिस समय कि वहाँ राजा महानाम का शासन था (इस विषय का और भी स्पष्टीकरण समन्तपासादिका के अध्याय में देखें।) ★

## (३) पाण्डित्य

आचार्य बुद्धघोष की अन्तरंग साक्षियों तथा चुल्लवंस, धम्मसंगह और बुद्धघोसुप्पत्ति से ज्ञात होता है कि आचार्य बुद्धघोष बौद्ध भिक्खु बनने से पहले वेदों, विविध शास्त्रों, दर्शनों तथा व्याकरण के विद्वान थे, और पातंजल योग दर्शन के पूर्ण पण्डित और पक्षपाती थे। बौद्ध भिक्खु बनने के पश्चात् इन्होंने त्रिपिटक ग्रन्थ भारत में (और शायद बुद्धगया में) पढ़े। भारत में अट्ठकथा न होने के कारण उनके अध्ययन के लिए उन्होंने श्रीलङ्का को प्रस्थान किया। मार्ग में दक्षिण के विहारों में इनका अनेक विद्वान् थेरों से परिचय हुआ, जिनमें थेर बुद्धमित्त और थेर जोतिपाल भी हैं। इन दोनों का ये भदन्त विशेषण के साथ आदरपूर्वक उल्लेख करते हैं, इससे ज्ञात होता है कि ये अपने २ विहारों के अधिपति होंगे और इनसे भी इन्होंने अध्ययन किया होगा। इसके पश्चात् जब ये श्रीलङ्का पहुँचे तो इन्होंने श्रीलंका के स्थानीय विशिष्ट-विशिष्ट विद्वानों से भिन्न-भिन्न अट्ठकथायें पढ़ीं, और उनमें इतनी विद्वत्ता प्राप्त कर ली कि केवल दो गाथाओं[1] के ऊपर पाली भाषा में बौद्ध वाङ्मय का सार रूप अपना मौलिक ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्ग' लिखा और तत्पश्चात् अपनी प्रसिद्ध अट्ठकथायें शुद्ध तथा सुसंस्कृत पाली भाषा में लिखीं और इस प्रकार पाली भाषा को आधुनिक तथा परिष्कृत रूप दिया।

---

१. इसी पुस्तक के आ० बुद्धघोष की जीवनी अध्याय के पृ० ७ में उद्धृत गाथाओं को देखें।

कुछ विद्वान् इनके संस्कृत पाँडित्य के विषय में सन्देह करते हैं और कहते हैं कि ये न तो वेदों के ज्ञाता थे और न संस्कृत के ही विद्वान् थे। किन्तु, इनकी जीवनी के अध्याय में पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया गया है कि ये वेदों के भी ज्ञाता थे, दर्शनों के भी विद्वान् थे, तथा व्याकरण में महाभाष्य का भी इन्होंने अध्ययन किया था। बौद्धों की अविद्या के वर्णन करते समय इन्होंने वेदान्त के जिस मायावाद का खण्डन किया है वह वेदान्तियों के मायावाद से मिलता हैं और इससे ज्ञात होता है कि ये वेदान्त दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। उसी प्रकरण में इनके द्वारा दी गई सांख्यों की प्रकृति के स्वरूप की व्याख्या तथा अंधपंगु न्याय का उल्लेख बताता है कि सांख्य तथा योग दर्शन पर भी इनको पूर्ण अधिकार था। इसी प्रकार इनके द्वारा बौद्धों के तथा नैयायिकों के हेतु शब्द पर की गई व्याख्या प्रमाणित करती है कि ये न्याय और वैशेषिक दर्शन के भी ज्ञाता थे। ब्रह्मजाल आदि सुत्तों की व्याख्याओं में इन्होंने भिन्न-भिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों पर अच्छा और गम्भीर प्रकाश डाला है, जिससे इनको उन-उन दर्शनों के विषय का ज्ञाता मानना ही पड़ेगा। इनकी शब्दों की व्युत्पत्ति तथा विग्रह का प्रकार स्पष्ट तौर से बताता है कि ये व्याकरण के भी पूर्ण विद्वान् थे। पहले भी बताया जा चुका है कि इंदियट्ठ शब्द की इनकी व्याख्या तो महाभाष्यके इंद्रिय शब्दकी व्याख्या के ही आधार पर है। वेदों के ये विद्वान् थे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। किन्तु महाभारत में उल्लिखित भ्रूणहा आदि कुछ शब्दों की व्याख्या इन्होंने बौद्धमत के अनुसार की है, इसी कारण उन शब्दों की अर्थ-संगति की विभिन्नता इनकी अट्ठकथाओं में मिलती है। रामायण और महाभारत का इन्होंने विशेष परिचय इसलिए नहीं दिया कि जहाँ इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख आता है, वहाँ विषय निवृत्तिपरक है, जबकि इन ग्रन्थों का वर्णनीय विषय युद्धों की मारकाटों के द्वारा हिंसा तथा विद्वेषपूर्ण भावनाओं का पोषक है, जिसको पढ़कर आत्मा की शान्ति भंग होती है। इसी प्रकार इनमें दिये गये विवाहों और भोग विलासों के वर्णन को पढ़कर आसक्ति की ओर प्रवृत्ति होती है। इसलिए अहिंसा और वैराग्य की जगह हिंसा और आसक्ति की भावना उत्पन्न करने के कारण इन ग्रन्थों का केवल नाम निर्देश करके ही आचार्य बुद्धघोष ने इन्हें छोड़ दिया है और जानबूझकर विशेष परिचय नहीं दिया।

इनकी विद्वत्ता का परिचय इनकी अट्ठकथाओं में प्रतिपादित विषयों से तो मिलता ही है, किन्तु इस बात से भी इनका सर्वतोमुखी पांडित्य सिद्ध होता है कि भिक्खु होने के बाद ही इन्होंने मागधी या पाली भाषा पर इतनी शीघ्रता से अधिकार कर लिया था, कि इन्होंने अपने पांडित्य-पूर्ण ग्रंथ 'णाणोदय' की रचना कर डाली। यह ग्रंथ भारत में ही लिखा गया था, इसका प्रमाण इसका नाम है। यदि यह श्रीलङ्का से लौटने के बाद में लिखा गया होता तो इसका नाम णाणोदय के स्थान पर ञाणोदय होता। इनके विविध शास्त्रों के ज्ञान के बारे में तिपिटकाचार्य धर्मरक्षित ने विसुद्धिमग्ग के हिन्दी अनुवादकी भूमिका में पर्याप्त प्रकाश डाला है आर उन विद्वानों की युक्तियों का पूरी तरह युक्तिपूर्ण खण्डन कर दिया है जोकि इनको केवल पाली के ज्ञाता बताते हैं और कहते हैं कि इनको न तो वेदों का और न दर्शनों का ही ज्ञान था, और न ये संस्कृत ही जानते थे। बुद्धघोसुप्पत्ति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि श्रीलङ्का में भी इनके संस्कृत ज्ञान के विषय में लोगों को सन्देह हुआ था और इन्होंने सारे भिक्खुओं के समक्ष संस्कृत में व्याख्यान देकर अपने संस्कृत ज्ञान का परिचय दिया था।[1] आचार्य बुद्धघोष के संस्कृत ज्ञान के अभाव या अल्पज्ञान के बारे में धारणा बनाने से पूर्व इस बात के ऊपर भी ध्यान दे लेना अत्यावश्यक है कि मागधी अथवा पाली, 'काव्यसंस्कृत' से निकली हुई भाषा नहीं है, अपितु वह वैदिक संस्कृत से निकली है। वैदिक संस्कृत बोलचाल की भाषा थी और उसी के रूपान्तर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मागधी आदि प्राकृतों के रूप में जनता की भाषा बनकर आये थे। इसी कारण जिस प्रकार मागधी की विभक्तियाँ काव्य संस्कृत से नहीं मेल खाती, उसी प्रकार शब्दार्थ भी कहीं-कहीं नहीं मिलते। संस्कृत के रात्रिवाचक दोषा शब्द के अनुसार ही आचार्य बुद्धघोष ने दोसिणा शब्द का रात्रि अर्थ किया प्रतीत होता है। पाली भाषा की विभक्तियाँ द्वितीया चतुर्थी और षष्ठी वैदिक संस्कृत की तरह प्रायः एक सी ही होती है, तथा विभक्तियों के रूप भी वैदिक संस्कृत के समान कई हो जाते हैं। डा० बापट ने इस विषय को सुस्पष्ट कर दिया है। इसके लिए उनका सिद्ध भारती पृ०७४ में 'वैदिसिज्म

---

१. बुद्धघोसुप्पत्ति अध्याय ७, पृ० ३४।

इन पाली' लेख पढ़ें। यह ग्रन्थ वयोवृद्ध विद्वान् सिद्धेश्वर को अभिनंदन ग्रन्थ के रूप में भेंट किया गया था।

दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि अट्ठकथाएँ उनकी स्वतन्त्र रचनाएँ नहीं हैं, वे सिंहली अट्ठकथाओं के अनुवाद हैं। इनके फालतू और अप्रयोजनीय विषय को छोड़कर, आचार्य बुद्धघोष ने सिंहली अट्ठकथाओं को आर्ष मानकर बिना परिवर्तन के ज्यों का त्यों, सिंहली भाषा से पालो में अनुवाद किया है। यही कारण है कि जहाँ वे अपना मत देते है, वहाँ स्पष्ट रूप से लिख देते हैं कि यह मेरो अपनी राय है (इयं मे अत्तनोमति)। इसी कारण कहीं कहीं ऐतिहासिक तथा भौगोलिक विवरणों में भी अन्तर आ जाता है। नगरों और देशों के नामों की व्युत्पत्ति कहीं-कहीं हास्यास्पद प्रतीत होती है. किन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि वैसी ही व्याख्या उनको सिंहली अट्ठकथाओं में मिली होगी और इन्होंने उसे आर्ष मान लेने के कारण उसमें परिवर्त्तन न करके उसी रूप में लिख दिया होगा। यही कारण है कि घास खाने वाले सिंहों का भी उन्होंने अपनी सारत्थप्पकासिनी में वर्णन किया है।

आचार्य बुद्धघोष के भाषाओं के ज्ञान के विषय में कहा जा सकता है कि ब्राह्मण घर में उत्पन्न होने के कारण संस्कृत तो उनकी घर की भाषा थी ही, साथ में बौद्ध भिक्खु होने के पश्चात् उन्होंने मागधी (पाली) पर भी पूर्ण अधिकार प्र प्त कर लिया। इसके बाद श्रीलंका में जाकर सिंहली भाषा का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया, अन्यथा सिंहली अट्ठकथाओं का प ली रूपान्तर कैसे सम्भव हो सकता था।

इनकी अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि इनको ज्योतिष तथा वैद्यक का भी अच्छा ज्ञान था। सम्मोहविनोदनी और विसुद्धिमग्ग में इन्होंने शरीर विज्ञान का कितना अच्छा परिचय दिया है। शरीर रचना[1] का वर्णन करते हुए शरीर को उन्होंने ३२ भागों में विभाजित किया है। इसमें उन्होंने शरीरस्थ धातुओं का तथा केशों, नाखूनों हड्डियों, रक्त, मांस, मज्जा आदि का भी विशद वर्णन किया है। हृदय, जिगर, फेफड़ों, मांसपेशियों,

१. इनके द्वारा किये गये शरीररचनादि के वणन के लिए 'विभङ्ग'अट्ठकथा-सम्मोहविनोदनी के वर्णन के अध्याय ४, भाग २, देखिये।

जोड़ों तथा मस्तिष्क का इन्होंने व्यौरेवार वर्णन किया है। शरीर के अवयवों और कर्मेन्द्रियों का सूक्ष्मता के साथ उनका वर्णन बतलाता है कि उनको शरीर रचना का पूर्ण ज्ञान था।

इन्होंने जहाँ-जहाँ से यात्रा की थी, उन-उन प्रदेशों का इनका भौगोलिक वर्णन बहुत ही विशद तथा व्यौरेवार है। इसमें विन्ध्य प्रदेश तथा दक्षिण के प्रदेश आते हैं, क्योंकि श्रीलङ्का जाते समय ये इसी मार्ग से विहारों में रहते हुए गये थे। इनके द्वारा दिये गये श्रीलङ्का के भौगोलिक वर्णन भी यथावत हैं। इनकी अट्ठकथाओं में श्रीलङ्काके चेतियों और विहारों का उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ ठीक-ठीक वर्णन मिलता है। श्रीलंका के नगरों, नदियों, पहाड़ों, सरोवरों और बोधिवृक्षों का यथावत् अट्ठकथाओं में उल्लेख आचार्य बुद्धघोष के श्रीलंका के ऐतिहासिक तथा भौगोलिक ज्ञान का साक्षी है। उनकी अट्ठकथाओं में श्रीलंका के पहाड़ों का वर्णन तो यथावत् है, किन्तु हिमालय का वर्णन कुछ काल्पनिकता को लिए हुए है। हिमालय के ८४००० शिखर तथा सरोवरों का क्षेत्रफल अतिरंजित है। किसी भी नगर, प्रासाद, देश तथा व्यक्ति के नाम की काल्पनिक व्युत्पत्ति प्रायः इनकी अट्ठकथाओं में सर्वत्र मिलती हैं। सावत्थि (श्रावस्ती) कोसम्बी (कोशाम्बी), चम्पा आदि नगर, राजकुमार महापणाद का कोकनद प्रासाद, अङ्ग, कोसल आदि देश तथा कम्पासपाद आदि व्यक्ति इनकी काल्पनिक व्युत्पत्तियोंके उदाहरण हैं।

ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से इनकी अट्ठकथाएँ पूर्ण ऐतिहासिक नहीं है। इनका वर्णन पौराणिकता से मिश्रित है। वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक वर्णन अट्ठकथाओं में नहीं दिये गये थे। वे तो धार्मिक सिद्धांतों, सदाचरणों तथा पापाचरणों के उदाहरण स्वरूप हैं तथा भिक्खुओं और श्रावकों को धार्मिक जीवन व्यतीत करने को प्रोत्साहन देने के लिये दिये गये हैं, इसी कारण उनमें पौराणिकता स्वाभाविक रूप से आ गई है। किन्तु फिर भी उनमें ऐतिहासिक सामग्री पर्याप्त रूप से भरी हुई है और इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों ने उस सामग्री का पूर्ण उपयोग किया है। विद्वानों ने श्रीलंका तथा भारत की तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की

अट्ठकथाओं की सहायता से खोज कर-करके अपने ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं। भारत तथा श्रीलंका के प्राचीनकाल के इतिहास की झांकी तथा तत्कालीन रीति-रिवाजों, प्रथाओं, त्यौहारों, सिक्कों, आभूषणों, वस्त्रों, विश्वविद्यालयों का और शिक्षा परिपाटी आदि का वर्णन हमें अट्ठकथाओं में मिलता है। यदि ये अट्ठकथाएँ नहीं होतीं तो हमारा और विशेषत: श्रीलंका का इतिहास अधूरा ही रह जाता। श्रीलंका के महावंस तथा दीपवंस में वर्णित इतिहास के लिए तो अट्ठकथाएँ बीच-बीच के रिक्त स्थानों की पूर्ति करने वाली हैं। भारत का बौद्धकालीन तथा मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त, विन्दुसार और अशोक के समय का वर्णन पर्याप्त मात्रामें हमें इन अट्ठकथाओं में मिलता है।

आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में श्रीलंका के राज्यों की उथल-पुथल का तथा ब्राह्मण तिस्स अकाल का व्यौरेवार वर्णन दिया है। ब्राह्मण तिस्स अकाल के समय द्वीप की दयनीय दशा उनकी अट्ठकथाओं से प्रत्यक्ष सी प्रतीत होती है। ऐसे आपत्ति के समय भी भिक्खुओं ने किस प्रकार कष्ट झेल-झेलकर तिपिटक ग्रन्थों और अट्ठकथाओं की रक्षा की थी, और किस प्रकार लोग इस अकाल में भिक्खुओं को भी खा गये थे, यह सब इनकी अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है। श्रीलंका के राजाओं तथा जनता की धार्मिक निष्ठा और दृढ़ता का परिचय अट्ठकथाओं में दी हुई कथाओं से मिलता है। देवानांपिय तिस्स और सम्राट् अशोक की मित्रता का, अशोक के द्वारा भेजे गये थेर महिन्द के द्वारा श्रीलंका में धर्म प्रचार का, थेरी संघमित्रा के द्वारा वहाँ भिक्खुनी संघ की स्थापना तथा संगठन का, बोधिवृक्ष के श्रीलंका में लाये जाने और उसकी पौधों के स्थान-स्थान पर आरोपण करने आदि का विशद वर्णन अट्ठकथाओं से ही ज्ञात होता है। यही नहीं, भारत के प्रागैतिहासिक युग के तथा बौद्ध-कालीन युग के राजाओं के, सामाजिक परिस्थितियों के, खेलों, उत्सवों ओर प्रथाओं के वर्णनों को पढ़कर तो हमें प्रतीत होता है कि मानो आचार्य बुद्धघोष इतिहास के विश्वकोष ही थे।

इन सब प्रकार के उपर्युक्त ज्ञान के साथ-साथ आचार्य बुद्धघोष का बौद्ध सिद्धांतों का गम्भीर विवेचन उनके बौद्ध शास्त्रों के

अधिकारपूर्ण ज्ञान का परिचायक है। केवल त्रिपिटक और त्रिपिटकोत्तर ग्रन्थों का ही उन्होंने अध्ययन नहीं किया, किन्तु आचार्योंके द्वारा स्थापित विनिच्छयों का, पोराणाचरियों के मतों का तथा वितंडावादियों के सिद्धांतों का भी उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था। इन सबके ऊपर उनके पाण्डित्य का साक्षी उनका विसुद्धिमग्ग है, जिसकी बौद्ध सिद्धान्तों की स्वतन्त्र रूप से वर्णन शैली पूर्ण रूप में विशद और मौलिक है। पाली भाषा को उन्होंने इतना परिष्कृत और सम्पन्न बना दिया था, कि आगे के विद्वानों ने उनका ही अनुसरण करके पाली भाषा में अनेक अट्ठकथाएँ तथा धर्म ग्रंथ लिखे। पाली भाषा को समृद्ध और सम्पन्न बनाकर सिंहली भाषा के स्थान पर, ग्रंथ रचना के माध्यम के रूप में स्थापित करने का श्रेय आचार्य बुद्धघोष को ही है। इनके पहले श्रीलङ्का में पाली भाषामें ग्रंथ रचना न होकर सिंहली भाषा में ही होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य बुद्धघोष बौद्ध सिद्धांत के प्रकांड पण्डित, षड्दर्शन के अधिकारपूर्ण ज्ञाता, इतिहास और भूगोल के विद्वान् तथा शरीर विज्ञान से भी पूर्ण रूप से परिचित सिद्ध होते हैं। यदि उनके वर्णन में कुछ विभिन्नता है, तो वह सिंहली अट्ठकथाओं के कारण है, जिनको कि उन्होंने आर्ष ग्रंथ मानकर अनुसरण किया है। उनके ग्रन्थों के ऐतिहासिक वर्णनों में जो पौराणिकता दृष्टिगोचर होती है, वह केवल लोगों को धार्मिक जीवन व्यतीत करने तथा पापाचरण से विमुख होने के लिए प्रोत्साहन देने के लिए है, क्योंकि धर्माचार्यों ने और धर्मोपदेशकों ने उपदेश देने के लिए हमेशा से ही पौराणिकता का आश्रय लिया है; स्वयं बुद्ध भगवान् भी इसके लोभ को संवरण नहीं कर सके थे।

आचार्य बुद्धघोष के पांडित्य की विद्वान् लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं और उन्हें सबसे बड़ा और उत्कृष्ट अट्ठकथाकार कहते हैं।

सर रोबर्ट ने अपनी पुस्तक[1] 'सीलोन एण्टिक्स एण्ड रेंगुलर लिटरेचर' में आचार्य बुद्धघोष के बारे में कहा है कि 'वे बौद्ध सिद्धान्त के अद्वितीय व्याख्याकार हैं। बौद्ध सिद्धांत के विकास में वे एक युगनिर्माता हैं। उन्होंने बौद्ध सिद्धान्तों की अपने युग वालों के लिए व्याख्या की है,

---

१. सीलोन एण्टिक्स एण्ड रेगुलर लिटरेचर, वॉल्यूम १, भाग १, पृ० २।

और थेर वादियों के लिए इसको रूढ़िबद्ध कर दिया है। दार्शनिक की अपेक्षा वे विद्वान् अधिक हैं और उनके ग्रंथों में यह दिखाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य विद्यमान है कि वे समीक्षक विद्वान् हैं। मूल ग्रंथों के समीक्षात्मक दृष्टिकोण से उनकी अट्ठकथाओं की सहायता अमूल्य है, क्योंकि आचार्य बुद्धघोष के १५०० वर्ष पहले के ग्रंथों के यथार्थ पाठ तिपिटक ग्रन्थों के अर्थ प्रकाशन के लिये इस युग में कभी न चूकने वाले पथप्रदर्शक हैं। तिपिटक ग्रन्थों के स्पष्टीकरण के लिए हमें उनकी अट्ठकथाओं का सहारा लेना अनिवार्य होगा, अन्यथा किसी भी प्रकार हम तिपिटक के मूल पाठों की अर्थ सङ्गति नहीं लगा सकते।' इसी प्रकार इनकी शैली के बारे में श्रीमती रायस् डेविड्स 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' में लिखती हैं कि 'समस्त संसार के बौद्ध विद्वानों की साहित्यिक क्षमता के विकास में आचार्य बुद्धघोष का प्रभाव बहुत अधिक है। यह सच है कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं के लिए जो शैली अपनाई है वह बिल्कुल तिपिटक ग्रन्थों की ही प्रणाली का अनुसरण करती है, किन्तु उस प्रणाली के प्रयोग में उनकी साहित्यिक कुशलता और क्षमता उससे बहुत आगे बढ़ी हुई है, और विशेषत: प्राचीन अभिलेखों की व्याख्या करने में।'[१]

इनकी विद्वत्ता के बारे में वे वहीं और भी कहती हैं कि 'उनकी विद्वत्ता निस्सन्देह असाधारण थी, उसकी समता तो केवल उनके असाधारण परिश्रम से ही की जा सकती है। किन्तु मौलिकता और स्वतन्त्र विचारों के बारे में तो उनके ग्रंथों में कोई साक्षी नहीं मिलती। उन्होंने जीवन के (ज्ञान के) बौद्ध दृष्टिकोण के ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। वे सुत्तों की व्याख्या करते समय सुत्तों के सन्दिग्ध शब्दों और वाक्यांशों को उद्धृत करते हैं (और उनकी पूर्ण रूप से व्याख्या करते हैं), किन्तु ऊँचे स्तर की आलोचना में तो वे पूर्ण रूपेण निर्दोष हैं। उनके लिए तो बौद्ध सिद्धांत में कोई वृद्धि नहीं हुई और सारे तिपिटक ग्रंथ भगवान् बुद्ध के ही वचन हैं।'[२]

---

१. एन्साइक्लोपीडिआ ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग २, पृ० ८८७।

२. वही, पृ० ८८७–८८।

आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की उपयोगिता के बारे में लिखते हुए डा० मललसेकर कहते हैं[1] कि आधुनिक इतिहास के विद्वानों के लिए आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थों की विशेषता और उपयोगिता इसलिए और अधिक हो जाती है कि उन्होंने अट्ठकथाओं में अपनी बुद्धि की मौलिकता तथा स्वतन्त्रता से काम नहीं लिया और हमेशा प्राचीन परम्पराओं के प्रति अत्यन्त आदर प्रदर्शित किया है (जिससे कि ऐतिहासिक ब्यौरे हमें उसी रूप में प्राप्त हैं)। उनके लिए बुद्ध भगवान् के ग्रंथों में कोई त्रुटि नहीं है और वे सारे तिपिटक ग्रंथों को बुद्ध भगवान् के ही वाक्य समझते हैं। फिर भी उन ग्रंथों के ठीक-ठीक अर्थ समझने के लिये यदि आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ नहीं होतीं, तो बुद्ध भगवान् के सिद्धान्त और दर्शन की बहुत सी बातें अज्ञात ही रह जातीं। यद्यपि उनके दार्शनिक विचार कभी-कभी गम्भीर रहस्य पूर्ण तथा काल्पनिक जान पड़ते हैं, फिर भी कठिन शब्दों के ऊपर उनकी व्याख्याएँ अमूल्य और ठीक-ठीक परिणाम पर पहुँचाने वाली होती हैं। ★★

१. डा० मललसेकर, दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

# प्रथम अध्याय

## अट्ठकथाओं का मूल स्रोत और पाली साहित्य में उनका विकास-आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के विशेष सन्दर्भ में

**अट्ठकथा की परिभाषा तथा विशेषता :—**

संस्कृत साहित्य में जिस प्रकार टीका और भाष्य, ये दो साधन, मूल पाठ के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं, उसी प्रकार पाली साहित्य में मूलपाठ की व्याख्या करने के लिए वेय्याकरण और अट्ठकथाएँ प्रयुक्त की जाती हैं। संस्कृत साहित्य में टीका में जिस प्रकार मूलपाठ के शब्दों और वाक्यांशों के पर्यायवाची शब्द देकर गूढ़ अर्थों, अलङ्कारों, व्याकरण तथा इतिहास सम्बन्धी निर्देशों का स्पष्टीकरण होता है, उसी प्रकार पाली में वेय्याकरण के द्वारा टीका के ये कार्य किये जाते हैं। संस्कृत साहित्य के भाष्य में टीका के इन सब कार्यों के साथ-साथ विषय विवेचन करते समय पूर्व पक्ष तथा उत्तर पक्ष देकर प्रत्येक स्थल पर खण्डन मण्डनात्मक शास्त्रार्थ भी रहता है। इसके साथ-साथ अन्य सिद्धान्तावलम्बियों के सिद्धान्तों का भी निर्देश रहता है, तथा विवादस्थ पदों और वाक्यों के ऊपर भाष्यकार अपना मत भी व्यक्त करते हैं। जैसा कि इन श्लोकों में कहा गया है :—

'सूत्रार्थोवर्ण्यते यत्र, वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते, भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥'[1]
'संक्षिप्तस्याप्यतोष्यैव, वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तारतरा वाचो भाष्य भूताभवन्तु ते'॥[2]

पाली साहित्य की अट्ठकथाओं में संस्कृत साहित्य की टीका और भाष्य के इन सारे गुणों के साथ-साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने की भी विशेषता है, जोकि संस्कृत साहित्य के भाष्यों में प्राप्त नहीं होती।[3]

---

१. शब्द कल्पद्रुम इतिलिंगादिटीकायांभरतः।
२. शिशुपाल महाकाव्य, सर्ग २।
३. डा० भरतसिंह उपाध्याय—पाली साहित्य का इतिहास।

पाली की अट्ठकथाओं में विपक्षी विद्वानों के पूर्ण परिचय तथा तत्सम्बन्धित अन्तःकथाओं का भी उल्लेख मिलता है। अट्ठकथाओं में आपको किसी भी सिद्धान्त के बारे में इन बातों का पूर्ण परिचय मिलेगा कि वह सिद्धान्त किसने, कब और क्यों निकाला था। वहाँ संस्कृत भाष्यों की तरह केवल 'इत्येके', 'इत्यपरे' कहकर नहीं छोड़दिया जाताहै, जिससेकि पाठकोंकी उत्कंठा शान्त न होकर बनी ही रहती है। अट्ठकथाओं में प्रकरण प्राप्त सिद्धान्त-कारों, राजाओं, नगरों, पर्वतों, विहारों तथा नदी, वन, तालाबों तक का ऐतिहासिक परिचय मिलता है। उनमें बुद्ध भगवान् तथा उनके शिष्यों की केवल जीवन-चर्या के बारे में ही नहीं, अपितु उनके उपदेशों के बारे में भी, ऐतिहासिक व्यौरा मिलेगा कि कब, कहाँ और क्यों वह उपदेश दिया गया था; जबकि वेदों में ऋषियों के जीवन के विशेष-विशेष वृत्तान्त भी नहीं प्राप्त होते। दिगम्बर जैन शास्त्रों में तो और भी इस बात की कमी है। हाँ, श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर स्वामी के जीवन चरित्र के बारे में कुछ ब्यौरे अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे भी पूर्ण रूप में नहीं हैं। निश्चय ही पाली अट्ठकथाओं के ये ऐतिहासिक ब्यौरे भारतीय साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, तथा इतिहास के विद्यार्थियों के लिए तो बहुत ही बड़े महत्व के हैं। अट्ठ-कथाओं में दिये गये ब्यौरों में देश और जनता की तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ तथा रीति-रिवाज पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित हैं। इन्हीं ब्यौरों को देखकर ऐतिहासिक विद्वानों ने तत्कालीन भारत और श्रीलङ्का के इतिहास ग्रन्थ लिखे हैं।

बुद्धवचनों की तथा विवादस्थ विषयों की ठीक-ठीक अर्थसङ्गति के लिए बुद्ध भगवान् के द्वारा चार प्रकार के महानुदेशों के रूप में एक निश्चित प्रणाली का प्रतिपादन किया गया है (चतारोमहापदेसा), जिससे कि शिष्य लोग 'विनय' और 'धम्म' की विवादस्थ बातों का निर्णय अथवा निश्चय कर सकें। ये चार महापदेस अथवा महानुदेश—पालीनय, सुत्तानुलोम, अट्ठकथा तथा अत्तनोमति के रूप में प्रतिपादित किये गये हैं। 'पालीनय' से अभिप्राय तिपिटक के मूल ग्रन्थों से है। 'सुत्तानुलोम' में वे ग्रंथ आते हैं जो मूल तिपिटकके ग्रंथतो नहीं हैं, किन्तु उन्हींके अनुसार विनय तथा धम्म का प्रतिपादन करते हैं। तिपिटकों के ग्रन्थों के पाठ क

व्याख्या करने वाली 'अट्ठकथायें' हैं तथा भिन्न-भिन्न आचार्यों के व्यक्तिगत मत 'अत्तनोमति' में सम्मिलित हैं। ये भी मूल सिद्धान्तों से यदि मेल नहीं खाते तो ग्राह्य नहीं हैं। इसलिए इसमें आचरियवाद अथवा पूर्वाचार्यों के वे सुपरीक्षित मत सम्मिलित हैं, जिनका मूल त्रिपिटक ग्रन्थों से विरोध नहीं है।

आचार्य बुद्धघोष ने अपनी 'पुग्गल-पञ्ञत्ति' की अट्ठकथा में तीन प्रकार की व्याख्याओं का उल्लेख किया है—पालीनय, अट्ठकथानय तथा आचरियनय। ये प्राचीनताकी अपेक्षा से क्रमशः एक के बाद एक आते हैं। इनमें से पहला पालीनय त्रिपिटक के मूल ग्रंथों में, दूसरा सिंहली अट्ठकथाओं में अनुसृत तथा वृद्धिगत होकर तथा तीसरा भिन्न-भिन्न 'आचरियो' (आचार्यों) के व्यक्तिगत मतों के रूपमें बौद्धवाङ्मय में मिलता है। इनमें 'पालीनय' सबसे अधिक महत्व का है। 'अट्ठकथानय' पालीनय का अनुसरण करने वाला और उसी का परिवर्धित रूप है, इसलिए दूसरे नम्बर पर आता है। 'आचरियवाद' अथवा 'आचरियनय' का महत्व सबसे कम है। यदि यह ऊपर के दो नयों से मेल नहीं खाता तो मान्य नहीं है। 'अत्तनोमति' को तो आचार्य बुद्धघोष ने महत्व ही नहीं दिया, क्योंकि थेरवादी सम्प्रदाय बुद्ध वचनों, अट्ठकथाओं तथा पूर्वाचार्यों के मतों को ही मान्यता देता है, अपने निजी व्यक्तिगत विचारों को नहीं।

कोई भी अट्ठकथा 'अत्थवण्णना' अथवा केवल 'वण्णना' भी कही जा सकती है। निद्देस तथा विभङ्ग अट्ठकथाओं के त्रिपिटक सम्बन्धी मूल रूप हैं तथा अट्ठकथाओं से बहुत प्राचीन हैं।

नेत्तिपकरण तथा पेटकोपदेस के रचयिता थेर महाकच्चान के अनुसार अट्ठकथाओं का उद्देश्य मूलपाठ की व्याख्यात्मक प्रणाली के द्वारा शब्दों के अर्थको निश्चित करना है (सुत्तमयेन अत्थम् परियेसितत्वम्)। अर्थ निश्चय करने में भाषा और सिद्धान्त दोनों को ध्यान में रखना पड़ता है। अतएव भाषा की ओर से अट्ठकथाओं का सम्बन्ध मूलपाठ के वाक्यों और शब्दों की व्याकरणानुसार की गई व्याख्या से है। सिद्धान्त की ओर से उनका सम्बन्ध प्रतिपाद्य विषय के प्रारम्भिक अनुसंधान, पूर्णअनुसंधान,

परीक्षा, आलोचनात्मक परीक्षा, सिद्धान्तों का परस्पर मिलान, प्रकाशीकरण, विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण से है (विचयो, पविचयो, परिक्खा, उपपरिक्खा, तुलना, संकासना, पकासना, विवरणा, विभाजना, उत्तानीकरणम्[1]) ।

**अट्ठकथाओं के मूल स्रोत :—**

१—इन अट्ठकथाओं का मूल स्रोत हमें स्वयं त्रिपिटक साहित्य में मिलता है। स्वयं बुद्ध भगवान् के वचन उनके संघ के भिक्खुओं के धार्मिक जीवन और चरित्र के लिए पथप्रदर्शक थे, और उनकी ठीक-ठीक अर्थ संगति की आवश्यकता का अनुभव संघ की स्थापना के प्रारम्भ से ही होने लगा था। सुत्तपिटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध भगवान् के समय में ही लोग उनके वचनों की अर्थसङ्गति अशुद्ध और अन्यथा लगाने लगे थे। जब विवादस्थ विषय सन्देह निवृत्ति और स्पष्टीकरण के लिए भगवान् बुद्ध के पास आता था तो वे अन्यथा अर्थ लगाने वालों की भर्त्सना करते और अपने वचनों का स्पष्टीकरण करके ठीक-ठीक अर्थ बतलाते थे। उनकी ये व्याख्यायें अथवा स्पष्टीकरण उनके सुत्तों के साथ जोड़ दिये जाते थे। इस प्रकार अट्ठकथाओं का सबसे पहला मूल स्रोत स्वयं बुद्ध भगवान् के इन अपने व्याख्यात्मक सुत्तों में निहित हैं। सुत्तपिटक तथा विनय पिटक में ऐसे कितने ही स्थल हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के ऐसे सन्देहात्मक प्रसङ्ग उपस्थित हुए, जिनके कारण संघ की शान्ति भंग हुई और जिनके स्पष्टीकरण के लिए लोग बुद्ध भगवान् के पास अथवा उनके किसी विज्ञ शिष्य के पास सन्देह-निवारणार्थ तथा बुद्ध वचनों के स्पष्टीकरणार्थ पहुँचे।

इसी प्रकार जब कभी किसी मिथ्या वादी ने बुद्ध भगवान् की, उनके संघ की, तथा उनके धम्म की निन्दा की,[2] अथवा बुद्ध वचनों का अन्यथा अर्थ लगाया,[3] अथवा जब कभी बौद्ध संघ में किसी विनय अथवा धम्म के विषय के ऊपर विवाद उठा,[4] अथवा जब कभी कोई भिक्खु

---

१. नेत्तिपकरण, पृ० ५८-५६।
२. दीघनिकाय, प्रथम सुत्त।
३. मज्झिमनिकाय, भाग ३ पृ० २०७-२०८।
४. मज्झिमनिकाय, भाग २ का सामगसुत्त।

असद्व्यवहार या मिथ्याचरण करता तो ऐसे अवसरों पर भी भिक्खु लोग स्वयं बुद्ध भगवान् अथवा उनके किसी प्रधान शिष्य के पास उपस्थित होते थे, और बुद्ध भगवान् अथवा उनके शिष्य अपनी समीचीन व्याख्याओं के द्वारा उन लोगों के सन्देहों का निवारण करते थे, तथा इस प्रकार संघ के हितों की और धम्म तथा विनय के सिद्धान्तों की रक्षा करते थे। ऐसे ही अवसरों अथवा प्रकरणों की उपज दीघनिकाय में भगवान् का 'सीलक्खन्ध' का उपदेश है। इसी प्रकार समिद्धि नामक भिक्खु की कम्म विषयक व्याख्या को असमीचीन बतलाने के लिए भगवान् ने ब्राह्मण 'सुभ' को उपदिष्ट किये हुए अपने 'चुल्लकम्मविभंग' के स्थान पर महा-कम्माविभंग की विश्लेषणात्मक व्याख्या की थी, जो कि अभिधम्मपिटकके द्वितीय ग्रन्थ 'सिक्खापद-विभङ्ग' की आधारभूत है। वास्तव में इन दोनों विभङ्गों की व्याख्याओं का प्रभाव उत्तारवर्त्ती अट्ठकथाओं के ऊपर पड़ा है, जैसा कि 'नेत्तिपकरण' और 'अट्ठसालिनी' तथा अन्य ऐसे ही ग्रन्थों से प्रतीत होता है। यदि इस विषय की और अधिक छानबीन की जावे तो पता चलेगा कि अट्ठसालिनी में आचार्य बुद्धघोष की कम्म की व्याख्या वास्तव में इन्हीं दोनों विभङ्गों के ऊपर आधारित है।

मज्झिमनिकाय के षडायतनविभङ्ग, अरणविभङ्ग, धातुविभङ्ग तथा दक्खिणाविभङ्ग आदि सुत्त, बुद्ध भगवान् की ऐसी ही अट्ठकथात्मक व्याख्याओं के ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने कि और ऊँची-ऊँची व्याख्याओं के साथ-साथ अभिधम्म पिटक में स्थान प्राप्त किया है और ये ही व्याख्याएँ उत्तारवर्ती अट्ठकथाओं के रूप में, जिनमें कि आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ भी सम्मिलित हैं, अवतरित हुई हैं।

२—प्रारम्भ से ही बौद्ध धर्म, धर्म-प्रचारकों का धर्म रहा है। प्रारम्भ में बुद्ध भगवान् ने भी उपदेशक सन्त के रूप में स्थान-स्थान पर भ्रमण करके यह महत्वपूर्ण कार्य स्वयं किया था। उन्होंने अपने शिष्यों को प्रेरणा दी थी कि वे सारे विश्व में जाकर लोगों को 'धम्म' का उपदेश दें। उन्होंने कहा था—हे भिक्खुओं! संसार के प्राणियों के ऊपर दया करके, जनता के कल्याण और सुख के लिए आगे बढ़ो। देवताओं और मानवों के कल्याण, सुख और भलाई के लिए विश्व में

घूम-घूम कर धम्म (धर्म) का उपदेश दो। अकेले मत जाओ, किन्तु दो-दो साथ जाओ। भिक्खुओ! तुम जनता को इस 'धम्म' का उपदेश दो, जिसकी आत्मा और जिसके शब्द दोनों ही, प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में भी, प्रिय और कल्याणकारी है। हे भिक्खुओ! पवित्रता, पूर्णता और स्वच्छता के उत्कृष्ट जीवन की घोषणा करो।[१] भगवान् के इस आदेश के अनुसार उनकी बोधिप्राप्ति के समनन्तर ही उनके प्रधान शिष्य चारों दिशाओं में धर्म प्रचारकों के रूप में फैल गये थे। परिणामतः, महाकस्सप, महाकच्चान, महाकोट्ठित, सारिपुत्त, मोग्गलान आदि प्रधान-प्रधान शिष्यों की अध्यक्षता में बुद्ध भगवान् के जीवनकाल में ही भारतवर्ष में काशी, राजगृह, वैशाली, नालंदा, पावापुर, उज्जयिनी, उत्तरमथुरा, उलुम्पा, सावत्थी (श्रावस्ती) आदि स्थानों में बौद्धधर्म के केन्द्र स्थापित हो गये थे। ये पर्यटक बौद्ध भिक्खु उपदेशकों के नियमों का पालन करते हुए वर्षावास के बाद राजगह, सावत्थी आदि स्थानों में, जहाँ कि बुद्ध भगवान् उस समय विहार करते होते थे, वर्ष में एक बार अवश्य एकत्रित होते थे। ऐसे समय इन भिक्खुओं में विनय और धम्म के अनेक विषयों पर आपसी शास्त्रार्थ, विश्लेषणात्मक स्पष्टीकरण तथा संदेह निवारणार्थ भेटें होती थीं। इन शास्त्रार्थों, व्याख्याओं, तथा भेटों में भी अट्ठकथाओं के मूल बीज निहित हैं। ऐसे अवसर पर अपने-अपने विषय में विशेषज्ञ भिक्खु लोग भगवान् के वचनों के गूढ़ अर्थों की स्पष्ट व्याख्या करते थे और जहाँ-जहाँ ये लोग जाते थे, वहाँ-वहाँ वे बौद्ध धर्म, बौद्धदर्शन, विनय (भिक्खुओं के आचार व्यवहार) तथा सामाजिक व्यवस्था आदि के विषयों के ऊपर गंभीर विवेचन करते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि इन शास्त्राथों के विवरण बुद्ध भगवान् के पास ले जाये जाते थे। बुद्ध भगवान् इन में कुछ को अनुमोदित करते थे तथा भिक्खुओं से कहते थे कि वे अमुक व्याख्या को सर्वोत्कृष्ट संभव व्याख्या के रूप में हृदय में धारण करें। प्रधान शिष्यों की ये भगवान् के द्वारा अनुमोदन प्राप्त व्याख्याएँ, संघ के भिक्खुओं के द्वारा निधि के रूप में सुरक्षित रखी जाती थीं और विशेषतः उनके शिष्यों के अपने वर्ग में वे अत्यन्त आदरणीय होती थीं तथा स्वयं बुद्ध भगवान् के वचनों के समान आदर प्राप्त करती थीं। ये व्याख्याएँ

१. महावंस भाग १, पृ० १० तथा विनयपिटक भाग १, पृ० ११२।

भी उन उत्तरवर्ती अट्ठकथाओं की आधाररूप हैं, जिनमें बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ भी सम्मिलित हैं।

३—इसी प्रकार प्रायः जब बुद्ध भगवान् 'धम्म' के ऊपर संक्षेप में गम्भीर उपदेश के सुत्त कहते थे तो भिक्खु लोग भगवान् के प्रधान शिष्यों में से किसी एक के पास जाते थे और उनसे उन विषयों के ऊपर अधिक स्पष्ट, विस्तृत और ब्यौरे वाली व्याख्या सुनते थे। ऐसे शिष्यों में, उदाहरणार्थ, महाकच्चान हैं, जो कि बुद्ध भगवान् के द्वारा दिये गये संक्षिप्त और गम्भीर उपदेश की विस्तृत और ब्यौरेवार व्याख्या के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं (संक्खित्तेन भासितस्स अत्थं वित्थारेन विभाजेति)। जब बुद्ध भगवान् के महापरिनिब्बाण के बाद त्रिपिटक के पाठ को संकलित, व्यवस्थित और सम्पादित किया गया, तो इन प्रधान शिष्यों की भगवान् के द्वारा अनुमोदना प्राप्त विस्तृत और ब्यौरेवार वे व्याख्यायें त्रिपिटक ग्रंथों में सम्मिलित हो गईं। इस प्रकार की व्याख्याओं के उदाहरणों में धम्मसेनापति सारिपुत्त का 'सच्चविभङ्ग' मज्झिमनिकाय में सम्मिलित है,[1] जिसमें कि भगवान् के द्वारा उपदिष्ट चार आर्ष सत्यों की विस्तृत व्याख्या है और जिसने बाद में अभिधम्मपिटक के द्वितीय ग्रंथ में अपना उचित स्थान प्राप्त किया है। इस प्रकार की धम्मसेनापति की व्याख्याओं के उद्धरणों से तो धम्मपिटक भरा पड़ा है। इसी प्रकार दीघनिकाय में धम्मसेनापति सारिपुत्त का ही बताया जाने वाला 'संगीति सुत्तन्त' है जिसमें कि व्याख्या के योग्य सांकेतिक शब्दों और गाथाओं के ऊपर प्रश्नोत्तर विधि की शिक्षा प्रणाली का आश्रय लिया गया है।[2] इसी प्रकार बुद्ध भगवान् के वचनों की ब्यौरेवार विस्तृत व्याख्याओं के लिए प्रसिद्ध महाकच्चान के 'मधुपिण्डिकसुत्त' आदि चार उदाहरण मज्झिमनिकाय में मिलते हैं।[3] इनकी व्याख्याओं में बुद्धवचनों के भीतरी गूढ़ अभिप्राय तथा दार्शनिक तथ्यों का स्पष्टीकरण मिलता है।

---

१. मज्झिमनिकाय, भाग ३, पृ० २४८।

२. दीघनिकाय, भाग ३, पृ० २०१ तथा आगे।

३. मज्झिमनिकाय, भाग १, पृ० ११० तथा आगे।

४—इसके बाद अट्ठकथाओं के मूल स्रोतों की परम्परा में महाकोट्ठित का 'पटिसंभिधामग्ग' ग्रंथ आता है। विश्लेषणात्मक व्याख्या प्रणाली में स्वयं भगवान् बुद्ध के बाद इनका नाम दूसरे स्थान पर है। अस्पष्ट सांकेतिक शब्दों की युक्तिपूर्वक व्याख्या करना इनकी विशेषता है, जोकि उत्तरवर्ती नेत्तिपकरण के लक्खणहार, मिलिन्दपञ्हो के कुछ उद्धरणों तथा बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के कतिपय वर्णनों की आधारभूत है। इसी प्रकार अट्ठकथा साहित्य के मूल स्रोतोंमें थेर मोग्गलान, थेर आनन्द, थेरी धम्मदिन्ना और थेरी खेमा की भी देन कुछ कम उल्लेखनीय नहीं है।

५—कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि पाठ के ठीक समझने के लिए अट्ठकथात्मक स्वभाव वाली व्याख्यायें आवश्यक हो गईं, जो कि ऐसे अवसरों पर ग्रन्थों में अट्ठकथा रूप में सम्मिलत कर दी गईं और स्वयं ग्रन्थ का भाग बन गईं। इस प्रकार विनयपिटक में एक प्राचीन अट्ठकथा के रूप में 'सुत्तविभंग' सम्मिलित हो गया, जो कि दोनों पातिमोक्खों के ऊपर एक शब्दशः सैद्धान्तिक अट्ठकथा है। इसी प्रकार 'परिवार' ग्रन्थ भी सम्पूर्ण ग्रन्थ के अनुपूरक परीक्षा प्रश्नपत्र के रूप इसमें जोड़ दिया गया है। इसी प्रकारके स्रोतोंमें 'पारायण'की सोलह गाथाओं तथा 'खग्गविसाण' सुत्त के ऊपर 'चुल्लनिद्देस' भी शब्दशः अट्ठकथा है जबकि 'महानिद्देस' उन्हीं सोलह गाथाओं की अट्ठकथा की अट्ठकथा है, जो कि अब सुत्तनिपात में सम्मिलित है। इसी प्रकार सारे निकाय ग्रन्थों में ऐसे गद्यांश बिखरे पड़े हैं. जो कि स्पष्ट रूप से अट्ठकथात्मक हैं। कथावत्थु को छोड़कर अभिधम्मपिटक के सारे ग्रंथ भी वेय्याकरण (शब्दार्थ टीका) की परिभाषा में आते हैं। उन सब में मातिकाओं के ऊपर विभङ्ग (व्याख्या) हैं। अभिधम्मपिटक के दूसरे ग्रन्थ के अधिकतर विभङ्ग (विभङ्ग रूप अध्याय) सुत्तन्त भाजनीय और अभिधम्म भाजनीयोंसे युक्त हैं और जो अट्ठकथाओं के ही रूप हैं। कथावत्थु के प्रतिवादों में भी हमें बौद्धधर्म के जटिल विषयों के ऊपर आलोचनात्मक अर्थ निरूपण मिलते हैं, जो कि ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं से भरे पड़े हैं। धम्मसंगणि के अन्त में तो अट्ठकथाकण्ड अथवा अत्थुद्धारकथा स्वयं अट्ठकथा के रूप में ही जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार विभंग ग्रंथ में भी अट्ठकथा-रूप भाग है।

६—जिस प्रकार निद्देस और विभङ्गों की तरह 'नेत्तिपकरण' और 'पेटकोपदेस' में अट्ठकथाओं के स्रोत मिलते है, उसी प्रकार 'कथावत्थु' की तरह 'मिलिन्दपञ्हो' में भी बौद्धधर्म के गूढ़ और परस्पर विरुद्ध वादों का स्पष्टीकरण मिलता है। इसलिए ऐसे ग्रंथों की भी गणना आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के मूल स्रोतों में करनी चाहिए। उपर्युक्त दोनों प्रकार की व्याख्याएँ आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में मिलती हैं, जिनसे कि वे अधिक सम्पन्न, विशद और विद्वत्तापूर्ण बन गई हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि आचार्य बुद्धघोष ने भगवान् बुद्ध और उनके प्रधान शिष्यों के द्वारा प्रतिपादित व्याख्यात्मक, स्पष्टीकरणात्मक तथा विश्लेषणात्मक सुत्तों से, तिपिटक ग्रन्थों में संलग्न ग्रन्थांशों से और नेत्तिपकरण, पेटकोपदेस,कथावत्थु, मिलिन्दपञ्हो आदि ग्रन्थों से, प्रेरणा लेकर अपनी अट्ठकथाओं की रचना की है, जिससे कि वे सर्वाङ्ग रूप से पूर्ण, गम्भीर तथा विद्वत्तापूर्ण होकर अन्य अट्ठकथाकारों के लिए आदर्श बन गई हैं और इसी कारण आचार्य बुद्धघोष सबसे बड़े और पथप्रदर्शक अट्ठकथाकार कहलाये हैं। ★

## अट्ठकथा साहित्य का आधार और विकास

**आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का मूल आधार :—**

आचार्य बुद्धघोष अपनी अट्ठकथाओं के मूल आधार की ओर निर्देश करते हुए अपनी अट्ठकथाओं की भूमिका में स्पष्ट रूप से लिखते हैं, कि बौद्ध संगीतियों में पिटकों के साथ-साथ अट्ठकथाओं का भी प्रसिद्ध थेरों द्वारा पुनर्वाचन हुआ था और ये मूलभूत अट्ठकथाएँ पाली भाषा में थीं। थेर महिन्द के द्वारा ये अट्ठकथायें श्रीलङ्का में साथ ले जायी गयीं थीं। वहाँ ये सिंहली में अनुवादित होकर चलती और बढ़ती रहीं और इन्हीं के आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने, अपनी प्रसिद्ध पाली अट्ठकथायें

लिखीं। इस कथन की जाँच करनी चाहिए कि यह कथन अक्षरशः सत्य है, अथवा सार रूप में।

पहली संगीति की बैठक थेर महाकस्सप की अध्यक्षता में बुद्ध भगवान् के महापरिणिव्वाण के चार मास बाद ही बुलाई गई थी और उसमें केवल विनयपिटक और सुत्तपिटक का ही पुनर्वाचन हुआ था। इसके बाद संघ में शिथिलता और उच्छृङ्खलता बढ़ने लगी थी। भिक्खु लोग अपनी सहूलियतों के अनुसार बुद्ध भगवान् के वचनों का अन्यथा अर्थ लगाकर स्वार्थ साधन करने लगे थे। इसलिए सौ वर्ष बाद दूसरी संगीति की बैठक बुलाई गई। इसमें बुद्ध भगवान् के वचनों का फिर पुनर्वाचन हुआ। इसके पश्चात् पियदस्सी अशोक महाराज ने अपने शासन-काल में बौद्धधर्म में बढ़ते हुए दलों को देखकर तीसरी संगीति की बैठक बुलाई। इस संगीति के द्वारा निर्णीत सिद्धान्तों के पालन करवाने में कठोरता से काम लिया गया और विरोधी दल समाप्त हो गये।

पिटकोंके साथ अट्ठकथाओंके संगायन अथवा पुनर्वाचनके बारेमें भारत में बुलाई गईं प्रथम तीन संगीतियाँ मौन हैं: उनमें अट्ठकथाओं के स्वतन्त्र रूप से संगायन के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु श्रीलङ्का में राजा वट्टगामणि के शासनकाल में बुलाई गई संगीति के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उसमें पिटकों के साथ-साथ अट्ठकथाओं का भी संगायन हुआ था।

पहली संगीति के समय, जो कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के चार माह बाद ही बुलाई गई थी, बौद्ध सिद्धांतों अथवा बुद्ध वचनों को, भागों और अनुभागों में विभक्त किया गया और भिन्न-भिन्न प्रधान शिष्यों और उनके शिष्य वर्गों को विशेष-विशेष भाग और अनुभाग उनके विशिष्ट अध्ययन, प्रचार तथा उनकी रक्षा के लिए सौंपे गये थे, जिससे कि बुद्ध वचनों के अध्ययन करने, स्मरण रखने तथा सुरक्षित रखने में सुविधा हो और उनका लोप तथा विरोधी सम्प्रदायों के द्वारा उनमें परिवर्त्तन न होने पावे। फलतः विनय में विशिष्ट होने के कारण थेर उपालि और उनके शिष्य वर्ग को लगातार नियमित वाचन के द्वारा 'विनय' की रक्षा का भार सौंपा गया। इसी प्रकार थेर आनन्द को दीघनिकाय की, थेर सारिपुत्त के

शिष्यों को मज्झिमनिकाय की, थेर कस्सप को संयुत्तनिकाय की और थेर अनुरुद्ध को अंगुत्तरनिकाय की रक्षा का भार सोंपा गया।[१] इस प्रकार पाँच भाणकों के उद्‌गम की कल्पना भी यहीं से की जा सकती हैं,[२] क्योंकि अपने-अपने भागों के वे ही लोग आगे चलकर भाणक कहलाने लगे।

एक बहुत ही प्राचीन परम्परा के अनुसार मुख्य-मुख्य पिटकों के ग्रन्थों की अट्ठकथाएँ मूल पाठ के साथ इन सम्प्रदायों ने प्रचलित की थीं। सम्भवत: इससे यह भी प्रतीत होता है कि अट्ठकथाओं के अंश उन-उन ग्रन्थों में जोड़ दिए गये थे, जैसे कि 'धम्मसङ्गणि' में 'अत्थुद्धार कथा।' किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं निकल सकता, जैसा कि श्रीमती रायस् डेविड्स भी संकेत करती हैं,[३] कि समस्त अट्ठकथाएँ इन सम्प्रदायों के द्वारा प्रचलित की गई थीं अथवा उनमें से प्रत्येक अट्ठकथा इन सम्प्रदायों में जहाँ-जहाँ पढ़ाई जाती थी, सम्पूर्ण रूप से एकसी ही थी। परम्पराओं से पता चलता है कि उनका संकलन किया गया था और अन्त में श्रीलङ्का के जिन-जिन प्रान्तों में वे सम्प्रदाय थे, उन-उन प्रान्तों की भाषाओं में वे लिखी गयी थीं। इससे यह भी स्पष्ट है कि वे किसी एक रचयिता की कृति नहीं थीं, किन्तु संघ के सम्प्रदायों के थेरों की सम्मिलित रचनाएँ थीं। और यही कारण था कि उनके नाम स्थानविशेषों के ऊपर रखे गये थे, जैसे कुरुन्दी, पच्चरी इत्यादि। गन्धवंस में सिंहली अट्ठकथाओं के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के कर्त्ता होनेका निर्देश है[४]—(कतमे अनेकाचरियेहि कता—गन्धाचरियो कुरुन्दीगन्धम् अकासि, अञ्ञतरो महापच्चरीम्)। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि 'गन्धाचरिय' और 'अञ्ञतरो' शब्द किसी का नाम निर्देश नहीं करते। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ करने वाले ये आचार्य हों, किन्तु बाद में तत्तत्स्थानीय थेर वादी संप्रदाय के थेरों द्वारा वे परिवर्धित हुई हों और उनकी ही कहलाई हों। साथ में यह भी समझ

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १३-१५।
२. सर्वश्री बरुआ और सिंह—भारहुत इन्स्क्रिप्शन्स्, पृ० ६।
३. बुद्धिस्ट साइकोलॉजी एण्ड एथिक्स की भूमिका, पृ० २५।
४. गन्धवंस, पृ० ५०।

लेना आवश्यक है, कि न तो इन अट्ठकथाओं की रचना आधुनिक अट्ठकथाओं की रचना के समान हुई थी और न बुद्ध भगवान् के समय में आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के समान ये अट्ठकथाएँ सुव्यवस्थित और परिष्कृत रूप में विद्यमान ही थीं। इसलिये जब आचार्य बुद्धघोष अपनी दीघनिकाय की अट्ठकथा सुमंगलविलासिनी में उल्लेख करते हैं कि दीघनिकाय की अट्ठकथा का पहली संगीति में पाँच सौ प्रसिद्ध थेरों के द्वारा पुनर्वाचन हुआ था तो हमको समझना चाहिए कि उनका अभिप्राय यह है कि इस संगीति में विविध सांकेतिक शब्दों के अर्थ और विशेषत: उन सांकेतिक और दार्शनिक शब्दों के अर्थ, जिनको कि वैदिक ब्राह्मण सम्प्रदाय के ग्रन्थों से लिया गया था—शास्त्रार्थ के द्वारा निर्णीत किये गये थे और उनकी परिभाषा निश्चित की गई थी। इससे आचार्य बुद्धघोष के इस कथन की कठिनाई कि पिटकों के पाठ के साथ ही साथ प्रथम संगीति में ही अट्ठकथाओं का पुनर्वाचन हुआ था—दूर हो जाती है। इन परिभाषाओं और अर्थनिर्धारणरूप व्याख्याओं में पश्चात्कालीन अट्ठकथाओं के बीज निहित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पाँच सौ थेरों ने प्रथम संगीति में महत्वपूर्ण सांकेतिक शब्दों के ऊपर शास्त्रार्थ करके धर्म के गूढ़ उपदेशों की अर्थसंगति लगाने की रीति निर्धारित की थी।

**अट्ठकथाओं का विकास :—**

बाद में बौद्धसंघ में जब विरोधी दल खड़े हुए तो वे मुख्यतया विनय के कुछ नियमों की ठीक-ठीक अर्थसंगति के विषय में भिन्न-भिन्न मतों के कारण तथा धम्म के विविध दृष्टिकोणों की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण ही पैदा हुए थे। समय के अन्तर के साथ-साथ शंकारहित धम्म में दार्शनिक मत पैदा हुए, नवीन विचार बढ़े और प्रारम्भिक धारणायें और अधिक विकसित की गईं। सादा और प्राचीन ढंग से निरूपण किये गये सुत्तों के उपदेशों की परिधि को अधिक बड़ा और विस्तृत कर दिया गया। परिणामत: विविध मत तथा सम्प्रदाय संघ के अन्दर ही पैदा हो गये। उनमें से कुछ तो स्पष्ट रूप से अपने विचारों में धर्मविरुद्ध ही थे। जब द्वितीय और तृतीय संगीतियों में थेरवादी परम्परा के संरक्षक ऐसे पाखण्डियों को अपराधी ठहराने के लिए इकटठे हुए थे, तो निश्चय ही

उन्होंने बुद्ध भगवान् के उपदेशों की व्याख्या और अर्थ निरूपण करने में पहले की अपेक्षा और भी अधिक स्पष्टता और शुद्धता के साथ कार्य करने का दृढ़ निश्चय किया होगा। फलतः तीसरी संगीति के समय इस प्रकार का अट्ठकथा साहित्य विस्तृतरूप में और न्यूनाधिक पूर्णरूप में विकसित हुआ।

**सिंहली अट्ठकथाओं का विकास :—**

जब थेर महिन्द तीसरी संगीति के समाप्त हो जाने के बाद श्रीलङ्का गये तो वे संगीति के थेरों के द्वारा अनुमोदित अट्ठकथा साहित्य को भी अपने साथ ले गये थे। थेर महिन्द ने श्रीलङ्का पहुँचने के बाद बहुत शीघ्र ही उन अट्ठकथाओं का सिंहली भाषा में अनुवाद किया, और उस द्वीप में ये अनुवादित अट्ठकथाएँ बराबर पढ़ीं जाती रहीं; उनके ऊपर गम्भीर विचार किया जाता रहा और श्रीलङ्का के थेरों के द्वारा वे और अधिक विकसित और परिवर्धित होती रहीं।

क्योंकि भारत में अन्य बौद्ध सम्प्रदायों ने थेरवादी सम्प्रदाय को दबा दिया था, इसलिए श्रीलङ्का के विहार ही, थेरवादी ग्रन्थों के अध्ययन के लिए, केन्द्र बन गये थे। यहाँ के विद्वान् थेरों ने इस दिशा में स्वतन्त्र रूप में कार्य किया। इन्होंने अट्ठकथाओं को सिंहली भाषा में लिखा; साथ में पाली भाषा में गाथाओं की रचना भी की। इस दिशा में इन्होंने इतनी पूर्णता प्राप्त कर ली थी कि पाँचवीं शताब्दी ईसवी पश्चात् में जब आचार्य बुद्धघोष श्रीलङ्का में आये तो उनके लिए इन सिंहली अट्ठकथाओं का सुन्दर शैली में सिंहली से पाली में भाषान्तर करना सरल और सम्भव हो गया।

यद्यपि आचार्य बुद्धघोष तथा अन्य आचार्यों की सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित अट्ठकथाओं के समक्ष सिंहली अट्ठकथाओं का लोप हो गया है, किन्तु 'धम्मपिया अटुवागटपदय' में अब भी उन सिंहली अट्ठकथाओं के उद्धृतांश पाये जाते हैं।[१] ये सिंहली अट्ठकथाएँ तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व मे प्रारम्भ हुईं और पश्चात्कालीन शताब्दियोंमें उत्तरोत्तर परिवर्धित और समृद्ध होती रहीं। इनके विकास क्रम का प्रमाण कम से कम द्वितीय

१. श्री वालपोल—हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

शताब्दी ई० पश्चात् तक मिलता है, क्योंकि इनमें से एक अट्ठकथा में राजा बसभ का उल्लेख मिलता है, जिसका कि शासनकाल १२७ से १७१ ई० पश्चात् है।[1]

स्वभावतः इन सिंहली अट्ठकथाओं में नवीन परिवर्धित विषय श्रीलङ्का की स्थानीय घटनाओं तथा वहाँ के लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन से लिया गया था। यह नवीन परिवर्धित विषय इन अट्ठकथाओं में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं जोड़ा गया था (यद्यपि उसका इस प्रयोजन के लिए प्रचुर प्रयोग होता रहा है), अपितु धार्मिक सिद्धांतों और तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिये प्रयुक्त किया गया था। आचार्य बुद्धघोष कहते हैं, कि उन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं के इस परिवर्धित विषय में से, अनावश्यक तथा असम्बद्ध ब्यौरों को छोड़ दिया है। किन्तु यदि उन छोड़े हुए ब्यौरों में से कुछ विद्यमान होते तो वे ऐतिहासिक प्रयोजन के लिए बड़े लाभदायक सिद्ध होते।

यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि अट्ठकथालेखकों के द्वारा इन अट्ठकथाओं में तत्कालीन प्रचलित लोकप्रिय कहानियाँ, अपनी युक्तियों और कथन को प्रमाणित करने, तथा भक्त श्रावकों के धार्मिक विश्वासों और भावनाओं को प्रोत्साहित करने के लिये, पुष्कल मात्रा में प्रयुक्त की गई थीं। ये कहानियाँ, उपदेशकों और उपदेश को सुनने वाले श्रावकों—दोनों को ज्ञात होती थी, क्योंकि उपदेशक अपने उपदेश के मध्य उन कहानियों का केवल नाम-निर्देश करके कह देते थे कि बाकी सारी कहानी सब को ज्ञात ही है। उदाहरणार्थ हमको विसुद्धिमग्ग में ऐसी कुछ कहानियों के बारे में निर्देश मिलते हैं :—'तेल कण्डरिक वत्थु चेत्थ 'कथेतव्वम्', 'चीवरगुम्बवासिका—अम्बखादक महातिस्स थेर वत्थुपिचेत्थ कथेतव्वम्' इत्यादि। अब न तो वे कहानियाँ पूर्ण रूप में पाली अट्ठकथाओं में ही मिलती हैं, और न सिंहली भाषा की अन्य पुस्तकों में ही विद्यमान हैं, किन्तु अट्ठकथाओं के समय ये लोककथाओं के रूप में, अवश्य ही जन साधारण में प्रचलित थी।

---

१. श्री वालपोल—हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

'धम्मसंगह' के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने अपनी समन्तपासादिका में महाअट्ठकथा, महापच्चरी तथा महाकुरुन्दी, केवल इन तीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख किया है। उन्होंने महाअट्ठकथा को सुत्तपिटक की अट्ठकथाओं का आधार बताया है। समन्तपासादिका की भूमिका पृ० २ में आचार्य बुद्धघोष स्वयं भी कहते हैं कि महाअट्ठकथा, महापच्चरी तथा महाकुरुन्दी ये तीन प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ सिंहली भाषा में लिखी गई थीं (संवण्णना सिंहल दीपकेन वाक्येन)। किन्तु जिस समय आचार्य बुद्धघोष राजा महानाम के शासन काल में पाँचवीं शताब्दी ईसवी पश्चात् के प्रारम्भ में श्रीलङ्का में पहुँचे, तो उस समय विविध स्थानों में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की परंपरागत सिंहली अट्ठकथाओं के संग्रह विहारों में विद्यमान थे और उन्होंने निबन्धों और ग्रन्थों का रूप भी प्राप्त कर लिया था। इनमें से कुछ संग्रह तो स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप में थे और अन्य कुछ बौद्ध साहित्य में बिखरे हुए थे, जो कि प्राचीन विद्वान् थेरों के मतों के रूप में थे। आचार्य बुद्धघोष तथा अन्य अट्ठकथाकार उनको अपने ग्रन्थों में प्रमाण रूप में उल्लेख करते हैं। इन सिंहली अट्ठकथाओं में से डा० आदिकरम् के अनुसार अधिक महत्वपूर्ण निम्नस्थ हैं[1]:—

| | |
|---|---|
| १—महाअट्ठकथा अथवा मूल अट्ठकथा | २—महापच्चरीय अट्ठकथा |
| ३—कुरुन्दि अट्ठकथा | ४—अंधकट्ठकथा |
| ५—संखेपट्ठकथा | ६—विनयट्ठकथा |
| ७—सुत्तन्तट्ठकथा | ८—आगमट्ठकथा |
| ९—दीघट्ठकथा | १०—मज्झिमट्ठकथा |
| ११—संयुत्तट्ठकथा | १२—अंगुत्तट्ठकथा |
| १३—अभिधम्मट्ठकथा | १४—सीहलट्ठकथा |
| १५—अट्ठकथा (एकवचन में) | १६—अट्ठकथा (बहुबचन में) |

इनके अतिरिक्त, जिन विद्वान् थेरों के मतों के उद्धरण प्रमाण रूप में दिये गये हैं, वे निम्नस्थ हैं :—

---

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन —अध्याय-अट्ठकथाओं का उद्गम्।

१—अट्ठकथाचरिया
२—आचरियवाद
३—आचरियमत
४—थेरसंल्लाप
५—परसमुद्दवासी थेरा
६—वितण्डावाद
७—पोराणा
८—पोराणकत्थेरा
९—पोराणाचरिया
१०—पोराणट्ठकथा
११—अट्ठकथाविनिच्छय
१२—भाणका

इन दोनों सूचियों के अतिरिक्त आचार्य बुद्धघोष ने मिलिन्दपञ्हो तथा विनिच्छयों (अट्ठकथा विनिच्छयों) का भी अपनी पाली अट्ठकथाओं में प्रमाणस्वरूप उल्लेख किया है।

उपरोक्त सूची में मे बहुत थोड़ी कृतियां ऐसी हैं जो स्वतन्त्र रूप से भिन्न-भिन्न हैं। सीहलट्ठकथा, सुत्तन्तट्ठकथा तथा अभिधम्मट्ठकथा में समस्त संग्रह समाविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि ये नाम सूची में दी हुई कृतियों के सम्भवतः दूसरे पर्यायमात्र हैं।

उपरोक्त सूची में से सीहलट्ठकथा में कितने नामों का समावेश है, यह कहना सम्भव नहीं है। महाअट्ठकथा, महापच्चरी तथा कुरुन्दी अट्ठकथा उसमें अवश्य समाविष्ट थी। आचार्य बुद्धघोष के अनुसार वहाँ अन्य अट्ठकथाएँ भी थीं, किन्तु शायद ये उतनी प्रसिद्ध न थी। इन अट्ठकथाओं के सबसे अधिक निर्देश समन्तपासादिका में मिलते हैं। उदाहरणार्थ :—समन्तपासादिका, भाग १, पृ० १, २, २६५, २६६, २८३; भाग २, पृ० २८८, २९९, ३१७, ३१८, ३३०, ३४९, ३६०, ३७६, ३७७, ४५४, ४९४, ४९६; भाग ३, पृ० ५३७, ६१६, ६२७, ७१६, ७१८।

बौद्ध परम्परा के अनुसार सीहल अथवा सिंहली अट्ठकथाओं में वे अट्ठकथाएँ सम्मिलित हैं जिनको थेरमहिन्द भारत से अपने साथ श्रीलङ्का में लाये थे और जो सिंहली भाषा में अनुवादित होकर वहाँ सुरक्षित रहीं।[२] प्रगट रूप में उनमें फालतू या असंबद्ध विषय अधिक था, क्योंकि

१. समन्तपासादिका—भाग १, पृ० २१०।
२. संयुत्तट्ठकथा (सिंहली) भाग १, पृ० १, पपंचसूदनी भाग १, पृ० १, अट्ठसालिनी पृ० १।

आचार्य बुद्धघोष कहते हैं, कि सिंहली अट्ठकथाओं के पाली भाषान्तर करने के उनके कार्य में, मौलिक सिंहली अट्ठकथाओंमें आयी हुई, पुनरावृत्तियों को दूर करना भी सम्मिलित हैं। उनमें ऐसे भी स्थल थे, जहाँ उनकी व्याख्या, तिपिटक के मूल पाठ से भी मेल नहीं खाती थी अथवा भिन्न थी और जहाँ आचार्य बुद्धघोष को तपिटक के पाठ को अट्ठकथा के पाठ से उच्चता देनी पड़ी है।[1]

**महाअट्ठकथाः—**

महाअट्ठकथा अथवा मूलअट्ठकथा निःसन्देह सिंहली अट्ठकथा है। इसका उल्लेख कहीं-कहीं पर आचार्य बुद्धघोष ने केवल अट्ठकथा (एक बचन तथा बहुबचन) नाम से भी किया है।[2]

यह महाअट्ठकथा त्रिपिटक के ऊपर लिखी गई तथा अनुराधपुर के महाविहार की थेरवादी परम्परा में विकसित और परिवर्धित हुई थी। सिंहली अट्ठकथाओं में इसका स्थान सर्वोत्कृष्ट है। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं का सार इसी महाअट्ठकथा से लिया है।[3] महाअट्ठकथा के बारे में दिये गये उन-उन अट्ठकथाओं के निर्देशों से प्रतीत होता है कि इस महाअट्ठकथा में तीनों पिटकों के ऊपर व्याख्या थी।[4]

---

१. यमकट्ठकथा, पृ० ८३।
२. अट्ठसालिनी पृ० ६,२१ (अट्ठकथासु आगतम्) बहुवचन में।
अट्ठसालिनी पृ० ५, १२ (अट्ठकथावसेन) एक वचन में।
अट्ठसालिनी पृ० ४, ४३ (अट्ठकथायं पन) एक वचन में।
३. समन्तपासादिका भाग १, पृ० २; पपञ्च सूदनी (सिंहली) पृ० १०३०; संयुत्तट्ठकथा (सिंहली) भाग ३, पृ० २३५; मनोरथपूरणी (सिंहली) पृ० ८५५।
४. विनयपिटक के ऊपर व्याख्या के निर्देश के लिये देखें-समन्तपासादिका, भाग २ पृ० ३१७, ३४६, भाग ३, पृ० ५३७ इत्यादि।
सुत्तपिटक के ऊपर व्याख्याके निर्देश के लिए देखें —सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० १८०, १८२; पपंचसूदनी, भाग १, पृ० ३३, भाग २, पृ० २०४; परमत्थजोतिका पृ० २०२ इत्यादि।
अभिधम्मपिटक के ऊपर व्याख्या के निर्देश के लिए देखें—
अभिधम्मट्ठकथा, पृ० ८०, ८२, ८६ इत्यादि।

आचार्य बुद्धघोष साधारण तौर से (यद्यपि हमेशा नहीं) महापच्चरी तथा कुरुन्दी से महाअट्ठकथा को उच्चता देते हैं। कितनी ही बार उन्होंने प्रगट किया है कि वे अन्य अट्ठकथाओं से महाअट्ठकथा को अधिक आदर देते हैं।[१] इसमें आये हुए विषयों की अपेक्षा से प्रतीत होता है कि यह अन्य अट्ठकथाओं से अधिक पूर्ण थी।[२]

अन्य अट्ठकथाओं में छोड़ी हुई व्याख्याएँ भी इसमें मिलती हैं।[३] कितने ही विषयों पर कई अट्ठकथाओं में दी गई व्याख्याएँ केवल इसमें अभिलिखित करके निर्णय खुला हुआ छोड़ दिया गया है।[४] आचार्य-बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा के दोषों का भी उल्लेख किया है, जोकि पाठ के छूट जाने के कारण थे।[५] समन्तपासादिका में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जहाँ कुछ सिंहली विद्वान् थेर महाअट्ठकथा में दिये गये निर्णयों के विरुद्ध थे। ऐसे थेरों में एक महापदुम प्रथम शताब्दी ईसवी पश्चात् के थे।[६]

सुत्तनिपात की अट्ठकथा परमत्थजोतिका के अनुसार महाअट्ठकथा में सुत्तनिपात के 'कोकालिका' सुत्त की अन्तिम दो गाथाओं की व्याख्या नहीं दी गई थी, इससे परमत्थजोतिका के कर्त्ता समझते हैं कि ये दो गाथाएँ मूलसुत्त में नहीं थीं।[७] यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि पाली तिपिटक में क्षेपक अंश, चाहे कितने ही छोटे क्यों न हों, तिपिटकों के श्रीलङ्का में आने के बहुत समय बाद जोड़े गये थे और संभवतः उनके मातुल जनपद में लिखित रूप में आने के बाद जोड़े गये थे।[८]

---

१. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४४८; भाग ३, पृ० ७०१।
२. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० २०२।
३. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३४६।
४. ,, ,, पृ० ४४८।
५. ,, ,, पृ० ३००।
६. ,, भाग १, पृ० २८३; भाग २, पृ० ४५४।
७. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ४७७।
८. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

इस महाअट्ठकथा में इस बात की भी साक्षियां मिलती है कि इसमें श्रीलङ्का में घटित घटनाओं के आधार पर बहुत बड़ी संख्या में उपाख्यान दिये गये हैं।[१] आचार्य बुद्धघोष ने इनमें से थोड़े से उपाख्यान अपनी अट्ठकथाओं में सम्मिलित किये हैं। यदि ये पूर्ण रूप में सुरक्षित होते तो ये प्राचीन श्रीलङ्काकी तत्कालीन अवस्थापर तथा उसके इतिहास परभी अवश्य ही पर्याप्त प्रकाश डालते।

अनुराधपुर में महाविहार के अतिरिक्त एक और विहार था, जिसको उत्तरविहार कहते हैं। इसकी परम्परा महाविहार की परम्परा से भिन्न थी और इसमें भी एक अट्ठकथा विकसित हुई थी। महाविहार और उत्तरविहार की परम्पराओं का अन्तर आचार्य बुद्धदत्त के विनयविनिच्छय तथा उत्तरविनिच्छय की पृष्ठभूमि में मालूम पड़ता है।[२]

**महापच्चरी.—**

इस अट्ठकथा के महापच्चरी नाम पड़ने के बिषय में सद्धम्मसंगह (पृ० ५५) में कहा गया है कि यह महापच्चरी नाम की पहाड़ी पर लिखी गई थी, इस कारण इसका नाम महापच्चरी पड़ा। डा० मललसेकर इससे सहमत है, किन्तु श्री बी० सी० ला० कहते हैं कि यह कारण अटकलपच्चू बना लिया गया है, अतएव अविश्वसनीय है। महापच्चरी भी सिंहलद्वीपमें बौद्ध संप्रदाय की एक परंपरा होनी चाहिए और उस परंपरा में विकसित हुई अट्ठकथा महापच्चरी कहलाई गई होगी। संभव है कि उस परंपरा का नाम महापच्चरी पहाड़ी, स्थान के ऊपर पड़ा हो और उस परंपरा में विकसित अट्ठकथा का भी महापच्चरी नाम पड़ गया हो। किन्तु इन दोनों पक्षों में कोई मौलिक भेद प्रतीत नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि महापच्चरी पहाड़ी पर स्थित विहार का नाम पहापच्चरी विहार हो और उस विहार की परम्परा महापच्चरी परम्परा के नाम से विख्यात हो तथा उस परंपरा के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाली अट्ठकथा भी महापच्चरी अट्ठकथा नाम से

---

१. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४७४; अट्ठसालिनी पृ० ८०।

२. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष।

प्रसिद्ध हो गयी हो। जैसा कि कुरुन्दि विहार की अट्ठकथा कुरुन्दिअट्ठकथा कहलाई।

**कुरुन्दि अथवा कुरुन्दिय अट्ठकथाः—**

इस अट्ठकथा का यह नाम पड़ने का कारण यह है कि यह कुरुन्दवेल विहार में विकसित हुई और वहीं लिखी गई।[1] उपर्युक्त दोनों अट्ठकथाओं का उल्लेख समन्तपासादिका में ही मिलता है और वहाँ भी—महाअट्ठकथा के साथ में। इससे प्रतीत होता है कि ये दोनों अट्ठकथाएँ भिन्न-भिन्न परंपराओं की थीं और विनयपिटक के ऊपर ही थीं, क्योंकि समन्तपासादिका के अतिरिक्त इनका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। कुछ स्थलों में तो इनकी व्याख्या महाअट्ठकथा की व्याख्यासे अधिक मान्य है।[2] और कहीं-कहीं इनकी व्याख्या अमान्य कर दी गई है।[3]

**अन्धकट्ठकथाः—**

यह अट्ठकथा दक्षिण भारत के कांचीपुर अथवा कांजीवरम् में लिखी गई थी। संभवतः, जैसा कि इसके नाम से अनुमानित होता है, यह आंध्रदेश की भाषा में लिखी गई थी।[4] आचार्य बुद्धघोष ने इसका उल्लेख अपनी समन्तपासादिका में किया है। अतः यह भी विनय के ऊपर ही रही होगी। उन्होंने इसका इतना अधिक उल्लेख इससे सहमति प्रकट करने के लिए नहीं किया, जितना कि इसकी व्याख्या में दोष निकालने के लिये। और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि भारत की और सिंहल की बौद्ध परंपराओं में पर्याप्त अन्तर आ गया था। कभी-कभी तो इस अट्ठकथा की आलोचना में आ० बुद्धघोष अधिक कठोर हो जाते हैं,

---

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

२. महापच्चरी महाअट्ठकथा से अधिक मान्य—समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३१६, भाग ३, पृ० ६१७।
कुरुन्दी महाअट्ठकथा से अधिक मान्य—समन्तपासादिका (सिंहली) भाग २, पृ० ५९।

३. कुरुन्दी की व्याख्या अमान्य—समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३४६, भाग ३, पृ० ६८८।

४. श्री मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन, पृ० ९२।

और कह उठते हैं कि 'वहाँ यह अयुक्त कहा गया है।[१] 'न तो यह अट्ठकथा (महाअट्ठकथा) के साथ मेल खाता है और न तिपिटक के साथ, इसलिए स्वीकाय नहीं है।'[२] इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि आचार्य बुद्धघोष अंधकट्ठकथा की व्याख्याओं का खण्डन ही अधिक करते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने, जैसा कि ऊपर भी निर्देश है, अन्ध (आन्ध्र) देश में प्रचलित परंपराओं के ऊपर आधारित विनयपिटक की कुछ व्याख्याओं को भी निर्दिष्ट किया है, जो कि थेरवादी संप्रदाय में मान्य नहीं है।[३] किसी विनय-नियम की व्याख्या के ऊपर सिंहल के थेर महासुम्म के द्वारा दिया गया मत अंधकट्ठकथा में मान्य माना गया है।[४] यह थेर प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् में विद्यमान थे और इसलिए निष्कर्ष निकलता है कि यह अट्ठकथा पहली शताब्दी ई० पश्चात् के बाद में लिखी गई होगी।[५]

**संखेपट्ठकथा:—**

श्री बी० सी० ला का कथन है कि इस अट्ठकथा का उल्लेख अन्धकट्ठकथा के साथ किया है, इसलिए यह भी दक्षिण भारत की किसी भाषा में लिखी गई अट्ठकथा होगी। किन्तु उन्होंने कोई ठोस युक्ति नहीं दी, केवल उनका यह अनुमान ही है। वास्तव में ऐसा नहीं जँचता। इस अट्ठकथा का समन्तपासादिका में उल्लेख है। समन्तपासादिका में जहाँ-तहाँ बिखरे हुए इस अट्ठकथा के उद्धृतांशों की साक्षी से प्रतीत होता है कि यह अट्ठकथा महापच्चरी के विषय और व्याख्या से अधिक मेल खाती है।[६] और इसलिए यह सम्भव है कि यह महापच्चरी का ही संक्षिप्त संस्करण हो। इसका नाम भी यही प्रगट करता है।[७]

---

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६६७, समन्तपासादिका (सिंहली) भाग २, पृ० २०४।

२. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० ८, १८, २१४, २२२।

३. समन्तपासादिका (सिंहली), पृ० ८।

४. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६४६।

५. डा० आदिकरम्–अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

६. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३१७, ३१८, ४५४।

७. डा० आदिकरम्–अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

श्री विजेसिंह के अनुसार सारत्थदीपनी और विमतिविनोदनी में अन्धकट्ठकथा और संखेपट्ठकथा इन दो ग्रन्थों का उल्लेख है, किन्तु वजिर-बुद्धि टीका में चूलपच्चरी तथा अन्धकट्ठकथा, इन दो ग्रन्थों का उल्लेख है।[१] इससे भी प्रतीत होता है कि संखेपट्ठकथा तथा चूलपच्चरी एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं और दोनों महापच्चरी के ही संक्षिप्त संस्करण हैं।[२]

**विनयट्ठकथा:—**

सम्पूर्ण त्रिपिटक के ऊपर लिखी गई महाअट्ठकथा का उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य अट्ठकथाएँ भी थीं, जो त्रिपिटक के भिन्न-भिन्न ग्रंथों अथवा भिन्न-भिन्न शाखाओं के ऊपर लिखी गई थीं। विसुद्धिमग्ग में, ऐसे ग्रंथों का उल्लेख है, जिनको विनयट्ठकथा कहा जाता था।[३] यह शब्द कहीं एकवचन में तथा कहीं बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है।[४] इसका सम्भवत: अर्थ है कि विनयपिटक के ऊपर एकसे अधिक अट्ठकथाएँ थीं और शायद उनमें एक ऐसी भी थी जो अन्य अट्ठकथाओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती थी और इसीलिए उसे विनयट्ठकथा कह सकेंगे।[५]

**सुत्तन्तट्ठकथा:—**

इसी प्रकार विसुद्धिमग्ग में सुत्त और अभिधम्म के ऊपर अट्ठकथाओं

---

१. जॉर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८७० भाग ५, न्यू सिरीज पृ० २९८।

२. संखेपट्ठकथा के अन्य निर्देशों के लिए देखें—समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३११, ३५९, ४७७, ४९४, ४९६।

३. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० २७२, परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० ९७।

४. " " पृ० ७२।

५. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

का उल्लेख है।[1] क्योंकि विसुद्धिमग्ग आचार्य बुद्धघोष का श्रीलङ्का में रचा गया प्रथम ग्रंथ था, इसलिए ये उपर्युक्त निर्देश अथवा उल्लेख अवश्य ही उन अट्ठकथाओं के होंगे जोकि उनके श्रीलङ्का में आने से पहले विद्यमान थीं।

**दीघट्ठकथाः—**

सुमंगलविलासिनी में दीघट्ठकथा का भी उल्लेख है,[2] और यह एक ऐसा ग्रंथ है जो आचार्य बुद्धघोष के श्रीलङ्का पहुँचने के समय विद्यमान था।

**आगमट्ठकथाः—**

अट्ठसालिनी में किन्हीं आगमट्ठकथाओं का भी उल्लेख है।[3] श्री बी० सी० ला इसको आगमों की अर्थात् निकायों की एक सामान्य अट्ठकथा मानते हैं, किन्तु बहुवचन के निर्देश से सम्भवतः प्रतीत होता है कि ये अट्ठकथाएँ चार अलग-अलग आगमों के अथवा निकायों के ऊपर अलग-अलग अट्ठकथाएँ थीं और इसीलिये सुमंगलविलासिनी में तथा विसुद्धिमग्ग में दीघ-मज्झिम—संयुत्त-अंगुत्तर अट्ठकथाओं के नाम से उल्लिखित हैं। कोई-कोई विद्वान् इसको महाअट्ठकथा का ही भाग मानते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। ये स्वतन्त्र और अलग-अलग ग्रन्थों के रूप में

---

१. सुत्तन्तट्ठकथा का उल्लेख—विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० २७२।
मज्झिमट्ठकथा का ,, ,, १, ,, ७२, १८४।
,, ,, ,, २, ,, ५४७।
संयुत्तट्ठकथा का ,, ,, २, ,, ३८७, ४३२।
अंगुत्तरट्ठकथा का ,, ,, १, ,, ३१५।
अभिधम्मट्ठकथाका ,, ,, २, ,, ४४७।
अंगुत्तरनिकायट्ठकथा का (जिसके एक भाग को आ० बुद्धघोष दुकनिपातट्ठकथा कहते है) का उल्लेख—विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० १४२।

२. सुमङ्गलविलासिनी भाग १, पृ० ८७।

३. अट्ठसालिनी पृ० ३, १८८, १८६, ३६०, ३६१, आगमट्ठकथासु पन।

अट्ठकथायें थीं और महाअट्ठकथा–जिसमें कि चार आगमों के ऊपर भी व्याख्या है—का भाग नहीं थी। यह बात अट्ठसालिनी में आये हुए अवतरण से सिद्ध होती है, जिसमें कि आगमट्ठकथाओं तथा महाअट्ठकथा का एक ही जगह अलग-अलग उल्लेख है।[1]

**जातकट्ठकथाः—**

यह जातकों के ऊपर सिंहली भाषा में एक स्वतन्त्र अट्ठकथा थी, ऐसा पाली जातकट्ठकथा में आये हुए इसके उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। और यह सिंहली जातकट्ठकथा इससे भी पूर्व भारत में विद्यमान पाली जातकट्ठकथा के ऊपर आधारित थी। यह पाली जातकट्ठकथा भारत में दूसरी-तीसरी शताब्दी ई० पू० में विद्यमान थी, ऐसा सांची और भारहुत के चित्रों से प्रतीत होता है।

**अट्ठकथाः—**

अट्ठकथा (एकवचन) तथा अट्ठकथाओं (बहुवचन) के उद्धरण आचार्य बुद्धघोष तथा उनके उत्तरवर्ती अटठकथाकारों के ग्रन्थों में अगणित हैं।[2]

**सीहलट्ठकथाः—**

जैसा कि विनयट्ठकथा के सम्बन्ध में कहा गया है, यहाँ भी जब अटठकथा एकवचन में किसी पाली अट्ठकथा में उल्लिखित होती है तो यह सम्भवतः महाअट्ठकथा को निर्दिष्ट नहीं करती, किन्तु उसी तरह की सिंहली अट्ठकथा को निर्दिष्ट करती है (जैसा कि समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३०० से निष्कर्ष निकलता है।)[3] उदाहरण के लिए अट्ठकथा

---

१. अट्ठसालिनी पृ० ४७, आगमट्ठकथासु।

२. अट्ठकथा एकवचन में–विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ०६१,८२,२२५,३१६ आदि।
सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५४३, ६५२ इत्यादि।
पपंचसूदनी भाग १, पृ० ४० इत्यादि।
अट्ठकथा बहुवचन में—विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० १३८, १७२ इत्यादि।
उदानअट्ठकथा पृ० ३३, ३४ इत्यादि।

३. डा० आदिकरम्–अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

(एकवचन) सुमंगलविलासिनी में सिंहली दीघनिकायट्ठकथा को निर्दिष्ट करती है, किन्तु जब विसुद्धिमग्ग में इसका उल्लेख आता है, तो हमें न्यूनाधिक रूप में निश्चय हो जाता है कि यह शब्द महाअट्ठकथा को निर्दिष्ट करता है, जो कि सर्वोपरि मान्य सिंहली अट्ठकथा थी। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ कि अट्ठकथा शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और वहाँ यह पाली त्रिपिटक से भिन्न अट्ठकथात्मक साहित्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। दूसरी ओर, जब यह अट्ठकथा शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है, तो सामान्य रूप से मूल सिंहली अट्ठकथाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस अन्तर को ध्यान में रखकर, हम अट्ठकथा (एकवचन) तथा अट्ठकथा (बहुवचन) शब्द के निर्देश को, सम्पूर्ण सिंहली अट्ठकथाओं के समूह के तथा कुछ द्रविड़ अट्ठकथाओं के सम्बन्ध में ले सकते हैं।[1]

जब प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में, कोई त्रिपिटक सम्बन्धी विषय या प्रसंग. बिना व्याख्या के छोड़ दिया जाता है, तो आचार्य बुद्धघोष बड़ी सावधानी से उसकी व्याख्या करते हैं। ऐसी जगह, वे एक बात की व्याख्या करके, जल्दी से, क्षमा प्रार्थनात्मक सूचना के इस उपवाक्य को जोड़ देते हैं—'क्योंकि अट्ठकथाओं में स्पष्ट नहीं किया गया, इसलिये इसकी छानबीन करके यह अर्थ ग्रहण करना चाहिये।'[2] इसी तरह जब उनको अट्ठकथाओं के अर्थ से अपनी युक्तियों के कारण असहमति होती है तो वे अपना निश्चित मत देने में भी संकोच करते हैं। ऐसे स्थलों पर वे कभी-कभी कह भी देते हैं—'क्योंकि यह सारी अट्ठकथाओं में कहा गया है, इसलिये इस व्याख्या को अस्वीकार करना सम्भव नहीं, जो ठीक अर्थ हो उसे अनुसंधान करना चाहिए, अथवा अट्ठकथाकार की व्याख्या के ऊपर विश्वास करना चाहिए।[3] यह ध्यान देने योग्य बात है, कि उनके ये कथन इस बात के द्योतक और उदाहरण हैं, कि वे अपनी पाली

---

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

२. अट्ठकथासु पन अनागतत्ता विमंसेत्वा गहेतब्बम्—अट्ठसालिनी, पृ० ६६, सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ७३।

३. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० २१, विसुद्धिमग्ग, भाग १, पृ० १३८।

अट्ठकथाओं में, अपने विचार या मत शामिल नहीं करते हैं। उन्होंने प्रसिद्ध विद्वान् थेरों के—जैसे कि महाशिव,[१] तिपिटक चूलाभय[२] तथा अभिधम्मिक गोधा[३] द्वारा दी गई व्याख्याओं के ऊपर, अट्ठकथाओं की व्याख्याओं को, सर्वदा मान्यता दी है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण अट्ठकथाओं में मिलते हैं, जिनमें कि, उन्होंने विद्वान् थेरों के मतों को अमान्य किया है, क्योंकि वे या तो अट्ठकथाओं से नहीं मिलते अथवा उनकी व्याख्या सिंहली अट्ठकथाओं में नहीं हैं।[४]

ये अट्ठकथाएँ यद्यपि सिंहली भाषा में रची गई थी, किन्तु फिर भी इनमें पाली गाथाएँ भी मिलती हैं। इन गाथाओं में से कुछ निश्चित रूप से सिंहली अट्ठकथाओं के ही नाम से उल्लिखित हैं,[५] किन्तु यह संभव है कि इन अट्ठकथाओं में ऐसी बहुत सी गाथाएँ होंगी। पाली अट्ठकथाओं में, ऐसी गाथाओं के भी बहुत से अवतरण हैं, जिनके उद्गम का पता नहीं लगता, कि ये कहाँ से उद्धृत की गयी हैं। हो सकता है, कि वे गाथाएँ प्राचीन काल से ही चली आई हों और इनमें से बहुत सी, सिंहली अट्ठकथाओं में विषय की स्मृति की सहायतार्थ सुरक्षित रखी गई हों।

**अट्ठकथिका तथा अट्ठकथाचरिया;—**

अट्ठकथाओं के साथ निकट सम्पर्क रखने वाले अट्ठकथिका तथा अट्ठकथाचरिया हैं। जो लोग अट्ठकथाओं को गुरु परम्परा से पढ़ते थे और दूसरे भिक्खुओं को पढ़ाते थे, वे अट्ठकथिका कहलाते थे।[६] अट्ठकथाचरिया साधारण तौर से, वे लोग समझे जाते थे, जिन्होंने सिंहली

१. अट्ठसालिनी, पृ० २६७।
२. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० ६०२।
३. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० १३८।
४. अट्ठसालिनी पृ० ४२१, विसुद्धिमग्ग भाग २, पृ० ८, समन्तपासादिका—भाग १, पृ० २४०, भाग २, पृ० ४३७, पटिसंभिधामग्गट्ठकथा, पृ० ४७४।
५. समन्तपासादिका भाग १, पृ० २४७, भाग २, पृ० ४३७, पट्टिसंभिधामग्गट्ठकथा पृ० ४७४।
६. परमत्थजोतिका भाग १, पृ० १५१।

अट्ठकथाएँ लिखी थीं। विसुद्धिमग्ग में अट्ठकथाचरिय शब्द अट्ठकथिक के अर्थ में भी प्रयुक्त है।[१] आचार्य बुद्धघोष अट्ठकथाचरियों को, बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं और कहते हैं, कि ये लोग भगवान् बुद्ध के अभिप्राय को समझते थे, इसलिये उनके शब्द अधिकृत रूप में स्वीकार करने चाहिए।[२] पाली गाथाएँ भी उन्हीं की रची हुई बताई जाती हैं।[३]

**आचरियवादः—**

आचरियवाद—आचार्यों की व्याख्या—और अट्ठकथा का एक ही अर्थ है (आचरियवादोनाम अट्ठकथा[४])। ये बुद्ध वचनों के अधिकृत कथन के रूप में त्रिपिटक के पाठ के पश्चात् दूसरे क्रम पर हैं। यदि कोई मत आचरियवाद में है और सुत्तन्त में नहीं मिलता तो वह अग्राह्य है।[५]

**आचरियमतः—**

प्रसिद्ध आचार्यों के द्वारा प्रकट किये हुए मत अथवा परामर्श, आचरियमत की श्रेणी में आते हैं. और ये अट्ठकथाओं की व्याख्याओं से भिन्न हैं।[६] यदि ये मत त्रिपिटक पाठ से अथवा सिंहली अट्ठकथाओं से नहीं मिलते, तो यह आवश्यक नहीं कि वे ठीक ही समझे जायें।[७]

**आचरियाः—**

आचरियमत के समान ही अभिप्राय आचरियों की व्याख्या से लिया जाता है, और पाली अट्ठकथाओं में—'आचरिया वदन्ति', 'आचरिया-कथयन्ति' इत्यादि कथन प्रायः इन्हीं का निर्देश करते हैं। आचरिय 'महापदुम' इसी वर्ग के आचार्यों में हैं।[८]

---

१. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० ६२।
२. समन्तपासादिका (सिंहली) भाग २, पृ० १२, सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० ३३६।
३. अट्ठसालिनी, पृ० ८५, समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० २१८।
४. सुमङ्गलविलासिनी भाग २, पृ० ५६७, विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० ९६।
५. ,, ,, पृ० ५६८।
६. अट्ठसालिनी, पृ० २२३।
७. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० १०७।
८. समन्तपासादिका भाग १, पृ० २८३।

**थेरसंल्लापः—**

काल्हालवासी सुमन, लोकुत्तरवासी चूलसिव तथा दीघभाणक तिपिटकमहासिव—इन तीनों सिंहली थेरों के मध्य शास्त्रार्थ हुआ था, उसे सुमङ्गलविलासिनी में थेर संल्लाप नाम से कथन किया गया है।[१] बौद्ध अट्ठकथाओं में, मान्यता के दृष्टिकोण से यह आचरियवाद के समान ही समझा जाता है। इस तरह के आचार्यों के द्वारा प्रकट किये गये मत, जिनके कि नाम निर्देश नहीं मिलते और अट्ठकथाओं में साधारण परिचय के साथ—'केचि वदन्ति' 'केचि वण्णयन्ति' इत्यादि रूप में जिनका निर्देश आता है, वे भी इसी वर्ग में आते हैं।

**परसमुद्दवासी थेरः—**

कुछ थेर श्रीलङ्का के बाहर रहते थे, उनके मत भी अट्ठकथाओं में सुरक्षित हैं। उनके मत परसमुद्दवासी थेरों के रूप में अट्ठकथाओं में उल्लिखित हैं।[२]

**आचरियानं समानट्ठकथाः—**

'आचारियानं समानट्ठकथा'(आचार्योंकी व्याख्याके समान व्याख्या)के उल्लेख भी अट्ठकथाओं में मिलते हैं और बहुधा वितण्डावादियों के मत के खण्डन के सम्बन्ध में पाये जाते हैं।[३] यह कहना कठिक है, कि ये प्रसिद्ध-प्रसिद्धआचार्यों के भिन्न-भिन्न मत थे, जो कि पाली अट्ठकथाओंमें मिलते हैं, अथवा मूलभूत सिंहली अट्ठकथाओं में लिखे हुए थे, अथवा वे महाविहार में अलग सुरक्षित पाये गये थे।

आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं के लिए विषय केवल सिंहली और द्रविड़ अट्ठकथाओं से ही नहीं लिये थे, अपितु मिलिन्दपञ्हो, पेटकोपदेस तथा दीपवंस से भी लिये थे।[४] कभी-कभी मिलिन्दपञ्हो से लिये गये उद्धरणों के साथ इसका नाम निर्देश भी नहीं होता, और एक स्थान पर

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग ३, पृ० ८८२।
२. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० ७१८, ७२१, ७३०।
३. अट्ठसालिनी, पृ० ६०-६२, २४१, पपंचसूदनी (सिंहली) पृ० ५७२।
४. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० १४१, समन्तपासादिका भाग १, पृ० १४३, महानिद्देसट्ठकथा पृ० २२४।

इसका उद्धरण पोराण के नाम से भी उद्धृत है। दीपवंस का उल्लेख समन्तपासादिका में तथा कथावत्थुअट्ठकथा में आया है।

इनके अतिरिक्त दो सिंहली थेर—चेतियपब्बतवासी महातिस्स तथा चीवरगुम्बवासी अम्बखादकमहातिस्स के सन्दर्भ में दो गाथायें मिलती हैं जिनका आधार अभी तक नहीं मिला।[1] इनका विषय और शैली थेरगाथा की गाथाओं से मिलती है। इससे अनुमान होता है कि सिंहली में कोई पद्यसंग्रह या सूक्तिसंग्रह था, जिनकी ये गाथायें हैं। समन्तपासादिका में भी दो थेरों—महासुम्म और महापदुम—के नाम पर दो गाथायें मिलती हैं।[2]

**पोराणाः—**

आचार्य बुद्धघोष मूलपाठ की व्याख्या की पुष्टि में पोराणों की उक्तियों को बहुधा उद्धृत करते हैं। पहले वे अपनी मूलपाठकी व्याख्या देते हैं, और पश्चात् पोराणों की उक्तियों को अपने कथन की पुष्टि में उद्धृत करते हैं। इसलिये उनकी पाली अट्ठकथाओं के स्रोतों में से पोराणों की व्याख्यायें और उक्तियाँ भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसलिये इनके ऊपर भी विचार करना है। पोराण शब्द के अर्थ के बारे में पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने कितनी ही व्याख्यायें दी हैं। हरमन ओल्डनबर्ग पहले उनको पोराणट्ठकथा रूप में ही स्वीकार करते थे।[3] श्रीमती रायस् डेविड्स का और ही मत है। वे कहती हैं—ये पोराणा लोग त्रिपिटक के संकलनकर्त्ता नहीं थे, अगर होते तो त्रिपिटक के संकलनकर्त्ताओं के साथमें इनकाभी नाम लिया जाता। इसलिये ये पश्चात्कालीन प्रतीत होते हैं। ये 'थेरवादसासन' के जन्मदाता हैं। ये उसी प्रकार दार्शनिक रूप में दार्शनिक बातें कहते हैं जैसे कि सुत्तों के उपदेश हैं। वे अपने समय की जागृति के अनुसार सुसंस्कृत पुरुष थे, किन्तु वे प्राचीन परम्परा के अनुसार ग्रंथ रचना करते थे और इसलिये निजी स्वतन्त्र मत प्रगट करने में आज़ाद नहीं थे। सर्वदा

---

१. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० २१, ४७।
२. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ५३८।
३. ओल्डनवर्ग-दीपवंस पृ० २-३।

आत्मा के कुशलक्षेम और रक्षा करने में चिन्ताशील, सुत्तों के उपदेशकों के समान, वे धार्मिक उपदेशकों का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। वे ग्रन्थों के अध्ययन करने वाले, ज्ञानोपार्जनरत तथा नवीन प्रभावशाली बौद्ध संस्कृति के विहारवासी लेखक थे।[1] गन्धवंस में इनके बारे में स्पष्ट लेख है कि पोराणाचरिया, अट्ठकथाचरिया, भी हैं।[2] श्री बी० सी० ला अपनी 'बुद्धघोष' पुस्तक में लिखते हैं कि 'पोराणा' नाम, संघ के उन मुख्य और पूज्य उपदेशकों को निर्दिष्ट करता है, जिनके पास संघ में उठे हुए प्रश्न, समाधान के लिए और उचित व्याख्या के लिए, लाये जाते थे और जिनकी व्याख्यायें, अट्ठकथाओं में समाविष्ट करली जाती थीं। उनका मत है, कि ये व्याख्यायें सिंहली अट्ठकथाओं में सुरक्षित थीं, और वे मूल पाली भाषा में उद्धृत होने के कारण, पाली अट्ठकथाओं में भी भिन्न रूप से पहचानी जा सकती हैं।[3] श्री मललसेकर का मत है कि 'पोराण' शब्द केवल उन उपदेशकोंको निर्दिष्ट करता है, जिनकी व्याख्यायें अट्ठकथाओं में समाविष्ट नहीं की गई थीं; किन्तु विविध बौद्ध सम्प्रदायों में मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही थी, और जिनके साथ कभी-कभी स्मृति-सहायक गाथायें भी जुड़ी रहती थीं। ऐसी परम्परागत व्याख्याओं को आचार्य बुद्धघोष अज्ञात नाम अथवा नामरहित—पोराणा—शब्द से निर्देश करते हैं। प्रायः सिंहली ग्रन्थों में लेखक प्राचीन ग्रंथों के उद्धरण देते हुए, या तो मूल स्रोत या लेखक को जानते ही नहीं थे, अथवा जानते हुए भी उनके नाम देने की आवश्यकता नहीं समझते थे। ऐसे स्रोतों का परिचय केवल—इहेयिं पुरातनयो केहु—'इसमें या इसलिये पोराणों ने कहा है', इस वाक्य से वे देते हैं।

उपर्युक्त कथनों से सार यह निकलता है, कि ये 'पोराणा' लोग थेर वादी परम्परा को स्थापित करने वाले तथा उसे दृढ़ रखने वाले थे। इनकी व्याख्यायें थेरवादी सम्प्रदाय में मान्य थीं, और इसीलिए प्रमाणस्वरूप अट्ठकथाओं में उद्धृत की जाती थी। इनकी व्याख्यायें मूल पाली में थीं और उनके साथ गाथाएँ भी स्मृति की सहायतार्थ जुड़ी हुई थीं। ये

१. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष पृ० ७।

२. गन्धवंस, पृ० ५५, ५६।

३. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष पृ० ६४।

व्याख्याएँ चाहे सिंहली अट्ठकथाओं में हों अथवा स्वतन्त्र रूप में अलग-अलग विहारों में सुरक्षित हों, किन्तु सम्प्रदाय में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। ये 'पोराणा' प्राचीन भारतीय थेर ही होंगे, क्योकि उनकी व्याख्यायें मूल पाली में हैं।

पोराणों के उद्धरणों से प्रतीत होता है, कि ये तीनों पिटकों के विषयों के ऊपर व्याख्या देते हैं, और उनकी व्याख्यायें अट्ठकथाओं से मिलती हैं। उनकी व्याख्याओं के विषयों में, व्याकरण सम्बन्धी व्याख्यायें, गम्भीर दार्शनिक विचार, पौराणिक निर्देश, तथा ऐतिहासिक विवरणों का समावेश है। डा० आदिकरम् ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में उद्धरण देकर इस बात को और भी स्पष्ट किया है। उन्होंने उनके उद्धरणों की सूची तैयार की है, जिसमें एक सौ बयालीस अवतरण हैं, जिनमें से पुनरुक्तियों को यदि निकाल दें, तो केवल नब्बे उद्धरण रह जाते हैं। इनमें पच्चीस विसुद्धिमग्ग में, पन्द्रह पपंचसूदनी में, ग्यारह सुमङ्गलविलासिनी में तथा तेरह पटिसंभिधामग्ग में हैं। विनय, ध्यान और भिक्खुओं के उच्च और पवित्र जीवन बिताने के लिए उपदेश, संसार की अनित्यता, अभिधम्मसुत्त, बुद्ध भगवान् के जीवन की घटनायें, पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनायें, शब्दों के विग्रह और व्याकरण सम्बन्धी व्याख्यायें, तथा त्रिपिटक के पदों का स्पष्टीकरण आदि विषय इन उद्धरणों में दिये हैं।[1]

**पोराणकत्थेरः—**

इनके अवतरणों की विशेषता यह है कि ये गद्यात्मक हैं तथा इनके संदर्भ हमेशा अट्ठकथाकारोंको मान्य नहीं होते। अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा मनोरथपूरणी में पोराणकत्थेर के मत को अमान्य करके मूल अट्ठकथाकार का मत स्वीकृत रूप में दिया गया है।[2] दूसरे, इनके उद्धरणों के विषय में भी सामान्य प्रवृत्ति यह है कि इनके मत पोराणों के समान अधिकृत रूप में ग्रहण नहीं किये जाते और ये व्याख्यात्मक रूप में अथवा समान व्याख्या

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० १८, तथा आगे।

२. मनोरथपूरणी, भाग २, पृ० २६।

की पुष्टि के रूप में दिये जाते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है, कि पोराणा और पोराणकत्थेर भिन्न-भिन्न हैं।

**पुब्बाचरिया:—**

खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में उसके रचयिता उल्लेख करते हैं, कि पूर्ण ज्ञान न होने पर भी, वे इस अट्ठकथा को लिखने का प्रयास करते हैं, क्योंकि पुब्बाचरियों के निश्चित किये हुए मत आज तक भी प्राप्य हैं। और फिर, इसी के ठीक पश्चात् वे कहते हैं, कि वे अपने इस ग्रन्थ को पौराणविनिच्छयों (प्राचीन आचार्यों के विनिश्चयों) के ऊपर आधारित करते हैं। इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि पोराणा और पुब्बाचरिया एक ही हैं।[1] विसुद्धिमग्ग का एक उद्धरण भी इसी मत की पुष्टि करता है :—बुद्धघोष अपने पाठकों से कहते हैं कि पटिच्चसपुप्पाद (आकस्मिक भाव या घटनाओं) का समझना कितना कठिन है। अपने कथन की पुष्टि के लिये वे पोराणों की गाथा को उद्धृत करते हैं।[2] आगे वे इस कठिन सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि शासन बहुत प्रकार की व्याख्याओं से पूर्ण है (नाना देसना नय मण्डितम्) और प्राचीन आचार्यों का मार्ग (पुब्बाचरियमग्गो) अक्षुण्ण रूप से चलता है। फिर, वे अपने पाठकों से इस सिद्धान्त को ध्यान पूर्वक सुनने के लिए प्रार्थना करते हैं, और इस सिद्धान्त के ध्यानपूर्वक श्रवण करने के लाभों की ओर संकेत करते हुए, एक गाथा पुब्बाचरियों की उद्धृत करते हैं—वुत्तंहिएतं पुब्बाचरियेहि।[3] ये दोनों उपरिनिर्दिष्ट गाथायें एक ही विषय पर हैं, और आचार्य बुद्धघोष ने जो प्रकार इनको उद्धृत करने का अपनाया है, उससे यह प्रतीत होता है, कि वे अपने विषय का स्रोत एक ही आधार से ले रहे हैं। इससे यह भी प्रतीत होता है, कि 'पोराणा' तथा 'पुब्बाचरिया' एक ही अथवा एक समान ही हैं।

आचार्य बुद्धघोष ने पोराणाचरियों के नाम पर, कुछ परम्परागत पौराणिक कथाएँ तथा सैद्धान्तिक कथन, अपनी अट्ठकथाओं में दिये हैं।

१. परमत्थजोतिका भाग १, पृ० ११।
२. विसुद्धिमग्ग भाग २, पृ० ५५२।
३. विसुद्धिमग्ग भाग २, पृ० ५२३।

इस तरह की एक उक्ति 'परिवार' ग्रंथ में आई है, जो कि विनय अध्यापकों की परम्परा को, थेर महिन्द और उनके चार साथियों—इत्थिय, उत्तिय, संबल तथा भद्दसाल–से जोड़ती हैं, जिन्होंने विनय, सुत्त तथा धम्मपिटक के ग्रन्थ लङ्का वासियों को पढ़ाये। यदि 'परिवार' ग्रंथ में यह उक्ति क्षेपक अंश नहीं है, तो परिवार ग्रन्थ किसी सिंहली थेर का संकलित ग्रंथ है, जो कि पिटक साहित्य में बादमें जोड़ दिया गया है। अन्यथा उसमें थेर महिन्द का कथन कैसे आ सकता है।[१]

**पोराणाचरियाः—**

यह पोराणाचरिया शब्द पाली अट्ठकथाओं में बहुधा आता है। प्रश्न उठता है कि क्या ये 'पोराणाचरिया' 'पोराणा' ही हैं? गन्धवंस पोराणाचरिया शब्द की परिभाषा देता हैं, कि 'पोराणाचरिया धम्मसंगाहका थेरा', अर्थात् पोराणाचरिया वे थेर हैं जिन्होंने महाकच्चान को छोड़कर पहली तीन संगीतियों में भाग लिया था।[२] अब हम देखते हैं कि मिलिन्द-पञ्हो में आचार्य नागसेन ने एक गाथा महासंगाहक थेरों की बतलाई हैं,[३] और जैसा कि श्रीमती 'रायस् डेविड्स' भी संकेत करती हैं, वही गाथा विसुद्धिमग्ग में पोराणों के उद्धरण रूप में आती हैं।[४] इस प्रकार, कम से कम गाथा के सम्बन्ध में पोराणा और पोराणाचरिया एक ही ठहरते हैं। गंधवंसकार पोराणाचरिया और अट्ठकथाचरिया के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हुए और भी आगे बढ़ते हैं। उनका कथन है—'जो पोराणाचरिया हैं वे ही अट्ठकथाचरिया हैं।[५] यदि उपर्युक्त कथन ठीक है, तो यह निष्कर्ष सम्भव है, कि पोराणा और अट्ठकथाचरिया एक ही हैं। आचार्य बुद्धघोष मज्झिमनिकाय के 'मूलपरियाय' सुत्त के ऊपर टिप्पणी करते हुए सिंहली अट्ठकथा के वाक्यांश–'पठविम् अभिनन्दति' की व्याख्या देते हैं, और दूसरे वाक्यांश 'पठविम् मञ्ञति' पर आकर कहते हैं कि इसका भी

१. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।
२. गंधवंस पृ० ५८।
३. मिलिन्दपञ्हो, पृ० ३६६।
४. विसुद्धिमग्ग, भाग १, पृ० २७०।
५. ये पोराणाचरिया तयेव अट्ठकथाचरिया–गन्धवंस, पृ० ५९।

पहले वाक्यांश की तरह ही अर्थ है किन्तु पोराणों ने इसका कारण नहीं बताया है। इसके बाद वे अपना मत प्रगट करते हैं—'अयं पन मे अत्तनोमति।'[1] यहाँ आचार्य बुद्धघोष पोराणों को अट्ठकथाचरिया के अर्थ में ही लेते हैं।

एक बार और, जब वे सुत्तनिकाय के 'आसीविसोपम' सुत्त के ऊपर टिप्पणी करते हैं, तो वे अट्ठकथाचरियों की चार गाथाओं को उद्धृत करते हैं (तेन आहु अट्ठकथाचरिया)। इसके थोड़ी देर बाद ही वे उसी प्रकृति की चार और गाथाओं को उद्धृत करते हैं, किन्तु इस बार पौराणों की ओर से—'तेन आहु पोराणा' यह वाक्य देते हैं।[2]

आगे सुत्तनिपात के अट्ठकथाकार 'रतनसुत्त' की बहुत ही संक्षिप्त प्रस्तावना देकर टिप्पणी करते हैं कि 'वेसाली' (वैशाली) की रचना विषयक कथा के प्रारम्भ से पोराणों ने इस सुत्त की व्याख्या प्रारम्भ की। यहाँ फिर यह सम्भव है कि पोराणा शब्द का वही अर्थ हो, किन्तु ये उदाहरण इस परिणाम पर कि ये दोनों एक ही हैं, पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।[3]

**पोराणट्ठकथाः—**

पोराणट्ठकथा (प्राचीन अट्ठकथा) यह शब्द पोराणा और पोराणट्ठकथा इन दोनों के सम्बन्ध के बारे में एक और समस्या खड़ी करता है। श्री 'ओल्डनवर्ग' का तो विश्वास है कि ये दोनों एक ही हैं। श्री 'गाइगर' का भी यही मत है। वे कहते हैं कि पोराणट्ठकथा जो कि 'महावंस' की आधारभूत हैं, वह उन पोराणों के ग्रंथ के अतिरिक्त कोई भिन्न ग्रन्थ नहीं, जिनका कि उल्लेख 'महावंस' की टीका में सात बार है। इस प्रकार श्री गाइगर की युक्ति विश्वसनीय है।[4] इसलिये, जैसा कि श्री आदिकरम् का भी कथन है, श्री मललसेकर का कथन युक्तियुक्त नहीं कि 'आचार्य-

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० २८।
२. संयुत्तट्ठकथा भाग ३, पृ० ४०, ४१।
३. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० २२।
४. दीपवंस तथा महावंस—अँग्रेजी अनुवाद—श्री गाइगर, पृ० ४४।

बुद्धघोष के पोराणा शब्द के निर्देश किन्हीं प्राचीन बिना नाम के आचार्यों से है, जिनकी व्याख्यायें अट्ठकथाओं में नहीं थीं, किन्तु भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में परम्परा से चली आ रही थीं।[1] हमें पपंचसूदनी में आचार्य बुद्धघोष का उल्लेख पोराणों की एक व्याख्या के बारे में मिलता है। निश्चय ही यह व्याख्या अट्ठकथाओं में होगी, अथवा लिखित रूप में किसी सम्प्रदाय में सुरक्षित होगी। आचार्य बुद्धघोष के पास सम्भवतः इतना समय नहीं था कि वे विविध सम्प्रदायों के ग्रन्थों को पढ़ते, इसलिये यही सम्भव है कि उनको वे उल्लेख अट्ठकथाओं में ही मिले होंगे। दूसरी बात यह है कि गद्यात्मक रूप में एक से ही उल्लेख बार-बार अट्ठकथाओं में आते हैं, इससे भी यही बात प्रतीत होती है कि अट्ठकथाकारों ने अवश्य ही उन्हें किसी लिखित ग्रंथ से उद्धृत किया होगा।

निश्चय ही ये पोराणा लोग सामान्य प्राचीन आचार्य थे, और उन्होंने थेरवादी सम्प्रदाय को बनाने में और स्थापित करने में महत्वपूर्ण भाग लिया होगा। उनका मूल निकास अवश्यमेव भारत में ही होगा, जैसा कि धम्मसंगाहक थेरों की बतलाई जाने वाली गाथाओं से, जो कि मिलिन्दपञ्हो में दी गई हैं, प्रतीत होता है। सम्भव है, कि वे पोराणा नाम से भारत में प्रसिद्ध नहीं होंगे और अधिक प्राचीनता क कारण सिंहली अट्ठकथाकारों ने उनको 'पोराणा' रूप में उल्लिखित किया होगा। यह हो सकता है कि धम्म अथवा सिद्धान्त के बारे में उनके मत किसी अट्ठकथा में संग्रहीत होंगे और जब ये दूसरी सिंहली अट्ठकथायें-महाअट्ठकथा, महापच्चरी तथा कुरुन्दी—लिखी गईं तब यह प्राचीन अट्ठकथा, पोराणट्ठ-कथा नाम से पुकारी गई, और वे आचार्य जिनके मत उसमें दिए गये थे, पोराणा (प्राचीन आचार्य) कहलाये। इसके और भी पश्चात् इन प्राचीन आचार्यों के तथा शेष प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के आचार्यों के बीच का भेद मिट गया और 'पोराणा' तथा 'पोराणट्ठकथा' का एक ही अर्थ समझा जाने लगा। जिस प्रकार कुरुन्दट्ठकथा के स्थान में कुरुन्दी शब्द का प्रयोग होने लगा, ठीक इसी प्रकार पोराणट्ठकथा शब्द के स्थान में 'पोराणा' शब्द का प्रयोग होने लगा।[2]

---

१. श्री मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन, पृ० ९२।
२. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० २३।

**अट्ठकथा विनिच्छय :—**

आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के आधारभूत मूल स्रोतों में इन विनिच्छयों की भी निश्चित रूप से गणना है। ये कुछ विनिश्चय अथवा निर्णय हैं, जिनसे विनय के नियमों और विधिनिषेधों की ठीक-ठीक अर्थ-सङ्गति, व्याख्या तथा नियमों के उपयोग में पर्याप्त सहायता मिलती है। ये विनिच्छय अथवा विनिश्चय दक्षिणी भारत तथा श्रीलङ्का के सुमान्य तथा विद्वान् थेरों के द्वारा विनय के ऊपर किये गये निश्चयों के परिणाम-स्वरूप विकसित हुए थे। इनमें श्रीलङ्का के महाविहार की परम्परा के विनिच्छय सबसे अधिक मान्य समझे जाते हैं। इन्हीं विनिच्छयों को, जिनको कि आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठकथाविनिच्छय के नाम से अपनी अट्ठकथाओं में उद्धृत किया है; सिंहली अट्ठकथाओं (महाअट्ठकथा, महापच्चरी अट्ठकथा तथा कुरुन्दी अट्ठकथा) में सम्मिलित कर लिया था।

अट्ठकथाकारों के लिये यह अनिवार्य था कि उनकी अट्ठकथाओं की व्याख्यायें त्रिपिटक पाठ से ही नहीं बल्कि अट्ठकथा विनिच्छयों से भी विरोध नहीं रखें।[1] किसी विशेष व्याख्या को अस्वीकृत करते हुए आचार्य बुद्धघोष कहते हैं, 'अट्ठकथा विनिच्छयेहि न समेति', अर्थात् यह व्याख्या अट्ठकथा विनिच्छयों से मेल नहीं खाती है। समन्तपासादिका में आचार्य बुद्धघोष ने अपनी स्वयं की व्याख्याओं को भी विनिच्छय नाम से उल्लिखित किया है।[2] इन निश्चयात्मक व्याख्याओं के अतिरिक्त भी, बुद्धघोष ने बिना नाम निर्देश के विनिच्छयों को अधिकृत रूप में उद्धृत किया है। ऐसे विनिच्छयों का जब पता लगता है, तो वे आचार्य बुद्धसीह के ग्रन्थ में मिलते हैं, जिसका कि नाम स्पष्ट रूप से 'विनिच्छय' है। अपने विनय-विनिच्छय के परिशिष्ट में आचार्य बुद्धदत्त स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उनका यह ग्रंथ आचार्य बुद्धसीह के 'विनिच्छय' का ही संक्षेप है। आचार्य बुद्धसीह ने अपने आपको सद्धिंविहारी कहा है। अर्थात् वे वेण्हुदास या कण्हदास के

---

१ समन्तपासादिका भाग २, पृ० ५३९।

२. समन्तपासादिका पृ० ६४८—'अयं ताव नतो दसाहं अधिट्ठेति विकप्पेतीति एत्थ अधिट्ठाने विनिच्छयो'। पुनश्च—समन्तपासादिका, पृ० ६४६, 'अयं विकप्पेतीति इमस्मिंपदे विनिच्छयो'।

द्वारा बनवाये गये उस 'सद्धिविहार' के संघ के हैं जोकि कावेरी नदी के बन्दरगाह पर बना है। आचार्य बुद्धसीह के इस ग्रंथ का इसके अतिरिक्त अब कोई पता नहीं। आचार्य बुद्धघोष की समन्तपासादिका में इस ग्रन्थ के कुछ उद्धरण मिलते हैं, और इसका उल्लेख आचार्य बुद्धदत्त ने अपने विनयविनिच्छय में किया है। संभवतः यह ग्रन्थ पाली गद्य में था, जबकि आचार्य बुद्धदत्त का विनयविनिच्छय' पाली पद्य में है।

**भाणकाः—**

भाणकों के मत भी आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में बहुतायत से पाये जाते हैं। भाणक वे लोग कहलाते थे जो त्रिपिटक के मूल पाठों को, मौखिक परम्परा के द्वारा सुरक्षित रखते थे और दूसरों को कण्ठस्थ करवाते थे। प्राचीनकाल में लेखन सामग्री के अभाव में इन्हीं भाणकों ने, त्रिपिटक के मूल पाठ को प्रथम संगीति से लेकर श्रीलङ्का में वट्टगामणि के समय तक तथा भारत में महाराज कनिष्क के समय तक, अक्षुण्ण रूप में सुरक्षित रखा था। वट्टगामणि और कनिष्क ने संगीतियों के द्वारा मूल त्रिपिटकों को लिखित रूप में करवाया, किन्तु भाणकों की परम्परा फिर भी चलती रही थी, क्योंकि पुस्तकों की अपेक्षा कण्ठस्थ पाठ अधिक आदरणीय समझा जाता था।

बुद्ध भगवान् ने अपने अनुयायी भिक्खुओं के लिए नियम बनाये थे, और वे बहुत विस्तृत रूप में थे। किन्तु जहाँ तक साक्षियाँ मिलती हैं, इन नियमों को किसी ने भी ग्रन्थ के आकार में लाने का प्रयत्न नहीं किया : यद्यपि भिक्खुओं के द्वारा वे नियम संहिता के रूप में पढ़े जाते थे और याद किये जाते थे। इससे निश्चित रूप में कह सकते हैं, कि उस समय में भगवान् के उपदेशों की दो ही संहितायें थीं—विनय और धम्म। विनय—भिक्खुओं और भिक्खुनियों के जीवन को संयमपूर्वक संचालनार्थ तथा पथप्रदर्शनार्थ नियमों और विधियों की संहिता थी, तथा धम्म—बुद्ध भगवान् के उपदेशों का संग्रह या संहिता थी। इस धम्मसंहिता का विभाजन सुत्त और अभिधम्म रूप में स्पष्ट रूप से बाद में हुआ था।[1]

---

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ बुद्धिज्म इन सीलोन।

**भाणकों का उद्गम तथा विकास :—**

आचार्य बुद्धघोष ने भाणकों के उद्गम के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध परम्परा का उल्लेख किया है। महाबोधिवंस में भी यह उल्लेख कुछ परिवर्तित रूप में मिलता है। इस प्रसिद्ध परम्परा के द्वारा उन्होंने भाणकों का सम्बन्ध प्रथम संगीति से स्थापित किया है।

आचार्य बुद्धघोष ने भाणकों का सम्बन्ध प्रथम संगीति से स्थापित किया है। वे अपनी सुमंगलविलासिनी में लिखते हैं कि बुद्ध भगवान् के महापरिनिब्बाण के एक सप्ताह पश्चात् वृद्धावस्था में दीक्षा लेने वाले सुभद्द भिक्खु ने भगवान् के निब्बाण के समाचार को सुनकर दुखी होने वाले भिक्खुओं को कहा था— 'मित्रो, तुम्हें शोक करने की और दुखी होने की आवश्यकता नहीं। हमें अब उस महाश्रमण (बुद्ध भगवान्) से छुटकारा मिल गया जो हमें 'यह करो, वह न करो' इत्यादि कहकर तंग किया करता था।' उस भिक्खु की इस बात को सुनकर थेर महाकस्सप ने भिक्खुओं को इस प्रकार के लोगों से बचाने के लिए तथा सद्धम्म की रक्षा करने और उसे अक्षुण्ण रखने के लिये भगवान् के निर्वाण के चार माह के अन्दर पाँचसौ भिक्खुओं की प्रथम संगीति बुलाई, जिसमें विनय और धम्म का संगायन हुआ। और प्रथम बार इस संगीति में भगवान् बुद्ध के उपदेशों का वाचन करके उनको श्रेणिबद्ध किया गया तथा उनको क्रमवार व्यवस्थित किया गया था।

उस संगीति में यह भी निश्चित किया गया था, कि धम्म और विनय के भिन्न २ अनुभाग भिन्न-भिन्न थेरों और उनके शिष्य वर्गोंको सौंपे जायें। यह विभाजन इस कारण और भी आवश्यक हो गया, क्योंकि उस समय ग्रंथ लिखने के साधन पर्याप्त नहीं थे। और बुद्ध भगवान् के उपदेशों के प्रचार को गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा आगे प्रचलित और सुरक्षित रखना आवश्यक था। तदनुसार उन-उन अनुभागों को उन-उन भिक्खुओं के वर्गों को सौंपा गया, जो उन-उन अनुभागों में निपुण और विशेषज्ञ थे। क्योंकि थेर उपालि विनय में निपुण थे, इसलिये विनय का संगायन और उसकी रक्षा का भार उनको सौंपा गया।[1] इसी प्रकार दीघनिकाय, मज्झिम-

१. सुमङ्गलविलासिनी—भाग १, पृ० १३।

निकाय, संयुत्तनिकाय और अंगुत्तरनिकाय के संगायन और संरक्षण का भार क्रमशः थेर आनन्द, सारिपुत्त के शिष्यों, थेर महाकस्सप और थेर अनुरुद्ध को सौंपा गया। इन निकायों में से मज्झिमनिकाय में अनुपद सदृश सुत्त हैं, जिनमें कि बाद में स्थापित हुए अभिधम्म का विषय है, इसी कारण अभिधम्म के विषय में प्रसिद्ध धम्मसेनापति थेर सारिपुत्त के शिष्यों को मज्झिमनिकाय सौंपा गया था। यही कारण है, कि श्रीलङ्का में दस शताब्दियों के बाद चीनी यात्री युआन्चांग ने देखा था, कि पवित्र दिनों में अभिधम्मिकों के द्वारा, सारिपुत्त पूजे जाते थे।[1]

जिन भिक्खुओं को ये उपर्युक्त अनुभाग सौंपे गये थे, उन्होंने और उनके बाद उनके शिष्यों ने, बुद्ध भगवान् के उपदेशों को संगायन और वाचन के द्वारा सुरक्षित रखा। इस प्रकार वे लोग उस ग्रंथ अथवा उस अनुभाग के भाणक अथवा संगायक कहलाये। समय बीतने पर आचार्य बुद्धघोष के समय से पहले भाणकों के मतों और व्याख्याओं का एक सम्प्रदाय विकसित हो चुका था। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि आचार्य बुद्धघोष ने भाणकों के मत को प्रामाणिक रूप में उद्धृत किया है। सिंहल के जिन भिन्न-भिन्न उपदेशकों के मत आचार्य बुद्धघोष के द्वारा अपनी अट्ठकथाओं में उद्धृत किये गये हैं, वे अवश्य ही किसी न किसी भाणक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे होंगे।[2]

पाली अट्ठकथाओं में—दीघभाणकों, मज्झिमभाणकों, संयुत्तभाणकों, अंगुत्तरभाणकों, दो विभङ्गों के भाणकों (उभतोविभङ्गा) धम्मपद भाणकों

१. श्री एन. दत्त—स्प्रेड ऑफ बुद्धिज्म एण्ड बुद्धिस्ट स्कूल्स, पृ० २०५, २०६।

२. अट्ठसालिनी, पृ० १८—'धम्मपद भाणका पन अनेकजातिसंसारं इत्यादि।
सुमङ्गलविलासिनी, भाग १, पृ० १५—दीघभाणका इत्यादि।
अट्ठसालिनी, पृ० १५१, ३९९, ४२०—दीघभाणका इत्यादि।
अट्ठसालिनी, पृ० २६७, २७८, २७९—तिपिटक चूलनागत्थेर तिपिटक-महाधम्मरक्खितथेर।
विसुद्धिमग्ग, पृ० ३१३ -संयुत्तभाणका चूलशिवत्थेर इत्यादि।

तथा महाअरियवंस भाणकों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अट्ठसालिनी में सरभाणकों[1] (स्वरभाणकों), तथा मनोरथपूरणी में पदभाणकों[2] का भी उल्लेख है। किन्तु यहाँ जिन भाणकों के विषय में विचार किया जा रहा है उनमें ये बाद वाले स्वरभाणक तथा पदभाणक नहीं आते।

खुद्दकनिकाय के भाणकोंका उल्लेख अट्ठकथाओं में नहीं मिलता, किन्तु मिलिन्दपञ्हो में दीघ-मज्झिम-संयुत्त-अंगुत्तर भाणकों के साथ-साथ खुद्दकभाणक तथा जातकभाणक शब्द मिलते हैं, और वह भी इस ग्रथ के मुख्य भाग में।[3] यह भाग आचार्य बुद्धघोष तथा सिंहली अट्ठकथाकारों से भी प्राचीनतर है। किन्तु इन दोनों ने ही इस भाणक का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी, यह उल्लेख इस बात को प्रमाणित करता है, कि भाणकों का विकास भारत में ही हुआ था, श्रीलङ्का में नहीं, और यह भी कि खुद्दकनिकाय के भाणक भारत में थेर नागसेन के समय से पहले थे। सांची और भारहुत के चित्रों तथा शिलालेखों में भी पाँचों निकायों के भाणकों का, भिक्खुओं के एक विशेष पद के रूप में चित्रण तथा वर्णन है। और ये शिलालेख द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से पहले के हैं। इसलिए ये पाँचों भाणक तथा खुद्दकनिकाय तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व से पहले अवश्य थे। अट्ठसालिनी में धम्मपदभाणक का भी उल्लेख है।

सुत्त, विनय और अभिधम्म के विभागों के सज्झायकों का नाम उस समय भाणकों के रूप में विख्यात नहीं था, किन्तु उनके नाम— सुत्तन्तिका, विनयधरा तथा अभिधम्मिका थे। सुत्तन्तिकों का दूसरा नाम धम्मधरा भी था।[4] बुद्ध भगवान् स्वयं अभिधम्मिक समझे जाते थे।[5] भाणकों के अतिरिक्त जो भिक्खु अट्ठकथाओं को पढ़ते और उनका वाचन

---

१. अट्ठसालिनी, पृ० ७३७।
२. मनोरथपूरणी, भाग १, पृ० ३६।
३. मिलिन्दपञ्हो, पृ० ३४२।
४. मनोरथपूरणी, भाग २, पृ० १८६।
५. अट्ठसालिनी, पृ० १७।

करते थे वे अट्ठकथिका कहलाते थे।[१] इसी प्रकार जो भिक्खु लोग त्रिपिटकों के विशेषज्ञ थे, वे तिपिटका तथा जो चार निकायों में निपुण थे, वे चतुनिकायिका कहलाते थे। इसके साथ-साथ ऐसे भिक्खु भी थे, जिन्होंने त्रिपिटकों को पूरा पढ़ा था, किन्तु किसी एक निकाय के विशेष ज्ञाता थे। ऐसे लोग दीघभाणक, मज्झिमभाणक आदि एक निकाय के भाणक के नाम से विख्यात हुए। इनमें दीघभाणक तिपिटक महासिवत्थेर, उदाहरण के रूप में दिये जा सकते हैं।[२] यह ध्यान देने की बात है कि किसी अनुभाग विशेष के भाणक होने का तात्पर्य यह था कि उन्होंने उस अनुभाग विशेष का अध्ययन विशेष रूप से किया था, किन्तु साथ में अन्य अनुभागों के भी वे ज्ञाता थे। वे अन्य अनुभागों के ज्ञाता नहीं थे, ऐसा अर्थ नहीं लिया जा सकता। ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है, कि किसी विशेष निकाय का भाणक होने के लिये यह आवश्यक नहीं था कि वह भिक्खु उस सम्पूर्ण निकाय का अध्ययन करे। विसुद्धिमग्ग में अभयत्थेर को दीघभाणक, रेवत्थेर को मज्झिमभाणक तथा चूल शिवत्थेर को संयुत्तभाणक कहा गया है।

ये भाणक, जो प्रारम्भ में केवल भाणकों के सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुए थे, सिंहल में आकर पिटकों के भिन्न २ अर्थ करने तथा भिन्न-भिन्न मत प्रगट करने वालों के रूप में विभाजित हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन प्रकार के (दीघ, मज्झिम और संयुत्त निकाय के) भाणकों की व्याख्याओं में भिन्नता आ गई। डा० आदिकरम् ने अपनी 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' के प्रारम्भ में ऐसी भिन्नता रखने वाली व्याख्याओं की सूची दी है। उनमें से कुछ उदाहरण ये हैं :—

दीघभाणकों के अनुसार थेरों ने प्रथम संगीति में खुद्दक निकाय के केवल बारह ग्रंथों का वाचन किया और उनको अभिधम्मपिटक में सम्मिलित किया था। वे ये हैं—जातक, महानिद्देस, चूलनिद्देस, पटिसंभिधामग्ग, सुत्तनिपात, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा तथा थेरीगाथा।

---

१. परमत्थजोतिका, पृ० १५१।

२. सुमङ्गलविलासिनी, भाग २, पृ० ५४३, भाग ३, पृ० ८८३।

जबकि मज्झिमभाणकों के अनुसार खुद्दकपाठ, चरियपिटक, बुद्धवंस तथा अपदान का भी इस संगीति में वाचन हुआ था और इनको खुद्दक ग्रंथ नाम देकर सुत्तन्तपिटक में सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार दीघभाणकों के अनुसार खुद्दकनिकाय में केवल बारह ग्रन्थ रहे और मज्झिमनिकाय के अनुसार सोलह ग्रंथ।[1] दूसरे, दीघभाणकों के अनुसार बारह ग्रन्थों का खुद्दकनिकाय अभिधम्मपिटक में सम्मिलित किया गया और मज्झिमभाणकों के अनुसार सोलह ग्रन्थों का खुद्दकनिकाय सुतपिटक में सम्मिलित किया गया।

दीघभाणकों के अनुसार थेर आनन्द की अर्हन्तता प्राप्ति के विषय में कहा गया है, कि जब सङ्गीति में चार सौ निन्यानवें थेर उपस्थित थे, थेर आनन्द जिनको उसी प्रातःकाल अर्हन्तता प्राप्त हुई थी, सबसे अन्त में सङ्गीति में गये। वे उस समय मेघरहित आकाश में चन्द्रमा के समान भासमान हुए। उनका पवित्र और चमकता हुआ मुखमण्डल मानो उनकी आर्हन्त्य प्राप्ति को प्रगट कर रहा था।[2] इसके स्थान में मज्झिमभाणकों के मत के अनुसार जब थेर आनन्द ने अर्हन्तता प्राप्त कर ली तो इस बात को जताने के लिये वे अन्य थेरों के साथ सङ्गीति में नहीं गये। जब सब थेर एकत्रित होचुके, और केवल उनकाही स्थान रिक्त रह गया, और अन्य थेरों ने उनके बारे में पूछा, तब वे पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट हो गये और अपने आसन पर प्रगट हुए। कोई (एके) कहते हैं कि वे आकाश में होकर आये और उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया।[3]

इसी प्रकार बुद्ध भगवान् के जन्म और जीवन की घटनाओं के वर्णन में भी दोनों भाणकों में भिन्नता है। दीघभाणक कहते हैं कि बुद्ध भगवान् के पैदा होने के समय जो आभास (ओहासो) हुआ था, वह खीर के एक ग्रास खाने के समयमात्र भी नहीं रहता। यह केवल इतने समय तक रहता है, जितना कि मनुष्यके जागने और पदार्थोंको विषय करनेके बीच होता है।

१. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० १५।
२. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० १०—'अत्तनो अर्हन्तप्पत्तिम्-आरोचयमानो।'
३. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० १०।

मज्झिमभाणकों का मत है, कि यह आभास उङ्गलियों के चटकाने में जितना समय लगता है, उतने समय तक रहता है। यह इतने समय में ही लुप्त हो जाता है, जितना कि 'यह क्या' इस शब्द के कहने में लगता है।[1]

दीघभाणकों का मत था कि कुमार सिद्धार्थ को चार निमित्त (चत्तारि निमित्तानि—वृद्ध, रोगी, मृत और सन्यासी का देखना), एक ही दिन हुए थे, किन्तु मज्झिमभाणक कहते हैं—ये निमित्त चार-चार माह के अन्तर से भिन्न-भिन्न दिनों में हुए थे।[2]

यह मत विभिन्नता ऐतिहासिक वर्णनों में ही नहीं, किन्तु धम्म के विषय में भी दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार 'अनापान सत्तिध्यान' के समय शरीर की होने वाली अवस्था के बारे में भी दोनों भाणकों में मतभेद है।

प्रारम्भ में भाणकों का प्रयोजन बड़ा उपयोगी था। लेखन सामग्री के अभाव में इन्हीं लोगों ने तिपिटकों का प्रचलन सुरक्षित रखा। किन्तु बाद में—'गेहसितपेम'—अर्थात् 'यह हमारा दीघनिकाय है', 'यह हमारा मज्झिमनिकाय है'[3] इत्यादि रूपमें अपने-अपने निकायोंमें पक्षपात बढ़ गया, जिससे मतों में भिन्नता आ गई और संकीर्णता पैदा हो गई। यह 'गेहसितपेम', अट्ठकथाओं के लिखे जाने के समय भी प्रचलित था, और इतना बढ़ गया था कि मुकद्दमे के समय कहा जाता था कि उस भिक्षु से जो अपने मुकद्दमे का निर्णय करवाने के लिए आवे, उसकी जाति मत पूछो, किन्तु यह पूछो कि वह कौन से भाणकवाला है—दीघभाणक का है अथवा मज्झिमभाणक का। भाणकों के विषय में लेख बहुत कम हैं। ये भाणक अब बिल्कुल लुप्त हैं, और पता नहीं कि इनका कब लोप हुआ, और यह भी पता नहीं लगता कि आचार्य बुद्धघोष को उनके अभिलेख कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त हुए।

---

१. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० ६२१।

२. बुद्धचरिय अट्ठकथा, पृ० २३२; जातकट्ठकथा, भाग १, पृ० ५६; अपदानअट्ठकथा, भाग १, पृ० ५४।

३. पपंचसूदनी, भाग २; पृ० ६।

इस प्रकार हमने देखा कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी पाली अट्ठकथाओं के स्रोत सिंहली अट्ठकथाओं, थेरों, आचरियों तथा पोराणों, अट्ठकथाविनिच्छयों और भाणकों आदि से लिये थे और जहाँ कहीं सिंहली अट्ठकथाओं में मूल पाठ बिना व्याख्या के छूटे हुए थे, वहाँ उन्होंने अपनी व्याख्या देकर स्पष्ट लिख दिया है कि 'इय पन मे अत्तनोमति'—अर्थात् यह मेरी अपनी व्याख्या है।



## आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का कालक्रम निर्णय

महावंस (चुल्लवंस) की परम्परा के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ब्राह्मण विद्वान् थे। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर ही, थेर रेवत ने इनको बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का निश्चय किया था और अन्त में इनको धम्म में दीक्षित कर लिया। भारत में थेरवादी सम्प्रदाय में विनय की अपेक्षा धम्म की अधिक मान्यता थी, इसी कारण अभिधम्म भारत में आचार्य बुद्धघोष के अध्ययन का विशेष और मुख्य विषय हुआ। थेर रेवत से सुने गये अभिधम्म के विषय ने ही प्रारम्भ में इनका ध्यान बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया था। इसी कारण भारत में इन्होंने सर्व प्रथम अभिधम्म के प्रथम ग्रन्थ धम्मसङ्गणि के ऊपर, पहले णाणोदय तथा बाद में अट्ठसालिनी लिखना प्रारम्भ किया था। आचार्य बुद्धघोष ने अपने दीक्षा गुरु थेर रेवत से त्रिपिटक का अध्ययन किया और बौद्ध वाङ्मय में इतनी विद्वत्ता प्राप्त करली कि धम्मसङ्गणि के परिशिष्ट के रूप में अपना सर्व प्रथम ग्रन्थ 'णाणोदय' प्रकरण लिखा। णाणोदय ग्रन्थ के नाम से ही प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ मागधी भाषा में लिखा गया होगा और भारत में ही लिखा गया होगा, क्योंकि यदि श्रीलङ्का में जाकर लिखा जाता, तो इसका नाम 'ञाणोदय' होता और इसकी भाषा पाली होती। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है, किन्तु इस ग्रन्थ के बारे में विसुद्धिमग्ग के स्यामी संस्करण के लेखक थेर धम्मतिलक का कहना है, कि 'णाणोदय' स्यामी लिपि में लिखा हुआ स्याम

देश में विद्यमान है।[1] महावंस (चुल्लवंस) में यह भी उल्लेख है, कि 'णाणोदय पकरण' को लिख कर वहीं (भारत में ही) इन्होंने धम्मसङ्गणि की संक्षिप्त अट्ठकथा—अट्ठसालिनी लिखी।

'तत्थ ञाणोदयं नाम कत्वा पकरणं तदा।
धम्म संगणिया कासि कच्छं सो अट्ठसालिनीं॥'[2]

श्री बी० सी० ला अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्धघोष' में इस गाथा को निम्न प्रकार से उद्धृत करके कहते हैं कि यह पाठ ठीक लगता है :—

'तत्थ णाणोदयं नाम कत्वा पकरणं तदा।
धम्मसंगणिया कासि कण्डं सो अट्ठसालिनीं।
परितट्ठकथां चेव कातुं आरभि बुद्धिमा।

इससे श्री बी० सी० ला यह अर्थ निकालते हैं कि उपर्युक्त गाथा से यह स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष ने भारत में धम्मसंगणि के ऊपर एक वृत्ति को अट्ठसालिनी के रूप में प्रारम्भ ही किया था, पूरा नहीं किया। श्री गाइगर 'कण्डं' के स्थान में 'कच्छम्' ठीक मानते हैं, और उसका अर्थ कथ्यम् अर्थात् भाष्य करते हैं। श्री बी० सी० ला कहते हैं कि इसका अर्थ यह होगा कि आचार्य बुद्धघोष ने धम्मसंगणि के ऊपर 'णाणोदय' भाष्य लिखा अथवा धम्मसंगणि के ऊपर अट्ठसालिनी अट्ठकथा लिखी। किन्तु यह महावंस के वर्णन के अभिप्राय से मेल नहीं खाता। धम्मसंगणि में 'कण्ड' शब्द अध्याय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—रूपकण्ड, चित्तकण्ड इत्यादि। सासनवंस, महावंस के वर्णन की पुष्टि करता है।[3] किन्तु 'धम्मसंगह में' एक दूसरी ही परम्परा का उल्लेख है। आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलङ्का जाकर महापच्चरी अट्ठकथा को सिंहली से मागधी में लिखा और तब धम्मसंगणि की अट्ठकथा अट्ठसालिनी लिखी।[4]

---

१. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।
२. महावंस (चूलवंस)—अध्याय ३७, गाथा २२५।
३. सासनवंस—पृ० ३१।
४. जॉर्नल ऑफ पाली टेक्स्ट सोसाइटी, १८६०, पृ० ५३, तथा आगे।

उपर्युक्त कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि त्रिपिटक पढ़ने के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने भारत में ञाणोदय अवश्य लिखा होगा, किन्तु श्रीलङ्का में जाकर और अट्ठकथायें पढ़ने के बाद ज्ञानवृद्धि के परिणाम-स्वरूप इन्होंने विसुद्धिमग्ग लिखा होगा और ञाणोदय का वर्णनीय विषय विसुद्धिमग्ग में समाविष्ट कर दिया होगा, क्योंकि भारत में, जैसा कि महावंस और बुद्धघोसुप्पत्ति में वर्णित रेवतथेर के द्वारा आचार्य बुद्धघोष को दिये गये आदेश से प्रतीत होता है, अट्ठकथायें भारत में उपलब्ध नहीं थीं; इस कारण ञाणोदय उतना पूर्ण ग्रन्थ नहीं बन सका था, जितना कि सिंहली अट्ठकथाओं को पढ़ लेने के पश्चात् विसुद्धिमग्ग। इसीलिये संभवतः ञाणोदय का लोप हो गया। दूसरी एक बात यह भी प्रतीत होती है कि थेरवाद के सिद्धान्त, भारत में उस समय उतने मान्य नहीं थे जितने श्रीलङ्का में। इसलिये विशुद्ध थेरवाद के सिद्धांतों के कथन करने वाले और परिपक्व विद्वत्ता प्राप्त करने के पश्चात् लिखे गये विसुद्धिमग्ग के समक्ष ञाणोदय उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार इनकी सुव्यवस्थित और विद्वत्तापूर्ण पाली अट्ठकथाओं के सामने सिंहली अट्ठकथाएँ लुप्त हो गईं। फिर भी, ञाणोदय की सत्ता भी विसुद्धिमग्ग के स्यामी संस्करण के लेखक धम्मतिलक के कथन से निःसन्देह सिद्ध होती ही है।

अट्ठसालिनी के विषय में श्री बी० सी० ला के अनुसार यही प्रतीत होता है, कि ञाणोदय की रचना के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने इसकी रूप रेखा निर्धारित करके भारत में इसको लिखना प्रारम्भ किया होगा, किन्तु अपने गुरु के आदेश से भारत में इसे अधूरा छोड़कर ही ये श्रीलङ्का चले गये और वहाँ त्रिपिटक के ग्रन्थों के क्रम में इसकी बारी आने पर इसको फिर से लिखा। यह बात ऊपर उद्धृत की हुई गाथा में कण्डं (परिच्छेद) शब्द से भी प्रगट होती है कि परिच्छेद प्रारम्भ किया (पूर्ण नहीं किया) और बाद में श्रीलङ्का जाकर यह ग्रंथ पूर्ण किया। इसको आचार्य बुद्धघोष ने विनयपिटक की अट्ठकथा समन्तपासादिका तथा निकायों की अट्ठकथा लिखने के पश्चात् लिखा। यही कारण है कि इसमें समन्त-पासादिका तथा निकायों की अट्ठकथाओं का बार-बार उल्लेख मिलता है। समन्तपासादिका आदि में इस ग्रन्थ का उल्लेख क्षेपकांश है, जिसको कि पश्चात्कालीन श्रीलङ्का के विद्वान् थेरों ने अट्ठकथाओं को पूर्ण बनाने के

लिए अथवा अर्थ स्पष्ट करने के लिए बाद में जोड़ दिया है। (इसके सम्बन्ध में विशेष वर्णन इस अट्ठकथा के अन्तर्गत लिखा जायेगा)।

अपने गुरु के आदेशानुसार आचार्य बुद्धघोष दक्षिण के प्रान्तों में भ्रमण करते हुए, और दक्षिण के विहारों में ठहरते हुए श्रीलङ्का में आये। यहाँ उन्होंने अनेक विशिष्ट-विशिष्ट विद्वानों से अट्ठकथाएँ पढ़ीं और उन्हें पढ़ चुकने के पश्चात् थेर संघपाल से, जो कि उस समय महाविहार के अधिपति थे, सिंहली अट्ठकथाओं को पाली में भाषान्तर करने की अनुज्ञा माँगी। थेर संघपाल ने उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिये उन्हें दो गाथाएँ दीं,[1] जिनके ऊपर आचार्य बुद्धघोष ने अपने विसुद्धिमग्ग की रचना की।

विसुद्धिमग्ग आचार्य बुद्धघोष का श्रीलङ्का में प्रथम ग्रन्थ है, क्योंकि इसमें किसी भी अट्ठकथा का उल्लेख नहीं है, इसलिए वे सब अवश्य ही विसुद्धिमग्ग के पश्चात् लिखी गई हैं। महावंस[2] में इस ग्रन्थ के बारे में कहा गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने इसे संक्षेप में तीनों पिटकों और उनकी उपलब्ध सिंहली अट्ठकथाओं का सार लेकर लिखा है। उसी महावंस में यह भी उल्लेख है, कि यह ग्रन्थ उन दो गाथाओं की व्याख्यास्वरूप लिखा गया था जो कि उनको सिंहली अट्ठकथाओं को पाली में भाषान्तर करने के भारी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य की अनुमति देने के पहले उनकी योग्यता की परीक्षा करने के लिये, महाविहार के अधिपति थेर संघपाल के द्वारा, व्याख्या करने के लिये दी गईं थीं।[3]

विसुद्धिमग्ग बौद्धसिद्धान्त का संक्षिप्त, किन्तु पूर्ण विश्वकोष है। श्रीमती रायस् डेविड्स ने इसके बारे में कहा है :—इस असाधारण ग्रन्थके बारे में हम कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म सम्बन्धी प्रत्येक विषयके बारे में कुछ न कुछ अवश्य पाया जाता है। इस सारे ग्रन्थ में आचार्य बुद्धघोष ने केवल गाथाओं की व्याख्या करने के लिये अपने प्रतिपाद्य विषय

---

१. इन दो गाथाओं के लिये—आचार्य बुद्धघोष की जीवनी के अध्याय में पृ० ७ पर देखें।

२. महावंस–अध्याय ३७, गथाा २३६।

३. महावंस—अध्याय ३७, गाथा २३५।

को ही नहीं लिया, अपितु सारे बौद्ध त्रिपिटक ग्रन्थों से तथा त्रिपिटकोत्तर-कालीन ग्रन्थों से उद्धरण भी लिये हैं। उदाहरणार्थ—पेटकोपदेस, मिलिन्दपञ्हो. अनागतवंस इत्यादि। इसमें सिंहली अट्ठकथाओं तथा 'पोराणो' का भी निर्देश है, तथा इस ग्रन्थ का निर्देश उन्होंने अपनी बाद की लिखी गई, अट्ठकथाओं में भी किया है।

आचार्य बुद्धघोष के अन्य ग्रन्थों के कालक्रम के बारे में, निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, कि उनमें से कौन सा उन्होंने पहले लिखा तथा कौन सा बाद में, क्योंकि उनकी प्रत्येक अट्ठकथा में अन्य अट्ठकथाओं का—चाहे वे उससे पहले की हों अथवा बाद की–निर्देश आता है। उदाहरण के लिए सुमङ्गलविलासिनी का पपंचसूदनी[1] में तथा सारत्थप्पकासिनी[2] में उल्लेख आता है। इसी प्रकार सम्मोहविनोदनी में समस्त निकायों की अट्ठकथाओं का उल्लेख मिलता है।[3] इन उपर्युक्त अट्ठकथाओं में अट्ठसालिनी का उल्लेख धम्मसंगहट्ठकथा के नाम से आता है। इसी प्रकार समन्तपासादिका में सुमंगलविलासिनी[4] का, पपंचसूदनी[5] का, तथा अट्ठसालिनी[6] का उल्लेख है, जबकि इन तीनों में भी समन्तपासादिका बहुतायत से उद्धृत की गई है।[7] इसी प्रकार विभंगकी अट्ठकथा सम्मोह-विनोदनी में, जो कि धम्मसंगणि की अट्ठकथा के बाद की रचना है, समन्तपासादिकाका उल्लेख है,[8] जबकि पपंचसूदनीमें सम्मोहविनोदनी का

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० ३०।
२. सारत्थप्पकासिनी भाग २, पृ० ४५।
३ सम्मोहविनोदनी, पृ० ४३ ३९६, ४१०, ४७९।
४. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १७२।
५. ,, ,, ,, ,,
६. ,, ,, ,, पृ० १५०, १५१।
७. दीघनिकायट्ठकथा भाग १, पृ० ८४, १३३ तथा भाग २, पृ० ५९२।
मज्झिमनिकायट्ठकथा भाग १, पृ० १९८-९९ तथा भाग ३, पृ० १०६।
संयुत्तनिकायट्ठकथा भाग १, पृ० ३, १४८ तथा भाग २, पृ० ३७, १४५।
अट्ठसालिनी, पृ० ३, १४४, १४५।
८. सम्मोहविनोदनी, पृ० ३३४।

उल्लेख है।[1] इसी तरह संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा में सम्मोहविनोदनी और पपंचसूदनी का उल्लेख है[2] यही नहीं, अट्ठसालिनी में पाठक को निर्देश किया जाता है, कि वह किसी विषय के विशेष ब्यौरे के लिए समन्तपासादिका में देखें।[3] यह अंश मूल ग्रन्थ का है अतएव क्षेपकांश भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए इससे परिणाम निकलता है, कि समन्तपासादिका अट्ठसालिनी से पहले की लिखी हुई है, किन्तु उसी प्रकार के विषय के लिए जब समन्तपासादिका अट्ठसालिनी को निर्देश करती है[4], तो यह उपर्युक्त परिणाम निश्चित करना कि समन्तपासादिका पहले लिखी गई, अति कठिन हो जाता है।

फिर भी विद्वानों की निश्चित सम्मति है, कि आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलङ्का में लिखी अट्ठकथाओं में विनयपिटक के ऊपर समन्तपासादिका, सबसे पहले लिखी। इसी बात की पुष्टि करते हुए डा० बी० सी० ला कहते हैं, कि आचार्य बुद्धघोष ने विनयपिटक के ऊपर इस अट्ठकथा को सर्व प्रथम लिखने के कारण क्षमा प्रार्थना की है, क्योंकि यह सर्वकालीन क्रम–धम्म, विनय, सुत्त–के विरुद्ध है, कि धम्म से पहले विनय की अट्ठकथा लिखी जाये।[5] डा० मललसेकर भी अपनी पुस्तक 'दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन' में कहते हैं, कि आचार्य बुद्धघोष ने कहा है, कि उन्होंने इसे सर्व-प्रथम इसलिये लिखा. क्योंकि विनय ही बौद्ध धर्म का मूल है। डा० बापट समन्तपासादिका में आये हुए पश्चातकालीन अट्ठकथाओं के निर्देशों के बारे में समाधान करते हुए, अट्ठसालिनी के देवनागरी संस्करण की भूमिका में लिखते हैं कि समन्तपासादिका, जो कि निकायों की अट्ठकथाओं तथा

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० ३०, 'सम्मोहविनोदनीया विभंग—अट्ठकथायवुत्तो।'
२. संयुत्तनिकायट्ठकथा भाग २, पृ० ४५, 'विभंगट्ठकथाय—चेव पपंचसूदनीया च।'
३. अट्ठसालिनी पृ० ९७।
४. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १५०।
५. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष' पृ० ७७।

अट्ठसालिनी से पूर्व की लिखी हुई है, अवश्य ही बार-बार परिवर्धित हुई है। जिस विद्वान् लेखक ने इसका नवीन संस्करण लिखा, उसी ने इसको सामयिक नवीनतम रूप देने के लिए, इसमें क्षेपकांश सम्मिलित कर दिये। समन्तपासादिका के आधुनिक संस्करण से पूर्व इसका छोटा अथवा कई छोटे संस्करण थे, यह बात आधुनिक समन्तपासादिका का चीन के संघभद्र के लिखे हुए समन्तपासादिका के चीनी संस्करण से, जो कि लगभग ४८८–८९ ई० पश्चात् में लिखा गया था, मिलान करने पर सिद्ध होती है। समन्तपासादिका के चीनी संस्करण के छः भागों में से कुछ अंश कम चार भाग पाली टेक्स्ट सोसाइटी के संस्करण के दो भागों के समान हैं, जबकि बाकी अर्थात् कुछ अंश कम दो भाग पाली टेक्स्ट सोसाइटी के संस्करण के भाग ३,४,५,६,७ के समान हैं। इससे यह स्पष्ट है, कि समन्तपासादिका के प्रारम्भिक पाली संस्करण के पश्चात्कालीन परिवर्धित भागों में, कितने ही सम्वर्धित अंश हैं, जिनके स्थानापन्न चीनी संस्करण में कोई पाठ नहीं है। यह सम्वर्धन प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित पाली अट्ठकथाओं में पाये जाने वाले क्षेपकांशरूप अवतरणों में विशेषतया पाया जाता है। उदाहरण के लिये, समन्तपासादिका के पाली टेक्स्ट सोसाइटी के संस्करण[1] में 'पुप्फनाम मण्डनत्थाय पन, सिवलिंगादि पूजनत्थाय वा कस्सचि दातं न वट्टति'—यह गद्यांश बड़ा रोचक है। इसके स्थान में चीनी संस्करण में हमें कोई वाक्य नहीं मिलता। डा० बापट के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि अट्ठकथाओं के रचयिताओं के बारे में, अथवा अट्ठकथाओं के आधुनिक रूप की और पहले मौलिक रूप की समानताओं के बारे में जो परम्परायें प्रचलित हैं, वे पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं हैं।

समन्तपासादिका के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने विनयपिटक के 'पातिमोक्ख' के ऊपर 'कंखावितरणी' अथवा 'मातिकाअट्ठकथा' लिखी। यह भी महाविहार की परम्परा के ऊपर आधारित है और सोण नाम के थेर की प्रार्थना पर लिखी गई थी।[2] क्योंकि यह भी विनयपिटक के

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६२६।
२. कंखावितरणी पृ० १।

पातिमोक्ख के ऊपर अट्ठकथा है, इसलिये यह अवश्य ही समन्तपासादिका के पश्चात् लिखी गई होगी, नहीं तो विनयपिटक की अट्ठकथा लिखने का कार्य अधूरा रह जाता।

इसके पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने मुख्य निकायों के ऊपर अट्ठकथाएँ लिखीं। उनका क्रम भी निकायों के क्रम के अनुसार ही रखा गया था। दीघनिकाय के ऊपर सुमंगलविलासिनी स्वभावतः प्रथम लिखी गई। इस अट्ठकथा को उन्होंने सुमंगल परिवेण में लिखा था और वहीं के निवासी थेर दाठानाग की प्रार्थना पर लिखा था। डा० आदिकरम् के विचारानुसार इसका नामकरण इस परिवेण के ऊपर ही किया गया होगा, क्योंकि इसके सुमंगलविलासिनी नामकरण से ऐसा ही प्रतीत होता है।[१]

इसके पश्चात् निकायों के क्रमानुसार ही मज्झिमनिकाय के ऊपर लिखी गई अट्ठकथा पपंचसूदनी का क्रम है। इस अट्ठकथा को उन्होंने अपने मित्र थेर बुद्धदत्त की प्रार्थना पर लिखा था जिनके साथ कि ये पहले भारत से श्रीलङ्का आते समय मयूरपट्टन में रहे थे।[२]

तत्पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने क्रम प्राप्त संयुत्तनिकाय के ऊपर सारत्थप्पकासिनी थेर जोतिपाल की प्रार्थना पर लिखी।[३] ये वही थेर ज्योतिपाल हैं जिनका उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने आदरके साथ मनोरथ-पूरणी की प्रस्तावना में किया है कि इनके साथ वे पहले (श्रीलङ्का आते समय) काञ्चीपुर में रहे थे।

इसके पश्चात् मुख्य निकायों में अन्तिम अंगुत्तरनिकाय के ऊपर लिखी गई अट्ठकथा मनोरथपूरणी का क्रम आता है। यह भी थेर ज्योतिपाल की प्रार्थना पर लिखी गई थी। इन अट्ठकथाओं में से प्रत्येक की प्रस्तावना में, यह दिया हुआ है कि ये अट्ठकथाएँ उन सिंहली भाषा की मूल अट्ठकथाओं के पाली भाषा में अनुवाद हैं, जिनको कि थेर महिन्द

---

१. सुमंगलविलासिनी, पृ० ७८०।
२. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० १०२९।
३. सारत्थप्पकासिनी (सिंहली), भाग ३, पृ० २३५।

भारत से लेकर लङ्का में आये थे और जिनको महाविहार के थेरों की परम्परा ने सुरक्षित रखा था। इसके अतिरिक्त, इनके उपसंहार की गाथाओं में यह भी लिखा हुआ है, कि इनके पाली संस्करण सिंहली महाअट्ठकथा के सार को लेकर (सारं आदाय) सार रूप में लिखे गये हैं। मनोरथपूरणी अट्ठकथा के बारे में डा० आदिकरम संकेत करते हैं कि 'यह ध्यान देने के लिए रुचिपूर्ण तथ्य है, कि इसमें वर्णित आधी से अधिक घटनायें श्रीलङ्का के रोहणप्रान्त से सम्बन्धित हैं, जिससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि मनोरथपूरणी अट्ठकथा ने इसी प्रान्त में अपना पूर्णरूप प्राप्त किया होगा।' इससे यह भी प्रतीत होता है, कि आचार्य बुद्धघोष के द्वारा महानाम के शासनकाल के इक्कीसवें वर्ष के प्रारम्भ में समन्तपासादिका के लिखे जाने के पश्चात् उनको कम से कम ढाई वर्ष महानाम के शासनकाल के तथा दो वर्ष महानाम की मृत्यु के बाद के, जबकि चोलों ने श्रीलङ्का पर चढ़ाई की थी, और महाविहार वालों को अनुराधपुर छोड़कर रोहण जाना पड़ा था, इस प्रकार साढ़े चार वर्ष मिले, जिनमें इन्होंने कंखावितरणी तथा निकायों की तीन अट्ठकथायें लिखीं और मनोरथपूरणी को रोहण प्रान्त में पूर्ण किया।

चार मुख्य निकायों की अट्ठकथायें लिख चुकने के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने पाँचवें खुद्दकनिकाय के ग्रंथों पर अपनी अट्ठकथायें लिखीं। इनमें सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथावण्णना' है। यह मूलरूप में गाथारूप जातक ग्रंथ के ऊपर अट्ठकथा है। श्री गाइगर के अनुसार यह 'धम्मपदट्ठकथा' से पहले लिखी गई थी, क्योंकि 'धम्मपदट्ठकथा' के अन्त में दी हुई गाथा से ऐसा प्रतीत होता है।[1] इसके पश्चात् धम्मपदट्ठकथा थेर कुमारकस्सप की प्रार्थना पर आचार्य बुद्धघोष ने लिखी।[2] इसके पश्चात् खुद्दकपाठ तथा सुत्तनिपात के ऊपर 'परमत्थजोतिका' लिखी गई। परमत्थजोतिका, श्री बी० सी० ला के अनुसार उपर्युक्त तीन ग्रन्थों की सामान्य अट्ठकथा है, किन्तु परमत्थजोतिका में इससे भिन्न एक और धम्मपदट्ठकथा का उल्लेख आता है, इस कारण परमत्थजोतिका प्रसिद्ध धम्मपदट्ठकथा से पश्चात्कालीन है।[3]

१. श्री गाइगर—पाली लिटरेचर एण्ड स्प्रेशे (Sprache)।
२. धम्मपदट्ठकथा—भाग १, पृ० १।
३. श्री बी० सी० लॉ—बुद्धघोष।

उपर्युक्त चारों अट्ठकथाओं के रचयिता आचार्य बुद्धघोष हैं अथवा नहीं, इसके बारे में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इन अट्ठकथाओं के बारे में वर्णन करते समय उनके मतों की समीक्षा की जायेगी।

इन अट्ठकथाओं के अतिरिक्त आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपिटक के ग्रंथों के ऊपर अट्ठकथायें लिखीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध और सर्वप्रथम ग्रन्थ अट्ठसालिनी है, जो कि धम्मपिटक के प्रथम ग्रन्थ 'धम्मसंगणि' के ऊपर अट्ठकथा है। महावंस तथा सासनवंस के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने पहले इसे भारत में लिखा था। किन्तु इसमें 'समन्तपासादिका' तथा निकायों की अट्ठकथाओं के स्पष्ट उल्लेख आते हैं, इसलिए श्रीमती रायस् डेविड्स कहती हैं कि 'चाहे यह भारत में, गया में प्रारम्भ हुई हो अथवा लिखी गई हो, किन्तु अवश्य ही श्रीलङ्का में अट्ठकथाओं को पढ़ चुकने के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने इसकी पुनरावृत्ति की होगी, क्योंकि इसमें 'विसुद्धिमग्ग' तथा श्रीलङ्का में लिखी गई, आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं के तथा सिंहली अट्ठकथाओं और थेरों के उद्धरण तथा उल्लेख आते हैं।' इसलिये मानना पड़ता है, कि अट्ठसालिनी को अन्तिमरूप अथवा पुनरावृत्तरूप श्रीलङ्का में विसुद्धिमग्ग तथा उपर्युक्त अट्ठकथाओं के लिखे जाने के पश्चात् ही, आचार्य बुद्धघोष के द्वारा दिया गया होगा।

इसके पश्चात् धम्मपिटक के दूसरे ग्रन्थ विभङ्ग के ऊपर आचार्य बुद्धघोष ने 'सम्मोहविनोदनी' लिखी। इस अट्ठकथा में प्राचीन श्रीलंका में बौद्ध धर्म की स्थिति विषयक बहुत-सी सूचनायें मिलती हैं और इस दृष्टि से इस अट्ठकथा का मूल्य और भी अधिक बढ़ जाता है।[1] धम्मपिटक के शेष पाँच ग्रंथों कथावत्थु, पुग्गलपण्णत्ति, धातुकथा, यमक तथा पट्ठान—पर आचार्य बुद्धघोष ने 'पञ्चप्पकरणट्ठकथा' लिखी। कभी-कभी यही 'परमत्थदीपनी' के नाम से भी पुकारी जाती है।[2]

---

१. डा० आदिकरम्—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ८।

२. श्री डी० जोयसो—केटेलॉग, पृ० ३।

इस प्रकार आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की अथवा उनके ग्रन्थों के कालक्रम की यह अनुमानित रूप रेखा है। उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त 'पिटकत्तय लक्खण' तथा एक संस्कृत काव्य 'पद्य चूड़ामणि' भी इन्हीं की रचना कही जाती है। किन्तु इनके विषय में उन्होंने अपने ग्रन्थों में कोई निर्देश नहीं दिया। श्री बी० सी० ला० के अनुसार ये रचनाएँ उन्हीं के नामराशि किसी अन्य थेर की हैं। बर्मी परम्परा के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने महाकच्चान के पाली व्याकरण के ऊपर भी एक अट्ठकथा लिखी थी, किन्तु यह भी उन के नामराशि किसी थेर की रचना होगी, क्योंकि आचार्य बुद्धघोष के बर्मा जाने का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। 

## आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में प्रतिपादित ऐतिहासिक ब्यौरों की प्रामाणिकता

आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में आये हुए ब्यौरों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के बारे में विचार करने से पहले हमें यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि उन्होंने उन सिंहली अट्ठकथाओं का पाली में भाषान्तर किया है, जिनको थेर महिन्द तीसरी संगीति के पश्चात् श्रीलंका में लाये थे और जो सिंहली में अनुवादित होकर पाँचवीं शताब्दी तक सिंहली थेरों द्वारा संवर्धित तथा परिवर्धित होती रही थीं। इन थेरों में से कुछ को तो भारतीय ऐतिहासिक तथा भौगोलिक ब्यौरों का ज्ञान था, किन्तु अन्य लोग श्रीलंका में प्रचलित परम्पराओं के आधार पर ही उन ब्यौरों का वर्णन करते रहे।

इन अट्ठकथाओं में संवर्द्धन तथा परिवर्द्धन के चिन्ह विद्यमान हैं। इनमें राजा बसभ का भी उल्लेख मिलता है, जिन्होंने ईसवी सन् १२७ से १७१ तक शासन किया। इनमें नवीन विषय स्वाभाविक तौर से स्थानीय परम्पराओं, घटनाओं तथा प्रचलित लोक कथाओं से और जनता के

सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के लिये गये होंगे। इस नवीन विषय के जोड़ने का अभिप्राय स्थानीय और भारतीय स्थिति तथा इतिहास का वर्णन करना नहीं था (यद्यपि इस अभिप्राय के लिए भी हम उसका उपयोग करते हैं), अपितु धम्म विषयक सिद्धान्तों तथा नैतिक और आचार विषयक बातों के उदाहरण देने, उनकी सरलतापूर्वक व्याख्या करने और लोगों को धार्मिक जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहन देने के लिए उनका उपयोग होता था। आचार्य बुद्धघोष स्वयं अपनी अट्ठकथाओं की प्रस्तावनाओं मे स्पष्ट रूप से कहते हैं, कि उन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं का केवल अनुवाद किया है, और ऐसा करने में उनका कार्य कोई मौलिक ग्रन्थ लिखना नहीं था, अपितु अनेक सिंहली अट्ठकथाओं में पहले से ही विद्यमान विषय को पाली भाषा द्वारा प्रगट करना था। समन्तपासादिकाकी प्रस्तावना में इसी बातको स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं:—'इस अट्ठकथा को प्रारम्भ करते समय मैं इसमें (सिंहली) 'महाअट्ठकथा' का समावेश करूँगा तथा साथ में 'महापच्चरी' और प्रसिद्ध 'कुरुन्दी' तथा अन्य अट्ठकथाओं के विनिच्छयों के द्वारा निश्चित किये गये अर्थों को तथा विद्वान् थेरों के मतों को बिना छोड़े हुए, मैं अपना कार्य भली प्रकार पूरा करूँगा।'...'इन सिंहली अट्ठकथाओं में से सिंहली भाषा को हटाकर, विस्तृत वर्णनों को संक्षिप्त करके, अधिकृत निश्चयों को समाविष्ट करके, तथा पाली मुहावरों की अवहेलना न करते हुए मैं अपने इस ग्रन्थ की रचना करूँगा।' इस उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी पाली अट्ठकथाओं में सिंहली अट्ठकथाओं के विषय का भाषान्तर किया है। उनके पाठ को—चाहे वह इतिहास या भूगोल से मेल न भी खाता हो—जैसे का तैसा पाली में प्रगट किया है। यही कारण है कि उनकी अट्ठकथाओं के भौगोलिक तथा ऐतिहासिक वर्णनों में कहीं-कहीं विभिन्नता है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि आचार्य बुद्धघोष के द्वारा दी गई थेर महिन्द के बाद की 'विनय' की परम्परा के धारण करने वाले थेरों की सूची के नीचे दिये गये, 'यावं अज्जतना'[1] वाक्यांश से भी होती है। इस

१. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० ६२।

सूची में कोई भी थेर प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् के बाद के नहीं है। यदि इस वाक्यांश का अर्थ 'आचार्य बुद्धघोष के समय तक', ऐसा लेते हैं तो अर्थ ठीक नहीं बैठता, क्योंकि सूची में केवल प्रथम शताब्दी तक के ही विनयधर थेरों का उल्लेख है, उसके पश्चात्कालीन थेरों का नहीं। अवश्य ही यह सूची सिंहली अट्ठकथा में प्रथम शताब्दी के अन्त में जोड़ी गई होगी, अथवा सिंहली अट्ठकथा उस समय लिखी जा चुकी होंगी और इसीलिए सिंहलीं भाषा के 'अब तक' वाक्यांश के स्थान में आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथा में 'याव अज्जतना' पाली पयार्यवाची शब्द दिया है। यदि हम यह मानें कि आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठकथाओं में अपना स्वतन्त्र हाथ रखा है, तो उनकी अट्ठकथाओं में आये हुए सस्कृत शब्दों के अन्यार्थों में प्रयोग का तथा ऐतिहासिक और भौगोलिक विरोध रखने वाले उल्लेखों का समाधान नहीं हो सकता, जो कि अन्यथा इतने बड़े विद्वान् के लिये असंगत प्रतीत होते हैं।

इसलिये उपर्युक्त सअस्याओं का यदि हल खोजा जाय तो यही मानना पड़ेगा—जैसा कि डा० आदिकरम् ने भी अपनी 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में लिखा है—कि सिंहली अट्ठकथाएँ थेर महिन्द के समय से दीर्घ समय तक सिंहली थेरों के द्वारा, जिनमें कुछ संस्कृतज्ञ तथा इतिहासज्ञ थे तथा कुछ नहीं थे, निरंतर परिवर्धित होती रहीं। उन लोगों को जैसा ज्ञान था, उसके अनुसार उन्होंने अपना अभिमत और अपनी शब्दों की निरुक्तियों को उनमें जोड़ दिया। आचार्य बुद्धघोप इन सिंहली अट्ठकथाओं को आर्प मानते थे। इसी कारण इनमें परिवर्त्तन कहीं भी नहीं कर सके और जहाँ कहीं भी अर्थ स्पष्ट करने की अत्यन्त आवश्यकता पड़ी, वहाँ भी बड़े संकोच के साथ इन्होंने लिख दिया है—'इयं मे अत्तनोमति।' इसलिये स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष का कार्य सिंहली अट्ठकथाओं का पाली भापा में अनुवाद तथा सम्पादन करना था, उनका संशोधन करना नहीं। उन्होंने तो उनको केवल पाली संस्करण के रूप में व्यवस्थित तथा यथावश्यक संक्षिप्त किया है। इसी बात की पुष्टि श्रीमती रायस् डेविड्स ने संक्षिप्त रूप में इस प्रकार की है—'उनकी बुद्धिमत्ता या विद्वत्ता के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता। इसकी तो बराबरी केवल उनके असाधारण परिश्रम से की जा सकती है। किन्तु

उनके स्वतन्त्र विचारों की मौलिकता के बारे में तो वर्त्तमान समय में कोई साक्षी प्राप्त नहीं है ।'[1]

एक बात यहाँ और स्पष्ट कर देने योग्य है, और वह यह कि मागधी, प्राकृत अथवा पाली भाषा वैदिक संस्कृत से, जो कि उस समय बोलचाल की भाषा थी, निकली थी और काव्य-संस्कृत और वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों में पर्याप्त अन्तर पड़ गया था। पाली भाषा की विभक्तियों तथा क्रियाओं के रूपों पर वैदिक संस्कृत की छाया अथवा प्रभाव काव्य-संस्कृत की अपेक्षा अधिक है। इसी कारण काव्य-संस्कृत के अनुसार पाली की विभक्तियों में जहाँ विरोध दीखता है वहाँ वैदिक संस्कृत के अनुसार उसकी संगति ठीक बैठ जाती है। इसीलिये 'दोसिणा', 'सद्धि' इत्यादि शब्दों की सङ्गति वैदिक शब्द रूपों के अनुसार ठीक बैठती हैं, काव्य-संस्कृत के अनुसार नहीं ।[2]

एक बात और विचारणीय है। भाषाओं की यह भी विशेषता है कि वे अन्य भाषाओं के अथवा अपनी स्रोतस्वरूप भाषा के शब्दों को ग्रहण कर उनका रूप अपने ढर्रे के अनुसार परिवर्तित कर लेती हैं, जैसे हिन्दी में कृष्ण से कन्हैया तथा श्याम से सांवलिया। यही नहीं, स्रोत रूप भाषा के शब्दार्थ में भी पर्याप्त अन्तर पड़ जाता है, जैसे कि पूर्वनिर्दिष्ट 'भ्रूणहा' इत्यादि शब्दों के अर्थ में, पाली भाषा में जाकर पड़ गया है। इसी प्रकार संस्कृत का 'संस्था' शब्द मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त होता था, किन्तु आजकल हिन्दी में इन्स्टीट्यूट के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

यदि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर हम आचार्य बुद्धघोष की रचनाओं के बारे में विचार करें, तो अनेक विद्वानों के द्वारा उनके ऊपर लगाये हुए आरोपों का निराकरण स्वयं हो जाता है। वास्तव में इतने बड़े विद्वान् के बारे में, जो कि संस्कृत साहित्य, व्याकरण और दर्शन का

---

१. हेस्टिंग्स्-एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वॉल्यूम II, पृ० ८८७।

२. डा० बापट का लेख—सिद्ध भारती, पृ० ७४।

प्रकाण्ड विद्वान् था, यह कहना कि उनको संस्कृत शब्दों का ज्ञान नहीं था, अविचारितरम्य कथन है। यदि उनमें संस्कृत ज्ञान की कमी होती तो वे इतनो जल्दी त्रिपिटक और अन्य बौद्ध शास्त्रोंमें प्रवेश नहीं कर पाते; पाली भाषा के ऊपर इतना शीघ्र और ऊँचा अधिकार प्राप्त नहीं कर पाते, और अट्ठसालिनी और णाणोदय जैमे ग्रन्थों की रचना इतनी जल्दी नहीं कर पाते, क्योंकि संस्कृत के पूर्ण ज्ञान के बिना पाली भाषा में इतना शीघ्र प्रवेश दुस्साध्य नहीं तो पर्याप्त विलम्बसाध्य अवश्य है।

अट्ठकथायें आचार्य बुद्धघोष के समय पूर्ण रूप में भारत में उपलब्ध नहीं होंगी, तभी तो वे गुरु के आदेशानुसार श्रीलङ्का गये और वहाँ अट्ठकथाओं का अध्ययन करके उन्होंने णाणोदय का नवीन संस्करण विसुद्धिमग्ग लिखा तथा अट्ठसालिनी के भी नवीन, पुनरावृत्त और विशद संस्करण की रचना की।

यहाँ हमारा विषय उनकी विभिन्न अट्ठकथाओं का अध्ययन है, न कि उनके संस्कृत ज्ञान की आलोचना करना। इसलिए विषयान्तर में न जाकर हम उसो पर विचार करेंगे।

अट्ठकथाओं में आये हुए ऐतिहासिक विषय की प्रामाणिकता के बारे में यह तो कहा ही जा चुका है कि आचार्य बुद्धघोष ने पाली अट्ठकथाओं में अपनी ओर से कुछ नहीं मिलाया; जैसा उन्हें सिंहली अट्ठकथाओं में मिला उसी का उन्होंने पाली में अनुवाद कर दिया। ये सिंहलो अट्ठकथाएँ थेर महिन्द के द्वारा लाई गई, उन पाली अट्ठकथाओं का अनुवाद थीं, जिनका कि महाराजा अशोक के समय की तीसरी सङ्गीति में वाचन हुआ था तथा जो बाद में सिंहली थेरों के द्वारा अनुवादित होकर परिवर्द्धित होती रही थीं। भारत से आई हुई अट्ठकथाओं का भारतीय इतिहास सम्बन्धी विषय प्रामाणिक होना ही चाहिए किन्तु सिंहली थेरों के द्वारा सिंहली में प्रचलित परम्पराओं के आधार पर जोड़े हुए विषय में कुछ कमी भी हो सकती है।

आचार्य बुद्धघोष की पाली अट्ठकथाओं में भारतीय इतिहास की झांकियां बिखरी पड़ी हैं। बुद्ध भगवान् के पूर्वकाल से सम्बन्धित

ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं की प्रामाणिकता के बारे में तो योरोपीय और भारतीय विद्वानों का मत है कि वे अधिक प्रामाणिक हैं, क्योंकि वे जैसी की तैसी बिना किसी परिवर्तन के वर्णन की गयी हैं, जबकि रामायण, महाभारत और पुराणों में पश्चात्कालीन सभ्यता, संस्कृति और धर्म के अनुसार परिवर्तन कर दिया गया है। जातक अट्ठकथाओं से प्राचीन राजाओं का, ऋषियों का, अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का, अति प्राचीन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं का, सामाजिक प्रथाओं और मान्यताओं का तथा रीति रिवाजों, उत्सवों त्यौहारों और खेलों का पता लगता है। अट्ठकथाओं में यत्र-तत्र बिखरे हुए निर्देश केवल बुद्धकालीन सभ्यता, संस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्था का ही निर्देश नहीं करते, अपितु तत्कालीन तथा पूर्वबुद्धकालीन इतिहास का भी पूर्ण रूप से प्रामाणिक, किन्तु कुछ अतिरंजन के साथ, परिचय देते हैं। यही कारण है कि इतिहास के विद्वानों ने अपने प्राचीन काल सम्बन्धी इतिहास लिखने में अट्ठकथाओं के उल्लेखों का पर्याप्त सहारा लिया है। अजातशत्रु, उदयन, प्रसेनजित, अशोक तथा अनेक धर्म प्रवर्त्तकों के विषय में ज्ञान के लिये हम अट्ठकथाओं के वर्णनीय विषय की उपेक्षा नही कर सकते।

श्रीलंका से सम्बन्धित ऐतिहासिक विषय के बारे में डा० आदिकरम लिखते हैं कि 'पांचवीं शताब्दी में लिखी गई आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में विविध प्रकार की सूचनाओं की अमूल्य निधि बिखरी हुई मिलती है, जो कि दीपवंस और महावंस में वर्णन किये हुए श्रीलंका के इतिहास के रिक्त स्थलों को जोड़ कर उसको पूर्णता प्रदान करती[1] है।' यही नहीं आ० धर्मरक्षित के अनुसार, 'कहीं-कहीं उन्होंने महावंस और दीपवंस से ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि के लिये उद्धरण देकर ऐतिहासिक सत्य की मर्यादा की रक्षा की[2] है।'

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

२. तिपिटकाचार्य धर्मरक्षित—विसुद्धिमग्ग के हिन्दी अनुवाद की भूमिका।

अट्ठकथाओं में सुसंबद्ध ऐतिहासिक शृंखला नहीं मिलती, क्योंकि उनमें आये हुए ऐतिहासिक वर्णनों का उपयोग धार्मिक तथ्यों और पाठों के स्पष्टीकरण तथा उदाहरणों के रूप में किया गया है, न कि ऐतिहासिक अभिलेखों के रूप में। इसी कारण उनमें ऐतिहासिक क्रम का अभाव है, और ये ऐतिहासिक निर्देश यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। उनमें तत्कालीन घटनाओं और थेरों के वर्णन तो मिलते हैं, किन्तु उनकी तिथियों के प्राप्त करने में कठिनाई है। फिर भी वे महावंस और दीपवंस के ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाती हैं। यही नहीं उनमें हमें श्रीलंका के धार्मिक जीवन की, सामाजिक व्यवस्था की तथा राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की सुस्पष्ट झांकी मिलती है। वे उस समय के श्रीलंका के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, कलाकौशल तथा शिक्षापरिपाटी आदि के ऊपर पूर्ण प्रकाश डालती हैं। उनमें हमें श्रीलंका के त्यौहारों, खेलों, उत्सवों और रीति-रिवाजों का वर्णन भी मिलता है, जोकि इतिहासों में कदाचित ही मिले। थेर महिन्द के श्रीलका में जाने और धर्म-प्रचार करने का ऐसा विशद और ब्यौरेवार वर्णन शायद इतिहासों में नहीं मिल सकेगा जैसा कि अट्ठकथाओंमें मिलता है। इनमें हमें श्रीलंका के प्रसिद्ध थेरोंके विभिन्न उपदेशों तक के बारे में ब्यौरेवार अभिलेख मिलते हैं। इनमें हमें वहाँ के राजाओं के शासन के बारे में, ब्राह्मण तिस्स अकाल की भीषणता के हृदयविदारक दृश्यों के विषय में तथा उसके दुष्परिणामों के बारे में अनेक घटनाएं पढ़ने को मिलती हैं। इस अकाल के समय थेरों ने प्राणों की बाजी लगाकर भी ग्रन्थों की किस कठिनाई के साथ रक्षा की थी, इसके रोमांचकारी वर्णन हमें अट्ठकथाओं में मिलते हैं। यही नहीं, थेर महिन्द के समय की तथा उनके वहाँ पहुँचने से पहले की, श्रीलंका की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का, कि उनके पहुँचने से पहले वहाँ कौन-कौन से धर्म प्रचलित थे, कैसी सामाजिक अवस्था थी इत्यादि का विशद वर्णन भी अट्ठकथाओं में मिलता है। कौन-कौन से चेतिय और विहार किस-किस राजा ने, कहाँ-कहाँ पर किन-किन परिस्थितियों में बनवाये, यह वर्णन भी अट्ठकथाओं में ब्योरेवार दिया हुआ है। 'देवानांपिय तिस्स' की महाराजा अशोक के साथ मित्रता, उनके द्वारा बोधिवृक्ष की पौध को मंगवाकर रोपण करना, थेरी संघमित्रा के द्वारा भारत से श्रीलंका में जाकर भिक्खुनीसंघ स्थापित करना ये सब बातें हमें अट्ठकथाओं में मिलती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य बुद्धघोष के द्वारा अट्ठकथाओं में प्रतिपादित वर्णन पूर्ण ऐतिहासिक और प्रामाणिक हैं, और इसी कारण भारत और श्रीलङ्का के इतिहास लेखकों ने अपने इतिहासों में उनका अच्छी तरह उपयोग किया है। यद्यपि उनमें कहीं-कहीं अतिरंजन भी पाया जाता है, किन्तु अतिरंजन को छोड़ कर हमें तथ्य निकाल लेना चाहिए। अट्ठकथाओं के ऐतिहासिक वर्णनों की प्रामाणिकता इससे भी सिद्ध है, कि वे वर्णन ऐतिहासिक वर्णनों से मिलते हैं और इसीलिये परस्पर की प्रामाणिकता को प्रदर्शित करते हैं।

इनमें कहीं-कहीं और विशेषकर बुद्ध भगवान् से सम्बन्धित घटनाओं में, वर्णन पुराणों के समान अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अत्युक्तिपूर्ण हो जाते हैं। ऐसे वर्णनों को अट्ठकथाओं में संबहुलवार, सासननय, देसनानय तथा अट्ठकथानय के द्वारा ठीक माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा अतिरंजित तथा दिव्यरूप में वर्णन धार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कर दिया जाता है। ऐसे स्थलों पर अतिरंजितांश को छोड़कर तथ्य निकाल लेना चाहिये।

फिर भी, जैसा कि डा० विण्टरनिज अपनी 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर' में कहते हैं, बुद्धघोष की रचना केवल उच्चयें श्रेणी की सूचक ही नहीं है, अपितु ऐतिहासिक रोचक कथाओं की खान हैं। यदि इनको अलग कर दिया जाये तो बौद्ध दर्शन की प्रगति के ऐतिहासिक दृश्यरूप को नष्ट कर देना होगा। यदि आचार्य बुद्धघोष की कोई विशेष मौलिक देन न भी हो तों भी प्राचीन परम्पराओं के यथार्थ रूप में संरक्षण के लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की प्रामाणिकता की आलोचना करते समय एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, कि उन्हों ने अ-नी अट्ठकथाओं का विषय सिंहली अट्ठकथाओं से लिया था। इसलिए स्वभावतः सिंहल द्वीप के बारे में जहाँ उनमें प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य और घटनाएँ मिलती हैं, वहाँ भारतीय इतिहास के तथ्य और घ-नाएँ कहीं-कहीं अतिरंजित ही नहीं अतिविकृत और कपोलकल्पित रूप में भी मिलतीं हैं। इसमें आचार्य बुद्धघोष भी दोषी ठह-ाये जा सकते हैं, क्यों कि

भारतीय होने के नाते उनको उन कथाओं के सत्यरूप का ज्ञान होना चाहिए था। यदि नहीं था, तो उनको भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखकर उनके सत्यरूप को खोजना चाहिए था। उदाहरण के लिए शाक्यवंश की उत्पत्ति की कथा को ही लीजिए। इस कथा में सत्य का अंश केवल इतना ही मालूम पड़ता है, कि शाक्य लोगों में यह परम्परा प्रसिद्ध थी, कि उनका उद्गम इक्ष्वाकुवंश से था और वे अपने वंश की शुद्धता और उच्चता में विश्वास रखते थे, और इसी कारण वे अपनी कन्याओं को किसी अन्य को नहीं देते थे। इसीलिए विजेता राजा प्रसेनजित को भी उन्होंने दासी कन्या ही दी थी—शुद्ध शाक्यवंशीय कन्या नहीं दी। किन्तु शाक्यवंश की उत्पत्ति के वर्णन में शाक्यवंश की उच्चता और शुद्धता दिखाने के लोभ से श्रीलङ्का के थेर काल्पनिक कथा से काम लेते हैं, और बहन-भाइयों से इस कुल की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं, जो कि सर्वथा अविश्वसनीय है। यहाँ आचार्य बुद्धघोष सिंहली अट्ठकथाओं का निराकरण न करके उनके द्वारा कपोलकल्पित गल्पों को सत्य मान लेते हैं और जंगलो से भी जंगली असभ्य कल्पना को अपना लेते हैं। यद्यपि बहन-भाई के विवाह का ऋग्वेद के समय में भी विरोध होता था जैसा कि ऋग्वेद के यम-यमी संवाद से प्रतीत होता है, फिर भी उन्होंने शाक्यवंश की उत्पत्ति के विषय में ही नहीं, लिच्छवियों की उत्पत्ति के विषय में और यहाँ तक कि दशरथजातक में राम और सीता के विवाह के सम्बन्ध में भी बहन-भाइयों के विवाह की असंबद्ध तथा असंभाव्य घटनाओं का उल्लेख किया है। शायद प्राचीन समय में श्रीलङ्का में भारत के समान उच्च संस्कृति के अभाव में इस प्रकार के विवाह प्रचलित हों और तदनुसार श्रीलङ्का की प्राचीन अट्ठकथाओं की कल्पित घटनाओं और तथ्यों को लेकर, आचार्य बुद्धघोष ने भी उसी प्रकार वर्णन कर दिया हो। किन्तु भारतीय होने के नाते और भारतीय संस्कृति और परम्पराओं से अभिज्ञ होने के कारण उनको, या तो इन आपत्तिजनक कथाओं को महाभारत तथा रामायणादि ग्रंथों से खोजकर परिवर्तित और संशोधित करके लिखना था अथवा छोड़ ही देना था। किन्तु इस प्रकार भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को लाञ्छित करने वाले विरुद्ध लेख नहीं देने चाहिए थे। इस विषय में श्री बी० सी० ला का विचार है कि शायद उन्होंने ऐसा वर्णन वंश की शुद्धि की रक्षा के विचार के कारण से किया हो जैसा कि

मिस्र के फारोह राजाओं के बारे में भी वर्णन किया जाता है।[1] महावंस में भी भगवान् बुद्ध का वंश होने के कारण शाक्यों के उद्गम का वर्णन महाराजा इक्ष्वाकु तथा उसी वंश परम्परा के और भी अधिक पूर्वकालीन महाराज महासम्मत से जोड़कर किया है।

अट्ठकथाओं में कहीं-कहीं पर अतिशयोक्ति और अत्युक्तिपूर्ण वर्णन भी खलता है : जैसे सावत्थी नगर में सत्तावन लाख कुटुम्ब थे और राजगह में अठारह करोड़ मनुष्य रहते थे। यह वर्णन आलंकारिक ढंग का है, इसका अभिप्राय नगरों की विशालता और समृद्धि का वर्णन करने से है।[2] इन अट्ठकथाओं के वर्णन में बौद्ध धर्म के प्रचार से पहले शैव, वैष्णव तथा जैन धर्म का होना तो ठीक है, किन्तु महावीर स्वामी का श्रीलङ्का में पहुँचना इतिहास विरुद्ध है। इसी प्रकार श्रीलङ्का में बुद्ध भगवान् का तीन बार जाना भी श्रीलङ्का के महत्व को बढ़ाने के लिये कल्पित किया गया है। इसी प्रकार रहदो (ह्रद) का अर्थ धम्मपदट्ठकथा में समुद्र करके लिखा गया है। कहीं-कहीं पर अट्ठकथाकार ने अपनी ओर से कुछ विषय बढ़ाकर जोड़ दिया है और पश्चात् कह दिया है, कि यह भी निश्चय से भगवान् बुद्धने कहाही है ,किन्तु त्रिपिटकमें समाविष्ट नहीं हुआ है।[3] अथवा त्रिपिटक में यह संक्षेप में आ गया है।[4] अथवा यह सब जो अट्ठकथा में दिया गया है, चाहे त्रिपिटक में आया हो या न आया हो, सब भगवान् बुद्ध ने कहा है।[5]

भगवान् बुद्ध के जीवन सम्बन्धी घटनाओं के विषय में अतिशयोक्ति तो क्षम्य हो सकती है, क्योंकि सभी धर्मावलम्बी लोग अपने-अपने

---

१. श्री बी० सी० ला—हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर भाग २, पृ० ४२७।
२. समन्तपासादिका, पृ० ६१४।
३. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २३८ तथा सारत्थप्पकासिनी भाग १, पृ० २०६ 'इदंपि किर भगवता वुत्तम् एव पालीयं पुन न आरूढम्।'
४. सम्मोहविनोदनी, पृ० १२४, २०६ 'पाली पन संखेपेन आगता।'
५. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ६३६ 'इदं पालीयं आरूढं अनारूढं सव्वं भगवा अवोच।'

धर्मप्रवर्त्तकों को दिव्य रूप में वर्णन किया करते हैं, किन्तु अत्युक्तिपूर्ण तथा असम्भव घटनायें अखरती हैं।

भगवान् बुद्ध के जन्म के बारे में कहा गया है कि जैसे ही भगवान् पैदा हुए ब्रह्मा ने उनको सुवर्ण के जाल में लिया, उनके हाथों से चार इन्द्रों ने मृगचर्म में और अन्त में मनुष्यों ने महीन और मुलायम कपड़े में। इसके बाद वे खड़े हुए और उत्तर की ओर सात पग चले और चारों दिशाओं में अधिकार युक्त आवाज में कहा—'मैं ही इस संसार में मुख्य हूँ, मैं ही इस संसार में सबसे अच्छा हूँ, मैं ही इस संसार में प्रथम हूँ, यह मेरा अन्तिम जन्म है, अब फिर मेरा जन्म नहीं होगा।' उनके शरीर के बारे में कहा गया है कि वृद्धावस्था में भी उनके शरीर में झुर्रियाँ नहीं थी, केवल एक सूक्ष्मसी झुर्री उनके उपस्थापक थेर आनन्द को दिखलाई दी थी, अन्य किसी को वह भी नहीं दीख सकती थी। इसी प्रकार 'वेसाली' के मुख्य द्वार पर आश्चर्य युगलों के प्रदर्शन का वर्णन भी अत्युक्तिपूर्ण है।

उपर्युक्त प्रकार की अतिशयोक्ति तथा अत्युक्तिपूर्ण बातों को, असंभव घटनाओंको, विनय और अभिधम्म विषयक बढ़ाई हुई बातोंको तथा कहीं २ पर स्वयं की मनघड़न्त बातों को सबहुलवार, पालीमुक्तकनय इत्यादि के अन्दर लाकर अट्ठकथाओं में वर्णन किया गया है। फिर भी हमें उनमें से तथ्य खोज लेने चाहिये और फालतू विषय को आलंकारिक अथवा अतिशयोक्ति समझकर छोड़ देना चाहिए।

श्री बी० सी० ला अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर' में उनकी ऐतिहाहिस विद्वत्ता का सच्चा मूल्यांकन करते हुए कहते है, कि आचार्य बुद्धघोष केवल दार्शनिक और अध्यात्मशास्त्रवेत्ता ही नहीं थे, उनकी विद्वत्ता गम्भीर और विस्तृत थी। उनके ग्रन्थ केवल उनके भूगोल, खगोल तथा व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का ही नहीं, अपितु भारत और श्रीलङ्का के सम्प्रदायों, जातियों, पशु-पक्षियों तथा वनस्पतियों, रीति-रिवाजों और इतिहास के ज्ञान का भी पूर्ण परिचय देते हैं।

श्रीमती रायस् डेविड्स 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' में उनकी अट्ठकथाओं का ऐतिहासिक मूल्यांकन करती हुई कहती

हैं, कि 'प्राय: आचार्य बुद्धघोष को (अपनी अट्ठकथाओं में) कथा और उपाख्यानों को देने का बड़ा चाव है और प्राय: अपनी व्याख्या की अर्थ-सगति को स्पष्ट करने के लिए वे छोटे-छोटे उपाख्यानों, कहानियों और पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख करते हैं।' इस प्रकार बिल्कुल बिना जाने और बिना अभिप्राय के उन्होंने अपनी अट्ठकथाओं में सामाजिक रीति-रिवाजों, व्यापारिक बातों, लोककथाओं तथा असाधारण शक्तियों में तत्कालीन जनता के विश्वासों को सुरक्षित रखा है। वे वहीं कहती हैं कि 'आचार्य बुद्धघोष के ग्रंथ केवल ऐतिहासिक सूचना देने वाले ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक विषय की खान हैं। इनको साहित्य से अलग कर देना बौद्ध दर्शन के ऐतिहासिक दृश्य को खो देना होगा।' **

# तृतीय अध्याय

## विनयपिटक की अट्ठकथायें—समन्तपासादिका और कंखावितरणी

बौद्ध परंपराओं के अनुसार समन्तपासादिका और कंखावितरणी प्रसिद्ध अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष की ही रचनाएं हैं । इन दोनों ग्रन्थों में से दूसरा पहले का संक्षिप्त रूप है, क्योंकि यह सुत्तविभंग की अट्ठकथा है, और सुत्तविभंग विनयपिटक के पातिमोक्ख के सुत्तों की व्याख्यारूप है।

श्री बी० सी० ला का मत है कि "समन्तपासादिका और कंखा-वितरिणी को प्रसिद्ध अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोषकी रचना कहना विवेक-पूर्ण नहीं है । यदि इन दोनों ग्रन्थों को किसी बुद्धघोष की रचना मान भी लिया जाय तो आधुनिक विद्वान् इस बात से सहमत नहीं हैं कि विसुद्धि-मग्ग के कर्त्ता, प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ही इसके रचयिता हैं[1] ।' इसलिये किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले, विरोध में दी गई उनकी युक्तियों और साक्षियों के ऊपर सावधानी से विचार कर लेना न्यायसंगत होगा। श्री बी० सी० ला ने इन विरोधी युक्तियों और साक्षियों को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्धघोष' में निम्न प्रकार संग्रहीत किया[2] है:—

( १ ) विसुद्धिमग्ग के रचयिता का कहना है कि उन्होंने यह ग्रन्थ भदन्त संघपाल के आदेश से रचा, जोकि महाविहार के अध्यक्ष और प्रमुख विद्वान् थे । ये कित्तिसिरी·मेघवण्ण के पितामह राजा गोथाभयमेघवण्ण के समय में हुए।

( २ ) इसके प्रत्युत समन्तपासादिका के रचयिता का कहना है कि उन्होंने विनयट्ठकथा भदन्त बुद्धमित से पढ़ी जोकि उस समय महाविहार

---

१. बुद्धदत्त एण्ड बुद्धघोष: देअर कण्टेम्पोरेनीटी एण्ड एज—दी यूनीवर्सिटी ऑफ सीलोन रिव्यू वाल्यूम VIII ।
२. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृष्ठ ७१ से ७५ तक ।

के अध्यक्ष थे, और श्री बुद्धसिरी थेर के आदेश से इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की।

( ३ ) ऐसा प्रतीत होता है कि ये बुद्धमित्त महाविहार के अध्यक्ष पद पर श्री बुद्धसिरी के पश्चात् नियुक्त हुए। और बुद्धसिरी वही सन्त हैं, जो फाह्यान के श्रीलंका में रहते हुए स्वर्गवासी हुए।

( ४ ) विसुद्धिमग्ग के रचयिता अपने किसी भी समकालीन श्रीलंका अथवा भारत के राजा का वर्णन नहीं करते जबकि समन्तपासादिका के रचयिता स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना श्रीलंका के प्रसिद्ध राजा सिरीकुड्ड या सिरीनिवास के शासन के बीसवें वर्ष में प्रारम्भ की और इक्कीसवें वर्ष के प्रारम्भ में समाप्त करदी।

( ५ ) विसुद्धिमग्ग के रचयिता को बौद्ध परम्परायें अप्रसिद्ध राजा महानाम के समय से सम्बद्ध करती हैं, और यह राजा महाविहार के मान्य थेर बुद्धघोष के द्वारा प्रशंसा प्राप्त करने के कतई अयोग्य था।

( ६ ) समन्तपासादिका के रचियता देश में आने वाले एक संकट के समय की ओर निर्देश करते हैं, जिसके बाद शान्ति स्थापित हो गई थी, जबकि विसुद्धिमग्ग के कर्त्ता ऐसे किसी भी समय का अपने किसी भी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं करते।

( ७ ) विसुद्धिमग्ग के रचयिता के ग्रन्थों में आकस्मिक रूप से जिन भारत और श्रीलंका के राजाओं का वर्णन आता है, वे सब गुप्तयुग से पहले के हैं, तथा उन्होंने जिन विभिन्न बौद्ध सम्प्रदायों या पन्थों का उल्लेख किया है, उन सबका गुप्तयुग के पूर्ववर्ती शिलालेखों में मुख्यरूप से वर्णन है।

( ८ ) समन्तपासादिका के रचयिता को रुद्रदमन के साँचे पर ढले हुए सिक्कों और भारत के नील अथवा काल काहापणों की असमानता ज्ञात थी। रुद्रदमक श्रेणी के सिक्के समन्तपासादिका के रचयिता के समय में दूर-दूर तक अच्छी तरह प्रचलित थे। और उनका प्रचलन और उपयोग लगभग गुप्तयुग के प्रारम्भ तक रहा[1]।

---

१. श्री बी० सी० ला—बुद्धिस्ट स्टडीज भाग १, पृष्ठ १८३।

( ९ ) समन्तपासादिका और विसुद्धिमग्ग तथा निकायों के सामान्य सुत्तों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि समन्तपासादिका से केवल बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग तथा निकायों की अट्ठकथाएँ ही पूर्ववर्ती नहीं हैं, अपितु चुल्लबुद्धघोष अथवा बुद्धघोष द्वितीय की परमत्थजोतिका भी पूर्ववर्ती है। इन चुल्लबुद्धघोष का जीवनकाल भी उसी राजा से सम्बद्ध है, जो कि सिरीकूट अथवा सिरीकुड्ड अथवा सिरीगुत्त विशेषणों को धारण करते हैं।

( १० ) विसुद्धिमग्ग और समन्तपासादिका दोनों के रचयिता महानाम संघ के कुछ ग्रन्थों के ऊपर जो कि उनके सामने प्रामाणिकता की जाँच के लिये रखे गये थे, अपना निर्णय देते हैं, कि अमुक ग्रंथ, पाठ तथा सिद्धान्त दोनों रूप से प्रामाणिक है। विसुद्धिमग्ग के रचयिता एक सूची में तथा समन्तपासादिका के रचयिता भिन्न-भिन्न दो सूचियों में ऐसे ग्रन्थों की सूचियाँ देते हैं। पहले की अपेक्षा दूसरे की सूचियों की खोज अधिक पूर्ण है।

( ११ ) इन महायान ग्रंथों के बारे में वाद-विवाद गोथाभयमेघवण्ण के समय से पहले विचारमें नहीं आ सकता, क्योंकि महावंस के अभिलेखक अनुसार इन्हीं गोथाभयमेघवण्ण के शासन-समय में थूपारामविहार में महाविहार के थेर गोथाभय और अभयगिरिविहार की ओर से चोलियान संत संघमित्त के मध्य खुले शास्त्रार्थ के लिए सभा हुई थी। ये संघमित्त उन वेतुल्लकों के सिद्धान्त की रक्षा करने के लिए भारत से श्रीलंका पधारे थे जिनको कि महाविहार के थेरों के फुसलाने से राजा गोथाभयने देश निकाला दे दिया था।

( १२ ) समन्तपासादिका न तो प्रस्तावना में और न उपसंहार में ही विसुद्धिमग्ग का उल्लेख करती है, जबकि चारों निकायों की तथा अभिधम्म की अट्ठकथा अट्ठसालिनी की प्रस्तावनाओं में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग का केवल नामोल्लेख ही नहीं किया, अपितु यह भी उल्लेख कर दिया है कि जिन सैद्धान्तिक तथ्यों का उन्होंने विसुद्धिमग्ग में विस्तृत वर्णन कर दिया है, उनका यहाँ (निकायों और अभिधम्म की

अट्ठकथाओं में) संक्षिप्त वर्णन किया जायगा। (इति पन सब्बं यस्मा विसुद्धिमग्गे मया सुपरिसुद्ध वुत्तम्, तस्मा भियो न तं इध विचारयिस्सामि, ठत्वा पकासयिस्सति तत्था यथाभासितं अत्थम्।[१] विसुद्धि मग्गे पन इदं यस्मा सब्बं पकासितं तस्मा तं अगहेत्वा न सकलायपि तंतिया पदानुक्कमतो एवं करिस्साम अत्थवण्णम्)।[२]

इसके प्रत्युत समन्तपासादिका में विसुद्धिमग्ग का उल्लेख तथा महाअट्ठकथाकार के अन्य किसी ग्रंथ का नाम तक नहीं है। इस ग्रन्थ (समन्तपासादिका) की प्रस्तावना में केवल तीन प्राचीनतर सिंहली अट्ठकथाओं का निर्देश है। यह स्वतन्त्र रूप से विनयपिटक के ऊपर रची गई अट्ठकथा है।

यस्मिं ठिते सासनंअट्ठितस्स पतिट्ठितं होति सुसंठितस्स।
तं वण्णयिस्सामि विनयं अमिस्सं निस्साय पुब्बाचरियानुभावम्॥[३]

यदि ऐसी बात नहीं होती तो वे तीन सरण और भाण आदि सामान्य सुत्त के विषयों को विस्तृत रूप से कभी वर्णन नहीं करते। इन विषयों को उन्होंने इतना विस्तार देकर वर्णन किया है, कि उनका वर्णन कितनेही शास्त्रार्थों का रूप धारण कर लेता है, यद्यपि यह वर्णन बहुत हद तक विसुद्धिमग्ग तथा अन्य अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित है।

( १३ ) यदि कोई सैद्धान्तिक तथ्य अट्ठकथाओं अथवा त्रिपिटक के पाठ में नहीं है तो विसुद्धिमग्ग के रचयिता ऐसे क्षेपक पाठ की अर्थसंगति के विषय में न तो किसी व्यक्तिगत मत के लिये और न आचार्यमत के लिये ही किसी प्रकार का आदर दिखाते हैं। (यस्मा पन इदं चरियाविभावनविधानं सब्बाकारेन नेवा पालीयं न अट्ठकथायं आगतं तस्मा न सारतो पच्चेतब्बम्। यं पन एतं अट्ठकथासु चरियाविभावनविधानं वुत्तम् तद् एव सारतो पच्चेतब्बम्)।[४]

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २, पपंचसूदनी भाग १, पृ० २, सारत्थप्पकासिनी भाग १, पृ० २, मनोरथपूरणी पृ० २।
२. अट्ठसालिनी, पृ० २।
३. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० १।
४. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृष्ठ १०७।

इसी विषय में समन्तपासादिका के रचियता का सुनिश्चित मत है। ऐसे विषय के बारे में उनके विचार युक्तिपूर्ण तथा आदर प्राप्त करने वाले हैं। उनके न्याय में तो कोई क्षेपक पाठ, चाहे वह व्यक्तिगत (अत्तनोमति) हो, चाहे किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्य का मत हो न्याय की कसौटी पर परीक्षित होना चाहिए:—चतुव्विधो विनयो जानितव्वो—सुत्तं, सुत्तानुलोमं, आचरियवादम्, अत्तनोमत्ति इति......तं पन अत्तनोमतिम् गहेत्वा वोहरितव्वम्, कारणं सल्लेखेत्वा अत्थेन पालिम्, पालिया च अत्थं संसदेत्वा च कथेतव्वम्, अत्तनोमति आचरियवादे औतारेतव्वा। सचे तत्था ओतरेति च एव समेति च गहेतव्वा........।

(१४) विसुद्धमग्ग के रचयिता यदि किसी ऐसे विरोधी मत का उल्लेख करते हैं, जोकि महाविहार से भिन्न परम्परा वाला है, तो उनको बड़े अप्रिय रूप से उल्लेख करते हैं, और प्राय: उनको वितण्डावादिन,अथवा विदड्ढवादिन अथवा अपरे, इत्यादि विरक्तिपूर्ण और अनादरसूचक शब्दों से निर्दिष्टि करते हैं, जबकि समन्तपासादिका के रचयिता ऐसा नहीं करते, अपितु उनके मत के ऊपर भले प्रकार और उचित रूप से विचार करते हैं।

(१५) विसुद्धिमग्ग के रचयिता के बारे में यह कहना कठिन है, कि वे इतने दिन जीवित रहे कि एक बार श्रीलङ्का से भारत आकर फिर श्रीलङ्का गये और उन्होंने ही समन्तपासादिका लिखी, किन्तु समन्तपासादिका के रचियता के बारे में यह निश्चित है कि वे भी पश्चिमी भारत के थे और यह भी कि वे विन्ध्यप्रदेश से दक्षिणा आन्ध्र, चोल आदि प्रान्तों से होते हुए श्रीलङ्का पहुँचे। उदाहरण के लिये उन्होंने समन्तपासादिका में यह बताया है, कि विन्ध्यप्रदेश मनुष्य-बस्ती से शून्य[1] था। मगध नाड़ी के बारे समन्तपासादिका में उनका यह वर्णन है कि यह नाड़ी साढ़े बारह पल की थी और यह तत्कालीन प्रामाणिक और सर्वमान्य भारमापक तौल थी और यह कि सिंहली नाड़ी द्रविड़ नाड़ी से भार में अधिक थी। ये दोनों बातें अन्धक और महाविहार अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित[2] है।

---

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृष्ठ ६५५।

२. समन्तपासादिका भाग ३, पृष्ठ ७०२।

( १६ ) विसुद्धिमग्ग के रचियता ने मुद्रांकित कार्षापणों के बारे में लिखा है कि वे दीर्घायाम, चतुरस्र और परिमण्डल आकार के होते[1] थे तथा कोई भी सिक्कों का विशेषज्ञ उनको हाथ में ले कर बता सकता था कि वे किस गांव या शहर में, पहाड़ के ऊपर अथवा नदी के किनारे और सिक्का बनाने वालों में से किस-किस के द्वारा ढाले गये[2] हैं।

समन्तपासादिका के द्वारा इस बारे में दी गई सूचनाऐं अधिक निश्चित और अधिक ऐतिहासिक रूप में है। यहाँ समन्तपासादिका के रचियता रूपसुत्त ( मुद्रा अथवा सिक्के सम्बन्धी शास्त्र ) के बारे में, जोकि अधार्मिक, भौतिक विषयक शास्त्र है, उल्लेख करते[3] हैं। वे इस विषय पर और आगे कहते हैं कि भगवान् बुद्ध के समय में मगध में प्रचलित एक काहापण ( कार्षापण ) बीस मासक और एक पाद पाँच मासक ( माशे ) का था। और यह प्रमाण मुद्रांकित चाँदी के सिक्कों की प्रामाणिक तोल के अनुसार था, ( सोच खो पोराणस्स नीलकाहापणस्स वसेन ) नकि रुद्रदामक काहापणों के अनुसार ढाले गये सिक्कों के प्रामाणिक तोले के ( न इतरेसम् रुद्रदामकादीनम्[4] )

सामान्य विषयों के ऊपर दोनों ग्रन्थकारों के विचार मूलरूप में एक से ही हैं; किन्तु समन्तपासादिका में निर्णय और समझ की परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। चाहे दोनों ग्रन्थों के ग्रन्थकार एक ही हों अथवा भिन्न-भिन्न, किन्तु यह तथ्य निर्विवाद है कि समन्तपासादिका में विसुद्धि-मग्ग के द्वारा प्रतिपादित विचारों से पश्चात्कालीन विचारों का विकास प्रतीत होता है।

विसुद्धिमग्ग और समन्तपासादिका के रचियताओं की भिन्नता सिद्ध करने के लिये दी गयी श्री बी०सी०ला की उपर्युक्त युक्तियों के ऊपर विचार करने से ज्ञात होता है कि श्री बी० सी० ला राजा गोथाभय के

१. विसुद्धिमग्ग, पृ. ४३७।
२. सारत्थप्प कासिनी ( सिंहली ), पृ. २१५।
३. समन्तपासादिका ( सिंहली ) भाग १, पृ. २१५।
४. समन्तपासादिका ( सिंहली ) भाग १, पृ. १७२।

समय के परिवेण के अध्यक्ष थेर संघपाल और महाविहार के अध्यक्ष भदन्त संघपाल को एक ही व्यक्ति स्वीकार करते हैं, जबकि तथ्य ऐसा प्रतीत नहीं होता । ये दोनों अवश्य ही भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं । क्योंकि उस परिवेणके अध्यक्ष थेर संघपाल, जिनसे थेर गोथाभय ने शास्त्रार्थ किया था, अवश्य ही बड़ी अवस्था के होंगे और वे राजा महानाम के शासनकाल तक जीवित नहीं रह सके होंगे। चुल्लवंस और बुद्धघोसुप्पत्ति दोनों ही आचार्य बुद्धघोष को राजा महानाम के शासनकाल में बताते हैं। उनका यह कथन अवश्य ही महाविहार के किसी अभिलेख के ऊपर आधारित होगा, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु श्री बी० सी० ला के अनुसार केवल संघपाल नाम के साम्य से दोनों थेरों को एक मानना उचित नहीं। तथ्य यह जान पड़ता है कि आचार्य बुद्धघोष जिस समय श्रीलङ्का पहुँचे उस समय भदन्त बुद्धमित्त महाविहार के अध्यक्ष होंगे। उन्होंने उनसे विनय के ऊपर सिंहली अट्ठकथायें पढ़ीं। इसके साथ-साथ अन्य विद्वान थेरों से, जोकि भिन्न-भिन्न अट्ठकथाओं के विशेषज्ञ थे, अन्य अट्ठकथायें पढ़ीं। उनके अध्ययन समाप्त करने से पूर्व भदन्त बुद्धमित्त स्वर्गवासी हो चुके होंगे और भदन्त संघपाल महाविहार के अध्यक्ष बन चुके होंगे। फाह्यान के समय या तो आचार्य बुद्धघोष विद्यार्थी होंगे और अप्रसिद्ध होंगे अथवा श्रीलंका में आये ही नहीं होंगे। यहभी सम्भव है कि फाह्यानके द्वारा वर्णित स्वर्गवासी होनेवाले थेर बुद्धमित्त ही हों। क्योंकि बुद्धमित्त, थेर बुद्धसिरी से बड़े थे। यह बात आचार्य बुद्धघोष के द्वारा बुद्धमित्त के साथ भदन्त शब्द और बुद्धसिरी के आगे थेर शब्द जोड़ने से प्रतीत होती है। दूसरे, भदन्त बुद्धमित्त से उन्होंने विनय की अट्ठकथा पढ़ी और थेर बुद्धसिरी के आदेश से विनय के ऊपर समन्तपासादिका लिखी। यह बात भी भदन्त बुद्धमित्त को थेर बुद्धसिरी से पूर्वकालीन सिद्ध करती है। थेर बुद्धसिरी से थेर संघपाल भी पूर्वकालीन सिद्ध होते हैं, क्योंकि पहले लिखे गये विसुद्धिमग्ग में 'भदन्त संघपाल के आदेश से' यह वाक्यांश प्रयोग किया गया है जबकि बाद में लिखी गई समन्तपासादिका में बुद्धसिरी के लिए थेर शब्द प्रयुक्त है।

सिंहली अट्ठकथाओं को पढ़ चुकने पर भदन्त संघपाल से उन्होंने उनका पाली भाषान्तर करने की अनुमति मांगी और परीक्षा के रूप में उनके

द्वारा दी गई दो गाथाओं[1] पर विसुद्धिमग्ग ग्रन्थ लिखा। यह समय महानाम के शासन का उन्नीसवां वर्ष होगा। क्योंकि लगभग एक वर्ष का अन्तर विसुद्धिमग्ग और समन्तपासादिका में अवश्य मानना चाहिए। भदन्त संघपाल के आदेश से विसुद्धिमग्ग लिख चुकने के पश्चात् भदन्त संघपाल के ही समय में थेर बुद्धसिरी के आदेश से राजा महानामके शासन-काल के बीसवें वर्ष में उन्होंने समन्तपासादिका प्रारम्भ की होगी।

श्री बी० सी० ला की दी हुई चौथी और पाँचवीं युक्ति का भी निराकरण हो जाता है। राजा महानाम ने अपने बड़े भाई राजा उपतिस्स की अपनी भावज के द्वारा हत्या किये जाने के अनुचित कार्य का अनुमोदन किया था, इस कारण महाविहार वाले उनसे नाराज थे। इसलिए राजा और उनकी रानी (अर्थात् राजा उपतिस्स की विधवा) अभयगिरी विहार वालों को समर्थन और पोषण करने लगे और महाविहार वालों से विरक्त हो गये थे।[2] यही कारण है कि आचार्य बुद्धघोष ने, जो कि महाविहार परम्परा के पक्के पक्षपाती थे और संभवतः जिनको रानी का दुष्कृत और घृणित कार्य बुरा लगा था, विसुद्धिमग्ग लिखते समय राजा का नाम अथवा पदवी का उल्लेख नहीं किया। किन्तु विसुद्धिमग्ग के द्वारा उनकी ख्याति होने पर राजा ने उनको अवश्य सम्मानित किया होगा, जैसा कि इस बात से भी प्रतीत होता है कि समन्तपासादिका के लिखने के पूर्व वे राजा के मन्त्री महानिगम के द्वारा महाविहार के पूर्व में बनवाये हुए भवन में अनुराधपुर में रह रहे थे और वहीं उन्होंने समन्तपासादिका लिखी। इसलिये समन्तपासादिका में उनके द्वारा राजा की पदवी का नाम निर्देश किया जाना असंगत नहीं है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि इस समय तक राजा के प्रति विरोध भाव, पुराना होने के कारण, शान्त हो गया होगा और उनकी कुलपरम्परागत पदवी सिरीकुड्ड का निर्देश उनके नाम के साथ होने लगा होगा, या तब तक उन्होंने यह पदवी स्वयं धारण कर ली होगी।

---

१. ये गाथाएँ इसी पुस्तक के पृ० ७ पर दी हुई हैं।

२. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

छठे से नौवें अनुच्छेदों में श्री बी० सी० ला की युक्तियाँ समन्तपासादिका से विसुद्धिमग्ग की रचना को पूर्ववर्ती सिद्ध करती हैं। इसमें किसी भी विद्वान् का विरोध नहीं है, किन्तु इससे इतना अन्तर सिद्ध नहीं हो सकता कि विसुद्धिमग्ग राजा गोथाभय के समय में लिखा गया हो और समन्तपासादिका राजा महानाम के समय में। इतना अवश्य संभव है कि विसुद्धिमग्ग लिखते समय देश में किसी संकट की सम्भावना न रही हो किन्तु समन्तपासादिका लिखते समय भविष्य में आने वाले संकट की सम्भावना हो गई हो और संकट से पूर्व ही उनका ग्रन्थ समाप्त हो गया हो, जिसके ऊपर कि उनका हर्ष प्रगट करना स्वाभाविक था। आकस्मिक रूप से उल्लिखित गुप्तयुग के पूर्ववर्ती राजाओं तथा बौद्ध सम्प्रदायों का विसुद्धिमग्ग में वर्णन भी दोनों ग्रन्थों के मध्य किसी बड़े अन्तर को सिद्ध नहीं करता, क्योंकि राजा महानाम कुमारगुप्त द्वितीय के समकालीन हैं और समन्तपासादिका में भी गुप्तकाल के उत्तरवर्त्ती किसी राजा अथवा सम्प्रदाय का वर्णन नहीं है।

श्री बी० सी० ला को स्वयं ही इस बात का निश्चय नहीं है कि 'समन्तपासादिका' और 'विसुद्धिमग्ग' में से कौन सा ग्रन्थ पहले लिखा गया था। अपनी नौवीं युक्ति में तथा अन्य युक्तियों में तो वे 'विसुद्धिमग्ग' को स्पष्ट रूप से 'समन्तपासादिका' से पूर्ववर्ती सिद्ध करते हैं; किन्तु उनकी दी हुई बारहवीं युक्ति से प्रतीत होता है कि वे 'समन्तपासादिका' को विसुद्धिमग्ग से पूर्ववर्ती सिद्ध करते हैं।

इसी प्रकार उनका थेर बुद्धसिरी को थेर बुद्धमित्त से पहले अध्यक्ष बताना भी समझ में नहीं बैठता। यदि थेर बुद्धसिरी थेर बुद्धमित्त से पहले अध्यक्ष होते तो उनके लिये 'समन्तपासादिका' में आचार्य बुद्धघोष (अथवा उसके रचयिता) 'थेर बुद्धसिरी के आदेश से' ऐसा वाक्यांश और थेर बुद्धमित्त के लिये 'भदन्त बुद्धमित्त से विनयट्ठकथा पढ़ी' ऐसा वाक्य नहीं देते। वैसे भी जिनसे विनयअट्ठकथा पढ़ी, वे पूर्ववर्त्ती ठहरते हैं, और जिनके आदेश से बाद में उस पर अपनी समन्तपासादिका लिखो वे परवर्ती ठहरते हैं।

आठवें पन्द्रहवें और सोलहवें अनुच्छेदों में दिये गये सिक्कों और नाड़ी के उल्लेखों से भी दोनों ग्रन्थों का अधिक अन्तर सिद्ध नहीं हो पाता। दोनों में ही सिक्के और नाड़ी का वर्णन अपने से पूर्ववर्ती समय की ओर निर्देश करता है। यह भी सम्भव है कि विसुद्धिमग्ग लिखते समय सिक्कों और नाड़ी के विषय में उनकी सूचनायें अधूरी हों और समन्तपासादिका लिखते समय उनको पूरी और ठीक-ठीक सूचनाएँ मिल गई हों।

नौवां अनुच्छेद भी विसुद्धिमग्ग को समन्तपासादिका से पूर्व सिद्ध करता है। श्री बी० सी० ला ने भी अपनी पुस्तक 'बुद्धघोष' मैं परमत्थ-जोतिका के तथाकथित रचयिता चुल्ल बुद्धघोष अथवा बुद्धघोष द्वितीय को आचार्य बुद्धघोष के समकालीन ही लिखा है।

दसवें अनुच्छेद के बारे में यह है कि समन्तपासादिका का पश्चात्कालीन होने के कारण अधिक खोज के साथ एक ही ग्रन्थकार के द्वारा भिन्न-भिन्न सूचियाँ देना सम्भव है। साथ में यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि समन्तपासादिका सिंहली अट्ठकथा का अनुवाद है, जबकि विसुद्धिमग्ग स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

ग्यारहवें अनुच्छेद में कोई बात ऐसी नहीं, जो अधिक अन्तर सिद्ध करें क्योंकि वे महायान ग्रन्थ दोनों ही ग्रन्थों के पूर्व के हैं।

बारहवें, तेरहवें और चौदहवें अनुच्छेदों के बारे में केवल इतना ही कहना है कि विसुद्धिमग्ग उनकी स्वतन्त्र रचना है,जबकि समन्तपासादिका सिंहली विनयट्ठकथा का अनुवाद अथवा उसका पाली संस्करण है, अतएव इसमें वे उतने स्वतन्त्र नहीं हैं। दूसरी बात यह भी है कि विशद और विस्तृत अध्ययन से संकीर्णता और कट्टरता उत्तरोत्तर दूर होती जाती है और विचारों में परिपक्वता और विशालता आती जाती है। इसी कारण विसुद्धिमग्ग की कट्टरता और संकीर्णता समन्तपासादिका में नहीं रही और उन्होंने इसमें परीक्षा प्रधानी होने की अपील की है। अथवा यह भी संभव है कि आचार्य बुद्धघोष को वैसाही लिखना पड़ा जैसा सिंहली विनयट्ठकथा में था, क्योंकि समन्तपासादिका लिखने में वे विसुद्धिमग्ग की तरह स्वतन्त्र लेखक नहीं थे। इससे भी बड़ी युक्ति यह हो सकती है कि

विनय के बारे में वे परीक्षा प्रधानी होनेकी अपील कर सकते थे, क्योंकि यह चरित्र सम्बन्धी विषयथा, किन्तु धम्म के विषय में उन्होंने 'अत्तनोमति' को नहीं स्वीकार किया, क्योंकि धम्म बुद्ध भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य के गोचर नहीं हो सकता, ऐसी बौद्धों में मान्यता है।

वर्णन की पुनरुक्ति के विषय में यह है कि श्री बी० सी० ला स्वयं ही कहते हैं कि उन वर्णनों ने विस्तृत शास्त्रार्थ का रूप धारण कर लिया है, इसलिए अधिक विशद और विस्तृत वर्णन करने की इच्छा से उन वर्णनों का विनय के सम्बन्ध में समन्तपासादिका में विस्तारपूर्वक दोहराया जाना स्वाभाविक है। सिंहली विनयट्ठकथा में आये हुए 'चतुब्बिधो विनयो' इत्यादि उद्धरण को देकर उन्होंने विनय के विषय में परीक्षा प्रधानी होने और हठधर्मी को छोड़ने की अपील की है। इसलिये समय के अन्तर और अध्ययन की विस्तीर्णता और कट्टरता के कारण एक ही ग्रन्थकार में, आगे पीछे दोनों तरह के विचार सम्भव हैं।

श्री बी० सी० ला स्वयं पन्द्रहवें अनुच्छेद में स्वीकार करते हैं कि दोनों ग्रंथों के रचयिता विन्ध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश और चोलदेश से होकर श्रीलङ्का गये। उन प्रदेशों के वर्णन की इतनी अधिक समानता भारत के एक ही लेखक में सम्भव हो सकती है, श्रीलङ्का के थेर में नहीं। फिर अपनी युक्तियों की शिथिलता को अनुभव करते हुए वे सोलहवें अनुच्छेद के अन्त में स्वयं कहते हैं कि 'सामान्य विषयों के ऊपर दोनों ग्रन्थकारों के विचार मूलरूप में एक से ही हैं, किन्तु समन्तपासादिका में निर्णय और समझ की परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है।' और यह परिपक्वता एक ही ग्रंथकार के पश्चात्कालीन ग्रन्थमें कालान्तरमें अध्ययन विस्तृत होनेके कारण स्वाभाविक है। इसलिये दोनों ग्रन्थों का, आचार्य बुद्धघोष को ही रचयिता मानना ठीक है, बुद्धघोष द्वितीय को नहीं। इसकी पुष्टि डा० मललसेकर[1] तथा डा० आदिकरम[2] भी युक्तिपूर्वक करते हैं। इसके अतिरिक्त सिंहली परम्परा के अनुसार आचार्य बुद्धघोष बुद्ध भगवान् के निर्वाण के ६६५ वें

---

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

२. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

वर्ष में श्रीलङ्का में आये थे।[१] इससे भी आचार्य बुद्धघोष का श्रीलङ्का में आना (९६५–५४३=४२२) ४२२–२३ ई० सन् में निश्चित होता है। ईसवी सन् ४२३ से ४२७ तक इन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं का अध्ययन किया होगा और ईसवी सन् ४२८ में विसुद्धिमग्ग लिखा होगा। फिर ईसवी सन् ४२९ में समन्तपासादिका समाप्त की होगी और तदनन्तर सुत्तपिटक के ग्रन्थों के ऊपर अट्ठकथाएँ प्रारम्भ की होंगी।

उपर्युक्त समय की पुष्टि डा० आदिकरम के द्वारा भी होती है।[२] उनके अनुसार राजा उपतिस्स और राजा महानाम के पिता राजा बुद्धदास हैं और इनका समय पाँचवीं शताब्दी ईसवी पश्चात् का प्रारम्भ है। उनके अनुसार चीनी यात्री फाह्यान इन्हीं राजा बुद्धदास के समय में श्रीलङ्का में आया था। राजा बुद्धदास प्रसिद्ध वैद्य भी थे, जो कि मनुष्यों और पशुओं, दोनों का उपचार करते थे। इन्हीं के समय प्रसिद्ध धम्मकथी हुए जिन्होंने सर्व प्रथम सुत्तों का अनुवाद सिंहली में किया था। डा० आदिकरम का अनुमान है कि फाह्यान इन्हीं थेर को विद्वान् थेर कहता था। यदि फाह्यान राजा बुद्धदास के समय में आये और वे आचार्य बुद्धघोष का उल्लेख नहीं करते हैं, तो अवश्य ही आचार्य बुद्धघोष या तो उस समय श्रीलङ्का में विद्यार्थी होंगे अथवा आये ही नहीं होंगे। इसमें बाद का तथ्य अधिक उपयुक्त मालूम पड़ता है। इसलिये चुल्लवंस का कथन और भी पुष्ट हो जाता है कि वे राजा महानाम के समयमें श्रीलङ्का में आये थे। यह समय बौद्ध परम्परा के अनुसार ४२२–२३ ईसवी सन् के लगभग हो सकता है। ४–५ वर्ष तक उन्होंने अट्ठकथाओं का अध्ययन किया होगा। उसके बाद ४२७–२८ ई० में विसुद्धिमग्ग लिखनेके पश्चात् ४२९ ई० में समन्तपासादिका प्रारम्भ की होगी। इसलिए श्री बी० सी० ला का यह कथन, कि 'विसुद्धिमग्ग समन्तपासादिका से बहुत पहले की रचना है और समन्तपासादिका किसी और बुद्धघोष की रचना है', संगत नहीं प्रतीत होता। यदि विसुद्धिमग्ग राजा बुद्धदास से पहले राजा गोथाभय के समय में लिखा जाता तो कोई कारण नहीं कि फाह्यान इतने ऊँचे बौद्ध ग्रन्थ और उसके रचयिता का उल्लेख न करते।

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।
२. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

समन्तपासादिका[1] आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में सबसे पहली तथा सबसे अधिक महत्व की अट्ठकथा मानी गई है । यह विनयपिटक के ऊपर विस्तीर्ण और वृहदाकार अट्ठकथा है । इसकी प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इसकी रचना श्री बुद्धसिरी थेर के आदेश को शिरोधार्य करके की गई थी । थेर बुद्धसिरी के साथ थेर शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि वे उस समय तक अध्यक्ष नहीं बने थे, वे भदन्त संघपाल के पश्चात् अध्यक्ष बने होंगे ।

श्री बी० सी० ला कहते हैं कि आ० बुद्धघोष विनयपिटक के ऊपर अट्ठकथा को सर्वप्रथम लिखने के कारण क्षमा प्रार्थना सी करते हैं, क्योंकि बौद्धसम्प्रदायके-धम्म, विनय,सुत्त-इस सर्वकालीन क्रमके विरुद्ध धम्मपिटक की अट्ठकथा से पहले वे विनयपिटक की अट्ठकथा लिख रहे[2] हैं । डा० मललसेकर ने भी उल्लेख किया है कि आ० बुद्धघोष कहते हैं कि उन्होंने इस अट्ठकथा को सर्वप्रथम इसलिये लिखा है, क्योंकि विनय बौद्ध धर्म की नींव है[3] और डाक्टर आदिकरम कहते हैं कि वे समन्तपासादिका की प्रस्तावना अथवा उसके परिशिष्ट से यह अर्थ नहीं निकाल सके । किन्तु मेरी समझ में प्रस्तावना की यह गाथा उपर्युक्त अर्थ की ओर स्पष्ट निर्देश करती है—

यस्मिं ठिते सासनं अट्ठितस्स पतिट्ठितं होति सुसंठितस्स ।
तं वण्णयिस्साम विनयं अमिस्सं निस्साय पुब्बाचरियानुभावं ॥

अर्थात् जिसके स्थित रहने पर बौद्ध शासन सुप्रतिष्ठित होता है, उस विनय को हम पूर्वाचार्यों के वर्ण का आश्रय लेकर वर्णन करेंगे । यहां

---

१. विशेष ज्ञान के लिये देखें:—पाली एलीमेण्ट्स इन चाइनीज़ बुद्धिज्म, समन्तपासादिका का अनुवाद-श्री जे० तकाकुसु बी० ए०—जॉर्नल ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी--१८९७ । इसके संस्करण रोमन, स्यामी, सिंहली और बर्मी लिपि में मिलते हैं ।
२. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष, पृष्ठ ७७ ।
३. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर आफ सीलोन, पृष्ठ ९४ ।

इस गाथा से एक बात और भी प्रतीत होती है कि भारत में उस समय अभिधम्म की प्रधानता थी। इसी कारण आचार्य बुद्धघोष ने भारत में त्रिपिटक पढ़ने के बाद धम्मके ऊपर णाणोदय और अट्ठसालिनी लिखी थीं। किन्तु श्रीलङ्का में उस समय विनय की प्रधानता थी। इसी कारण आचार्य बुद्धघोष ने वहाँ विसुद्धिमग्ग के पश्चात् विनयपिटक की अट्ठकथा समन्तपासादिका सर्वं प्रथम प्रारम्भ की।

आचार्य बुद्धघोष ने सिंहली अट्ठकथायें थेर बुद्धमित्त से पढ़ी थीं, और समन्तपासादिका लिखते समय वे मन्त्री महानिगम के द्वारा अनुराधपुर में महाविहार के पूर्व में निर्माण कराये हुए भवन में रह रहे थे। समन्तपासादिका लिखने का प्रारम्भ सिरीनिवास की पदवी धारण करने वाले राजा के शासन के बीसवें वर्ष में और अन्त इक्कीसवें वर्ष के प्रारम्भ में हुआ था[1]। डा० मललसेकर ने सिद्ध कर दिया है कि महावंस के राजा महानाम ही राजा सिरीनिवास[2] हैं। इस राजा ने ई० सन् ४०९ से ४३१ तक शासन किया, इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि समन्तपासादिका ४२९—३० ई० सन् में लिखी गई होगी। यह समय श्रीलङ्का में बड़ी खलबली का मालूम पड़ता है, जैसा कि आचार्य बुद्धघोष के, इस ग्रन्थ को संकटों से पूर्ण संसार में सकुशल एक वर्ष के अन्दर समाप्त कर लेने में समर्थ होने पर, हर्ष प्रगट करने से प्रतीत होता[3] है। महावंस में भी लिखा हुआ हैं कि राजा महानाम के बाद भारी राजनैतिक उथल-पुथल हुई, और महानाम की मृत्यु के बाद मुश्किल से दो वर्ष व्यतीत हुए थे कि अनुराधपुर के ऊपर तामिलों का आक्रमण हुआ, जिन्होंने इस देश को तहस-नहस कर दिया, इसकी उन्नति में बाधा डाल दी और इसके धर्म के लिये भय और संकट उपस्थित कर दिया। जैसा कि ऐसी आपत्ति के समय होता है, धर्म की रक्षा करने वाले भिक्खु लोग रोहणप्रान्त में चले गये। शताब्दी का चतुर्थांश बीतने पर ही देश को इस संकट से

---

१. समन्तपासादिका ( सिंहली ), भाग २, पृ० ४२७।

२. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन, पृ० ९६।

३. समन्तपासादिका ( सिंहली ) भाग २, पृ० ४२७।

स्वतन्त्रता मिली, एवं पूर्वसमय के समान फिर देश में धर्म की स्थापना हुई[१]।

डा० आदिकरम के विचार में यही मुख्य कारण था, कि आचार्य बुद्धघोष को तीनों पिटकों के ऊपर अट्ठकथाएँ लिखने से पूर्व ही श्रीलङ्का को छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। किन्तु न तो कहीं अन्यत्र ही ऐसा उल्लेख है और न आ० बुद्धघोष ही अपने किसी ग्रन्थ में इस घटना का निर्देश करते हैं, कि वे उस समय श्रीलङ्का छोड़कर भारत गये और शेष अट्ठकथाऐं उन्होंने भारत में लिखीं। प्रत्युत स्वयं डा० आदिकरम का अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में कथन है कि "यह एक रुचिपूर्ण ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा मनोरथपूरणी में वर्णित आधी से अधिक घटनाएँ रोहणप्रान्त से सम्बन्धित हैं, जिससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि इस अट्ठकथा ने इसी प्रान्त में अपना अन्तिम रूप प्राप्त किया था।" इससे भी प्रतीत होता है कि आ० बुद्धघोष समन्तपासादिका तथा कंखावितरणी लिख चुकने के पश्चात् सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी तथा सारत्थप्पकासिनी को ई० सन् ४३० के प्रारम्भ से ४३३ तक लिख चुके होंगे और क्योंकि मनोरथपूरणी को लिखते समय राजा सिरीनिवास की मृत्यु के दो वर्ष बाद ई० सन् ४३४ में तामिलों का आक्रमण हुआ, उन्होंने अनुराधपुर से रोहण में जाकर यह अट्ठकथा पूर्ण की होगी। दूसरी बात यह भी है कि उन्होंने अपनी अट्ठकथाऐं श्रीलंका में ही लिखी होंगी, क्योंकि ये सब सिंहली अट्ठकथाओं के ऊपर ही आधारित हैं और न तो इतनी अट्ठकथाओं का भारत में ले जाना ही ऐसे संकट के समय सम्भव था और न उनको उन सिंहली अट्ठकथाओं को भारत में ले जाने की अनुमति ही मिल सकती थी, जोकि बौद्ध धर्म की, श्रीलंका के थेरों के लिए अमूल्य निधि थीं।"

विनयपिटक की विस्तीर्ण अट्ठकथा होने के अतिरिक्त समन्तपासादिका में प्राचीन भारत और श्रीलंका की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक स्थिति के इतिहास की सूचनाओं का भण्डार भरा

१. महावंस अध्याय ३८, गाथा ३७।

पड़ा है। इस अट्ठकथा का महत्व इसी से सिद्ध होता है कि इसके लिखे जानेके तुरन्त बाद ही इसका अनुवाद चीनी भाषामें चीनी भिक्खु संघभद्र के द्वारा ई० सन् ४८६ में किया गया था[1] और वह आज भी विद्यमान् है। स्वयं श्रीलंका में भी इसके ऊपर कई टीकायें लिखी गई हैं।

इसके वर्णनीय मुख्य-मुख्य विषय निम्नप्रकार हैं:—भिन्न-भिन्न बौद्ध संगीतियों के भिन्न-भिन्न समय पर बुलाये जाने के कारण, प्रथम संगीति के सदस्यों का चयन, आनन्द थेर ( भगवान् बुद्ध के उपस्थापक ) के बिना संगीति का न हो सकना, संगीति का स्थान चयन, भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् आनन्द थेर ने उनकी गंधकुटीका क्या किया, महाराज अजातशत्रु के द्वारा राजगृह के अठारह महाविहारों की मरम्मत और संगीति के लिये पण्डाल का निर्माण, भगवान् बुद्ध के प्रथम और अन्तिम वचनों का पाठ, विनय, अभिधम्म और सुत्तपिटकों का वर्गीकरण, विनयपिटक तीसरी संगीति तक कैसे पहुँचा, मौग्गलिपुत्र ब्राह्मण की जीवनी, सम्राट-अशोक का वर्णन, अशोक के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रदेशों और देशों को भेजे गये धर्मोपदेशक भिक्खु थेरों का वर्णन, पीतिसुख और झाण के ऊपर शास्त्रार्थात्मक वर्णन, वज्जिभूमि और वज्जिपुत्रों का महत्व, वैशाली के महावन की कुटागारसाला का वर्णन, कम्मट्ठान, सति, समाधि, पटिसंभिधा, चित्तविञ्ञाण, इन्द्रिय, चार पाराजिकाधम्म आदि का शास्त्रार्थात्मक वर्णन।

अन्य अट्ठकथाओं के समान समन्तपासादिका में उपमा और रूपकों के द्वारा विषय का अतिशयोक्तिपूर्ण और जटिल वर्णन नहीं है, प्रत्युत यह सरल भाषा में लिखी गई हैं।

इसमें भारतीय ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयों का वर्णन संक्षेप में सइ प्रकार है:—

एक बार वेरंजा में भारी अकाल पड़ा तो भिक्खु लोग किसी अन्य स्थान में जाना चाहते थे। इस कारण भगवान् बुद्ध ने गंगा को प्रयाग में

---

१. श्री नरीमेन—बुद्धिस्ट लिटरेचर-इण्डेक्स।

पार किया और वाराणसी पहुँचे।[१] अजातशत्रु ने मगध के ऊपर चौबीस वर्ष तक शासन किया।[२] उसने राजगृह के अठारह विहारों की मरम्मत कराई। इन विहारों को भगवान् बुद्ध के परिनिब्बाण के बाद भिक्खुओं ने छोड़ दिया था।[३] भगवान् ने अजातशत्रु के शासन के अष्टम वर्ष में निर्वाण प्राप्त किया।[४]

अशोक ने 'धम्म' के प्रचार के लिये धर्मोपदेशक भिक्खुओं को भिन्न-भिन्न स्थानों को भेजा था और वे सब मगध के ही निवासी थे। उदयभद्द मगध का एक राजा था। उसने पच्चीस वर्ष तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी सुसुनाग हुआ, जिसने मगध पर अठारह वर्ष तक शासन किया। कालाशोक के दस पुत्र थे और इसने तेइस वर्ष राज्य किया। उसके बाद नन्दवशीय राजाओं का मगध में राज्य हुआ। इन्होंने भी तेईस वर्ष तक मगध राज्य पर शासन किया। नन्दवंश को चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीतकर चौबीस वर्ष राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी बिन्दुसार हुआ। उसने मगध के सिंहासन पर बैठकर अठारह वर्ष तक राज्य किया। इसके उत्तराधिकारी महाराज अशोक हुए, जिन्होंने अपने पिता के समान कुछ समय तक बौद्धेतर साधुओं और संस्थाओं को दान दिया, किन्तु किसी समय इनसे क्रुद्ध होकर उनको दान देना बन्द कर दिया और केवल बौद्ध साधुओं और संस्थाओं को ही दान देने लगे।[५] अशोक की प्रतिदिन की आय पाटलीपुत्र के चार दरवाजों से चालीस सहस्र काहापण (कार्षापण) थी। राज्य सभा में उनको प्रतिदिन एक लाख काहापण भेंटमें मिलते थे।[६] राजगृह बहुत सुन्दर स्थान था, जहाँ भिक्खुओं की भारी संख्या निवास करती थी।[७] 'तिस्स' के अतिरिक्त अपने सब भाइयों को मारकर अशोक ने सारे जम्बूद्वीप के ऊपर एकछत्र शासन किया। चार वर्ष तक उन्होंने बिना राज्याभिषेक के शासन किया।[८] समन्तपासादिका

---

१. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० २०१।
२. वही, पृ० ७२।
३. वही, पृ० ९
४. वही, पृ० ७२।
५. वही, पृ० ४४।
६. वही, पृ० ५२।
७. वही, पृ० ८।
८. वही, पृ० ४१।

में मगध के दो और राजाओं का उल्लेख है, जिनके नाम 'अनुरुद्ध' और 'मुण्ड' हैं।[1] अनुरुद्ध उदयभद्द का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने अठारह वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद नागदासक गद्दी पर बैठा। उसने चौबीस वर्ष तक राज्य किया। नागदासक को अत्याचारी होने के कारण नगर वासियों ने देशसे निकाल दिया और सुसुनाग मन्त्री को प्रजा ने राजा बनाया। बिम्बसार के सौ पुत्रों का होना इसमें वर्णन किया गया है।[2]

अशोक के बारे में कहा गया है कि उसने सारे जम्बूद्वीप में चौरासी हजार विहार बनवाये थे।[3] वहीं पाटलीपुत्र का उल्लेख है, जहाँ कि धम्माशोक का पौराणिक रूप में उल्लेख है कि वह पैदा होकर सारे जम्बूद्वीप पर शासन करेगा। राजगृह में अठारह महाविहार थे।[4] एक बार महाकस्सप ने आनन्द से धम्म के बारे में प्रश्न किया था।[5] इस अट्ठकथा में बुद्ध भगवान् के प्रारम्भिक तथा अन्तिम वचनों का उल्लेख है।

समन्तपासादिका में विनय, सुत्त और धम्मपिटकों का भिन्न-भिन्न प्रकार से ब्यौरेवार वर्गीकरण दिया हुआ है।[6] इसमें यह भी उल्लेख है कि किस प्रकार विनयपिटक तीसरी संगीति तक आया।

इसके पश्चात् हमको इसमें थेर मोग्गलिपुत्त तिस्स का वर्णन मिलता है कि ये अट्टोगंग नाम के पर्वत पर गये और प्रतिवादियों के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिए इन्होंने 'कथावत्थुप्पकरण' की रचना की।[7] इसके बाद इस अट्ठकथा में उन धर्म प्रचारक थेरों का वर्णन हैं, जिनको मोग्गलिपुत्त तिस्स थेर ने भिन्न-भिन्न देशों में धर्म के उपदेश और प्रचार के लिये भेजा था।[8] समन्तपासादिका में मल्लों के कुसीनारा

---

१. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० ७२–७३।
२. वही, पृ० ४१।
३. वही, पृ० ११५।
४. वही, पृ० ६।
५. वही, पृ० १५।
६. वही, पृ० १८।
७. वही, पृ० ६१।
८. वहीं, पृ० ६३–६४।

नगर का उल्लेख है, जहाँ कि दो सालवृक्षों के मध्य वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन भगवान् बुद्ध ने महापरिनिव्वाण प्राप्त किया था।[१]

समन्तपासादिका में निम्न भौगोलिक नगरों और प्रदेशों आदि का वर्णन भी आता है—चम्पा, गग्गरा[२] वेरंजा (जहाँ एक बार अकाल का प्रकोप हुआ था), सावत्थी, तम्बपण्णि बन्दरगाह, सुवण्णभूमि (सुमात्रा), उत्तरापथक, (जहाँ कि घोड़ों के व्यापारी एकत्रित होते थे[३]), उत्तरकुरू, कपिलवत्थु (जहाँ कि भद्र नागरिक कुटुम्ब रहते थे[४]), भद्दियनगर आदि। इसके बाद इसमें गंगा नदी और बनारस (जहां गङ्गा पारकर एक बार भगवान् पधारे थे) सोरेय्य, वेसाली (वैशाली) और महावन का उल्लेख है।[५] पृ० २०७ में वज्जियों के एक गाँव का उल्लेख है। लिच्छिवियों के राजाओं का भी पृ० २१२ में उल्लेख किया गया है। पृ० २७२ में सावत्थी के महाजन की सुन्दर पुत्री 'उप्पलवण्णा' का भी इसमें वर्णन है। पृ० २४० में राजगृह के गिज्झकूट पर्वत का भी वर्णन इसमें आता है, जहाँ एक बार भगवान् ने विहार किया था और जहाँ एक बार मल्ल-जातीय दव्व के साथ 'इसिगिलि' पर्वत के भिक्खु मेत्तेय देखे गये थे।[६] 'कासी' और 'कोसलदेश' का भी पृ० २८६ में उल्लेख है। पृ० २६७ पर राजा 'बिम्बिसार' का उल्लेख है कि वह मगध देश का स्वामी था और उसके पास चार प्रकार की सेना थी।

समन्तपासादिका में राजा उत्तर के द्वारा बनवाये हुए एक सुनहरे चेतिय (दागोवा) का भी वर्णन आया है।[७] इसी प्रकार इसमें वर्णन है कि घोसित महाजन ने एक विहार बनवाया था, जिसका नाम उसी के नाम पर (घोसिताराम) प्रसिद्ध हुआ।[८]

वेणुवन एक बाग का नाम था जो कि गहरे नीले रंग के पौधों से घिरा हुआ था। यह सुन्दर था और नीले रंग का था। इसमें अठारह

---

१. समन्तपासादिका, पृ० ८।
२. वही, पृ० २१।
३. वही, पृ० १७५।
४. वही, पृ० २४१।
५. वही, पृ० २०१।
६. वही, पृ० ५६८।
७. वही, पृ० ५४४।
८. वही, पृ० ५७४।

हाथ की आसारवाली दीवाल के ऊपर एक महराब थी।[1] इसमें कहा गया है कि श्रीलङ्का के राजा भातिय के शासनकाल में महाविहार और अभयगिरि विहार के थेरों में किसी सिद्धान्त के बारे में विवाद हुआ था।[2] कीटागिरि एक जनपद का नाम था।[3] सावत्थी नगर में सत्तावन लाख कुटुम्ब थे और राजगह में अठारह करोड़ मनुष्य रहते थे।[4] वेसाली में एक गोतमकचेतिय था, जिसमें बुद्ध भगवान् ने विहार किया था।[5] इसमें सिंहली महाअट्ठकथा और कुरुन्दीअट्ठकथा का भी उल्लेख है।[6] समन्तपासादिका में बताया गया है कि विन्ध्यप्रदेश मनुष्यों की बस्ती से शून्य था।[7] इसमें यह भी बताया गया है कि मगध नाड़ी साढ़े बारह पल की थी और यह नाड़ी उस समय की सर्वमान्य प्रामाणिक तोलमापक थी।[8] यह भी वहाँ उल्लेख है कि सिंहली नाड़ी द्रविड़ नाड़ी से बोझ में अधिक थी। उपर्युक्त दोनों तथ्य अन्धक और महाविहार अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित हैं। समन्तपासादिका में रूपसुत्त (मुद्रा अथवा सिक्कों सम्बन्धी शास्त्र) का उल्लेख है।[9] उसी में आगे यह भी कहा गया है कि बुद्ध भगवान् के समय में मगध में प्रचलित एक काहापण (कार्षापण) बीस-मासक (माशे) का और एक पाद पांच मासक का था और इनका यह प्रमाण मुद्रांकित चांदी के सिक्कों की प्रामाणिक तोल के अनुसार था (सोच खो पोराणस्स नीलकाहापणस्स वसेन) न कि रुद्रदामक कार्षापणों के अनुसार (न इतरेत्तिसम् रुद्रदामकादीनम्)[10]

---

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ५७५।
२. ,, ,, पृ० ५८२।
३. ,, ,, पृ० ६१३।
४. ,, ,, पृ० ६१४।
५. ,, ,, पृ० ६३६।
६. ,, भाग १, पृ० २६६।
७. ,, भाग ३, पृ० ६५५।
८. ,, ,, पृ० ७०२।
९. समन्तपासादिका (सिंहली), पृ० २१५।
१०. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १७२।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि अट्ठकथाओं को थेर महिन्द श्रीलङ्का में अपने साथ लाये थे। उनमें जो ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक वर्णन और त्यौहारों तथा परम्परा आदि से संबन्धित विषय थे, वे भारतीय ही थे, किन्तु उन अट्ठकथाओं का जब सिंहली भाषा में अनुवाद हुआ, तो वे वहीं के थेरों द्वारा परिवर्धित और संशोधित होती रहीं। फलतः उनमें श्रीलङ्का के प्राचीन तथा तत्कालीन राजाओं, थेरों, श्रावकों, स्थानों तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, राजनैतिक विचारों और हलचलों का भी वर्णन सम्मिलित हो गया। जब आचार्य बुद्धघोष पाँचवीं शताब्दी ईसवी पश्चात् में श्रीलङ्का में पहुँचे तो उनको ये परिवर्धित अट्ठकथायें तथा अन्य सिंहली भाषा के बहुत से ग्रंथ मिले। इसलिए उनको उन सिंहली अट्ठकथाओं में सिंहली इतिहास आदि की सामग्री भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई। अट्ठकथाओं में यह श्रीलङ्का के बारे में जुड़ी हुई ऐतिहासिक सामग्री दूसरी शताब्दी ईसवी पश्चात् तक की मिलती है। इनमें राजा बसभ के बाद के राजा आदि का वर्णन नहीं मिलता। राजा बसभ ने १६७ ईसवी सन् तक राज्य किया था। इन सिंहली अट्ठकथाओं में महाअट्ठकथा बड़े महत्व की थी। इसमें मूलग्रन्थ की व्याख्या के साथ-साथ बहुत सी उपकथाएँ भी दी गईं थीं, जिनमें से बहुत सी आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में सुरक्षित हैं, जो श्रीलङ्का के बौद्ध जीवन पर ही नहीं, अपितु राजनैतिक, सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। ऐसी उपकथाओं तथा घटनाओं का वर्णन समन्तपासादिका में भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

समन्तपासादिका में कहा गया है कि थेर महिन्द के श्रीलङ्का में पदार्पण के पूर्व वहाँ ब्राह्मणोंका वैदिक धर्मभी था, यक्षों और वृक्ष-देवताओं की पूजा होती थी तथा 'णिग्गन्थ' जैन धर्मावलम्बी तथा आजीवक और परिव्राजक साधु भी थे। डा० आदिकरम का कहना है कि 'जब भारत में विद्यमान सारे धर्म और संप्रदाय श्रीलङ्का में विद्यमान थे तो बौद्ध धर्म वहाँ क्यों नहीं होगा? यह असंभव है। शायद थेरमहिन्दयुग के गौरव की अधिकता दिखाने के लिये वहाँ बौद्धधर्म का अभाव दिखाया गया हो। दूसरे, यह बात कि थेर महिन्द के आने के बाद श्रीलङ्कामें बौद्धधर्म कितनी शीघ्रता से बढ़ा, इस बात की ओर निर्देश करती है कि वहाँ बौद्धधर्म

पहले से ही विद्यमान था, किन्तु बिना किसी दिखावे के लोग उसे अन्य धर्मों की तरह साधारण रूप से धारण करते थे। ये प्राचीन बौद्ध लोग थेर महिन्द के द्वारा बनाये गये नये बौद्धों के साथ बिना भेदभाव के मिल गये।'[1]

**श्रीलङ्का में भगवान् बुद्ध का विहारः**—समन्तपासादिका में यह पौराणिक उल्लेख भी है कि भगवान् बुद्ध ने तीन बार श्रीलंका में विहार किया था।[2] प्रथम बार बोधि-प्राप्ति के पश्चात् पाँचवें महीने में उन्होंने विहार किया था। इस समय श्रीलंका के मध्य में रहने वाले यक्षों के निवास-स्थान, महानाग नाम के सुन्दर उद्यान में श्रीलंकावासी यक्षों की सभा हो रही थी। यह उद्यान भविष्य में होने वाले महियंगण थूप का स्थान था। बुद्ध भगवान् ने उनके ऊपर मंडराकर उनके हृदय में वर्षा आँधी और घनान्धकार प्रगट करके भारी भय उत्पन्न कर दिया। इसके बाद उन्होंने उनको भय से रहित किया और गिरिद्वीप को उनके समीप ला दिया। तत्पश्चात् एक युक्ति से उनको उस द्वीप में भेज दिया। जब वे लोग चले गये तो बुद्ध भगवान् ने श्रीलंका द्वीप को फिर वैसा ही शान्त हालत में ला दिया। तब वहाँ देव लोग इकट्ठे हुए और उनकी सभा में उन्होंने 'धम्म' का उपदेश दिया। करोड़ों ने 'धम्म' की प्राप्ति की। असंख्यों ने तीन रत्नों की शरण प्राप्त की। बुद्ध भगवान् ने इस प्रकार श्रीलंका को यक्षों से मुक्त किया, क्योंकि उन्होंने अपने ज्ञान से देख लिया था कि यह सुन्दर द्वीप उनके निर्वाण लाभ के पश्चात् उनके पवित्र 'धम्म' का गढ़ बनेगा।[3] महावंस में यह भी उल्लेख है कि कल्याणी के नागमणि अक्खिक ने बुद्ध भगवान् के श्रीलंका में इस सर्वप्रथम आगमन के समय बोद्ध धर्म स्वीकार किया था।[4]

श्रीलङ्का में बुद्धभगवान् का द्वितीय बार आगमन बोधि प्राप्ति के पांचवें वर्ष में हुआ था। उन्होंने वहाँ पहुँच कर दो नागों के युद्ध को बचा

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
२. समन्तपासादिसा भाग १, पृ० ८९।
३. ,, ,, १, पृ० ८९ तथा महावंस पृ० २१ तथा आगे।
४. महावंस, अध्याय १, पृ० ६४।

कर उनके झगडे को निबटाया था । तृतीय बार भगवान् इस घटना के तीन वर्ष बाद मणिअक्खिक की प्रार्थना पर श्रीलंका पधारे थे ।

, **थेर मह्हिद का श्रीलङ्का आगमनः**—समन्तपासादिका में उल्लेख है कि महेन्द्र, उनके साथी थेर, संघमित्रा और वे सब, जिनको उन्होंने श्रीलंका में भिक्खु संघ में प्रविष्ट किया था, इस बात को अपना स्वयं निर्धारित कर्त्तव्य समझते थे कि वे लोग बुद्ध भगवान् के धम्म के सन्देश को श्रीलंका के प्रत्येक घर में पहुँचादें [1] ।

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि थेर महिन्द श्रीलंका में बुद्ध निर्वाण के १३६ वर्ष बाद पधारे थे[2] । थेर महिन्द के श्रीलंका में पधारने का ब्यौरा केवल महावंस और दीपवंस में तथा समन्तपासादिका में मिलता है, अब तक प्राप्त अशोक के शिलालेखों में कोई ब्यौरा नहीं मिलता । अशोक के तेरहवें शिलालेख में अशोक द्वारा 'धम्म' के द्वारा जीते गये बहुत से देशों के प्रसंग में श्रीलंका का नाम अवश्य पाया जाता है । श्रीलंका में थेर महिन्द के धम्म-संदेश के ले जाने की दोनों वंसों और समन्तपासादिका में वर्णन की गयी घटना की सत्यता के विषय में प्रोफेसर रायस डेविड्स ने एक बड़ी सुन्दर युक्ति दी है, कि इन्हीं वंसों में वर्णित अशोक के 'धम्म' सन्देश को हिमालय प्रदेशों में ले जाने की घटना साँची के स्तूप के द्वारा प्रमाणित हो चुकी है । यदि वंसों में वर्णित यह घटना, जोकि ऐसे प्रदेश के बारे में है, जिसके विषय में सिंहली लोगों की कोई रुचि नहीं हो सकती, इतनी ठीक है, तो महिन्द के श्रीलंका में 'धम्म-संदेश' को ले जाने के कथन के सत्य को पौराणिक वर्णन से अधिक सत्य मानना और भी युक्तिसंगत और न्यायसंगत है । यद्यपि यह वर्णन थोड़ा बहुत अतिशयोक्ति तथा अत्युक्तिपूर्ण हो सकता है, क्योंकि ऐसा वर्णन धर्म की प्रभावना के लोभ को संवरण न कर सकने के कारण, लेखकों द्वारा आलंकारिक भाषा में किया जाता है । इस प्रकार का वर्णन केवल यहीं नहीं अपितु उन सब ग्रन्थों में भी है, जिनमें दिव्य पुरुषों का वर्णन मिलता है । शिलालेखों में ब्यौरेवार वर्णन दिया भी नहीं जा सकता है । इसी कारण अशोक के

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १०२ ।
२. ,, ,, १, पृ० ७३ ।

शिलालेखों में यह वर्णन ब्यौरेवार नहीं दिया होगा। और उक्त शिलालेखों में केवल उन देशों के नाम के साथ, जिनमें अशोक ने धर्म प्रचार किया, श्रीलंका का भी नामनिर्देश कर दिया गया है।

समन्तपासादिका में थेर महिन्द के धम्म-संदेश के वाहक के रूप में श्रीलंका में आगमन का वर्णन यद्यपि महावंस के वर्णन के साथ ब्यौरेवार नहीं मिलता, किन्तु मुख्य-मुख्य बातों में उससे बिल्कुल मेलखाता है। इससे यह सिद्ध होता है, कि दोनों ग्रन्थकारों ने यह वर्णन किसी एक ही आधारभूत मूलस्रोत से लिया है।

सामन्तपासादिका में वर्णन इस प्रकार है:-तीसरी संगीति के पश्चात् थेर महिन्द के गुरू तथा संघ ने उनसे प्रार्थना की थी, कि वे 'धम्म' की स्थापना के लिये श्रीलंका में विहार करें[1]। बहुत सोच विचार करके उन्होंने निश्चय किया कि वह समय इस कार्य के उपयुक्त नहीं था। श्रीलंका का तत्कालीन राजा मुटासिव ( ३०७ से २४७ ई० पूर्व ) अधिक वृद्ध था और उसके आश्रय में 'धम्म' की स्थापना संभव नहीं थी। इसलिये राजा मुटासिव के पुत्र 'देवानापियतिस्सा' के सिंहासनारूढ़ होने के समय की प्रतीक्षा करते हुए थेर महिन्द अशोकाराम से थेर इत्थिय, उत्तिय, संबल भद्दसाल, भिक्खुसुमन तथा श्रावक मण्डुक के साथ अपने सम्बन्धियों से मिलने गये। थेर महिन्द उचित समय में विदिशा पहुँचे, जोकि उनकी माता का निवास स्थान था और वहाँ उन्होंने एक मास तक निवास किया।

**देवानांपियतिस्स और अशोक की मित्रता:**—इस समय तक राजा मुटासिव का देहान्त हो चुका था और उसका पुत्र 'तिस्स' श्रीलंका में सिंहासनारूढ़ हो चुका था। देवानांपियतिस्स तथा धम्मासोक ( महाराज अशोक ) के मध्य सौहार्द पूर्ण स्नेह था, यद्यपि उन दोनों का कभी भी एक दूसरे के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ था। यह कहा जाता है कि जब राजा तिस्स सिंहासनारूढ़ हुए तो उनके पूर्व-भव के पुण्य से उस समय

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ६९।

अमूल्य रत्न पृथ्वी से निकल पड़े[1]। इनको उसने अशोक के पास भेंट स्वरूप भेज दिया। अशोक ने प्रतिदान स्वरूप पाँच राज्य-चिन्ह तथा राज्याभिषेक के लिये आवश्यक सामग्री तिस्स के लिये भेजी। अशोक ने केवल ये ही वस्तुएं भेट स्वरूप नहीं भेजीं, अपितु 'धम्म' भी भेंट स्वरूप भेजा था[2]। उन्होंने साथ में यह सन्देश भी भेजा था—'मैंने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण प्राप्त की है तथा मैंने अपने को शाक्यपुत्र के 'धम्म' में श्रावक घोषित किया है। तुम भी इन तीनों की शरण प्राप्त करके आनन्द के भागी बनो। जिन भगवान् के सर्वोच्च 'धम्म' को धारण करो और धम्म की शरण में आ जाओ।' जब तिस्स को यह संदेश और भेटें अशोक से प्राप्त हुईं तो उसने दूसरी बार अपने राज्याभिषेक का उत्सव समारोह वैशाख पूर्णिमा के दिन किया[3]।

समन्तपासादिका का यह वर्णन महावंस के वर्णन से विस्तृत ब्यौरे में मेल नहीं खाता। महावंस इतना और कहता है कि अशोक को जब तिस्स की भेजी हुई वस्तुओं के समान मूल्यवान वस्तुऐं नहीं मिलीं तो उसने भेंट लाने वाले महाअरिट्ठ तथा अन्य लोगों को अनेक पदवियों से विभूषित किया[4]। आगे समन्तपासादिका में तिस्स और अशोक की एक दूसरे को दी हुई भेटों का वर्णन करके दीपवंस की गाथाओं को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया[5] है, किन्तु उन उद्धरणों से दीपवंस की गाथाओं में बहुत अन्तर[6] है।

विदिशा में एक माह व्यतीत करने के बाद ज्येष्ठ मूल नक्षत्र की पूर्णिमा के दिन थेर महिन्द ने अपने उपरोक्त छः साथियों के साथ विचार

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ७४।
२. ,, ,, १, ,, ७६।
३. ,, ,, १, ,, ७६।
४. महावंस, द्वितीय अध्याय, पृ० ८।
५. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ७४–७५।
६. दीपवंस, द्वितीय अध्याय, पृ० १५, १७, ३१, ३४।

किया, कि क्या यह समय श्रीलंका के प्रस्थान के लिये उचित है ?[१] तब इन्द्र ने प्रार्थना की कि वे श्रीलंका जावें और यह भी कहा कि श्रीलंका के लोगों को 'धम्म' में परिवर्तन करने में वह उनकी सहायता करेगा[२] ( यह इन्द्र प्रायः हमेशा सिंहली बौद्ध कथाओं में मुख्य भाग लेता है )। थेर महिन्द ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की और वेदिसक पर्वत से अन्य छः साथियों के साथ आकाश में उछले और श्रीलंका के मिस्सक पर्वत पर जाकर खड़े हुए, जोकि अनुराधपुर के पूर्व में है, और जो पश्चात्काल में 'चेतियपव्वत' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। यह भी पौराणिक वर्णन प्रतीत होता है। इसका उद्देश्य थेर महिन्द की प्रभावना दिखाना है।

**देवानांपिय तिस्स का थेर महिन्द से मिलनः**—श्रीलंका में यह दिन ज्येष्ठ मूल नक्षत्र का होने के कारण उत्सव का दिन था[३]। ( यद्यपि इसके प्रभाव में कोई युक्ति या कथन नहीं, फिर भी 'धम्म' के किसी जगह आरम्भ करने को, किसी अच्छे दिन से जोड़ देने की प्रथा है)। अनुराधपुर में तिस्स ने इस दिन उत्सव की घोषणा की और चालीस सहस्र पुरुषों के साथ शिकार खेलने के लिए मिस्सक पर्वत को प्रस्थान किया। तिस्स ने पहाड़ के ऊपर एक रोहित हरिण का पीछा किया और जहाँ थेर महिन्द तथा अन्य थेर थे वहाँ जा पहुँचा। महिन्द ने तिस्स को आते हुए देखकर कहा—'तिस्स यहाँ आओ।' तिस्स को आश्चर्य हुआ और उसे सन्देह हुआ कि वे थेर मनुष्य थे अथवा देव।[४] थेर महिन्द ने तिस्स के साथ बातें की और यह देखकर कि यह राजा तीक्ष्ण बुद्धि वाला है तथा 'धम्म' को अच्छी तरह समझता है—'चूलहत्थिपदोपमा' सुत्त की कथा सुनाई।[५] उपदेश के अनन्तर राजा ने उन चालीस सहस्र पुरुषों के साथ बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। राजा के लिए शाम का भोजन लाया गया। उसने (राजा ने) जानते हुए भी कि थेरों के लिये

---

१. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० ७० ।
२. ,, ,, पृ० ७१ ।
३. ,, ,, पृ० ७३ ।
४. ,, ,, पृ० ७४ ।
५. ,, ,, पृ० ७७ । तथा महावंस, अध्याय १४, पृ० १६ तथा आगे ।

शाम का भोजन विहित नहीं है, अशिष्टता को दूर करने के लिए थेरों को भोजन के लिये निमन्त्रित किया, परन्तु थेरोंने उस निन्मत्रणको अस्वीकार कर दिया । राजा तब विदा हुए और दूसरे दिन थेरों के स्वागत के लिये तैयारी की । थेर महिन्द तथा उनके साथियों ने मिस्सक पर्वत पर ही रात बिताई और उसी रात को मण्डुक संघ में सम्मिलित हुआ । उस रात को तथा आगे के दिनों में बहुत से अतिशय हुए ।

अगले दिन थेर महिन्द और अन्य थेर अनुराधपुर की राजधानी मे गये । राजा ने राजप्रसाद के अन्दर उनके लिए आसन तैयार कराये । ज्योतिषियों ने उन आसनों को देखकर भविष्यवाणी की कि ये लोग संसार के स्वामी होंगे । ये तम्बपण्णि द्वीप के स्वामी होंगे[1] । राजा थेरों के स्वागत के लिये आगे गया और योग्य अभिवादन तथा आदर के साथ उनको राजप्रासाद में ले गया । थेर महिन्द ने आसनों के बिछाये जाने के प्रकार को देखा और बैठ गये । उन्होंने समझ लिया कि इस द्वीप में 'धम्म' अच्छी तरह स्थापित होगा तथा सारे द्वीप में जड़ पकड़कर फैलेगा । राजा ने उत्तम भोजन परोसे और पाँच सौ महिलाओं को अनुलादेवी की मुख्यता में थेरों की वन्दना के लिये बुलाया और वे स्वयं एक ओर आसन पर बैठ गये । भोजनोपरान्त थेर महिन्द ने राजा तथा अन्य सबको 'पेतवत्थु' 'विमानवत्थु' तथा 'संयुत्तनिकाय' के 'सच्च संयुत्तसुत्त' का उपदेश किया । उपदेश के बाद पाँच सौ महिलाओं ने प्रथम सम्पदा प्राप्त की ।

प्रथम दिन जो लोग मिस्सक पर्वत पर गये थे उन्होंने अपने पड़ोसियों से थेरों के आने का समाचार कहा । इसके परिणामस्वरूप राजप्रसाद के दरवाजे पर भारी भीड़ इकट्ठी हो गई[2] । किन्तु जब उन लोगों को थेरों को देखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, तो उन्होंने कोलाहल करना प्रारम्भ कर दिया । राजाने उनका अभिप्राय जानकर शीघ्र आज्ञा दी कि राजहाथी का हाल सजाकर थेरों के स्वागत करने के लिये तैयार किया जाय । थेर महिन्द वहाँ गये और उन्होंने 'देवदूत सुत्तन्त' का उपदेश दिया[3] ।

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ७६ ।

२. ,, ,, १, पृ० ८० ।

३. अगुत्तानिकाय भाग १, पृ० १३८-१४२ ।

उपदेश के अनन्तर एक सहस्र लोगों ने प्रथम मार्ग का फल प्राप्त किया।

राजहाथी का हाल भी अपर्याप्त रहा, तब नगरके दक्षिणी द्वार पर स्थित नन्दनवन में आसन तैयार करवाये गये। थेर वहाँ गये और उन्होंने वहाँ 'असीविसोपमसुत्त' का उपदेश दिया। (महावंस में इसके स्थान पर 'बालपंडित सुत्तन्त' दिया गया है)। उपदेश के पश्चात् और एक सहस्र लोगों ने 'सोतापत्ति' फल प्राप्त किया। इस तरह थेर महिन्द के श्रीलङ्का आने के दूसरे दिन ढाई सहस्र लोगों ने 'धम्म' धारण किया। थेर महिन्द के उपदेश को श्रीलङ्का वालों के द्वारा समझ लेने से निष्कर्ष निकलता है कि उस समय की भारत की तथा सिंहलद्वीप की भाषाओं में विशेष अन्तर नहीं होगा। इस बात की पुष्टि उत्तरी भारत तथा सिंहल के उस समय के शिलालेखों से भी होती है[1]।

**मेघवन की भेंटः**—सदा की तरह जबकि थेर महिन्द उच्च घरानों की महिलाओं के साथ, जोकि उनके दर्शनार्थ आई हुई थीं, धार्मिक बातें कर रहे थे, सूर्य अस्त होने लगा और थेर महिन्द समय देखकर मिस्सक पर्वत पर जाने के लिये उठे। थेर की इच्छा को समझ कर मन्त्रियों ने राजा को सूचना दी। राजा की आज्ञा से मन्त्रियों ने थेर से रात को वहीं नन्दनवन में रहने की प्रार्थना की, किन्तु थेर महिन्द ने प्रार्थना स्वीकार नहीं की। तब राजा की आज्ञा से थेरों को मन्त्रियों ने मेघवन में निमन्त्रित किया जोकि नगर से न तो अतिदूर और न अतिनिकट था। थेरों ने निमन्त्रण स्वीकार किया और रात को वहीं मेघवन में रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल राजा थेरों के दर्शन करने केलिये गया और मेघवन उनको भेंट में दे दिया। इस दान के समय अनेक अतिशय हुए[2]। इस दानके माहात्म्य के अभिप्राय से समझना आसान है कि इसी मेघवन की भेंट महाविहार की स्थापना का प्रारम्भ था[3], जोकि श्रीलंका का, पश्चात्कालीन कितनी ही शताब्दियों तक, मुख्य विहार रहा। तीसरे दिन थेर ने

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन पृ० ५२।
२. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ८।
३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन पृ० ५३।

अनमतिग्गियसुत्त[1] का उपदेश दिया[2]। चौथे दिन 'अग्गि खंधोपम' सुत्तका उपदेश दिया[3]। इस प्रकार लोगों के समूह को 'धम्म'में स्थित करने और उनको'धम्म'को समझनेमें सहायता करते हुए थेरके वहाँ सात दिन व्यतीत हुए। सातवें दिन थेर ने राजा को 'महाअप्पमादसुत्त' का उपदेश दिया और चेतिय गिरि को लौट आये। (महावंस के अनुसार थेर महिन्द आषाढ़ शुक्ल पक्ष के तेरहवें दिन लौटे थे, क्योंकि वर्षाकाल का चतुर्मास प्रारम्भ था, और वर्षा के चतुर्मास के समय को भिक्खु लोग पूर्णिमा के दिन प्रारम्भ करते हैं, इसलिये महावंस का कथन अधिक ठीक मालूम पड़ता है।) थेर द्वारा राजा को 'अप्पमाद' रहनेके लिए उपदेश देने से राजा ने समझा कि थेर अब भारत लौटने को हैं। यहाँ बुद्ध भगवान् के वचन—'वयधम्मा भिक्खुवे, संखारा अप्पमादेन सम्पादेथा' स्मरण हो आते हैं जो कि उन्होंने अपने महापरिणिव्वाणसे पहले भिक्खुओंको कहे थे। देवानांपिय तिस्स जल्दी से चेतियपर्वत गये और उनकी इच्छा पूछी। थेर महिन्द ने राजा को बताया कि उनका संकल्प अभी लौटने का नहीं है, किन्तु भिक्खु लोगों को वर्षा काल के चतुर्मास में एक ही स्थान पर रहना पड़ता है, इसलिये वे वर्षाकाल में रहने के लिये चेतियपर्वत पर आ गये हैं।

**अरिट्ठ का संघ में प्रवेशः**—उस दिन'अरिट्ठ' अपने बचपन के छोटे-बड़े भाइयों के साथ ( भातुकेहि सद्धि ) संघ में प्रविष्ट हो गये, और उन्होंने शीघ्र ही अर्हन्त पद प्राप्त कर लिया। यह अरिट्ठ उन महाअरिट्ठ से भिन्न थे, जोकि तिस्स की भेटों को अशोक के पास ले गये थे और जिनको अशोक ने सेनापतिकी पदवी ( सेनापतिट्ठान ) से भूषित किया था तथा जो अपनी भानजी अनुला को ( अरिट्ठ नाम अत्तनो भागिनेयं ) संघ में प्रवेश कराने के लिये थेर महिन्द की आज्ञा से थेरी संघमित्ता को भारत से श्रीलङ्कामें लाये[4] थे। तथा जो भारतसे मगसिर में लौटे[5] थे और उन्होंने

---

१. संयुत्तनिकाय, भाग २, पृ० १७८–१९३।
२. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ८१।
३. अंगुत्तर निकाय भाग १, पृ० १२८–१३५।
४. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ९०।
५. „ „ १, पृ० ९८।

श्रीलंका लौटने पर दीक्षा ले ली थी और पाँच सौ मनुष्यों के साथ संघ में प्रविष्ट हो अर्हन्त हो गये[1] थे। यह हो सकता है कि वे अरिट्ठ और ये बाद वाले अरिट्ठ दोनों भाई हों और अन्तर डालने के लिये बड़े के आगे 'महा' शब्द जोड़ दिया गया हो[2], जैसा कि महा और चूल् शब्द जोड़ देने की प्रथा भी है। अरिट्ठ और उसके भाइयों के 'संघ' में दीक्षा लेने के पश्चात् चेतिय पर्वत पर तिस्स ने अड़सठ गुफाएँ बनवानी प्रारम्भ की और अनुराधपुर लौट आये। उस समय बासठ अर्हन्तों ने वहां वर्षाकाल व्यतीत किया।[3] बुद्ध भगवान् के 'महावग्ग' में वर्णित प्रथम वर्षाकाल में भी बासठ अर्हन्त थे। (पाली में बासठ भी लगभग अर्थ में संख्या है।)

वर्षाकाल का चतुर्मास व्यतीत करने पर थेर महिन्द ने राजा से इच्छा प्रगट की कि बुद्ध भगवान् के अवशेष स्थापित करने के लिये 'थूप' (स्तूप) बनवाया जाये। इस प्रकार 'थूपाराम' दागबा (या डागोबा) का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इस थूप के निर्माण काल में देवानांपियतिस्स राजा का 'अभय' नाम का भाई भिक्खु संघ में सौ मनुष्यों के साथ प्रविष्ट हुआ। चेताली गाँवके भी पाँच सौ युवा पुरुष साधुहो गये और इसी प्रकार द्वारमण्डला गांव के भी पाँच सौ पुरुष भिक्खु बन गये। इस प्रकार साधुओं की संख्या तीन सहस्र तक पहुँच गई।[4] थेर महिन्द के प्रभाव और राजा तिस्स के धर्म धारण तथा अरिट्ठ, महाअरिट्ठ और अभय के दीक्षित होने से श्रीलंका में धर्म का बहुत अधिक प्रचार हुआ, जिससे भिक्खुओं की यह संख्या असम्भव नहीं।

**श्रीलङ्का में बोधिवृक्ष का शाखारोपण:**—राजा देवानांपियतिस्स की साली तथा महाअरिट्ठ की भानजी अनुला ने भी, जो कि 'सोतापन्न' थी, भिक्खुनी बनने की इच्छा प्रगट की। थेर महिन्द विनयपिटक के नियमानुसार उसको स्त्री होने के कारण दीक्षा नहीं दे सकते थे, इसलिये उन्होंने

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १०१।
२. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ५३-५४।
३. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ८३।
४. महावंस, अध्याय १७, पृ० ५६-६१।

राजा से कहा कि 'वह थेर महिन्द की बहन, थेरी संघमित्रा के पास श्रीलंका आने का निमन्त्रण भेजें, जिससे कि वह श्रीलंका आकर भिक्खुनी-संघ अथवा भिक्खुनी शासन स्थापित करें।'[१] देवानांपियतिस्स ने महाअरिट्ठ के द्वारा 'धम्मासोक' के पास सन्देश भेजा और साथ में उस बोधिवृक्ष की शाखा लाने को भी कहा जिसके नीचे भगवान् बुद्ध को बोधि प्राप्त हुई थी। अशोक ने किस प्रकार बोधिवृक्ष की शाखा काटी और किस प्रकार वह शाखा श्रीलंका भेजी गई और किस प्रकार देवानांपियतिस्स ने उसको आदर के साथ प्राप्त किया—ये सब बातें समन्तपासादिका[२] और महावंस में भी वर्णन की गई हैं। अशोक ने बोधिवृक्ष के पहरा देने के लिए क्षत्रियों (खत्तिय) के अठारह कुटुम्ब (देवा कुलानि) तथा आठ-आठ कुटुम्ब मन्त्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों, कुटुम्बिकों तथा ग्वालों के तथा आठ-आठ तरच्छ और कलिंग जातियों के भेजे।[३] वह स्थान जहाँ बोधिवृक्ष लगाया गया था बहुत ही पवित्र था और वहाँ पहले तीन पूर्वबुद्धों के बोधिवृक्षों की दक्षिणी शाखायें लग चुकी थीं।[४] बोधिवृक्ष के आरोपण के समय सब देशों के लोग विद्यमान थे।[५] इस वृक्ष के बीजों से उगे हुए पौधे 'जम्बुकोल' बन्दरगाह के पास में 'ब्राह्मणतवक्क' या 'ब्राह्मणतिवक्क' गाँव के द्वार पर, थूपाराम में, 'इस्सरनिम्मान' विहार में, 'पथमचेतिय पव्वत' पर, रोहण प्रान्त के काचर गाँव में, चन्दन गांव में तथा अन्य बत्तीस स्थानों में एक दूसरे से एक-एक योजनकी दूरी पर लगाये गये थे।[६] उस समय से लेकर श्रीलंका के बौद्ध लोगों ने इस बोधिवृक्ष को, जिसके नीचे भगवान् को बोधि प्राप्त हुई थी, सबसे अधिक आदर दिया है और अब भी देते हैं। इस बोधिवृक्ष की ऐतिहासिकता के विषय में कुछ योरोपियन विद्वान् शक करते हैं, किन्तु

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ९० ।
२. " " पृ० ९२ ।
३. " " पृ० ९६ ।
४. " " पृ० ९९ ।
५. " " पृ० १०० ।
६. " " पृ० १०० ।

यह वृक्षारोपण का दृश्य सौ से डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् के सांची स्तूप के पूर्वी द्वार पर खुदा हुआ है।[1] प्रो० रायस डेविड्स का भी यही मत है।[2]

बोधिवृक्ष के आरोपण के अतिरिक्त तिस्स ने धम्म के लिये बहुत से लाभकारी कार्य किये। उसने महाविहार का भवन चेतियविहार और थूपाराम, बुद्ध भगवान् की हँसली (गले की हड्डी) की समाधि तथा अनेक स्थानों में अन्य विहार तथा उपासिका विहार बनवाए। बुद्धशासन के आन्दोलन के कार्य करके तिस्स ने थेर महिन्द से पूछा—'क्या द्वीप में बुद्धशासन की स्थापना हो चुकी ?[3] थेर महिन्द ने उत्तर दिया—शासन की स्थापना तो हो गई, किन्तु इसकी जड़ अभी नहीं जमी। तिस्स के पूछने पर कि वह किस प्रकार जमेगी, थेर महिन्द ने उत्तर में कहा—जबकि तम्बपण्णि द्वीप का निवासी, यहीं के माता-पिता की सन्तान, यहीं पर प्रव्रज्या ले, यहीं विनय सीखे, यहीं पर विनय का संगायन करे, तभी इस द्वीप में बुद्धशासन जड़ पकड़ेगा। भिक्खु अरिट्ठ में ये सब गुण विद्यमान थे। उनके लिए विनयका संगायन करनेके लिये एकमंच तैयार किया गया जहाँ कि मन्त्री मेघवण्णाभय का बनवाया हुआ परिवेण स्थित था। अड़सठ महाथेर जिनमें प्रत्येक के संघ में एक सहस्र भिक्खु थे थूपाराम में एकत्रित हुए। थेर महाअरिट्ठ इसमें आचार्य बने और पाँच सौ भिक्खुओं ने राजा के छोटे भाई मत्ताभय थेर के साथ विनय सीखी।

इस संगीति का वर्णन राजगृह की प्रथम संगीति पर आधारित है। राजगृह की संगीति से इसमें यह अन्तर था, कि राजगृह की प्रथम संगीति 'विनय' और 'धम्म' के नियम बनाने और उनको क्रमशः व्यवस्थित करने के लिए थी जबकि यह संगीति श्रीलङ्का के थेर के द्वारा केवल विनय को सिखाने के लिये थी। इस संगीतिमें अपनो परिषद के लोगोंके साथ राजा (सराजिका च परिचा) विद्यमान थे। राजगृह की संगीति में यह बात नहीं थी। इस तरह बुद्धशासन श्रीलङ्का द्वीप में स्थापित हुआ।

---

१. श्री गाइगर—महावंस के अनुवाद की भूमिका, पृ० २०।
२. प्रो० रायस डेविड्स—बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३०२।
३. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १०२।

राजकुटुम्ब के लोगोंके साथ-साथ सहस्रों लोग शासन में दीक्षित हुए। इसी कारण थेर महिन्द का विशेषण, 'दीपप्पसादको' अर्थात् श्रीलङ्का द्वीप को चमकाने वाले, बहुत ही उपयुक्त है। इतिवुत्तकट्ठकथाकार तथा संयुत्तट्ठ-कथाकार ने इस सगीतिके सात सौ वर्ष बाद अपनी अट्ठकथाओं में लिखा है, कि 'आज भी श्रीलंका में धम्म में दीक्षित होने वाले भिक्खु, महाथेर महिन्द के पथप्रदर्शन पर ही दीक्षित होते हैं।'[1]

**भिक्खुनी शासनः**—श्रीलङ्का में भिक्खुनी शासन की स्थापना के बारे में समन्तपासादिका में इस प्रकार वर्णन है। थेरी 'संघमित्ता (संघमित्रा) के आने तक अनुला तथा उसकी अनुयायिनी महिलाओं ने विशेषतः उन्हीं के लिये बनवाये हुए विहार में रहकर दस शीलों का पालन किया।[2] संघमित्रा के आने पर सब उन्हीं की अध्यक्षता में, संघ में प्रविष्ट हुईं और थोड़े ही समय में अर्हन्त बन गईं।[3] इस विहार का नाम उपासिका विहार था। दीपवंस में यह भी वर्णन है कि संघमित्रा के साथ बहुत सी भिक्खुनी भी आई थीं, जिन्होंने श्रीलंका की भिक्खुनियों को विनय और शील की शिक्षा दी।

**थेर महिन्द का निब्बाणः**—देवानांपियतिस्स ने चालीस वर्ष तक शासन किया और उनके बाद उनके भाई 'उत्तिय' राजा बने। थेर महिन्द उत्तिय के शासनकाल के आठवें वर्ष में 'निब्बाण' को प्राप्त हुए। उस समय ये उपसंपदा से (दीक्षा से) साठवें वर्ष में थे। उस समय असौज की पूर्णिमा थी और ये चेतिय पर्वत पर वर्षाकाल का चतुर्मास बिता रहे थे। यदि उन्होंने बीस वर्ष की अवस्था में, जो कि उपसंपदा के लिये न्यूनतम अवस्था है, दीक्षा ली हो तो श्रीलंका में ये बत्तीस वर्ष की अवस्था में पहुँचे और अस्सी वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए। थेरी संघमित्रा का परिनिर्वाण इससे अगले वर्ष जबकि वे हन्ताढ़क विहार में थीं, हुआ था।[4]

---

१. इतिवुत्तकट्ठकथा, पृ० २५६; संयुत्तट्ठकथा भाग ३, पृ० १२५।
२. समन्तपासादिका, भाग १, पृ० ९१।
३. ,, ,, पृ० १०१।
४. महावंस, पृ० २०, ४८, ४६।

महाथेर महिन्द ने संसार से निर्वाण प्राप्त कर लिया, किन्तु उनके नाम की स्मृति श्रीलङ्का के लोगों के मस्तिष्क में उनके द्वारा की गई श्रीलङ्कावासियों की भलाई के लिए आज भी ताजी है। आज भी अठारह सौ से भी अधिक सीढ़ियाँ चढ़कर यात्री उनके पवित्र निवास स्थान की यात्रा के लिए जाते हैं। उन्हीं के नाम पर चेतियगिरि 'महिन्तले' (महिन्द-स्थल) और वह कन्दरा, जिसमें वे रहते थे, महिन्दु-कन्दरा कहलाती है। इस कन्दरा के कुछ नीचे थोड़ी दूर पर एक छोटी पत्थर की पटिया है जो कहते हैं कि उनके बिस्तर का काम देती थी। ज्येष्ठ की पूर्णिमा के दिन यहाँ एक धार्मिक उत्सव होता है जिसका नाम 'महामहिन्दोत्सव' है और जो उनके राजकीय 'धम्मसन्देश लेकर श्रीलंका में आने की स्मृति में लगता है।[1]

थेर महिन्द के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त अन्य थेरों, राजाओं और श्रावकों के तथा चेतिय और थूपों के भी उल्लेख समन्तपासादिका में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। इसमें महानाग नाम के राजा का वर्णन है, जिसने अपने भाई के साथ विदेश यात्रा की थी और जो वहाँ से लौटकर राजसिंहासन पर बैठा था।[2] कटकन्धकार के थेर पुस्सदेव का भी इसमें उल्लेख है।[3] इन्होंने 'बुद्ध रमणपीति भाण' के धारा जो आनन्द प्राप्त किया था उसे 'मार' ने नष्ट करना चाहा। कहते हैं कि इन्हें एक चेतिय के भाड़ने और साफ करने का काम करते हुए अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई थी, जिससे ये अर्हन्त हो गये। प्रो० रायस डेविड्स कहते हैं कि ये वही थेर हैं जिनका वर्णन सुमंगलविलासिनी में 'आलिन्दक' के महापुस्सदेव के नाम से है,[4] तथा जो महापुस्सदेव के नाम से परिवार ग्रन्थ की सूची में महान् उपदेशक के नाम से विख्यात हैं।[5] किन्तु डा० आदिकरम कहते हैं कि समन्तपासादिका में उल्लिखित कटकन्धकारवासी पुस्सदेव की आर्हन्त्य

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
२. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४७३।
३. ,, ,, पृ० ३७६।
४. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १८६।
५. परिवार ग्रन्थ. पृ० २।

प्राप्ति इन बाद के आलिन्दकवासी थेर की आर्हन्त्य प्राप्ति से भिन्न है।[१] इसलिए प्रो० रायस डेविड्स की बतलाई हुई समानता स्पष्ट नहीं है, और न परिवार ग्रन्थ की सूची वाले महान् उपदेशक पुस्सदेव की इन पुस्सदेव से समानता है।

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि भिक्खु पुस्सदेव और उपतिस्स एक ही गुरु के शिष्य थे और दोनों ही विनय में निपुण थे।[२] ब्राह्मण-तिस्स अकाल के समय इन्हीं दोनों ने विनयपिटक की रक्षा की थी। यह याद रखना चाहिए कि इस समय तक बुद्ध भगवान् के उपदेश गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा मौखिक रूप में चलते थे। इस प्रकार हमेशा उनके किसी भी भाग के लुप्त हो जाने का भय उनके स्मरण रखने वालों की मृत्यु अथवा अकालसे दुर्बल होकर स्मरण शक्तिके अभाव कारण रहता था। जो भिक्खु अकाल के कारण बाहर चले गये थे, अकाल की समाप्ति पर उनके लौटने की कोई गारण्टी भी नहीं थी। इस बड़े भारी संकट को देखकर जिन भिक्खुओं को पाली पाठ याद थे उन्होंने भारी सतर्कता रखी जिससे ग्रन्थ विस्मृत न हो जावें। इस समय साठ भिक्खु जो श्रीलंका से बाहर जाने के लिये समुद्र के किनारे पर पर पहुँच गये थे, दक्षिणी प्रान्त में लौट आये, और जड़ और पत्तियाँ खाकर वहाँ रहे। वे प्रतिदिन त्रिपिटक का वाचन करते थे, जिससे त्रिपिटक के पाठ को भूल न जावें। इस तरह शरीर में जब तक सीधे बैठने की शक्ति रहती, वे सीधे बैठकर पाठ का बाचन करते, जब थक जाते और अपने शरीर को सीधा न रख पाते तो रेत के टीले पर अपना सिर रखकर वाचन चालू रखते। इस तरह पूरे बारह वर्ष तक उन्होंने मूल ग्रन्थों को तथा अट्ठकथाओं को सुरक्षित रखा।[३] किन्तु एक ग्रन्थ—सुत्तपिटक का 'महानिद्देस'—लुप्त हो जाने वाला था। केवल एक भिक्खु इसके पाठका वाचन कर सकते थे। महातिपिटक थेर ने, जो कि चतुनिकायिक तिस्स के गुरु थे, महारक्खित थेर से, जिनकी स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी, प्रार्थना की कि वे इस ग्रन्थको सीखकर याद कर लें। पहले उन्होंने यह कहकर कि हीन चरित्र वाले थेर से वे इस

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

२. समन्तपासादिका भाग १, पृ० २६३।

३. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० ९२।

ग्रंथ को नहीं सीखेंगे, मना कर दिया। किन्तु पश्चात् थेर ने इन्हें समझाकर सहमत कर लिया। और इन्होंने दिन-रात परिश्रम करके उस ग्रंथ के पाठ को कण्ठस्थ कर लिया। इस ग्रन्थ को महारक्खित थेर से औरों ने सीखा।[१] इस प्रकार यद्यपि बाद में वह व्यक्ति जिससे महारक्खित थेर ने इसे सीखा था बहुत दुश्चरित्र प्रमाणित हुआ, परन्तु यह ग्रन्थ हमेशा के लिये लुप्त हो जाने से बच गया।

समन्तपासादिका में उल्लेख है[२] कि थेरवाद थेरउपालिसे चला, जिन्होंने विनय का संगायन प्रथम संगीति में किया था और जो बुद्ध भगवान् के शिष्यों में सबसे बड़े 'विनयधर' थे।[३] इसलिये थेरवादियों में यह पूर्व परम्परा से आया हुआ सिद्धान्त था, कि विनय बुद्ध शासन की आयु है (विनयो नाम बुद्धसासनस्स आयु)[४] किन्तु अकालके समाप्त होजाने पर परियत्ति (त्रिपिटक के पाठ का सीखना) तथा पटिपत्ति (विनय का जीवन में अभ्यास करना) के विषय में विवाद उपस्थित हुआ। मनोरथ-पूरणी में यह उल्लेख है कि परियत्ति बुद्धशासन का मूल है अथवा पटिपत्ति (परियत्ति नुखो सासनस्स मूलं उदाहु पटिपत्ति) इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ और शास्त्रार्थ के पश्चात् पांसुकूलिकों के ऊपर धम्मकथिका विजयी हुए। इस प्रकार परियत्ति को मुख्यता मिली। पांसुकूलिक विनय के द्वारा प्रतिपादित भिक्खुओं के नियमों का पूर्ण पालन करने वाले थे। इस प्रकार पटिपत्ति पिछड़ गई और परियत्ति सर्वोपरि हो गई अर्थात् सुत्त ने विनय को नीचा कर दिया, जब कि पहले से विनय की मुख्यता चली आई थी।

समन्तपासादिका में आचरियों की (आचार्यों की) सूची दी हुई है जिसमें थेर महापदुम, महासुम्म (महासुमन) उपतिस्स तथा पुस्सदेव का उल्लेख है।[५] पुस्सदेव के द्वारा विनय की अर्थसंगति या व्याख्या को उनके शिष्य महातिस्स तथा महापदुमने अस्वीकृत कर दिया था (आचरियो

---

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६४५।
२. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ६२।
३. अंगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २५।
४. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १३।
५. ,, ,, पृ० ६२–६३ तथा 'परिवार' पृ० २–३।

न अभिधम्मिको भूम्यन्तं न जानाति-अर्थात् आचार्य अभिधम्मिक नहीं हैं, वे भूम्यन्तर अर्थात् निवास पटलों (स्थानों) को नहीं जानते।)[१] समन्त-पासादिका में इन दोनों थेरों के मत आदर के साथ ग्रहण किये गये हैं, यद्यपि महापदुम के समान महासुम्म में दक्षता नहीं थी। समन्तपासादिका के अनुसार पुण्णवालियके थेर महातिस्स, थेर महापदुम के समकालीन थे और ये अरण्यवासी थे।[२] इसी प्रकार थेर अनुरुद्धगोधा और करबीक-तिस्स भी थेर महापदुम और महासुम्म के समकालीन थे। सुमङ्गल-विलासिनी के महासिव, तिपिटक महासिव, महासिवत्थेर तथा तिपिटक दीघभाणक महासिव, ये चारों समन्तपासादिका के अनुसार एक ही थेर के नाम हैं।[३]

दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य तिपिटक चूलाभय के बारे में विसुद्धिमग्ग[४] में दी हुई एक कथाकी पुष्टि समन्तपासादिका[५] से होती है, कि इन्होंने त्रिपिटक तो पढ़ लिये थे किन्तु अट्ठकथायें नहीं पढ़ी थीं। इन्होंने डंके की चोट यह घोषणा कर दी थी कि ये त्रिपिटकमें से उपदेश देंगे। भिक्खु लोग इन्हें ऐसा नहीं करने देना चाहते थे। जब ये अपने गुरु के पास गये तो उन्होंने इनसे 'आचरियवाद' के विषय में प्रश्न किये। ये उनका उत्तर नहीं दे सके। इस पर आचार्य ने कहा कि पहले रोहण के तूलाधार पव्वतविहार के महाधम्मरक्खित थेर से जाकर अट्ठकथायें पढ़ो। इन्होंने वहाँ जाकर पूर्णरूप से अट्ठकथायें पढ़ीं। सुमंगलविलासिनी में उल्लेख मिलते हैं कि इन्होंने कई बार लोहपासाद में उपदेश दिया।[६] समन्तपासादिका में उल्लेख है कि ये भिक्खुओं के आपस में उठे हुए मुकद्दमों को तय करने में बिल्कुल निष्पक्ष थे,[७] और अपनी स्मरण शक्ति

---

१. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४६५।
२. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६४४।
३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ८२।
४. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० ९६।
५. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ५९१।
६. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ४४२।
७. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ५९१।

के लिये प्रसिद्ध थे।[१] आचार्य दीघभाणक अभय थेर के बारे में समन्तपासादिका में उल्लेख है कि किस प्रकार इन्होंने चेतियपर्वत विहार को लूटने के लिये आये हुए डाकुओं का आतिथ्य सत्कार किया था[२]। ये पवित्र सन्त तो थे ही, प्रसिद्ध उपदेशक भी थे। एक बार एक स्त्री अपने दुधमुँहे बच्चे को लेकर पाँच योजन से इनके 'अरियवंस पटिपदा' के बारेमें उपदेश को सुनने के लिये आई थी।

राजा मातिकाभय ( ३८-६६ ई० पश्चात् ) के बारे में समन्तपासादिका में इस महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख है कि उसने घोषणा करवा दी थी कि जो कोई किसी भी झगड़े में अभिधम्मिक गोधाके निर्णयको नहीं मानेगा उसको राजा दण्ड देगा[३]। यह घोषणा, राजाने इनके द्वारा चोरीके एक मामले पर सन्तोषजनक निर्णय देने पर, प्रसन्न होकर की थी। यह मामला चेतियगिरि के संघ के सामने लाया गया था और पश्चात् अपील के तौर पर महाविहार के सामने आया था। मामला अन्तरसमुद्दविहार के एक भिक्खु ने दूसरे के ऊपर, नारियल के पीने के पात्र की चोरी के अभियोगमें दायर किया था। ये थेर गोधा, थेर महासुम्म और थेर महापदुम के समकालीन थे[४]। समन्तपासादिका में उल्लेख है कि थेर चूलाभय सुमन भी उसी समय के थे। ये महाविहार में 'विनय' के तात्कालिक आचार्यों में सर्वोपरि थे[५]। डा० मललसेकर के अनुसार श्रीलङ्का में उस समय पाँच महाविहार थे—महाविहार, थूपाराम विहार, इस्सर समणाराम, वेस्सगिरि विहार और चेतियगिरि विहार[६]। समन्तपासादिका के अनुसार दक्षिण से सबसे अधिक भिक्खु अनुराधपुर के महाविहार में आया करते थे[७]।

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५३०।
२. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४७४।
३. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३०७।
४. ,, ,, ३, पृ० ४७८।
५. ,, ,, २, पृ० ३०५।
६. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन, पृ० ५६।
७. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३०६।

ऊपर के वर्णन से डा० आदिकरम यह निष्कर्ष निकालते हैं[1], कि:— (१) प्रथम शताब्दी ई० पूर्व के उत्तरार्ध में बौद्धभिक्खुओं के जीवन में पर्याप्त अन्तर हो गया था और यह समय भिक्खु जीवन में परिवर्तन का बिन्दु था, क्योंकि प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् के थेरों की अपेक्षा, जिनमें सन्तपने की अपेक्षा विद्वत्ता अधिक थी, प्रथम शताब्दी ई० पूर्व के पूर्वार्ध ( राजा दुट्ठगामणि के शासन काल के लगभग ) के थेरों में सन्तपना अधिक था। (२) पाली अट्ठकथाओं में उस समय ( प्रथत शताब्दी ई० पूर्व ) के बीस से भी अधिक थेरों के मत अधिकृत रूप में उद्धृत हैं, जबकि प्रथम शताब्दो ई० पश्चात् के उत्तरार्ध के केवल दो ही थेरों के मत मिलते हैं। लेनगिरिवासी तिस्स राजा महादाट्ठिक ( ६७–७९ ई० पश्चात् ) के शासन काल में[2] तथा दूसरे महापदुम—राजा बसभ ( १२७–१७१ ई० पश्चात् ) के शासन काल में[3] ( ये थेर पांचवी शताब्दीं ई० पश्चात् की अट्ठकथाओं की प्रस्तावनाओं में उल्लिखित अट्ठकथाकार तथा उनके सम॰ कालीन थेरोंके अतिरिक्त हैं।) डा० आदिकरम इसका स्पष्टीकरण करते हैं, कि 'परिवार' ग्रन्थ तथा सिंहली अट्ठकथाओं का अधिकतर भाग प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् तक अपना निश्चित आकार ग्रहण कर चुका था। आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका की प्रस्तावना में लिखा है कि थेर महिन्द विनय को श्रीलङ्का में लाये थे और वह अद्यावधि (यावं अज्जतना) गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा आचार्यों की अक्षुण्ण धारा के रूप में लाई गई है। इसके पश्चात् वे पोराणों की प्रामाणिकता के आधार पर आचार्यों की सूची देते हैं। यदि 'यावं अज्जतना' का अर्थ आचार्य बुद्धघोषका समय होता तो तब तक के आचार्यों के नाम उस सूची में अवश्य होते, किन्तु ऐसा है नहीं। सिंहली अट्ठकथाओं में 'यावं अज्जतना' इस वाक्यांश का सिंहली भाषा का पर्यायवाची वाक्यांश अवश्य होगा और आचार्य बुद्धघोष ने, क्योंकि उनका कार्य सिंहली अट्ठकथाओं का पाली में अनुवाद करने का था, ज्यों का त्यों पाली में अनुवाद 'यावं अज्जतना' कर दिया। इसलिये

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ८७।

२. मनोरथपूरणी ( सिंहली ), पृ० ६६९।

३. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४७१।

यह तथ्य सिंहली अट्ठकथाओं के लिखे जाने के समय के विषय में भी उसी प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् के समय की ओर निर्देश करता है । यद्यपि कभी-कभी अट्ठकथाओं में प्रथम शताब्दी ई० पश्चात् के बाद की घटनाऐं भी आती हैं, जैसे द्वितीय शताब्दी ई० पश्चात् के मध्यकालीन राजा रुद्रदमन[1] तथा राजा महासेन[2] ( ३३४—३६१ ई० पश्चात् ) का उल्लेख समन्तपासादिका में मिलता है । इसी प्रकार राजा बसभ ( १२७-१७१ ई० पश्चात् ) का भी उल्लेख अट्ठकथाओं में है । किन्तु ऐसे उल्लेख बहुत कम हैं । इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि विद्वान् आचार्यों ने अट्ठकथाओं के रूप में वृद्धि तथा ह्रास भी किया है तथा उन्हें समयानुसार व्यवस्थित भी किया है । कम विद्वानों के हाथों उनमें अशुद्ध परिवर्तन भी हुए हैं[3] ।

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि राजा बसभ के समय के थेर महापदुम औषधि ज्ञान के लिये भी प्रसिद्ध थे, किन्तु विनय के नियम का पालन करते हुए, ये उस ज्ञान को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये प्रयुक्त नहीं करते थे[4] ।

उपर्युक्त थेरों के वर्णन के अतिरिक्त समन्तपासादिका में उल्लेख है कि विनय के किसी नियम के विषय में अभयगिरिविहार और महाविहार के थेरों के मध्य राजा मातिकाभय (३८—६६ ई० पश्चात् ) के शासन काल में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था[5] । किन्तु विवाद का निर्णय नहीं हो पाया । जब इस विवाद का समाचार राजा मातिकाभय के पास पहुँचा तो उसने एक मन्त्री को उस विवाद का निर्णय करने के लिये नियुक्त किया । यह मन्त्री संस्कृत के साथ-साथ कई अन्य भाषाओं का भी ज्ञाता था ( पण्डितो भासन्तर कुसलो ) । इसने सफलता पूर्वक इस विवाद को सुलझाया और निर्णय अभयगिरिविहार के पक्ष में

---

१. समन्तपासादिका, भाग २, पृ० २९७ ।
२. ,, ,, ३, पृ० ५१९ ।
३. डा० आदिकरम— अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन ।
४. समन्तपासादिका भाग २. पृ० ४७१ ।
५. ,, ,, ३, पृ० ५८२–८३ ।

रहा। बात यह थी कि मन्त्री ब्राह्मण होने के नाते स्वभावतः संस्कृत का पक्षपाती था। और अभयगिरि विहार के थेरों के ऊपर महायानी संप्रदाय का प्रभाव था, जिनके ग्रंथ संस्कृत में थे। विवाद भी एक शब्द के अर्थ के विषय में होने के कारण भाषा सम्बन्धी था। अभयगिरि विहार के थेर भी शायद इस समय संस्कृत ग्रन्थों को काम में ला रहे थे। इसलिए संस्कृतज्ञ ब्राह्मण मन्त्री का निर्णय संस्कृत की ओर झुका।

समन्तपासादिका में गुह्य ग्रन्थों की भी सूची मिलती है।[1] यद्यपि बुद्ध भगवान् के उपदेश बिना किसी अपवाद के सर्वसाधारण के लिये थे, और उनमें कोई गुप्त अथवा गुह्य उपदेश नहीं था[2] तथापि कुछ शताब्दियों के पश्चात् गुह्य ग्रन्थ रचे जाने लगे। ये श्रीलङ्का में भी, जो कि थेरवादियों का गढ़ है, प्रचलित थे। गुह्य ग्रन्थों के लिए विद्यार्थी में विशेष विनय की आवश्यकता थी।[3] आचार्य के सामने अपने आपको समर्पित करते हुए विद्यार्थी को कहना चाहिए—'मैं अपने आपको आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।' जो ऐसा नहीं करता वह धृष्ट और उच्छृङ्खल माना जाता है। आचार्य उसको न तो सिद्धांत ग्रन्थ पढ़ाने की कृपा करते हैं और न गुह्य ग्रंथ ही सिखाते हैं (गुह्यं ग्रंथं न सिक्खापेति)। इस बात की पुष्टि पपंचसूदनी और मनोरथपूरणी से भी होती है।[4] इन अट्ठकथाओं में उल्लेख है कि जो भिक्खु आचार्य की उचित विनय नहीं करता, उसको पाली ग्रंथ-तिपिटक, अट्ठकथायें, धम्म कथावन्थ तथा गुह्य ग्रंथ नहीं पढ़ाये जाते। इस उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि थेरवादी इन गुह्य ग्रन्थों को स्वीकार करते थे। उनके अपने मान्य गुह्य ग्रन्थोंके अतिरिक्त वण्णपिटक आदि ऐसे अन्य ग्रन्थ भी श्रीलङ्का में विद्यमान थे, जिनका थेरवादी यह कहकर बहिष्कार करते थे कि वे बुद्ध भगवान् के द्वारा प्रतिपादित नहीं हैं। समन्तपासादिका में इन ग्रन्थों की सूची इस प्रकार दी गई हैं:[5]—वण्णपिटक, अंगुलिमालपिटक, रट्ठपाल गज्जित, आलवकगज्जित, गुल्हउम्मग्ग तथा

---

१. समन्तपासादिका (सिंहली) भाग २, पृ० ५।

२. दीघनिकाय, पृ० १००।

३. विसुद्धिमग्ग, भाग १, पृ० ११५।

४. पपंचसूदनी भाग २, पृ० २६४; मनोरथपूरणी (सिंहली), पृ० ८५४।

५. सामन्तपासादिका (सिंहली), भा २, पृ० ५।

गुल्हविनय। सारत्थप्पकासिनी में गुल्ह उम्मग्ग के स्थान पर वेतुल्लपिटक अथवा वेदुल्लपिटक है, और इन ग्रन्थों को बनावटी कहा गया है।[१]

सुमंगलबिलासिनी तथा मनोरथपूरणी में बीच का मत अपनाया गया है। इनके अनुसार उपरोक्त ग्रन्थों में से उन्हीं का बहिष्कार करना चाहिए, जो कथाओं तथा अन्य विकारों के नियन्त्रणको नहीं प्राप्त करते। इनके अनुसार ऊपर दी गई समन्तपासादिका की सूची में से अन्तिम तीन ग्रन्थ और बेदुल्लपिटक बहिष्कार करने योग्य हैं।[२]

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी ऐसे हैं जिनका प्रथम तीन संगीतियों में संगायन नहीं हुआ किन्तु जो थेरवादियों द्वारा स्वीकार कर लिये गये हैं। समन्तपासादिका में इन ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है:[३]— कुलुम्बसुत्त, राजोवादसुत्त, तिक्खिन्दियसुत्त, धातु परिवट्टसुत्त, नन्दपिनन्दसुत्त, पंचकथावत्थु, धातुकथा, अरम्मणकथा, असुभकथा, ञाणवत्थक विज्जाकदम्बक, मग्गकथा तथा बोधिकरण्डक। उसी जगह वर्णन है कि इनमें से मग्गकथा, अरम्मणकथा, बोधिकरण्डक ञाणवत्थक तथा असुभकथा में सैंतीस बोधि पक्खिय धम्मों का विश्लेषण है। अट्ठसालिनी के अनुसार महाधातुकथा जो कि अभिधम्मपिटक में कथावत्थु के स्थान पर कुछ लोगों द्वारा स्वीकृत की गई थी शायद इस उपरोक्त सूची की धातुकथा ही है। थेरवादियों ने इसका बहिष्कार इसलिए किया, कि इसमें कोई नवीन बात नहीं है (महाधातु कथायं अपुव्वं नत्थि)[४] ऐसा ही दूसरा ग्रन्थ सीलूपदेस है जिसको सारिपुत्त का रचा हुआ बतलाया जाता है।[५]

यद्यपि थेर वादियों ने इन अथेरवादी ग्रन्थों का बहिष्कार किया, किन्तु बादमें बिना जाने धीरे-धीरे इनको थेर वादियोंने स्वीकार कर लिया जबकि ये विरोधी रूप में नहीं, अपितु बुद्ध भगवान् और उनके जीवन की

१. सारत्थप्पकासिनी भाग २, पृ० २०१।
२. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५६६, मनोरथपूरणी (सिंहली, पृ० ७६।
३. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० ५।
४. अट्ठसालिनी, पृ० ४।
५. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० ५।

घटनाओं को अलौकिक रूप में वर्णन करने वाले रूप में मान्य हुए। फाह्यान ने श्रीलंका में जब किसी भारतवासी थेर को बुद्ध भगवान् के बारे में किसी गुह्य ग्रंथ का पाठ याद करते और उनके पात्र के भूत और भविष्य इतिहास को बतलाते सुना तो उसने उसको लिखना चाहा। परन्तु थेर ने कहा कि यह थेरवादी धम्म ग्रन्थ नहीं है। मैंने इसे मौखिक परंपरा द्वारा सीखकर कण्ठस्थ किया है और उसी को यहाँ दुहरा दिया है।

बौद्ध चेतिय एवं विहारों और महत्वपूर्ण स्थानों के बारे में भी उल्लेख, समन्तपासादिका में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं, कि कौनसा स्थाय कहाँ पर स्थित है और उसको किसने किस कारण से बनवाया था अथवा वह क्यों प्रसिद्ध हैं।

थेर महिन्द के श्रीलङ्का में आने से पहले चेतिय पर्वत का नाम 'मिस्सक पर्वत' और बाद में उसका नाम मिहिन्तले, थेर महिन्द की स्मृति को स्थिर रखने के लिये पड़ गया। थेर महिन्द ने श्रीलंका में प्रथम वर्ष का चतुर्मास चेतिय पर्वत पर ही किया था और थेरी संघमित्रा द्वारा भारत से लाये गये बोधिवृक्ष की पौध अनुराधपुर से लाकर यहाँ पर भी लगाई गई थी[1]। समन्तपासादिका के साथ पपंचसूदनी में भी उल्लेख है कि यहीं पर थेर मलियदेव ने 'छछक्कसुत्त' का उपदेश दिया था, जिसमें साठ भिक्खुओं को अर्हन्त पद प्राप्त हुआ था[2]। समन्तपासादिका में उल्लेख है[3], कि राजा कुटकण्ण तिस्स के समय में यहाँ के चेतिय विहार में दीधभाणक अभयथेर रहे थे, जिन्होंने डाकुओं के दल का आतिथ्य सत्कार करके उनको वश में किया और आगे से वे उस विहार के रक्षक बन गये।

अनुराधपुर के महाविहार के विषय में समन्तपासादिका में उल्लेख है कि यह श्रीलंका के विहारों में सबसे बड़ा था और इसे देवानांपिय तिस्स ने थेर महिन्दके श्रीलंका आने के थोड़े समय पश्चात् ही बनवाया था[4]। यहाँ के बोधिवृक्ष के विषय में इसमें वर्णन है कि किस प्रकार यह भारत से श्रीलंका में लाया गया और अनुराधपुर के मेघवन में

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ८३।
२. " " १००; पपंचसूदनी (सिंहली) पृ० १०२४।
३. " भाग २ पृ० ४७४।
४. " " पृ० ३१३।

आरोपित किया गया।[1] तमिल आक्रान्ताओं ने यद्यपि बहुत से विहार नष्ट कर दिये थे, किन्तु इसको हाथ भी नहीं लगाया। यह शायद इसलिये हुआ कि तमिल (हिन्दू) लोग भी इस वृक्ष को पवित्र मानते हैं और इसे नष्ट करने में पाप समझते हैं।

समन्तपासादिका में वर्णन मिलता है कि थूपाराम की रचना किस प्रकार हुई और उसमें बुद्ध भगवान् के अवशेष किस प्रकार स्थापित किये गये।[2] इसमें यह भी कहा गया है कि बोधिवृक्ष के आरोपण से इसके चेतिय की पवित्रता और भी अधिक बढ़ गई थी।[3] वहीं पर यह भी उल्लेख है कि अनुरधापुर में इस्सरसमणाराम (जो आजकल इसुरुमुनिय कहलाता है) तथा वेस्सगिरि विहार ये दो महत्वपूर्ण विहार थे। यहाँ पर भी बोधिवृक्ष की पौध देवानांपियतिस्स ने लगवाई थी। छातपव्वत विहार का उल्लेख भी इसमें आता है।[4] इसी जगह देवानांपियतिस्स को पृथ्वी के नीचे से धन और रत्न प्राप्त हुए थे जिनको उसने अपने मित्र महाराज अशोक के पास भारत में भेजा था। इसमें पथमचेतियके विषय में उल्लेख है कि यह उस जगह पर बना था जहाँ थेर महिन्द भारत से आकाश मार्ग से आकर सर्व प्रथम श्रीलङ्का की भूमि पर खड़े हुए थे।[5] यह अनुराधपुर के पूर्व में है। इस स्थान पर भी बोधिवृक्ष से उगी हुई पौध लगाई गई थी।[6] समन्तपासादिका में देवानांपियतिस्स के द्वारा बनवाये हुए जम्बुकोल विहार का भी उल्लेख है।[7] इसमें उल्लेख है कि जब तिस्स दत्त इस विहार में आया तो उसने एक भिक्खु को झाड़ू लगाते हुए देखा जो कि सर्व पापों से दूर था।[8] कल्याणी चेतिय के बारे में इसमें

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ९०–१०० ।
२. ,, ,, पृ० ८३ ।
३. ,, ,, पृ० १०० ।
४. ,, ,, पृ० ७४ ।
५. ,, ,, पृ० ७९ ।
६. ,, ,, पृ० १०० ।
७. ,, ,, पृ० ९८ ।
८. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० ३७७ ।

कहा गया है कि भगवान् बुद्ध यहाँ 'निरोध समापत्ति' में प्रविष्ट हुए थे।[1] काचरग्राम महाविहार में देवानांपिय तिस्स ने बोधिवृक्ष की पौध लगवाई थी।[2] दीघवापी में सद्धातिस्स ने एक चेतिय और एक महाविहार बनवाया था। समन्तपासादिका में इस चेतिय के बारे में उल्लेख है कि इस स्थान पर भी बुद्ध भगवान् ने विहार किया था।[3]

समन्तपासादिका में श्रीलङ्का के सर्वप्रथम चेतिय के बनवाये जाने के बारे में वर्णन है।[4] थेर महिन्द ने देवानांपियतिस्स से कहा कि उन्होंने बहुत दिनों से बुद्ध भगवान् (के चेतिय) की वन्दना नहीं की, इसलिये वे चेतिय-वन्दना के लिए भारत लौट जाना चाहते हैं। राजा ने उनका अभिप्राय समझकर एक थूप (स्तूप) शीघ्र ही बनवा दिया। इसके बाद उसने एक-एक योजन पर थूप बनवाए। दुट्ठगामणि ने जब तमिलों पर चढ़ाई की थी तो अपने भाले और झण्डे पर भी थूप बना लिये थे।[5]

समन्तपासादिका में उपदेशक या अध्यापक भिक्खुओं की योग्यता के बारे में भी उल्लेख है।

इसमें एक भिक्खु[6] का उल्लेख है जो अनुराधपुर की एक दासी का पुत्र था। वह दासी अपने मालिक को छोड़कर किसी पुरुष के साथ रोहण प्रान्त में भागकर चली गई थी। वहाँ उन दोनों के यह पुत्र हुआ जो बड़ा होने पर दीक्षित हो गया। जब उसको मालूम हुआ कि वह दासी का पुत्र है और विनय के नियमानुसार वह बिना मालिक की आज्ञा प्राप्त किये दीक्षा नहीं ले सकता तो वह अनुराधपुर गया और उसने मालिक से उचित आज्ञा प्राप्त की। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय श्रीलङ्का में दासप्रथा थी और दास-दासियों पर ही नहीं, उनकी सन्तानों पर भी मालिक का अधिकार होता था।

---

१. समन्तपासादिका भाग १, पृ० ८६।
२. ,, ,, पृ० १००।
३. ,, ,, पृ० ८६।
४ ,, ,, पृ० ८३।
५. समन्तपासादिका (सिंहली), भाग २, पृ० ३४-३५।
६. ,, ,, ,, पृ० १७८।

समन्तपासादिका से पता चलता है कि श्रीलङ्का में राजा और प्रजा भिक्खु लोगों का बहुत आदर करते थे और विद्वान् भिक्खुओं को केवल संघ के भिक्खुओं के ही नहीं, अपितु श्रावकों के भी मुकद्दमे तय करने के लिये नियुक्त किया जाता था।[1]

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि माता-पिता के अतिरिक्त दस अन्य ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी सुश्रूषा भिक्खु को उनके अस्वस्थ होने पर करनी चाहिए।[2] वे ये हैं:—छोटे और बड़े भाई, छोटी और बड़ी बहिनें, छोटी और बड़ी मौसियाँ, ताऊ और चाचा, बूआ और मामी। इनके बच्चों की अस्वस्थता में अपने कुटुम्ब की सात साखों तक सुश्रूषा करने में भी विनय-नियम नहीं टूटता। यदि सगा बहनोई या सगी भावज अस्वस्थ है तो उनको भी वह स्वयं औषधि दे सकता है। यदि वे सगे नहीं हैं, तो भिक्खु को अपनी बहन या भाई या बच्चों के द्वारा औषधि दिलवानी चाहिए। भिक्खु को अपने गुरु के माता-पिता के साथ भी ऐसा ही करना चाहिए, किन्तु औषधि देते समय औषधि का स्वामित्व गुरु में परिवर्तित कर देना चाहिये, कि 'यह गुरु की ओर से है।' गुरुको भी शिष्य के माता-पिता के लिये ऐसा ही करना चाहिए। यदि कोई आगन्तुक डाकू या लड़ाई में हारा हुआ राजा या सामन्त अथवा कोई गरीब नागरिक या ग्रामीण बीमार होकर विहार में आवे, चाहे वह भिक्खु का सम्बन्धी भी न हो, तो भी उसकी सुश्रूषा बिना किसी लाभ की आशा किये करनी चाहिए।

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि चेतिय पर्वत के एक प्रसिद्ध थेर ने विहार को लूटने के लिये आये हुए डाकू को भोजनादि देकर आतिथ्य किया और इस आतिथ्य के कारण डाकू ने डाका डालने का कार्य छोड़ दिया और विहारका रक्षक बन गया। इस पर अन्य भिक्खुओंने उस थेर पर डाकू को विहार की सम्पत्ति देने का अभियोग लगाया किन्तु थेर ने प्रमाणित कर दिया कि उसका यह कार्य उचित था।[3]

---

१. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ३०७।
२. ,, ,, पृ० ४६९।
३. ,, ,, पृ० ४७४।

समन्तपासादिका में कहा गया है कि काहापण सर्वमान्य सिक्का समझा जाता था और यह सोने अथवा चाँदी का बनता था, अथवा सीसे का बना हुआ साधारण भी होता था।[1] मासक अथवा लोहमासक कम कीमत वाला सिक्का होता था, जो ताँबे अथवा लकड़ी अथवा लाख का बनाया जाता था। इसके ऊपर मोहर या ठप्पा होता था—(रूप समुट्ठापेत्वा)।[2] समन्तपासादिका से हमें ज्ञात होता है कि मगध-सम्राट सेनिय (श्रेणिक) बिम्बसार के समय में काहापण बीस मासक के बराबर होता था, क्योंकि काहापण का चतुर्थ भाग पाँच मासक के बराबर बताया गया है।[3] आगे इसमें बताया गया है कि यह कीमत पुराने समय के नील काहापण की है (पोराणस्स नील काहापणस्स वसेन)। अन्य रुद्रदामक की नहीं जो कि शुद्ध चाँदी का होता था। डा० बापट के अनुसार कदाचित ये रुद्रदामक सिक्के उन प्रसिद्ध क्षत्रप सम्राट रुद्रदमन (१५४ ई० पश्चात्) के हैं जो अपने गिरनार (काठियावाड़) के अलंकृत गद्य में लिखे हुए संस्कृत शिलालेखों के लिए विख्यात हैं। कतिपय सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में 'राज्ञो क्षत्रपस जयदाम पुत्रस महाक्षत्रप—स रुद्रदामस' इस प्रकार का लेख है। इसी प्रकार के लेख उनके पुत्र रुद्रसीहसके सिक्कों पर भी हैं। जातकट्ठकथा में भी कथन है कि चार मासक पाद का मूल्य काहापण पाद (कार्षापणके चतुर्थ भाग)से कम है।[4] डा० बापटका विचार है कि बाद में उस काहापण का मूल्य गिर गया था और यह सोलह मासक के बराबर रह गया था। इसके लिये वे मनुस्मृति का उद्धरण देते हैं।[5] (प्राचीन सिक्कों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञानके लिए डा० भाण्डारकर के 'कारमाइकेल एन्शिएण्ट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स लेक्चर्स, ३-५ सन् १९२१' तथा श्री बी०सी० ला की पुस्तक 'बुद्धिस्टिक स्टडीज' के अध्याय 'न्यूमिस्मेटिक्स' को देखें।)

★★

---

१. समन्तपासादिका भाग ३, पृ० ६८९।
२. ,, ,, पृ० ३९०।
३. ,, भाग २, पृ० २९७।
४. जातकट्ठकथा, निपात ३, पृ० ४४८।
५. मनुस्मृति, अध्याय ८, चरण १३५-३६ (अट्ठसालिनी के नागरी संस्करण की भूमिका।)

# चतुर्थ अध्याय

## सुत्तपिटक की अट्ठकथायें

### १. सुमंगलविलासिनी

सुमंगलविलासिनी आचार्य बुद्धघोष की निर्विवाद रचना है। यह सुत्तपिटक के प्रथम ग्रन्थ दीघनिकाय के ऊपर उनके द्वारा लिखी गई अट्ठकथा है। इस अट्ठकथा को उन्होंने सुमंगलपरिवेण के थेर दाठ्ठनाग की प्रार्थना पर लिखा था। डा० आदिकरम का अनुमान है, कि इस अट्ठकथा का नामकरण आचार्य बुद्धघोष को इसी परिवेण के नाम ने सुझाया था और इसी के नाम पर उन्होंने इस अट्ठकथा का नाम सुमङ्गलविलासिनी रखा था।[1] इस अट्ठकथा की भाषा विसुद्धिमग्ग तथा समन्तपासादिका की अपेक्षा कम जटिल और कम दुरूह है। इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष के गम्भीर पांडित्य तथा सर्वतोमुखी विद्वत्ता की झाँकी मिलती है। यह अट्ठकथा ऐतिहासिक सूचनाओं तथा लोककथाओं से भरी पड़ी है। इसमें ऐसे वर्णन और निर्देश बहुसंख्या में मिलते हैं, जो कि बुद्धकालीन भारत तथा थेर महिन्द के पूर्वापरकालीन श्रीलंका के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं दार्शनिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। प्राचीन भारत और श्रीलङ्का के खेलों, मनोरंजनों रीति-रिवाजों तथा भौगोलिक अवस्थाओं का वर्णन इसमें बड़ी सावधानी के साथ किया गया है।

विसुद्धिमग्ग तथा समन्तपासादिका की रचना के पश्चात्, सुत्तपिटक के ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में यह सबसे पहले लिखी गई थी, इसी कारण इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं की रचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, कि "पूज्य बुद्ध भगवान् तथा अनुबुद्धों के द्वारा, दीर्घसूत्रों में वर्णन किये गये, आगमोत्तम 'दीघनिकाय' की व्याख्या करने के लिए, तीन संघ की वन्दना करने से जिनके मस्तिष्क पवित्र और शान्त हो गये हैं, तथा व्याख्या

१. सुमङ्गलविलासिनी, हेवा वितरण संस्करण, पृ० ७८०।

करने में आने वाले सारे विघ्न जिनके दूर हो गये हैं, उन पाँच सौ थेरों के द्वारा अट्ठकथायें, प्रारम्भ से ही बार-बार कथनकी गई थीं, तथा प्रज्ञाशाली और मेधावी थेर महिन्द के द्वारा भारत से श्रीलंका में लाई गई थीं और श्रीलंकावासी लोगों की कल्याण कामनासे, सिंहली भाषा में परिणत कर दी गई थीं। थेरसंघ के अनुसार, 'धम्म' का मार्ग दिखानेके लिये दीपकके समान और यथार्थ व्याख्या करने में प्रवीण, महाविहारवासी थेरों की व्याख्या की अवहेलना न करके, भव्य लोगों की कल्याण कामना तथा आनन्द के लिये और 'धम्म' को चिरस्थायी रखने के लिये, पुनरुक्तियों को बचाते हुए, सिंहली भाषा को हटाकर, त्रिपिटक की भाषा के समान पाली भाषा में, उन्हीं (सिंहली) अट्ठकथाओं का (पाली में) भाषान्तर करके, मैं व्याख्या करूँगा।" सुत्तनिकाय की अन्य अट्ठकथाओं की तरह सुमङ्गल-विलासिनी में भी आचार्य बुद्धघोष ने अपने विसुद्धिमग्ग का उल्लेख किया है, कि "विसुद्धिमग्ग में भले प्रकार वर्णन किये गये विषय का मैं यहाँ प्रतिपादन नहीं करूँगा। आगमट्ठकथाओं के साथ रखा हुआ विसुद्धिमग्ग, अपने विषय की, जिसका कि विसुद्धिमग्ग में वर्णन कर दिया है अच्छी तरह व्याख्या करेगा। इस प्रकार ऐसा करके अट्ठकथाओं को साथ रखकर पढ़ने से, बालों (अनभिज्ञों को निकाय का अर्थ अच्छी तरह समझ में आवेगा।"

आचार्य बुद्धघोष के अनुसार सुत्तनिकायों के सुत्त चार प्रकार के हैं:—(१) अत्तज्झासयो—जिन सुत्तोंका भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपनी इच्छा या प्रेरणा से प्रतिपादन किया है। (२) परज्झासयो—जिन सुत्तों का उन्होंने दूसरों की प्रेरणा से कथन किया है। (३) पुच्छावसिको—जिन सुत्तोंको उन्होंने प्रबुद्ध थेरोंके प्रश्नोंके उत्तरमें कहा है। (४) अट्ठुप्पतिको—जिन सुत्तों का प्रतिपादन उन्होंने अपने अन्य सुत्तों को स्पष्ट करने के लिये किया है। (इन्हीं सुत्तों में अट्ठकथाओं का प्रथमरूप है)। इसमें से प्रथम प्रकार के सुत्तों के उदाहरण—महासतिपट्ठान आकंखेयसुत्तम्, वत्थसुत्तम् इत्यादि हैं। द्वितीय प्रकार के सुत्तों के उदाहरण—चूलराहुलवाद, महाराहुलवाद, धम्मचक्कपवत्तन आदि हैं। तृतीय श्रेणी के सुत्तों के उदाहरण—मारसंयुत्त, देवतासंयुत्त, सक्कपञ्हसुत्तम्, सामञ्ञफलसुत्तम्

१. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० २।

आदि हैं । चतुर्थ प्रकारके सुत्तोंके उदाहरण—धम्मदायादसुत्तम्, चुल्ल-सीहनाद, अग्गिवखण्डुपमा, ब्रह्मजालसुत्तम् इत्यादि हैं[1] ।

सुमंगलविलासिनीमें हमें भिक्खुओंके दैनिक जीवन की सूचनायें भी मिलती हैं । दिनके समय भिक्खुको इधर-उधर टहलकर और शान्त बैठकर अपने मस्तिष्कसे सारे विघ्नोंको दूर करना चाहिए । रात्रि के प्रथम प्रहर में उसको लेट जाना चाहिए और अन्तिम प्रहरमें उठकर उसको इधर-उधर टहलना अथवा शान्त होकर बैठना चाहिये । बहुत सवेरे उठकर उसे चेतिय और बोधिवृक्षके चारों ओर की भूमिको साफ करना चाहिए । इसके पश्चात् बोधिवृक्षको सींचना चाहिए, तथा अपने पीने और स्नानके लिये जल भरकर रख लेना चाहिये । इसके अनन्तर उसे अपने गुरू के प्रति करणीय सारे कर्त्तव्य पूर्ण करने चाहिये । शरीर शुद्धि समाप्त कर चुकने के पश्चात् उसे अपने निवास स्थानमें प्रवेश करके, पृथ्वीपर आसन जमाकर, कम्मट्ठानका चिन्तवन करना चाहिये । भोजनके लिये जानेका समय हो जानेपर, उसको ध्यानसे उठकर, दान-पात्र और चीवर लेकर सर्वप्रथम बोधिवृक्षके पास जाकर उसकी वन्दना करनी चाहिये । इसके पश्चात् भिक्खा (भिक्षा) के लिये गाँवमें प्रवेश करके भोजन प्राप्त करना चाहिये । यथेच्छित दान ले चुकनेपर, धर्म श्रवणकी इच्छासे एकत्रित हुए लोगोंको धर्मोपदेश देना चाहिए । तदन्तर विहारमें वापिस जाना चाहिये ।[2]

सुमंगलविलासिनीमें भगवान् बुद्धको तथागत कहने के निम्नकारण कथन किये गये हैं:—( १ ) वे भी संसार में तथा, अर्थात् उसी प्रकार अवतरित्त हुए हैं, जिस प्रकार उनके पूर्व के अन्य बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। ( २ ) वे भी उसी तरह जन्म लेते ही सात पद चले और उसी तरह परि-निव्वाणके पश्चात् संसार से चले गये । ( ३ ) वे उसी तरह तथा अर्थात् सत्य के लक्षणसे युक्त थे । ( ४ ) वे तथाधम्म ( सत्यधर्म ) से सर्वोपरि सम्बुद्ध हैं । ( ५ ) उन्होने तथाधम्म ( सत्यधर्म ) को देख लिया है । (६) वे तथाधम्म ( सत्यधर्म ) का उपदेश देते हैं । ( ७ ) वे तथाधम्म (सत्यधर्म)

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ५०–५५ ।
२. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १८६–८७ ।

के अनुसार आचरण करते हैं । ( ८ ) वे अन्य बुद्धोंके समान सबको प्रभावित अथवा सबका दमन करते हैं[1] ।

इन उपर्युक्त बातों का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है:—

१—बुद्ध भगवान् उसी प्रकार संसारमें आये-अर्थात् जिस प्रकार विपस्सिन, सिक्खी, वेसभु, ककुसंघ, कोनागमन, कस्सप आदि पूर्वबुद्ध संसारमें आये थे । उन्होंने दस पारमिताओंके पालन द्वारा तथा शरीर, चक्षु, धन, राज्य, पुत्र और स्त्री आदि के (ध्यान) द्वारा, लौकत्थचरिय ( ज्ञानके लिये अध्यवसाय ) और बुद्धत्थचरिय (बोधिके लिये अध्यवसाय) के अभ्यास द्वारा चार सम्मप्पधानों ( सच्चे प्रयत्नों ), चार इद्धिपादों ( आश्चर्यपूर्ण कार्यों ) पाँच इन्द्रियों, दस बलों, सप्तबोज्भंगों (सप्तवोध्यंगों) तथा अष्टांग धर्मरूप मार्गके अभ्यास द्वारा बोधि प्राप्त की थी, उसी प्रकार बुद्ध भगवान् ने भी प्राप्त की थी ।

२—वे उसी प्रकार चले—अर्थात् पूर्वबुद्धोंकी तरह जन्म लेते ही बुद्ध भगवान् भी उत्तर की ओर सप्तपद रखकर चले थे । चारों ओर देख कर वे भी श्वेत छत्रके नीचे बैठे थे । और उन्होंने भी घोषणाकी थी कि 'मैं संसार में प्रथम, मुख्य तथा प्रधान हूँ । यह मेरा अन्तिम जन्म है और भविष्यमें मेरा और कोई जन्म नहीं होगा ।'

बुद्ध भगवानने भी पूर्वबुद्धों के समान इन्द्रिय सुखको त्याग से, घृणा और वैरको मैत्री-भावनासे, जड़ता और आलस्यको ज्ञानादिसे नष्ट किया था ।

३—वे तथाके लक्ष्य अथवा लक्षणसे युक्त हैं—अर्थात् पूर्वबुद्धोंकी तरह उन्होंने पंचभूतों ( पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा आकाश ) को चेतना, रूप, इन्द्रिय-ज्ञान, दर्शन, संभोग, चंचलविचार, निश्चयात्मक विचार आनन्द, सुख और शुद्धि के सच्चे स्वरूपको जान लिया था ।

४—वे तथाधम्म अर्थात् सत्यधर्म से सर्वोपरि सम्बुद्ध थे—अर्थात्

---

१. 'तथागत' की व्याख्या के लिये श्री आर० चार्ल्स का लेख जॉर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९८ पृ० ३११ तथा डा० वाल्लेसर का लेख तैस्को यूनीवर्सिटी की पत्रिका १९३० में देखें ।

उन्होंने चार आर्ष सत्योंको, जोकि तथाधम्मस्वरूप से प्रसिद्ध हैं, जानलिया था। साथ में उन्होंने पटिच्च समुप्पादों (प्रतीत्य समुत्पादों) को भी जान लिया था।

५—उन्होंने सत्यका साक्षात्कार कर लिया था—अर्थात् उन्होंने चार भूतोंके, मनुष्य लोक तथा देवलोकमें होने वाले सम्पूर्ण रूपोंका साक्षात्कार कर लिया था। देव सृष्टि तथा मनुष्य सृष्टिके सम्पूर्ण विषयोक उन्होंने सुन लिया था, ज्ञान लिया था, स्पर्श कर लिया था, और विचार लिया था।

६—वे तथाधम्म ( सत्य धर्म ) के उपदेष्टा हैं—अर्थात् 'मार' के जीतनेके द्वारा बोधिप्राप्त करनेसे लेकर परिनिर्वाण प्राप्ति तक जो उन्होंने उपदेश दिया वह अर्थमें, व्याख्यामें, दृष्टिकोणमें, वासना, वैर तथा भ्रमके नाश करनेमें, पूर्ण था और सत्य था।

७—वे तथाधम्म ( सत्यधर्म ) के अनुसार आचरण करने वाले थे—अर्थात् जो उनके मन में था, वही वचनसे निकलता था और उसी के अनुसार वे कर्म करते थे। वे वही करते थे, जो कहते थे या विचारते थे।

८—वे सबको जीतते थे—अर्थात् उन्होंने स्वर्गके सर्वोच्च ब्रह्मलोक से लेकर अवीचि नर्क तककी सर्व वस्तुओं को और सर्व अनन्त धातुओंको अपने शील, समाधि और प्रज्ञा से जीत लिया था। उनके समान संसार में कोई अन्य न था। वे राजाओंके भी राजा, देवों के भी देव, इन्द्रोंके भी इन्द्र और ब्रह्माओंके भी स्वामी थे[1]।

सुमंगलविलासिनीमें हमें बुद्ध भगवान्के पाँच कर्त्तव्योंका भी उल्लेख मिलता है[2]। वे इस प्रकार है—भोजनके पूर्व तथा पश्चात्के कर्त्तव्य, रात्रिके प्रथम, मध्य तथा अन्तिम प्रहरके कर्त्तव्य।

( १ ) भोजनके पूर्वके कर्त्तव्यः—इनमें निम्न लिखित बातें सम्मिलित थीं—वे प्रातः बहुत सवेरे, ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शरीर शुद्धि करते थे तथा भोजन के लिये विहार करते समय तक एकान्त में बैठते थे।

---

१. सुमगलविलासिनी भाग १, पृ० ५६—६८।
२. ,, ,, पृ० ४५-४८।

भोजन चर्या के पूर्व चीवर ग्रहण करके, पेटी बाँधकर, दान-पात्र लेकर, कभी एकाकी, तथा कभी भिक्खुओं के साथ, भोजनचर्या के लिये कभी स्वाभाविक रूप में जाते थे तथा कभी हवा से गन्तव्य मार्ग को साफ करवाने आदि के आश्चर्यों को दिखाते जाते थे। मधुकरी भिक्षा से प्राप्त भोजन को पा लेने के पश्चात् वे दाता लोगों को, उनकी बुद्धि और योग्यता के अनुसार, धम्म का उपदेश देते थे।

धर्मोपदेश सुनने के पश्चात्, कुछ लोग तीन प्रकार के संघ की शरण प्राप्त करते थे, कुछ लोग अपने को शीलों से प्रतिष्ठित करते थे, कुछ लोग प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय मार्ग के पवित्र फल ( सामञ्ञफल ) को प्राप्त करते थे और कुछ लोग संसार को त्याग कर दीक्षा लेकर अर्हत्पद को प्राप्त करते थे। उपदेश दे चुकने पर भोजन-चर्या से लौटे हुए भिक्खुओं की प्रतीक्षा करके, वे अपने विहार को वापिस आते थे। जब सब लौटकर आ जाते तो वे अपनी गंधकुटी में प्रवेश करते थे।

( २ ) भोजन के पश्चात् के कर्त्तव्य—भोजनोपरान्त उनके सेवक गंधकुटीमें आसन तैयार करतेथे और वे उस पर बैठकर अपने पैर धोते थे। गंधकुटी की सीढ़ियों पर खडे होकर वे भिक्खुओं को, अपने कर्त्तव्यों का, प्रयत्न और सावधानी पूर्वक पालन करने के लिये उपदेश देते थे। वे कहते थे—बुद्ध का जन्म कभी-कभी ही होता है, तथा बहुत ही दुर्लभ है। पहले तो मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है, फिर अच्छे ( धर्म-श्रवण के ) अवसर और भी दुर्लभ हैं, इसके पश्चात् भिक्खु बनने की दीक्षा इससे भी अधिक दुर्लभ है और भगवान् के मुख से 'धम्म' का श्रवण सबसे अधिक दुर्लभ है।

इस समय कुछ लोग उनसे कम्मट्ठान ध्यान के विषय में शिक्षा तथा उपदेश देने के लिये प्रार्थना करते थे, और बुद्ध भगवान् उन लोगोंकी ग्रहण शक्ति के अनुसार उनको कम्मट्ठान का उपदेश देते थे। इसके बाद भिक्खु लोग बुद्ध भगवान् को नमस्कार करके अपने-अपने निवास स्थान अथवा जंगल में ध्यान करने के लिये चले जाते थे। कुछ देव लोग 'चतुम्महाराजिक स्वर्ग' अथवा 'परनिम्मित वसवत्ति स्वर्ग' लोक से भी उनका उपदेश सुनने के लिए आते थे और उपदेश सुनकर अपने-अपने

स्वर्गों को लौट जाते थे[1] । उपदेश देने के पश्चात् फिर वे अपनी गन्धकुटी के अन्दर प्रवेश कर जाते थे और दाईं करवट से लेट जाते थे । थकान दूर करने के पश्चात् वे अपने ज्ञान चक्षु से संसार का निरीक्षण करते थे । इसके बाद पुष्पादिक सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित उपदेश भवन में आकर, उपदेश सुनने के लिये आये हुए लोगों को वे उपदेश देते थे । उपदेश सुनकर और भगवान् को नमस्कार करके लोग अपने-अपने स्थानों को लौट जाते थे ।

( ३ ) रात्रि के प्रथम प्रहर के कर्त्तव्य—रात्रिके प्रथम प्रहरमें यदि वे स्नान करना चाहते थे, तो स्नानागार में प्रवेश करके सेवकों के द्वारा पहले से ही रखे हुए जल से स्नान करते और वे ही सेवक लोग गंधकुटीमें उनके लिये आसन तैयार करते थे । स्नान के बाद भगवान् रक्तवर्ण के अधोवस्त्र को पहनते थे और अपनी कमरमें पेटी कसते थे । इसके बाद एक स्कंध (कन्धे) को खुला रख कर, अपना उत्तरीय वस्त्र पहनते थे, और तब एकान्त में ध्यान की मुद्रा में अपने आसन पर बैठते थे । चारों ओर से भिक्खु लोग उस समय उनकी वन्दना करने आते थे ।

इस समय कुछ भिक्खु लोग अपनी शंका निवारणार्थ प्रश्न करते, कुछ कम्मट्ठान के ऊपर दिये हुए उनके उपदेश को सुनते, और कुछ उनसे धार्मिक उपदेश सुनाने के लिये प्रार्थना करते थे । बुद्ध भगवान् सबकी इच्छा पूरी करके उनको सन्तुष्ट करते थे । इस प्रकार भगवान् रात्रि के प्रथम प्रहर को व्यतीत करते थे ।

( ४ ) रात्रि के मध्य प्रहर के कर्त्तव्य—भिक्खु लोगों के चले जाने पर दस सहस्र लोक धातुओं ( लोक चक्रवालों ) से देवता लोग भगवान् के पास आया करते थे और भगवान् उनके प्रश्नों के उत्तर देने में मध्य प्रहर को व्यतीत करते थे ।

( ५ ) रात्रि के अन्तिम प्रहर के कर्त्तव्य—यह अन्तिम प्रहर तीन भागों में बाँटा जाता था । पहले भाग में वे इधर-उधर टहला करते थे । दूसरे में वे बाईं करवट से गन्धकुटी में लेटा करते थे । अन्तिम भाग में वे अपनी अभिञ्ञा ( अभिज्ञा ) अर्थात् ( दिव्य चक्षु ) से देखा करते थे

---

१. श्री बी० सी० ला–हेविन एण्ड हैल इन बुद्धिस्ट पर्स्पेक्टिव ।

कि किस-किस ने पूर्व-बुद्धों की सेवा के द्वारा प्राप्त किये हुए पुण्य से धम्म को जानने में पूर्णता प्राप्त करली है।[1]

सुमङ्गलविलासिनी में वर्णन है कि बुद्ध भगवान् ने सावत्थी नगर के द्वार पर गदम्बक (कदम्ब) वृक्षके नीचे बोधि प्राप्ति के सप्तम् वर्ष में यमक पाटिहारिय (आश्चर्य युगल),प्रदर्शित किये थे। उस समय बुद्ध भगवान् के शरीर के ऊमरी भाग में आग जल रही थी और अधोभाग से पानी बह रहा था। शरीर की त्वचा के एक रोमछिद्र से आग निकल रही थी और सप्तवर्ण की धारा शरीर की त्वचा के दूसरे छिद्र से निकल रही थी। बुद्ध भगवान् के शरीर से छः तरह की किरणें निकल रही थीं, और दस सहस्र चक्रवालों को प्रकाशित कर रही थीं।

आचार्य बुद्धघोष ने वर्णन किया है कि बुद्ध भगवान् ने दश पारमिताओं का पालन चार 'असंख्यकल्पों' और दस सहस्र कल्पों में किया था। उन्होंने (इस जन्म में) उनतीस वर्ष की आयु में संसार को त्यागकर अनोमा नदी के किनारे पर दीक्षा धारण की थी। छः वर्ष तक उन्होंने बोधिप्राप्ति के लिए घोर प्रयत्न किया और वैशाख पूर्णिमाके दिन 'उरूवेला' में सुजाता के द्वारा अर्पित खीर का भोजन किया। उसी शाम को उन्होंने बोधिवृक्ष की वेदी में दक्षिण द्वार से प्रवेश करके अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की तीन परिक्रमायें कीं। तदनन्तर बोधिवृक्ष की उत्तरपूर्वी दिशा में जाकर उन्होंने कुशासन बिछाया और बोधिवृक्ष की ओर पीठ करके तथा पूर्वदिशा की ओर मुख करके, आसन पर पद्मासन से बैठकर सबसे पहले उन्होंने मेत्ता (मैत्री) भावना के ऊपर ध्यान लगाया। शाम के समय उन्होंने 'मार' के ऊपर विजय प्राप्त की। रात्रि के प्रथम प्रहर में पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त किया। मध्य प्रहर में दिव्यदृष्टि प्राप्त की तथा ब्राह्ममुहूर्त्त में 'पटिच्च समुप्पाद' ज्ञान प्राप्त करके श्वास-निःश्वास के ऊपर ध्यान की चतुर्थ अवस्था प्राप्त की। ध्यानकी चतुर्थ अवस्था का अवलम्बन लेकर उन्होंने अपनी अर्न्तदृष्टि को समृद्ध किया और बुद्ध अवस्था के सम्पूर्ण गुणों को क्रमशः प्राप्त किया।

बुद्ध भगवान् तरित (त्वरित) तथा अत्तरित (अत्वरित) दो प्रकार की यात्रा किया करते थे। दूरस्थ, योग्य और भव्य पुरुष को दीक्षित

---

१. सुमङ्गलविलासिनी भाग १, पृ० ४५-४८।

करने के लिये, दीर्घ अन्तर को भी अल्प समय में तरित' गति से तय कर लेते थे। जैसा कि उन्होंने तीन गावुत (गव्यूति = छः कोस = बारह मील) की दूरी पर वर्त्तमान महाकस्सप को दीक्षित करने के लिए वहाँ क्षण भर में पहुँचकर किया था। बुद्ध भगवान् ने आलवक, अंगुलिमाल, पुक्कुसादि, महाकप्पिन, धानिय तथा सारिपुत्त के शिष्य तिस्समामरोर के पास पहुँचने के लिये भी 'तरित' गति वाली यात्रा की थी।

बुद्ध भगवान् 'अत्तरित' वाली यात्रा से प्रतिदिन लोगों को उपदेश देकर उनकी भलाई करने और भेंट स्वीकार करने जाया करते थे। 'अत्तरित' गति महामण्डल, मज्झिममण्डल तथा अन्तोमण्डल नाम के तीन मण्डलों में विभक्त थी। महामण्डल वाली नौ सौ योजन, मज्झिम मण्डल छः सौ योजन तथा अन्तोमण्डल तीनसौ योजन तक होती थी। महामण्डल यात्रा करने के लिये महापवारणा के अगले दिन, मज्झिममण्डल यात्रा के लिये अग्रहायण (अगहन मास) के प्रारम्भिक दिन तथा अन्तोमण्डल यात्रा के लिए अपने अभीष्ट किसी भी दिन उनको प्रस्थान करना होता था।

बुद्ध भगवान्के समकालीनों में से जीवक कोमारभच्च (कुमारभृत्य), तिस्स सामरोर, पोक्खरसादि और अम्बट्ठ का वर्णन सुमङ्गलविलासिनी में दिया हुआ है। नीचे इन लोगों के बारे में कुछ मनोरंजक वर्णन दिये जाते हैं :—

**जीवक कोमारभच्च** :—जीवक कोमारभच्च, श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र अभयकुमार के द्वारा पाला गया था। इसलिये वह कुमारभण्ड कहलाया गया। एकबार राजा बिम्बसार और राजकुमार अभय कुमार ने प्रासाद की छत से जीवक को प्रासाद के द्वार के फर्श पर पड़ा हुआ, तथा गिद्धों और कौवों आदि से घिरा हुआ देखा। राजा के पूछने पर कि 'यह क्या है?' उनको उत्तर मिला कि यह बच्चा है। फिर राजा के प्रश्न करने पर कि 'क्या यह जीवित है?' उनको विध्यात्मक उत्तर मिला। इसलिए इस बच्चे का नाम जीवक रखा गया।[1]

एक बार जीवक ने बुद्ध भगवान् को विरेचक दवा दी। जब भगवान् बिल्कुल स्वस्थ हो गये तो उसने उनको कीमती वस्त्र युगल भेंट में

१. सुमङ्गलविलासिनी भाग १, पृ० १३३

दिया। भगवान् ने इसे स्वीकार किया और उसको योग्य उपदेश दिया, जिससे वह 'धम्म' के प्रथम मार्ग की अवस्था के फल को प्राप्त हुआ। अपने शिष्यों के साथ रहने के लिये उसने बुद्ध भगवान् को आम्रवन दिया, क्योंकि उसने सोचा कि बुद्ध भगवान् की सेवा के लिये वेणुवन ( जहाँ बुद्ध भगवान् रहते थे ) जाना उसके लिये कठिन होता था, क्योंकि वह उसके घर से बहुत दूर था। आम्रवन में जीवक ने उनके तथा उनके भिक्खुओं के रात दिन रहने के लिये कमरे बनवाये थे तथा कुएँ भी खुदवाये थे। यह आम्रवन चारों ओर से परिकोटे से वेष्ठित था। उसने बुद्ध भगवान् के लिये उसमें एक गन्धकुटी भी बनवाई थी।

**तिस्ससामणेरः**—तिस्ससामणेर के पास एक बार उनके गुरु सारिपुत्त जाना चाहते थे। बुद्ध भगवान् ने भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने आनन्द को असाधारण शक्ति धारण करने वाले अपने बीस सहस्र भिक्खुओं को सूचित करने का आदेश दिया कि बुद्ध भगवान् तिस्ससामणेर के पास जा रहे हैं। तब बुद्ध भगवान् ने सारिपुत्त, आनन्द और पापरहित बीस सहस्र भिक्खुओं के साथ आकाश मार्ग से दो सहस्र योजन का मार्ग तय किया और तिस्स के गाँव के द्वार के पास जाकर उतरे तथा चीवर वस्त्र धारण किये। ग्राम वासियों ने उन सबका स्वागत किया और उन सबको खीर का भोजन दिया। बुद्ध भगवान् जब अपना भोजन समाप्त कर चुके तो तिस्स भोजनचर्या से लौटकर आये और उन्होंने भोजनचर्या में प्राप्त किया हुआ अपना भोजन बुद्ध भगवान् को भेंट किया। बुद्ध भगवान् फिर तिस्स के निवास स्थान पर गये।

**पोक्खरसादिः**—पोक्खरसादि का शरीर श्वेत कमल अथवा देवनगर के रजत द्वार के समान श्वेत था। उसका सिर बहुत ही सुन्दर तथा प्रिय था। कस्सप बुद्ध के समय वह तीनों वेदों का पारंगत विद्वान था। कस्सप बुद्ध को उसने दान दिया था, इसलिये वह देवलोक में उत्पन्न हुआ। वह माता के गर्भ में आना नहीं चाहता था, इसलिये वह हिमालय पर्वत के समीप एक बड़े सरोवर में कमल के मध्य उत्पन्न हुआ। पास में रहने वाले एक साधु ने उसका पालन-पोषण किया और उसे तीनों वेद पढ़ाये। बालक बहुत बड़ा विद्वान हो गया और जम्बूद्वीप के ब्राह्मणों में सबसे बड़ा विद्वान माना जाने लगा। उसने कौशल देश के राजा को अपनी विद्या का परिचय

दिया। राजा ने उसकी विद्या से प्रसन्न होकर उसे 'उक्कट्ठ' नाम का नगर 'ब्रह्मोत्तर' सम्पत्ति के रूप में दान दिया।[1]

**अम्बट्ठ :**—अम्बट्ठ, पोक्खरसादि अथवा पोक्खरसाति का प्रधान शिष्य था। अम्बट्ठ को उसके गुरु ने बुद्ध भगवान् के समीप भेजा कि वह मालूम करे कि बुद्ध भगवान् की जो प्रशंसा की जाती है वह ठीक है अथवा नहीं। उसने उनके पास जाकर उन्हें तरह-तरह से शास्त्रार्थ करके हराने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। उसने अपना यह विचार भी प्रगट किया कि इस प्रकार के विहार में, जिस प्रकार के में बुद्ध भगवान् निवास करते हैं, रहकर किसी भी श्रमण धर्म का पालन नहीं हो सकता। हारकर वह अपने गुरू के पास वापिस गया।[2]

सुमङ्गलविलासिनी में हमें बहुत सी भारतीय भौगोलिक सूचनायें भी मिलती हैं, जिनमें से कुछ अपने मूलरूप में थोड़ी बहुत काल्पनिक भी हैं। उदाहरणार्थ:—

**अङ्ग :**—अपने शरीर के सौन्दर्य के कारण इस नगर के राजकुमार अङ्ग-अङ्ग कहलाते थे, इसी कारण उनके रहने का देश अंग नाम से पुकारा गया।[3]

अंग नगर के पास ही 'गग्गरा' नाम का एक सरोवर था, जिसको कि गग्गरा नाम की रानी ने खुदवाया था। इस सरोवर के चारों ओर चम्पक वृक्षों का एक वन था, जिसमें नीलादि पंच वर्णों के पुष्प खिले हुए थे।[4]

यहाँ चम्पक वृक्षों के वर्णन का कोई भौगोलिक महत्व नहीं है। सुन्दर अंग वाले राजकुमारों के रहने के कारण नगर तथा देश का नाम पड़ना केवल आचार्य बुद्धघोष की अथवा सिंहली अट्ठकथाकार की निजी कल्पनामात्र प्रतीत होती है।

**दक्षिणापथ :**—आचार्य बुद्धघोष गंगा नदी के दक्षिणवर्ती प्रदेश को 'दक्षिणापथ' कहते हैं। बहुत से सन्यासी वहाँ रहते थे। अम्बट्ठ का कोई

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २४४–४५।
२. ,, ,, पृ० २५३।
३. ,, ,, पृ० २७९।
,, ,, पृ० २७९।

पूर्व पुरुष वहाँ अम्बट्ठ विद्या सीखने गया था। यह एक ऐसी विद्या थी जिसके द्वारा एक बार उछाला हुआ अस्त्र फिर नीचे लाया जा सकता था। वह 'उक्कट्ठ' देश आया और वहाँ के राजा को उसने अपनी विद्या का चमत्कार दिखाया और उसी राजा के दरबार में स्थान प्राप्त किया।

**घोसितारामः**—प्राचीन समय में 'अद्दिल' नाम का एक राज्य था। इस राज्य में कौतुहलक नाम का एक निर्धन मनुष्य रहता था। अकाल पीड़ित होकर जब वह किसी दूसरे स्थान को जा रहा था, उसने अपने लड़के को न ले जा सकने के कारण रास्ते में डाल दिया। उसकी पत्नी पुत्र स्नेह के कारण वापिस गई और पुत्र को लेकर गोपालों के गाँव में पहुँची। गोपालों ने उन्हें दूध चावल खाने के लिये दिये। कोतुहलक इसको न पचा सका और विसूचिका (हैजा) से मर कर एक कुतिया के गर्भ में आया। पैदा होने के पश्चात् जब वह पिल्ला था तो गोपालों का मुखिया उसको बहुत प्यार करता था। मुखिया एक 'पच्चेक बुद्ध' की पूजा किया करता था। गोपाल पिल्ले को एक मुट्ठी भात दिया करता था। पिल्ला गोपाल के साथ पच्चेक बुद्धके आश्रम तक जाता और पच्चेक बुद्धको भोंक-भोंक कर सूचना दिया करता था कि भात आ गया। वह रास्ते से जंगली जानवरों को भी भोंक-भोंक कर भगा दिया करता था। पच्चेक-बुद्ध की सेवा करने के कारण कुत्ता स्वर्ग में घोसदेवपुत्र हुआ। वहाँ से आयु पूरी होने पर च्युत होकर कोसाम्बी (कौशाम्बी) में एक कुटुम्ब में पैदा हुआ। एक महाजन ने सन्तान रहित होने के कारण उसको गोद लेकर पाल लिया और उसका नाम घोसक रखा। जब उसके अपना औरस पुत्र पैदा हुआ तो उसने घोसक को सात बार मारने का प्रयत्न किया, किन्तु पच्चेक बुद्ध की सेवा करने से प्राप्त पुण्य के कारण प्रत्येक बार वह बच गया। वह किसी दूसरे महाजन की लड़की के द्वारा बचाया गया, जिसके साथ बाद में उसका विवाह हो गया। उस सेट्ठी (श्रेष्ठी) की मृत्यु के बाद जिसने कि उसे सात बार मारने का प्रयत्न किया था, घोसक उसका उत्तराधिकारी बना और घोसक सेट्ठी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कौशाम्बी में 'कुक्कुट' और 'पावरिय' नाम के दो श्रेष्ठी और थे। इसी समय कौशाम्बी में पाँच सौ भिक्खु आये और तीनों श्रेष्ठियों ने अपने-अपने बागों में उनके रहने के लिए आश्रम बनवाये तथा उनका भोजन वस्त्र

आदि से सत्कार किया। एक बार जब ये साधु हिमालय से आते हुए एक जंगल में जा रहे थे तो उनको बड़ी भूख और प्यास लगी। वे सब एक वटवृक्ष के नीचे इस आशा से बैठ गये कि वृक्ष में कोई अधिष्ठातृ देवता अवश्य रहता होगा और वह अवश्य उनकी सहायता करेगा। अधिष्ठातृ देवता ने उनको पानी देकर उनकी प्यास बुझाई। साधुओं के प्रश्न करने पर कि वह इतनी विभूति को कैसे प्राप्त हुआ, देवता ने बताया कि वह अनाथपिण्डक श्रेष्ठी के यहाँ एक नौकर था। किसी सब्बाथ के दिन वह नौकर प्रातः ही घूमने चला गया। शाम को जब वह लौटा तो घर के अन्य नौकरों से पूछने पर उसको ज्ञात हुआ कि उन सबने उपोसथ (उपवास) स्वीकार कर रखा है। अनाथपिण्डक के पास जाकर उसने भी उपोसथ ग्रहण किया। अर्धरात्रि के समय भूख की व्याकुलता के कारण वह मर गया और अर्धरात्रि तक के उपोसथ के पालन करने से प्राप्त पुण्य के प्रभाव से, वह उस वृक्ष में इतनी समृद्धि वाला देवता हुआ। साधु लोगों ने कौशाम्बी में जाकर यह कथा उन श्रेष्ठियों से कही। साधु लोग बुद्ध-भगवान् के पास गये और बौद्ध धर्म में दीक्षा लेकर उन्होंने अर्हत्पद प्राप्त किया। बाद में श्रेष्ठियों ने कौशाम्बी में बुद्ध भगवान् को निमन्त्रित किया और कौशाम्बी में लौट कर उन्होंने भिक्खुओंके लिये तीन विहार बनवाये। इनमें से एक का नाम घोसिताराम पड़ा।[1]

**कोसल** :—पौराणिक लोग कहते हैं कि राजकुमार महापणाद हँसी दिलाने वाली बातों को देखकर और सुनकर भी नहीं हँसता था। राजकुमार के पिता ने घोषणा की कि, यदि कोई पुरुष उसके लड़के को हँसा देगा तो वह उसके शरीर को विविध अलंकारों से विभूषित करेगा। बहुत से लोग, जिनमें कि अपने-अपने हलों को छोड़कर आये हुए किसान भी शामिल थे, वहाँ आये और उन्होंने तरह-तरह से राजकुमार को हँसाने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। अन्तमें सक्क (शक्र) ने राजकुमार को हँसाने के लिये एक स्वर्गीय नाट्य-मण्डली नाटक खेलने के लिए भेजी। राजकुमारको नाटक देखकर हँसी आगई। जब लोग अपने-अपने स्थानों को लौट रहे थे, तो उनसे रास्ते के लोगों ने पूछा—'कच्चित भो कुसलम्'

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ३१७–३१९।

(हे लोगो, क्या अब राजकुमार की कुशल है ?) उन्होंने उत्तर दिया—'कुसलम्'। इस कुसलम् शब्द से उस देश का नाम 'कोसल' पड़ा।[1]

**राजगह** :—राजगह (राजगृह) का यह नाम इसलिए पड़ा कि यह मान्धाता और महागोविन्द आदि राजाओं की राजधानी रही थी। बुद्ध-भगवान् के समय यह एक नगर था और किसी समय यह बिना बसा हुआ भी रहा था।[2]

सुमंगलवलासिनी में महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या भी मिलती है, जिनमें से कतिपय नीचे दिये जाते हैं :—

**अदिन्न दाना** :—इसका ठीक शाब्दिक अर्थ बिना दी हुई वस्तु का स्वीकार करना है। इसका अर्थ दूसरों की वस्तु को चुराना भी है। अर्थात् जो वस्तु इच्छानुसार दूसरों के द्वारा प्रयोग में लाई जावे और ऐसा करने पर भी, वे दण्डित होने योग्य न समझे जावें, और यदि वह वस्तु चुराने के संकल्प से ली गई हो, तभी वह लेने वाला चोरी के अपराध से दण्डित होगा। यदि वस्तु अधिक मूल्य की हो, तो अपराध भी अधिक बड़ा होगा, यदि चुराई हुई वस्तु कम मूल्य की होगी, तो अपराध भी कम समझा जावेगा। यदि वस्तु किसी अधिक गुणवान् की हो तो अपराध बड़ा होगा, यदि कम गुणवान्की होगी तो अपराध भी कम होगा। नीचे लिखी शर्तों के अनुसार मनुष्य चोरी का अपराधी समझा जावेगा[3] :—

१. वस्तु किसी दूसरे की होनी चाहिये।

२. चुराने वालो के भाव चोरी करते समय ये होने चाहियें, कि वह जस वस्तु को चुरा रहा है, वह दूसरे की है।

३. उसके भाव उस वस्तु को चुराने के होने चाहियें।

४. उस मनुष्य के प्रयत्न चोरी करने के होने चाहियें और उन प्रयत्नों से दूसरे की वस्तु चोरी की जानी चाहिये।

**मुसावाद (मृषावाद)** :—शब्दों के द्वारा अथवा शरीर की चेष्टा के द्वारा किसी यथार्थ बात का ज्ञान पूर्वक निषेध कर देना अथवा विरुद्ध

---

१. सुमंगलविलासनी भाग १, पृ० २३९।
२. „ „ पृ० १३२।
३ „ „ पृ० ७१।

कथन कर देना मुसावाद ( झूठ बोलना ) कहलाता है । 'मुसा' ( मृषा ) शब्द का अर्थ है—जो बात नहीं हुई हो अथवा जो झूठी बात हो । 'वाद' शब्द का अर्थ है, किसी असत्य बात को सत्य प्रसिद्ध करना और अघटित बात को घटित प्रसिद्ध करना । आचार्य बुद्धघोष उदाहरण देकर इसकी व्याख्या करते हैं, कि यदि कोई गवाह या साक्षी असत्य बात कहता है, तो वह अधिक अपराध का भागी है । यदि कोई भिक्खु हँसी में किसी बात को बढ़ा कर कहता है, तो वह कम अपराध का भागी है । यदि कोई भिक्खु न देखी हुई बात को देखी हुई और न सुनी हुई बात को सुनी हुई कहता है, तो वह निश्चय ही अधिक अपराध का भागी है । निम्नलिखित शर्तोंके अनुसार व्यक्ति झूठ बोलने का अपराधी समझा जावेगा:--

(१) उसका विषय झूठा होना चाहिये ।

(२) उसका संकल्प दूसरों में विरोध उत्पन्न करने का होना चाहिये ।

(३) उस संकल्प के द्वारा उस का प्रयत्न भी होना चाहिये ।

(४) विरोध उत्पन्न करने का उसका कार्य, सम्बन्धित व्यक्तियों को ज्ञात होना चाहिए ।

(५) अपराध उसी व्यक्ति के द्वारा किया हुआ होना चाहिये ।

(६) यदि कोई व्यक्ति किसी को झूठ बोलने के लिये उत्तेजित करे या प्रेरणा देवे, अथवा पत्रों या भित्ति लेखों के द्वारा अपराध करने के लिये प्रेरित करे, अथवा स्वयं ऐसा अपराध करे तो इन सर्व अवस्थाओं में वह झूठ बोलने का अपराधी है ।[1]

**फरुसा वाचा (परुष वाक् )**:—इसका अर्थ कठोर वाणी बोलना है । आचार्य बुद्धघोष के अनुसार फरुसा वाचा वही है, जिसके बोलने में दूसरों के हृदय को कष्ट पहुँचाने की भावना हो । उनके अनुसार, इस तरह के विचारों से रहित वाणी, कर्णमधुर, स्नेहपूर्ण, हृदयग्राही तथा सबको अच्छी लगने वाली हो सकती है ।[2]

**पिसुणा वाचा ( पिशुनवाक् )**:—ऐसी वाणी जिसको कही जाती है,

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १ पृ७ ७२ ।

२. ,, ,, पृ० ७५–७६ ।

उसको तो सुहावनी और अच्छी प्रतीत होती है, किन्तु जिसके बारे में कही जाती है, उसके बारे में सुनने वालों के हृदय में, विरुद्ध विचार पैदा करती है । यह केवल बोलने वाले की भावना के अनुसार ही पैशुन्य की भावना से दूषित है, क्योंकि बोलने वाला सुनने वाले और जिसके बारे में वह वाणी बोली जाती है, दोनों से सुपरिचित होता है, पहले का ( सुनने वाले का) वह विश्वास प्राप्त करना चाहता है तथा दूसरेको (जिसकी चुगली की जाती है उसको) श्रोता की दृष्टि में गिरा हुआ, दूषित और विरोधी प्रमाणित करना चाहता है । पिसुणावाचा के लिये निम्नलिखित शर्तें होनी चाहियें[1] :—

(१) बोलने वाले की भावना, सुनने वाले और जिसके बारे में बात कही जाये, दोनों के बीच मनमुटाव उत्पन्न करने और श्रोता के हृदय में अपने को मित्र जतलाने की होनी चाहिए ।

(२) वह अपने संकल्प को पूरा करने के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये ।

(३) विरोध पैदा करने का कार्य, सम्बन्धित दोनों पक्षों को ज्ञात होना चाहिये ।

(४) वह व्यक्ति जिसके हृदय में विरोध पैदा किया जाय, उपस्थित होना चाहिए ।

आचार्य बुद्धघोष ने अनेक शब्दों की ऐसी व्याख्या की है, जिसमें काल्पनिक व्युत्पत्ति की भी मात्रा स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है । उदाहरणार्थ—

**पुथुज्जन**— ( संभवतः पृथग्जन ) वह मनुष्य कहलाता है, जो विविध प्रकार के पापों को करने वाला होता है, और जिसके विचार में शरीर ही आत्मा है, इसलिये शरीर को नित्य समझ कर, पुष्ट करता रहता है । वह इसलिए भी पुथुज्जन कहलाता है, क्योंकि वह तरह-तरह के ओघों ( प्रवाहों ) में डूबता है; क्योंकि वह विविध प्रकार के सन्तापों की अग्नि में जलाया जाता है; क्योंकि वह पाँच प्रकार के इन्द्रिय सुखों में संलग्न रहता है, पाँच प्रकार के विघ्नों से घिरा रहता है और अगणित

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ७४ ।

नीच कार्यों को करता है । वह इसलिये भी पुथुज्जन कहलाता है, क्योंकि वह सील और सुत्त आदि से पृथक कर दिया जाता है ।[1]

**चुल्लसील**--काँणा (एकाक्ष) पुरुष जिस प्रकार अपनी एक आँख की भी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करता है, उसी प्रकार पुरुष को अपने शील को अंशरूप में भी भले प्रकार पालन करना चहिये ।[2] पोराणाचार्य कहते हैं, कि शील योगियों का भूषण है, शील योगियों के शरीर का अलंकृत करने वाला है । शील विभूषित योगी पूर्णता को प्राप्त करता है । जिस प्रकार किकी[3] (मयूरी) अपने अण्डों को यत्न पूर्वक सेती है, उसी प्रकार मनुष्य को शील की पालना यत्नपूर्वक करनी चाहिये ।[4] आचार्य बुद्धघोष का कहना है, कि सारे पुण्य कार्य शील पर उसी प्रकार आधारित हैं, जिस प्रकार वृक्ष और वनस्पति पृथ्वीपर आधारित हैं ।[1]

**पाणातिपात**—पाणातिपात ( प्राणातिपात ) का अर्थ है, प्राणोंका नाश करना । प्राण का साधारण अर्थ जीवित प्राणी है, किन्तु यथार्थ में इसका अर्थ प्राणशक्ति है । इस प्राण शक्ति का नाश ही पाणातिपात है । नेक कार्यों से रहित छोटे प्राणियों के घात से थोड़ा पाप लगता है, और पापयुक्त बड़े प्राणियों के घात से अधिक पाप लगता है, क्योंकि बड़े प्राणियों के घात में अधिक और छोटे प्राणियों के घात में थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है । इसी प्रकार अच्छे गुणों से युक्त प्राणी को मारने में अधिक पाप लगता है, जब कि गुण रहित अथवा थोड़े गुणों वाले प्राणी को मारने में कम पाप लगता है । यदि मारे जाने वाले प्राणियों के शरीर और गुण एकसे हो तो उनको मारने में होने वाले क्लेश की मात्रा के अनुसार अधिक या कम पाप लगता है ।

प्राणी प्राणातिपात का दोषी निम्न शर्तों के अनुसार होता है—

१. मारे जाने वाला प्राणी हो ।

२. मारने वाले प्राणी को यह ज्ञान होना चाहिये, कि वह प्राणी को मार रहा है ।

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ५९ ।

२. ,, ,, पृ० ५६ ।

३. आचार्य धर्मरक्षित किकी का अर्थ 'टिटेहरी' करते हैं ।

३. मारने वाले के मन में प्राणी को मारने का संकल्प होना चाहिये
४. फिर उसको प्राणी के मारने के लिये प्रयत्न भी करना चाहिये।
५. प्रयत्न का परिणाम प्राणी की मृत्यु में पर्यवसित होना चाहिये।
ये प्रयत्न आचार्य बुद्धघोष ने छः प्रकार के बताये हैं:—

१. साहत्थिक ( स्वहस्तिक )—अर्थात् अपने हाथ से मारना।

२. आणत्तिक ( आज्ञप्तिक )—दूसरे को मारने की आज्ञा देना।

३. निसग्गिक ( नैसर्गिक )—मार डालने के संकल्प से प्राणी को फेंक देना।

४. विज्जासय ( विद्याश्रय )—मन्त्र-तन्त्रादि के प्रयोग से प्राणी को मारना।

५. इद्धिमय ( ऋद्धिमय )—ऋद्धि अथवा आश्चर्यजनक कार्यों से मारना।

६. थावर—स्तम्भों में खुदे हुये अनुदेशों के अनुसार मारना अथवा स्तम्भों में प्राणियों को मारने के आदेश खुदवाना।[1]

**खेल और मनोरंजनों का वर्णनः**—सुमंगलविलासिनीमें निम्नलिखित भारतीय खेलों और मनोरंजनों का वर्णन आता है[2] :—

अट्ठपदम्—पासा, जुआ खेलने के पासे या गोटें।

आकासार—एक प्रकार का मनोरंजक खेल, जिसमें पहले आकाश में पासे का तख्ता कल्पित कर लिया जाता है।

चण्डालम्—लोहे की गेंद से खेलना।

घतिकम्—एक खेल जिसमें बड़ी-बड़ी छड़ियोंको छोटी-छोटी छड़ियों से पीटते हैं ( जैसे लड़के भाद्रपद मास की चतुर्थी के दिन चौक चाँदनी में डण्डों से खेलते हैं अथवा बारात के जलूस में डण्डों से खेलते है। )

वंसम्—यह खेल जिसमें बांस को तरह-तरह से घुमाया जाता है—(बन्नेंट या लाठी घुमाने कीतरह)।

परिहारपथम्—एक प्रकार का खेल जो ऐसी भूमि में खेला जाता है, जिसमें टट्टियाँ लगाकर बहुत से मार्ग बनाये जाते हैं, जिससे कि खेलने वाले चकरा जावें कि किधर को निकलें ( जैसा आधुनिक भूलभुलैयाँ )।

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ७०।
२. ,, ,, पृ० ८४—८५।

**भिन्न-भिन्न प्रकार के आसन** :—सुमंगलविलासिनी में भिन्न-भिन्न प्रकार के आसनों का भी उल्लेख है :—

आसन्दिम्-एक प्रकार का बड़ा आसन, जिस पर बहुत से व्यक्ति एक साथ बैठ सकें।

गोणकम्-बड़े-बड़े रूऐं वाली दरी (नम्दा)।

कोसेयम्-रेशमी कपड़े का बना हुआ आसन, जिसमें नग जड़े हों।

कुट्टकम्-ऊनी कपड़े का बना हुआ बड़ा आसन, जिसके ऊपर सोलह नर्त्तकी एक साथ नृत्य कर सकती हों (कुट्टकम् शब्द से ज्ञात होता है कि यह बड़ा आसन नाटक या नृत्य की स्टेज के ऊपर बिछाने का होता होगा अथवा ऐसे तख्तों के बनेहुए चबूतरे पर बिछता होगा जैसे कि नौटंकी वाले बना लेते हैं।)

पल्लंकम्-(पर्यङ्क) पायेदार आसन जिसके ऊपर हरिण आदि पशु-पक्षियों के चित्र बने हुए हों।

पटिका-ऊनी (लम्बा) आसन (पट्टी)।

पटलिका-ऊनी मोटा आसन जिसके ऊपर फूल-पत्तियों के चित्र बने हों।

विकटिका-शेर अथवा चीते के चित्रों वाला आसन।

सुमंगलविलासिनी में कुछ मनोरंजक ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं का भी उल्लेख है। शाक्यवंश की उत्पत्ति के बारे में उल्लेख है कि ओक्काक (इक्ष्वाकु) राजा के पाँच रानियाँ थीं। उनमें से पट्टरानी के चार पुत्र तथा पाँच पुत्रियाँ पैदा हुई। पट्टरानी के मरने के बाद उसने एक युवती से विवाह किया। इस नई रानी ने राजा से हठपूर्वक यह वचन ले लिया कि राजा के पश्चात् उस छोटी रानी का पुत्र राज्य सिंहासन का अधिकारी होगा। राजा ने अपनी पहली रानी के पुत्रों से अनुरोध किया कि वे राज्य छोड़ कर चले जायें। इस पर चारों राजकुमार अपनी पाँचों बहनों के साथ राज्य से निकलकर हिमालय की ओर चले गये और वहाँ जंगल में किसी उपयुक्त स्थान की खोज करने लगे। इसी बीच वे कपिल ऋषि के आश्रम में गये और ऋषि से मिले। ऋषि ने उनसे कहा कि आश्रम के स्थान पर ही वे अपना नगर बसावें। तदनुसार राजकुमारों ने आश्रम के स्थान पर ही अपना नगर बसाया और

उसका नाम ऋषि के नाम पर ही कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) रखा। इसके पश्चात् उन चार राजकुमारों ने चार छोटी बहनों के साथ विवाह किया और बड़ी बहन को माता के स्थान पर रखा। उन लोगों ने अपने वंश को साक्य (शाक्य) वंश के नाम से प्रसिद्ध किया।[1]

इस उपर्युक्त कल्पित कथा में सत्य का अंश केवल इतना प्रतीत होता है कि शाक्य लोगों में यह परम्परा प्रसिद्ध थी कि उनका उद्गम इक्ष्वाकु वंश से है। (यह स्मरणीय है कि इसी प्रकार शिवाजी के राज्याभिषेक के समय भी उनके वंश का सम्बन्ध प्रसिद्ध शिशोदिया वंश से खोज निकाला गया था।) अन्यथा बहन-भाइयों का विवाह और वह भी इक्ष्वाकु वंश में कतई विश्वसनीय नहीं, क्योंकि बहन-भाइयों के विवाह का विरोध तो ऋग्वेग के समय से ही होता आया है; यम-यमी संवाद इस बात का समर्थन करता है। यद्यपि आचार्य बुद्धघोष की व्याख्यायें और अट्ठकथायें आध्यात्मिक और धार्मिक विषय की गुत्थियों के सुलझाने और स्पष्ट करने के लिये विश्वसनीय है, फिर भी ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन करने में वे काल्पनिक कथाओं से काम लेते हैं, जो कि भारतीय वातावरण में बिल्कुल अविश्वसनीय है। सम्भव है, इन काल्पनिक कथाओं का आधार सिंहली प्रथाओं के अनुसार कल्पित की गई सिंहली अट्ठकथाओं की कथाओं के ऊपर आधारित हो। यह भी सम्भव है कि प्राचीन काल में श्रीलङ्का में बहन-भाइयों का विवाह अनुचित न माना जाता हो। यह भी उल्लेखनीय है कि यहाँ उन्होंने शाक्य वंश नाम पड़ने के ऊपर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला, जिसके ऊपर प्रकाश डालना अत्यावश्यक था। उन्होंने बुद्ध भगवान् का वंश होने के कारण इस वंश को इक्ष्वाकु वंश से जोड़ने का प्रयत्न किया है, जो कि कुछ संगत प्रतीत नहीं होता। शाक्य शब्द की व्युत्पत्ति से प्रतीत होता है कि शक शब्द से शाक्य शब्द बना है। हो सकता है, शक लोग प्राचीन काल में आकर यहाँ बस गये हों, और उन्होंने ही कपिलवस्तु बसाया हो। शक लोगों की संस्कृति भारतीय संस्कृति से निम्न स्तर पर होने के कारण यह भी सम्भव है कि उस समय उनमें बहन-भाई के विवाह की प्रथा प्रचलित हो।

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २५८–६०।

आचार्य बुद्धघोष ने लिच्छिवियों अथवा वज्जियों की उत्पत्ति में और यहाँ तक कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और सीता के विषय में भी 'दशरथजातक' में बहन-भाइयों के विवाह का असंभाव्य वर्णन कर दिया है। भारतीय होने के नाते और भारतीय संस्कृति से सुपरिचित होने के कारण, ऐसी कपोल कल्पित कथाओंको उन्हें संशोधित रूपमें लिखना चाहिये था। श्री बी० सी० ला का विचार है कि उन्होंने ऐसा वर्णन वंश की शुद्धि की रक्षा के विचार से किया होगा। वंशशुद्धि के विचार से मिस्र के फारोह राजाओं में भी ऐसी प्रथा का उल्लेख है। महावंस में भी शाक्यों का उद्गम इक्ष्वाकु वंश से तथा उसी वंश के अधिक पूर्वकालीन महाराजा महासम्मत से वर्णन किया गया है।[1]

सुमंगलविलासिनी में भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन है। जब भगवान् बुद्ध ने कौशाम्बी में विहार किया तो उन्होंने घोसिताराम विहार में जनता की भारी भीड़ के सामने दीघनिकाय के 'जालियसुत्त' का व्याख्यान दिया था। इस भीड़ में बहुत से श्रेष्ठी लोग भी थे। उनमें पहले वर्णन किये हुए प्रसिद्ध श्रेष्ठी कुक्कुट, पावारिय तथा घोसक भी थे। इन्होंने अलग-अलग तीन विहार बनवाये—कुक्कुट ने कुक्कुटाराम विहार, पावारिय ने पावारिक अम्बवन विहार तथा घोसक ने घोसिताराम विहार और बनवाकर बुद्ध भगवान् को अर्पित किये थे।[2]

एक बार राजगृह नगर सजाया गया और उसमें रोशनी की गई। इस प्रकार वह नगर आनन्द और उत्सव से पूर्ण हो गया। अपने मन्त्रियों के साथ अजातशत्रु भी अपने प्रासाद की विस्तृत छत पर गया और वहाँ से नगर में मनाये जाते हुए उत्सव को देखा। चन्द्रमा की चाँदनी से जगमगाती हुई रात्रि वास्तव में बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उस सुन्दर वातावरण को देखकर उसके मन में भाव उत्पन्न हुआ, कि किसी श्रमण अथवा विद्वान् ब्राह्मण अथवा सन्यासी के पास धर्म श्रवण के लिये जाना चाहिए, जिससे कि उसके सन्तप्त हृदय को शान्ति प्राप्त हो सके।[3] तब

---

१. श्री बी० सी० ला—हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर भाग २, पृ० ४२७।

२. सुमङ्गलविलासिनी भाग १, पृ० ३१७–१६।

३. ,, ,, पृ० १४०–४१।

अजातशत्रु ने अपना प्रस्ताव मन्त्रियों के समक्ष रखा। सब ने अपने-अपने अभीष्ट श्रमणों की प्रशंसा की। अजातशत्रु बुद्ध भगवान् के पास ही जाना चाहता था, क्योंकि वह उनको ही इस योग्य समझता था कि वे उसे शान्ति दे सकेंगे। किन्तु अब तक वह देवदत्त के प्रभाव में आकर उनका अनिष्ट और विरोध ही करता रहा था। इसलिए झिझक होने के कारण, उनके पास जाने के लिए बहाना चाहता था। महावैद्य जीवक बुद्ध भगवान् का उपासक था, किन्तु राजा को उनका विरोधी समझकर चुप बैठा था। उसको चुप देखकर राजा ने उससे पूछा। जीवक ने बुद्ध भगवान् के गुणों का वर्णन किया। भगवान् के गुणों को सुनकर अजातशत्रु भगवान् बुद्ध के पास अम्बवनमें आया। यद्यपि वह अपने मनमें बुद्ध भगवान्के प्रति किये गये अपराधों के कारण शंकित था, किन्तु भगवान् के स्वभाव को वह भली-भाँति समझता था और इसी कारण वह उनके पास गया।[1] अजातशत्रु ने उनसे प्रार्थना की कि वे उसको श्रमण जीवन व्यतीत करने के लाभों का उपदेश करें। भगवान् ने पश्चात्ताप से युक्त हृदय वाले अजातशत्रु को दीघनिकाय के 'सामञ्ञफल' सुत्त में दिये गए श्रमण-जीवन के गुण और माहात्म्य का उपदेश दिया।[2]

सुमंगलविलासिनी में आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है कि पितृघाती अजातशत्रु द्वारा पितृ-हत्या के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए बुद्ध भगवान् ने उसके पूर्व जन्म की कथा उसे सुनाई और इससे सिद्ध किया, कि अजातशत्रु का इसी जन्म में नहीं, बल्कि पूर्व जन्म में भी अपने पिता राजा बिम्बसार के प्रति शत्रुभाव था।

अजातशत्रु के जन्म से पूर्व उसकी माता के दोहद आदि की बातों का इस ग्रन्थ में वर्णन विश्वसनीय प्रतीत होता है। यह वर्णन जैन ग्रन्थ 'श्रेणिक चरित्र' के वर्णन से भी मिलता जुलता है। सुमंगलविलासिनी में वह वर्णन इस प्रकार है :—जब पितृ-हन्ता अजातशत्रु अपनी माता के गर्भ में था तो उसकी माता को अपने पति की दाईं भुजा का रक्त पीने का दोहद हुआ। किन्तु इस अमानुषीय दोहद की इच्छा को प्रगट करने का

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १५१–५२।
२. „ „ पृ० १५८।

साहस उसे नहीं हुआ। इस दोहद के कारण उत्पन्न हुई तीव्र इच्छा से वह पीली पड़ गई और बहुत कमजोर हो गई। राजा ने जब उससे उसके कमजोर हो जाने का कारण पूछा तो उसने बड़ी मुश्किल से कारण बताया। राजा ने शल्य चिकित्सक को बुलाकर अपनी दाईं भुजा से रक्त निकलवाया और उसको पानी में मिलाकर रानी को पिलाया। भविष्य-वक्ता ज्योतिषियों ने राजा को इस दोहद के फल से सूचित करते हुए कहा कि गर्भस्थ पुत्र उसका शत्रु होगा। रानी ने इस बात से डरकर गर्भपात कराना चाहा, किन्तु राजा ने उसको यह बतलाकर रोक दिया कि इस कार्य से सारे जम्बूद्वीप की प्रजा हमारे ऊपर घृणा करेगी और भारतीय परम्परा में गर्भपात महापाप समझा जाता है। रानी ने सोचा कि वह इस बच्चे को जन्म के समय नष्ट कर देगी, किन्तु सेवक लोगों ने बच्चे को उत्पन्न होते ही उसके पास से हटा दिया। जब बच्चा बड़ा हुआ तो रानी के सामने लाया गया, किन्तु मातृ हृदय में उमड़े हुए स्नेह ने उसको मरवाने से रोक दिया और फिर कभी भी उसने बच्चे को मारने की बात नहीं सोची। समय आने पर राजा ने अजातशत्रु को अपना युवराज चुना।[१] अजातशत्रु ने अपने हाथ में आये हुए अधिकार का लाभ उठाकर राजा बिम्बसार को एक गर्म और धुएँ से भरे हुए कमरे में बन्दी बना दिया। बन्दीगृह में रानी के अतिरिक्त राजा से कोई नहीं मिल सकता था। रानी राजा के लिए कुछ भोजन ले जाया करती थी, किन्तु अजातशत्रु ने वह भी बन्द करवा दिया। इस निषेध की आज्ञा के होने पर भी, रानी अपने शरीर के अंगों में राजा के लिये कुछ भोजन छिपाकर ले जाया करती थी। जब अजातशत्रु को यह ज्ञात हुआ तो उसने रानीका राजा के कमरे में भोजन के साथ जाना बन्द कर दिया। रानी तब अपने शरीर में शहद, मक्खन, घी, तेल आदि लपेटकर जाने लगी और राजा उसके शरीर को चाटकर जीवन शक्ति प्राप्त करता रहा। किन्तु जब इस बात का भी पता अजातशत्रु को लगा तो उसने रानी का राजा के कमरे में जाना ही रोक दिया और कहा कि वह बाहर से ही राजा को देख सकेगी। इस समय रानी ने राजा को स्मरण कराया कि उसने अजातशत्रु को गर्भ में ही नष्ट करने की सोची थी, किन्तु राजा ने ही उसको ऐसा

१. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० १३४।

नहीं करने दिया था। रानी ने राजा से यह भी कहा कि इस बार उसको राजा को अन्तिम बार देखने की आज्ञा मिली है, इसलिए रानी ने राजासे क्षमा माँगी और अन्तिम विदा ली।[1]

सुमंगलविलासिनी में आगे आचार्य बुद्धघोष वर्णन करते हैं कि अब राजा बिम्बसार को किसी भी प्रकार के भोजन तत्व का मिलना बन्द हो गया और राजा के प्रति अजातशत्रु की अमानुषीय चेष्टाएँ और अधिक बढ़ गईं। राजा बिम्बसार अब 'धम्म' मार्ग के फल का ध्यान लगाने लगे और अपने कमरे में इधर-उधर घूमने लगे और इस प्रकार धूमने के द्वारा हवा में से जीवन तत्व प्राप्त करने लगे। जब अजातशत्रु को यह मालूम पड़ा तो उसने उनका धूमना भी बन्द करवा दिया। इसके लिये उसने एक नाई को आज्ञा देकर भेजा कि वह राजा के पैर के तलुओं को उस्तरे से चीर दे और उन पर नमक मिला तेल मलकर खदिर काष्ठ के कोयलों की अग्नि से सेके। जब यह आज्ञा लेकर नाई राजाके पास गया, तो राजाने सोचा कि अब अजातशत्रु के हृदयमें उसके ऊपर दया आई है और उसने अपनी मूर्खताका अनुभव किया है, इसीलिये अब बाल काटनेके लिये नाई भेजा है। किन्तु जब राजाने नाईसे पूछाकि 'क्या सन्देश लाये हो',तो नाईने अजातशत्रुकी आज्ञा सुनादी।नाईने उस पैशाची आज्ञाका पालन किया। राजा बिम्बसार उस कष्टको सहन न कर सका। उसने अपना अंतिम श्वांस 'बुद्ध और धम्म'की शरणके शब्दोंके उच्चारणके साथ लिया और प्राण त्याग दिये। मृत्युके पश्चात् राजा बिम्बसार 'चतुम्महाराजिक' स्वर्गमें 'जवनवसभ' नाम के वैश्रवण के सेवकके रूप में उत्पन्न हुए।[2]

जैनशास्त्र 'श्रेणिक चरित्र' में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है, कि अजातशत्रु ने श्रेणिक (बिम्बसार) को एक बिना दरवाजे के काष्ठ निर्मित कठघरे में कैद कर दिया थ । एक दिन जब अजातशत्रु भोजन कर रहा था तो उसके बच्चेने टट्टी कर दी। अजातशत्रु बच्चे पर क्रुद्ध नहीं हुआ, प्रत्युत प्यार से बोलने लगा। तब उसकी माताने उससे कहा कि एक बार तेरे अंगूठे में एक फोड़ा हो गया था और

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १३५-३६।
२. ,, ,, पृ० १३७।

उसकी पीड़ा के कारण तू बिलख-बिलख कर रो रहा था। तब तेरे पिता ने उस पके हुए अँगूठे को अपने मुँह में लेकर अपने मुख की भाप से सेका था, जिससे चैन पड़ने के कारण तू चुप हो गया। इस पर अजातशत्रु को अपने कुकृत्य पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह स्वयं कुल्हाड़ा लेकर कठघरे को तोड़ने गया। किन्तु श्रेणिक ने यह समझकर कि यह दुष्ट मेरा सिर काटने के लिये आ रहा है, स्वयं तलवार से आत्मघात कर लिया और रौद्र तथा संक्लिष्ट परिणामों के साथ मरने के कारण प्रथम नरक में गया।

सुमंगलविलासिनी में वर्णन है कि जिस दिन राजा बिम्बसार का शरीरान्त हुआ, उसी दिन अजातशत्रु के पुत्र का जन्म हुआ। जब दोनों समाचार मन्त्रियों के पास पहुँचे तो मन्त्रियों ने पहले अजातशत्रु को पुत्र जन्म का समाचार सुनाया। पुत्र जन्म के समाचार को पाकर अजातशत्रु का हृदय पुत्र स्नेह से भर गया और उसे अपने पिता के सारे गुणों का हृदय में स्मरण होने लगा। उसने अनुभव किया कि इसी प्रकार उसके स्वयं के जन्म के समाचार को पाकर उसके पिता को हर्ष हुआ होगा। अजातशत्रु ने एक दम पिता को मुक्त कर देने का आदेश दिया। किन्तु यह ज्ञात करके कि पिता का देहान्त हो चुका है, उसने बहुत विलाप किया और माता के पास जाकर पूछा कि 'क्या पिता उसको स्नेह करते थे ?' माता ने उपर्युक्त फोड़े वाली घटना इस प्रकार सुनाई:—एक बार तुम्हारी उङ्गली में एक फोड़ा हो गया था और उसकी पीड़ा से तुम इस प्रकार रो रहे थे कि उस समय कोई भी तुम को चुप न करा सका। लोग तुमको तुम्हारे पिता के पास ले गये। वे उस समय राज्याधिकरण में न्याय कर रहे थे। उन्होंने स्नेहवश तुम्हारी फोड़े वाली उङ्गली को अपने मुँह में रख लिया। फोड़ा फूट गया और उन्होंने पुत्र स्नेहवश उस पीव और खून को बाहर थूकने की अपेक्षा भीतर गले में निगल लिया। अजातशत्रु इस घटना को सुनकर फूट-फूट कर रोने लगा। उसने राजा के शरीर का अन्तिम संस्कार किया। इसके थोड़े समय बाद ही देवदत्त अजातशत्रु के पास गया और उसको जोर देकर प्रेरणा की, कि वह अपने आदमियों को भेजकर बुद्ध भगवान् को भी मरवा दे। देवदत्त ने अजातशत्रु के आदमियों को बुद्ध भगवान् की हत्या करने के लिए भेजा और उसने स्वयं भी उनको

मारने के कुछ प्रयत्न किये। वह स्वयं गिज्भकूट (गृद्धकूट) पर्वत पर गया और बुद्ध भगवान् के ऊपर एक बड़ा पत्थर फेंका, किन्तु बुद्ध भगवान् अपने माहात्म्य से बच गये, केवल उनके पैर के अँगूठे में चोट लगी और खून बह निकला। इसके बाद उसने बुद्ध भगवान् के ऊपर नीलगिरी नाम के अजातशत्रु के उन्मत्त हाथी को छुड़वाया, किन्तु बुद्ध भगवान् को मारने के उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। इन चेष्टाओं से लोगों के हृदय से उसका आदर और प्रसिद्धि जाती रही।[1]

सुमंगलविलासिनी में दीघनिकाय के 'ब्रह्मजाल' सुत्त की भूमिका के विषय में निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है:—एक बार 'ब्रह्मदत्त' और उसके गुरू'सुप्पिय' परिव्राजक के मध्य विवाद हुआ। सुप्पिय का कहना था कि बुद्ध भगवान् अकर्मण्यता, अनित्यता, क्षणभंगुरता तथा आत्म-पीड़न का प्रतिपादन करने वाले हैं, नीचकुल में पैदा हुए हैं, और उनमें कोई भी अलौकिक ज्ञान नहीं है। इसके विरुद्ध ब्रह्मदत्त का कहना था कि उसको अपने गुरू सुप्पिय के द्वारा प्रतिपादित पशुयज्ञ आदि पापकार्य नहीं करने चाहियें। यदि उसका गुरु अग्निहोम आदि कार्य करता है, तो उसको (ब्रह्मदत्त को) ये कार्य नहीं करने चाहियें। यदि उसका गुरू काले नाग से खेलता है, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उसको भी ऐसा ही करना योग्य है। ब्रह्मदत्त ने यह भी कहा कि सर्व प्राणी अपने-अपने कर्म का फल भोगते हैं। अपने कर्म के लिये प्राणी स्वयं उत्तरदायी है। न तो पुत्र के कर्म के फल के लिये पिता, और न पिता के कर्म के फल के लिये पुत्र उत्तरदायी हो सकता है। इसी प्रकार माता, भ्राता, शिष्य अथवा कोई इष्ट मित्र अथवा सम्बन्धी अपने से अन्य किसी पुरुष के कर्मफल के लिए उत्तरदायी नहीं है। यदि मैं बुद्ध, धम्म और संघ रूपी त्रिरत्न को बुरा कहता हूँ तो इस प्रकार मेरा अरिय (आर्य) को बुरा कहना पाप का मूल है।' इसके पश्चात् ब्रह्मदत्त ने बुद्ध भगवान् की प्रशंसा की, कि बुद्ध भगवान् अर्हन्त हैं, सर्वश्रेष्ठ, प्रज्ञावान् और विद्वान् हैं। तत्पश्चात् उसने धम्म और संघ की प्रशंसा की। इस प्रकार ब्रह्मदत्त ने अपने गुरू सुप्पिय से अपने विचारों में विरोध प्रगट किया। सन्ध्या समय वे लोग राजा अम्बलट्ठिक के उद्यान में आये। उस उद्यान में राजा का एक सुन्दर

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १३८-३९।

उद्यान-भवन था। बुद्ध भगवान् ने वहाँ एक रात के लिये विहार किया था। सुप्पिय भी उसी उद्यान में ठहरा हुआ था। रात्रि में भिक्खु लोग बुद्ध भगवान् के आसन के चारों ओर शान्ति पूर्वक बैठे हुए थे। जब रात्रि के प्रथम प्रहर में भिक्खु लोग उस उद्यान भवन की मण्डलमाल (बैठक) में बैठे हुए थे तो बुद्ध भगवान् भी वहाँ पहुँचे और उन्होंने उनसे पूछा कि कोन सा विषय चर्चाधीन है? भिक्खुओं ने कहा कि ब्रह्मदत्त और सुप्पिय के आपस के विरोधी विचार तथा बुद्ध भगवान् के अनन्त गुणों की चर्चा हो रही है। तब भगवान् ने उनके विवाद की गुत्थी 'ब्रह्मजाल' नाम के दीघसुत्त के उपदेश द्वारा सुलझायी।[1]

सुमंगलविलासिनी में प्रथम बौद्ध संगीति में दीघनिकाय के संगायन सम्बन्धित परम्परा का उल्लेख इस प्रकार दिया गया है :—वैशाख-पूर्णिमा के दिन कुसीनारा के पास मल्लों के साल वृक्षों के वन में बुद्ध भगवान् के 'परिनिव्वाण' के एक सप्ताह पश्चात् वृद्धावस्था में दीक्षा लेने वाले, महाकस्सप के संघ के 'सुभद्द' भिक्खु ने भगवान् के निर्वाण के समाचार सुनकर दु:खी होने वाले भिक्खुओंसे कहा था—'मित्रो, तुम्हें शोक करने की और दु:खी होने की आवश्यकता नहीं। हमको अब उस महाश्रमण (बुद्ध भगवान्) से छुटकारा मिल गया, जो हमको हमेशा 'यह करो,वह मत करो' इत्यादि कहकर तंग किया करता था।' वृद्ध भिक्खु की इस बात को सुनकर महाकस्सप ने सोचा कि भिक्खुओं को इस प्रकार के लोगों से बचाने के लिये तथा सद्धम्म की, नष्ट होने से रक्षा करने के लिये, विद्वान् बौद्ध भिक्खुओं की संगीति बुलानी चाहिये। उन्होंने भिक्खु संघ को सम्बोधित करके कहा–'धम्म और विनयका पुनर्वाचन होना चाहिये।' बुद्ध भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् २१वें दिन पाँचसौ भिक्खु जो सब अर्हत् थे और जो पटिसंभिधा (विश्लेषणात्मक ज्ञान) के धनी थे, निर्वाचित किये गये। इन भिक्खुओं के निर्वाचन के बारे में उल्लेख है कि बुद्ध भगवान् के शरीर त्याग से एक सप्ताह तक उनके मृत शरीर की लोगों ने धूप और मालाओं से पूजा की। तत्पश्चात् उनका मृत शरीर चिता पर रखा गया, किन्तु एक सप्ताह तक दाह संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ। उनकी मृत्युसे तीसरे सप्ताहमें

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २६ से ४४।

दाह संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् उनके अवशेषों (फूलों या भस्मी) की पूजा मृतिका-कोष्ठागार में स्थापित करके की गयी, तथा ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन उनके अवशेषों का विभाजन हुआ। विभाजन के दिन वहाँ बहुत से भिक्खु बुलाये गये। उन्हीं भिक्खुओं में से पाँच सौ विद्वान् भिक्खु प्रथम संगीति के लिये निर्वाचित किये गये थे। इन भिक्खुओं को चालीस दिन का अवकाश दिया गया था, जिससे वे लोग अपनी सम्पूर्ण बाधाओं से निवृत्त होकर प्रस्तावित संगीति के संगायन में विविध-रूप से भाग ले सकें। महाथेर महाकस्पस उन पाँच सौ भिक्खुओं के साथ राजगह (राजगृह) गये। अन्य महाथेर अपने-अपने संघ के साथ दूसरे भिन्न-भिन्न स्थानों को पधारे। इस समय पुराण नाम के महाथेर ने अपने सात सौ भिक्खुओं के साथ कुसीनारा जाकर वहाँ की जनता को आश्वासन दिया। आनन्द थेर अपने पाँच सौ भिक्खुओं के साथ सावत्थी में जेतवन को लौट गये। सावत्थी के लोगों ने आनन्द थेर को आता देखकर समझा कि बुद्ध भगवान् भी अवश्य ही उन्हीं भिक्खुओं के बीच में होंगे। किन्तु जब उन्होंने बुद्ध भगवान् के 'परिनिव्वाण' का समाचार सुना तो वे बड़े निराश हुए और रोने लगे। थेर आनन्द ने उस गन्ध कुटी की पूजा की, जहाँ कि बुद्ध भगवान् विहार किया करते थे। उसके द्वार को खोला और उसे साफ किया। उसको साफ करते हुए वे यह कह-कहकर रोने लगे— 'भगवन्, यह आपका स्नान का समय है, यह उपदेश देने का और यह भिक्खुओं को शिक्षा और आदेश देने का; यह आपके लेटने का, यह सोने का, यह मुँह हाथ धोने का समय है।' वे सुभ के घर भिक्षा के लिये गये और वहाँ उन्होंने दीघनिकाय के 'सुभ सुत्त' का व्याख्यान दिया। भिक्खुओं को 'जेतवन' में छोड़कर वे राजगृह में प्रारम्भ होने वाली प्रस्तावित संगीति में भाग लेने गये। अन्य भिक्खु भी, जो कि संगीति में भाग लेने के लिये चुने गये थे, राजगृह पहुँचे। सर्व भिक्खुओं ने आषाढ़ पूर्णिमा के दिन उपोसथ किया और बर्षा ऋतु वहीं बितायीं। भिक्खु लोग अजातशत्रु के पास गये और उससे राजगृह के अठारह महाविहारों की मरम्मत करवाने की प्रार्थना की। अजातशत्रु तदनुसार उन विहारों की मरम्मत करा दी। उसने उनके लिये 'सत्तपण्णि' (सप्तपर्णी) कन्दरा के नीचे, वेभार पर्वत के पास, एक सुन्दर और सुसज्जित सभामण्डप भी बनवाया, जो 'विस्सकम्मा' (विश्वकर्मा) के द्वारा स्वर्ग में बनवाये हुए सभामण्डप के

समान था। इसमें पाँच सौ भिक्खुओंके लिए पाँच सौ आसन तैयार किये गये थे। संगीतिके अध्यक्ष का उत्तरमुखी आसन मण्डप के दक्षिण में रचा गया था। इसके बीच में धम्मासन था, जिस पर बैठकर थेर आनन्द और थेर उपालि ने क्रमशः 'धम्म' और 'विनय' का पुनर्वाचन किया। 'धम्म' और 'विनय' का उसी समय पाँचसौ भिक्खुओं के द्वारा भी संगायन किया गया।

उस समय प्रश्न उठा कि थेर आनन्द अर्हत् न होने पर क्या 'धम्म' के उपदेश के लिए उपयुक्त हैं? इस प्रश्न को सुनकर थेर आनन्द लज्जित हुए। उन्होंने विशेष प्रयत्न के द्वारा उसी रात को अर्हत् पद प्राप्त कर लिया। संगीति में सारे भिक्खु उपस्थित थे, केवल थेर आनन्द का आसन रिक्त था। थोड़े समय बाद वे अपने आसन पर प्रगट हो गये। कुछ लोगोंने कहा कि थेर आनन्द आकाश मार्ग से आये तथा कुछ लोगों का मत था कि वे पृथ्वी के मध्य से आये। थेर महाकस्सप ने 'साधु-साधु' कहकर उनके अर्हत्पद प्राप्ति की घोषणा की। उन्होंने सभा से पूछा कि पहले 'धम्म' का संगायन हो अथवा 'विनय' का। सभा की राय पहले विनय के संगायन की हुई, क्योंकि बुद्ध शासन विनय के ऊपर ही आधारित है। फिर प्रश्न उठा कि विनय के ऊपर उठे हुए प्रश्नों का उत्तर कौन दे? निश्चय हुआ कि थेर उपालि विनय के ऊपर उठे हुए प्रश्नों का उत्तर देंगे। महाकस्सप ने सभा की राय लेकर तब थेर उपालि से पूछा कि प्रथम 'पाराजिका' के नियम का विधान कहाँ हुआ? उत्तर मिला कि इसका विधान मैथुन-धम्म के विषय में 'सुदिण्ण कलन्दक पुत्तों' के सम्बन्ध में हुआ था। इसी प्रकार विनय के ऊपर उठाये गये सारे प्रश्नों का उत्तर थेर उपालि ने दिया। भिक्खुओं ने उसे दुहराया तथा स्मरण किया। प्रश्न उठा कि थेर आनन्द विनय के ऊपर उठे हुए सारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपयुक्त हैं क्या? सभा की राय में थेर आनन्द उपयुक्त थे, किन्तु थेर उपालि इस कारण चुने गये, कि बुद्ध भगवान् ने विनयधर भिक्खुओं में थेर उपालि को सर्वप्रथम स्थान दिया था। इसके पश्चात् थेर आनन्द को धम्म विषयक प्रश्नों का उत्तर देने के लिये चुना गया। सुत्तपिटक का दीघनिकाय सर्वप्रथम संगायन के लिये ग्रहण किया गया। इसलिये इसके प्रथम ग्रंथ दीघनिकाय के 'ब्रह्मजाल' सुत्त का संगायन सबसे पहले थेर आनन्द के द्वारा हुआ तथा सर्व भिक्खुओं ने उसे एक साथ मिलकर

दुहराया। इसके पश्चात् शेष चार निकायों के सुत्तोंका भी क्रमशः संगायन इसी प्रकार हुआ।[1]

सुमंगलविलासिनी का प्रथम बौद्ध-संगीति का वर्णन विनयपिटक के चुल्लवग्ग, अध्याय ११ और महावंस में दिये हुए वर्णनोंका मिश्रण है। इसमें दो पातिमोक्ख भी विनय के पाठ में सम्मिलित किये हैं, जिनका संगीति में संगायन नहीं हुआ था। यह वर्णन महत्वपूर्ण इस कारण है, कि इसमें उन अवस्थाओं का स्पष्ट वर्णन है, जिनके कारण भाणकों के विभिन्न सम्प्रदाय निकले, जिन्होंने विनय और निकायों को कण्ठस्थ किया और लोगों को समय-समय पर उनका पाठ सुना-सुनाकर उनकी रक्षा की तथा उनकी परम्परा भविष्य में स्थायी रखी।[2] इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि खुद्दकनिकाय के चार ग्रन्थ[3], जो खुद्दकनिकाय में बाद में सम्मिलित किये गये थे, भाणकों की सूची में नहीं हैं।[4] साधुओं को आठ विभागों में विभाजित करने का तथा उनकी परिभाषाओं का रोचक वर्णन भी इसमें मिलता है।

इसमें वज्जियों की वेसाली की गणतन्त्र सभा की न्याय प्रणाली का वर्णन तथा उनके प्रति राजा अजातशत्रु के वैर-भाव के कारणों का भी उल्लेख है।[5] यही नहीं, महाराज अशोक के विषय में पौराणिक ढङ्ग का वर्णन कि कुमार पियदास (प्रियदर्शन) राज्याभिषेक के समय छत्र धारण करके अशोक नाम से 'धम्मराजा' होगा, भी ध्यान देने योग्य है (अनागते पियदासो कुमारो छत्तं उस्सापेत्वा असोको नाम धम्म राजा भविस्सति।)[6] अशोकके बारे में ये भविष्यवाणी 'दीपवंस' की परम्परा से मेल खाती है, जिसके अनुसार कुमार पियदस्सन का राज्याभिषेक दो बार

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २-२५।
२. ,, ,, पृ० २७ तथा आगे।
३. ,, ,, पृ० ८।
४. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष, पृ० ८४।
५. श्री बी० सी० ला—सम एन्शिएण्ट ट्राइब्स ऑफ इण्डिया, पृ० ६० तथा १११ आदि।
गलविलासिनी भाग २, पृ० ६१२।

हुआ।[१] पहले अभिषेक के समय उन्होंने 'अशोक' की पदवी धारण की तथा दूसरे अभिषेक के समय 'पियदस्सी' की।

सुमंगलविलासिनी में अन्य मनोरंजक सूचनाओं का भी उल्लेख है। 'उजुञ्ञा' एक नगर था तथा 'कण्णकत्थल' एक सुन्दर स्थान का नाम था। मिगदाय (मृगदाय) का यह नाम इसलिये पड़ा, क्योंकि इसमें मृगों को स्वतन्त्रता थी।[२] गिज्झकूट (गृद्धकूट) पर्वत का यह नाम इसलिए पड़ा कि इसके ऊपर गृद्ध रहते थे और इसकी चोटी का आकार गृद्ध के समान है।[३] एक बार, भगवान् बुद्ध गिज्झकूट पर्वत पर विहार के समय निवास कर रहे थे, तो उन्होंने परिब्राजक निग्रोध और उसके शिष्य सन्धान के मध्य होती हुई बातें सुनी। वे वहाँ आकाश मार्ग से पहुँचे और निग्रोध के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उन्होंने उत्तर दिया।[४] गान्धार की राजधानी गन्धार ऋषि के द्वारा बसाई गई थी और यह नगर व्यापार का केन्द्र था।[५] साल वत्तिक (साल वृत्तिक) एक ग्राम था और इसका यह नाम पड़ने का कारण यह था कि यह चारों ओर से साल वृक्षों से घिरा हुआ था, जो कि उसकी वृत्ति अथवा बाड़ के समान मालूम पड़ते थे।[६] अम्बवन घने आम्रवृक्षों का षण्ड या समूह था। इसमें पृथ्वी पर चारों ओर चाँदी के पत्रों की तरह चमकीला रेत विछा हुआ था और शिखर के ऊपर आम की शाखायें और पत्ते लदे हुए थे। यहां भगवान् एकान्त में रहते हुए आनन्द प्राप्त करते थे।[७] जेतवन के मध्य में करेरिकुटी, कोसम्बकुटी, गन्धकुटी और सालड़घर नाम के चार भवन थे। सालड़घर को राजा पसेनदि (प्रसेनजित) ने बनवाया था, तथा शेष तीनको अनाथपिण्डिक ने।[८] इसमें साल, उदम्बर (अंजीर), बड़ (बरगद), अस्सत्थ (अश्वत्थ=पीपल) और सिरस के वृक्ष भी थे।[९]

---

१. दीपवंस अध्याय ५, पृ० २२।

२. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ३४९।

३. वही, पृ० ५१६।
४. वही, पृ० ३६२।

५. वही, पृ० ३८९।
६. वही, पृ० ३९५।

७. वही, पृ० ३९९।
८. वही, पृ० ४०७।

९. वही, पृ० ४१६।

चक्रवर्ती के सप्त रत्नों का भी सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है। वे ये हैं.—चक्र, हस्ति, अस्स ( श्व ), मणि, इत्थी ( स्त्री ), गृहपति ( भाण्डागारी ), पेनायक ( सेना नायक ) ।[१] जैन पुराणों से यह वर्णन भिन्न है। वहां चक्रवर्ती के चौदह रत्न बताये गये हैं।

सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि चतुम्महाराजिक स्वर्ग में नब्बे लाख देव हैं और वे स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करते हैं।[२] अभस्सर ( आभास्वर ) देवों के शरीर से उज्जोत ( उद्योत ) निकलता है और उनकी आयु की अवधि का प्रमाण अड़तालीस कल्प है।[३] इसमें सारन्दद चेतिय को विहार के रूप में वर्णन किया गया है।[४] इसमें कहा गया है कि सुनिद्ध और दस्सकार दो बड़े धनी थे।[५] इसमें नादिक गाँव को सम्बन्धियों का गांव कहा गया है तथा यह भी वर्णन है कि नादिका सरोवर के पास चुल्लपीति और महापीति नाम के दो गांव थे।[६] सुमंगलविलासिनीमें कहा गया है कि 'मार' अपने पास ऐसे प्राणी रखता हैं जो लोगो को तंग करते हैं तथा उन्हें मार डालते हैं।[७] इसमें खरस्सरा, खण्डस्सरा, काकस्सरा, भग्गस्सरा इत्यादि सरोवरों का भी उल्लेख है।[८] आचार्य बुद्धघोष बनारस के तन्तुवायों ( जुलाहों ) का भी निर्देश करते हैं, जोकि बहुतही सुन्दर और कोमल पोशाक बनाते थे।[९] इसमें सूकर-मद्दवका भी उल्लेख है, ( जिसको खा कर बुद्ध भगवान् को पेचिश हो गई थी और जो उनका अन्तिम भोजन था ), कि यह बीच की, अर्थात् न तो बहुत बड़ी और न बहुत छोटी आयु के, अर्थात् युवा सूअर के मांस से तैयार किया हुआ खाद्य था। यह कोमल ( मृदु ) चमकीला खाद्य था।[१०]

सुमंगलविलासिनी में चार प्रकार के बिस्तरों का वर्णन है[११]:— (१) भोगी लोगों का। (२) मृत पुरुषों का। (३) सिंहों का और

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ४४४।
२. वही, पृ० ४७२।
३. वही पृ० ५१०—११
४. वही पृ० ५१२।
५. वही पृ० ५४०।
६. वही पृ० ४५३।
७. वही पृ० ५५५।
८. वही पृ० ५६०।
९. वही पृ० ५६३।
१० वही पृ० ५६३।
११. वही पृ० ५७४।

(४) तथागत का। इसमें बौद्ध वाङ्मय का उल्लेख है कि इसमें तीन पिटक, पाँच निकाय, नव अंग और चौरासी सहस्र धम्मक्खन्धों का समावेश है।[1] आचार्य बुद्धघोष 'अट्ठमल्ल पामोक्खा' का अर्थ करते हैं कि आठ मल्ल राजा बीच की आयु वाले तथा शक्तिशाली थे।[2]

सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि जम्बू द्वीप दस सहस्र योजन के विस्तार वाला है। इसमें एक मज्झिम देस ( मध्य देश ) और पूर्व में एक कजंगल देश भी है।[3] इसमें उल्लेख है कि अपरगोयान सातसहस्र योजन तथा उत्तर कुरुदेश आठ सहस्र योजन के विस्तार वाले थे।[4]

जोतिपाल का उल्लेख करते समय आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि उसे जोतिपाल इसलिये कहा जाता था कि उसके शरीर से कान्ति निकलती थी और वह अन्य लोगों का पालन करता था।[5] सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है कि शाक्य और कोलिय लोग खूब अच्छी खेती करते थे क्योंकि उन लोगों ने रोहिणी नदी के ऊपर एक बाँध बना लिया था। यह नदी शाक्य और कोलिय दोनो के देशों के मध्य में होकर बहती थी।

सुमंगलविलासिनी में आचार्य बुद्धघोष ने दक्षिण भारत की एक विचित्र प्रथा का भी उल्लेख किया है। इस प्रथा के अनुसार गोदावरी नदी के किनारे के लोग, अपने पूर्व पुरुषों की हड्डियों को पृथ्वी के अन्दर से खोदकर निकालते थे और उन्हें धोकर सुगन्धित द्रव्य मलकर एक जगह एकत्रित करते थे। फिर किसी मंगलमय दिवस में इसी अवसर के लिये एकत्रित किये गये खाद्यपदार्थों को खाते-पीते जाते थे और चिल्ला-चिल्ला कर अपने दिवंगत पुरुष के नाम का उच्चारण करते जाते थे। इस प्रथा का नाम 'अस्थिधोपन' था।

सुमंगलविलासिनी में भी श्रीलङ्का के बारे में वर्णन मिलते हैं। इसमें राजा दुट्ठगामणि के बारे में उल्लेख है कि तमिलों को पराजित

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५६१।
२. ,, ,, पृ० ६०६।
३. ,, ,, पृ० ४२६।
४. ,, ,, पृ० ६२३।
५. ,, ,, पृ० ६६०

करने के बाद, इस राजा को हर्षातिरेक के कारण एक माह तक नींद नहीं आई थी। जब यह बात भिक्खुओं को ज्ञात हुई तो आठ थेरों ने राजा को अभिधम्मपिटक के 'चित्तयमक' का पाठ सुनाया। इससे राजा को नींद आ गई। राजा ने दूसरे दिन उठ कर बड़े हर्ष के साथ कहा—'कोई ऐसा इलाज नहीं, जिसको मेरे पितामह के बच्चे, ये भिक्खु नहीं जानते हों। ये ऐसी दवा भी जानते हैं, जो नींद ला देती है।[1] सुमंगलविलासिनी में आलिन्दक के थेर महापुस्सदेव का उल्लेख है, कि वे महान् उपदेशक के नाम से विख्यात थे।[2] इसमें गामन्तपब्भार अथवा वामन्तपब्भार के थेर महासिव का भी वर्णन मिलता है कि इन्होंने तीस वर्ष तक निरन्तर आर्हन्त्य-प्राप्ति का प्रयत्न किया था।[3] तिपिटक दीघभाणक महासिव अथवा महासिवत्थेर का भी इसमें उल्लेख है और इनके मतों को मान्य रूप में उद्धृत किया गया है, किन्तु कई स्थानों पर इनके मतों के ऊपर अट्ठसालिनी के मतको मान्यता दी गई है।[4] इनके साथ ही सुमंगलविलासिनी में थेर लोकुत्तर तथा थेर वृकव्हानु का भी वर्णन आता है।[5] चूलनाग थेर का, जोकि दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य थे, वर्णन भी इसमें है, कि इनकी अपने गुरु तथा तीन साथी थेरों से मत-विभिन्नता थी।[6] दीपविहारवासी थेर सुम्म के एक दूसरे शिष्य तिपिटक चूलाभय का इसमें उल्लेख[7] मिलता है कि इन्होंने कई बार लोहपासाद में उपदेश दिया और ये अपनी स्मरण शक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। ये गिरिविहार में भी रहे थे, जिसको सम्मोहविनोदनी में गिरिगामकण्य कहा गया है। वहीं इनके द्वारा दी गई एक व्याख्या का भी उल्लेख है। राजा कूटकण्णतिस्स

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २ पृ० ६४०।
२. ,, भाग १ पृ० १८६।
३. ,, भाग ३ पृ० ७२७।
४. ,, भाग १ पृ० २०२, भाग २ पृ० ५४३। तथा भाग ३ पृ० ८४३।
५. ,, भाग ३ पृ० ८८२—८३।
६. ,, ,, ३ पृ० ७७४।
७. ,, ,, २ पृ० ४४२ तथा ५३०।

(१६–३८ ई० पश्चात्) इनके भक्त थे।[1] आचार्य दीघभाणक अभयके बारे में इसमें उल्लेख है कि इनकी स्मरणशक्ति के लिये प्रसिद्धि थी।[2] इसमें राजा बसभ के बारे में उल्लेख मिलता है कि इन्होंने विद्यार्थी भिक्खुओं को पढ़ने का सामान देकर बड़ी सहायता की थी। यह सुनकर कि दीघभाणक अभय थेर लोहपासाद के पश्चिम के अम्बलट्ठिका (विहार) में 'महादस्सन सुत्त' के ऊपर उपदेश करेंगे, ये बहुत प्रसन्न हुए।[3] इसमें एक घटना का उल्लेख है कि एक पवित्र आचरण वाले थेर को अन्तिम समय में आर्हन्त्य पद प्राप्त हुआ था और राजा बसभ ने ठीक उनके देहावसान से पहले उनकी वन्दना की थी।[4]

गुह्य ग्रन्थों का भी सुमंगलविलासिनीमें उल्लेख है। इनको अपनाने अथवा बहिष्कार करने के विषय में इसमें बीच का मत अपनाया गया है। इसके अनुसार इन ग्रन्थों में से सबको नहीं, किन्तु परीक्षा करने के पश्चात् केवल उन ग्रन्थों को अपनाना चाहिये जो कषायों तथा विकार भावों के नियन्त्रण में सहायक हैं। जो कषायों और विकारों के नियन्त्रण को प्राप्त नहीं कराते उनका बहिष्कार करना चाहिये। बहिष्कार योग्य ग्रन्थों की सूचीमें वेदुल्लपिटक, आलवकगज्जित, गुल्हउम्मग्ग तथा गुल्हविनय हैं।[5]

चेतियपव्वतविहार के बारे में सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है कि यहाँ लेणगिरिवासी थेर तिस्सने अपने पवित्र गुणोंके कारण उत्कृष्ट भेट प्राप्त की थी।[6] इसमें यह भी उल्लेख है कि प्राचीन खण्डराजीके थेर पांसुकीलिक यहीं रहते थे और देवानांपियतिस्स के भाई अभय थेर ने यहीं दीक्षा ली थी।[7] अनुराधपुर के महाविहार के विषय में इसमें उल्लेख मिलता है कि इसको देवानांपियतिस्स ने थेर महिन्द के श्रीलङ्का में आने के कुछ समय पश्चात् ही बनवाया था।[8] जो भिक्खु विदेशों से महाचेतिय तथा महाबोधि वृक्ष की वन्दना के लिये आते थे, वे इसी महाविहार में ठहरते थे[9] और यह महाविहार विद्वान थेरों के पवित्र उपदेशों के लिये

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५१४।
२. वहीं, भाग २, पृ० ५३०।
३. वहीं, भाग २, पृ० ६३५।
४. वहीं, भाग १, पृ० २६१।
५. वहीं, भाग २, पृ० ५६६।
६ वहीं, भाग २, पृ० ५३४।
७. वहीं, भाग ३, पृ० १०१०।
८. वहीं, भाग २, पृ० ५७८।
९. वहीं, भाग ३, पृ० १०११।

देश-विदेशों में प्रसिद्ध हो गया था।[1] अम्बलट्ठिका विहार तथा पंचनिकाय विहार भी महाविहार से सम्बन्धित थे। पहले में दीघभाणक थेरों ने 'ब्रह्मजालसुत्त' का[2] तथा दूसरे में राजा बसभ के समय में 'महासुदस्सन सुत्त' का[3] उपदेश दिया था। यहाँ मूल त्रिपिटकों तथा उनकी अट्ठकथाओं का पाठ होता था और पाठ के समय अशुद्धियों को बतलाया जाता था और वे शुद्ध कर दी जाती थीं।[4] महाचेतिय के बारे में इसमें उल्लेख है कि यह लोहपासाद से भी अधिक मजबूत बनवाया गया था। पपंचसूदनी में इसीलिये इसे असदिस ( असदृश ) महाचेतिय कहा गया है। इसका आयाम भी सबसे बड़ा था।[5] सुमंगलविलासिनी के अनुसार, परम्परा कहती है कि, थेर महाकस्सप ने इस महाचेतिय के लिये बुद्ध भगवान् के अवशेष सुरक्षित रखे थे।[6] यह भी कहा जाता है कि बुद्ध भगवान् ने श्रीलंका में अपने विहारों के समय एक बार इस महाचेतिय के स्थान पर स्वय बैठकर इसे पवित्र किया था तथा थेर महिन्द ने इस स्थान पर इसी कारण पुष्प चढ़ाये थे।[7] इसमें उल्लेख है कि महाचेतिय उन स्थानों में से एक है, जहाँ बुद्धावशेष आवेंगे। इसमें उल्लेख है कि देवानांपियतिस्स ने नागद्वीप में राजायतन चेतिय[8] तथा जम्बुकोलविहार[9] बनवाये थे। रोहण प्रान्त के तिस्समहाराम का उल्लेख है कि यहाँ भिक्खु लोग चातुर्मास के समय आते थे और अपने पढ़े हुए त्रिपिटक तथा ,अट्ठकथाओंको दुहराते थे।

श्रीलंका के भिक्खु-जीवन के बारे में सुमंगलविलासिनी में उल्लेख मिलता है कि वहाँ इतने भिक्खु आर्हन्त्य पद प्राप्त कर चुके हैं कि गांवों के उपाश्रयों में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ भिक्खुओं ने बैठकर आर्हन्त्य पद प्राप्त न किया हो।[11] श्रीलंका में अभयगिरि, चेतिय पब्बत तथा चित्तल पब्बत सदृश बहुत से विहार थे जहाँ बारह-बारह हजार भिक्खु एक साथ रहते थे। इससे पता चलता है, कि इस द्वीप में विहारों और भिक्खुओं

१. सुमंगलविलासिनी भाग ३, पृ० ७४८
२ वही भाग १, पृ० १३१। ३. वही, भाग २, पृ० ६३५।
४. वही, भाग २, पृ० ५८१। ५. वही, भाग २, पृ० ५७८।
६. वही, भाग २, पृ० ६११। ७. वही, भाग १, पृ० १०१।
८. वही, भाग ३, पृ० ८६६। ९. वही, भाग २, पृ० ५३४।
१०. वही, भाग ३, पृ० ८६६। ११. वही, भाग १, पृ० १८८।

की संख्या कितनी अधिक थी और इतने भिक्खुओं को भोजनादि देने वाले कितने धर्म श्रद्धालु श्रावक थे।

चेतिय पूजा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में सुमंगलविलासिनी में आचार्य बुद्धघोष बतलाते हैं, कि थेर कस्सप ने महाराज अजातशत्रु से भगवान् बुद्ध के अवशेषों को एकत्रित करवाने और उनको स्तूपों में सुरक्षित रखवाने के लिये प्रार्थना की थी।[1] उस समय थेर का अभिप्राय उन स्तूपों की पूजा से था, या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है। सुमंगलविलासिनी में यह भी उल्लेख मिलता है कि चेतिय शब्द पहले यक्खों (यक्षों) के निवास स्थान के अर्थ में प्रयुक्त होता था[2] और कहा जाता है कि बुद्ध भगवान् बोधि प्राप्त करने के पश्चात् पहले बीस वर्ष तक प्रायः ऐसे ही चेतियों में रहा करते थे। इनमें से कुछ के नाम ये हैं :—गोतमक, चापाल, सारनन्द और बहुपुत्तचेतिय। ये इन नामों के यक्षों के निवास स्थान थे। वहीं यह भी निर्देश है कि सबसे पहले भगवान् बुद्ध ने अपने धम्मसेनापति अर्हन्त शिष्य सारिपुत्त और थेर मोग्गलान के निर्वाण प्राप्त करने पर उनके अवशेषों के लिये चेतिय बनवाये थे। दीघनिकाय में कहा गया है कि चेतियों में बुद्ध, पच्चेक बुद्ध, बुद्ध भगवान् के शिष्य तथा चक्कवत्ति ( चक्रवर्ती ) राजाओं के ही अवशेष रखने योग्य हैं।[3] किन्तु सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि भगवान् के शिष्यों में केवल आर्हन्त्य-पद प्राप्त शिष्यों के ही चेतिय बनाने योग्य हैं।[4] इसमें उल्लेख है कि बुद्धों के अवशेष अभिन्न रूप से इकट्ठे रहते हैं, किन्तु भगवान् गौतम बुद्धके अवशेष भिन्न-भिन्न परिमाण के टुकड़ों में अलग-अलग हो गये, क्योंकि भगवान् जानते थे कि उनका परिनिव्वाण बहुत शीघ्र ही, उनके 'सासन' (शासन) के प्रत्येक दिशा में फैलने के पहले हो जावेगा, इसलिये उनके अवशेष हर एक भक्त को सुप्राप्य होने चाहियें, जिससे वे लोग उनके स्तूप, चाहे सरसों के बराबर ही क्यों न हों, बनवा सकें और उनकी वन्दना करके

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ६११।
२. ,, ,, पृ० ५५४।
३. दीघनिकाय भाग ३, पृ० १४२।
४. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५८३–८४।

परलोक में सुखी जीवन प्राप्त कर सकें ।[१] कहा जाता है कि भगवान् बुद्धने मन्त्री सन्तति का स्तूप बनवाया था, जिससे लोग उसकी वन्दना करके पुण्य के भागी होंगे (महाजनो वन्दित्वा पुञ्ञभागी भविस्सति ।)[२]

सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि चेतिय अथवा बोधिवृक्ष की वन्दना करने जाना 'मेत्तं कायकम्मम्' तथा 'चलो चेतिय की वन्दना करें' कहना 'मेत्तं वाचिकम्मम्' है ।[३] इसी में आगे कहा गया है कि यदि कोई हर्षित मन होकर चेतिय की वन्दना को जाता है और वन्दना करने से पहले ही मर जाता है, तो वह परलोक में सुखी अवस्था को प्राप्त होता है ।[४] यह भी कहा गया है कि भिक्खु को उत्सवों के अवसर पर चेतिय वन्दना के लिये नहीं जाना चाहिये, जिससे कि उनकी शान्ति भंग न हो ।[५] वहीं यह भी निर्देश है कि भिक्खु को हर्षित मन होकर बुद्ध भगवान् का स्मरण करते हुए चेतिय वन्दना को जाना चाहिये और यदि चेतिय बड़ा हो तो प्रत्येक परिक्रमा में चार स्थानों पर धोक देकर और यदि छोटा हो तो आठ स्थानों पर धोक देकर चेतिय की तीन परिक्रमायें करनी चाहिये ।[६] इससे पता लगता है कि चेतिय पूजा श्रीलङ्का में कितनी अधिक बढ़ गई थी ।

भूतावेश को शान्त करने के लिए सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है कि भूतावेश होने पर पहले 'मेत्तसुत्त' 'रतनसुत्त' तथा 'धाजग्गसुत्त' का पाठ सात दिन तक करना चाहिए। फिर इन तीन सुत्तों के साथ 'आटानाटिय सुत्त' का पाठ करना चाहिये । पाठ करने वाले को पाठ वाले दिनों में ढालों से सुरक्षित करके ले जाना चाहिए और पाठ बन्द कमरे में करना चाहिए । यदि इसका भी कुछ प्रभाव न हो तो 'परित्तसुत्त' का पाठ करना चहिए ।[७]

---

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ६०४ ।
२. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ८३ ।
३. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ५३१ ।
४. ,, ,, पृ० ५८२ ।
५. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० १८४ ।
६. ,, ,, पृ० १८६ ।
७. ,, भाग २ पृ० ६६४ ।

अन्य अट्ठकथाओं के समान सुमङ्गलविलासिनी में भी देवताओं का वर्णन मिलता है। इसमें उल्लेख है कि 'ब्रह्माहारीत', जिसका नाम 'महासमयसुत्त' में भी आता है, सारे ब्रह्माओं में प्रधान है[1] तथा इसमें यह भी कहा गया है कि 'ब्रह्मा सनतकुमार' देवों में उपदेशक है। सक्क (शक्र, इन्द्र) का उल्लेख अट्ठकथाओं में सबसे अधिक मिलता है। 'पुरिन्दद' भी इसी का नाम है। यह देवलोक में पवित्र और धार्मिक बौद्ध राजा समझा जाता है और सच्चे धर्म का रक्षक माना जाता है। जब कभी किसी सज्जन मनुष्य पर आपत्ति आती है तो इसका सिंहासन गर्म हो जाता है, जिससे उसकी आपत्ति की ओर इसका ध्यान आकर्षिक होता है। जैन ग्रन्थों में भी वर्णन है कि किसी धर्मात्मा के ऊपर आपत्ति आने पर इन्द्र का सिंहासन हिलने लगता है। सुमङ्गलविलासिनी में उल्लेख है कि इन्द्र ने दोण के हाथ से, जबकि वह बुद्धावशेषों को सब को बाँट रहा था, बुद्ध भगवान् का दन्तावशेष चुरा लिया था[3] और उसने बौद्ध भिक्खुओं को 'अजातसत्रु' (अजातशत्रु) को धोखा देने के लिए उकसाया था। आगे इसमें उल्लेख है कि जब राजा दुट्ठगामणि ने महास्तूप की रचना की तो इन्द्र ने विस्सकम्मा (विश्वकर्मा) को ईंट बनाने के लिये भेजा था। सुमङ्गलविलासिनी में उल्लेख है कि इन्द्र बहुधा पियंगु दीप में भिक्खुओं को पवारणा (वर्षाकाल के चातुर्मास के अन्त में की जाने वाली क्रिया विशेष अथवा रस्म) के लिये निमन्त्रण देने आता है। सिंहलियों में अब तक विश्वास है कि इन्द्र मनुष्यों के पुण्य कर्मों का लेखा रखता है।[4] सुमंगलविलासिनी में एक रोचक वर्णन मिलता है कि चार 'महाराजानो' उनके पुत्र तथा मन्त्रिगण क्रम से पूर्णिमा, द्वितीया और चतुर्दशी के दिन प्रस्थान करते हैं और सुनहरी पुस्तक में मनुष्यों के पुण्य कार्यों का लेखा लिखते हैं और उस पुस्तक को पंचसिख (गन्धर्व) को देते हैं। वह उस पुस्तक को मातलि को देता है और वह उसको इन्द्रके समक्ष प्रस्तुत करता

---

१. सुमगलविलासिनी भाग १, पृ० ४०, भाग २, पृ०६६३।
२. ,, भाग २, पृ० ६५०।
३. ,, ,, पृ० ६०९।
४. ,, ,, पृ० ६४८।

है। तब इन्द्रदेव उसको सभा में पढ़ता है। यदि मनुष्यों ने बहुत से पुण्य कर्म किये हों तो देव लोग बहुत हर्षित होते हैं।[1]

सक्क(इन्द्र) के परिवार में विस्सकम्म (विश्वकर्मा), पंचसिख तथा मातलि हैं। मार तथा सक्कमें इतना अन्तर है कि सक्क धार्मिक है, जबकि मार पाप्मा या पापात्मा समझा जाता है। सक्क के हाथी का नाम 'एरावन' (ऐरावत) है। यह देवों की काम-रूपीश्रेणी के देवों में से एक है, और इच्छानुरूप रूप धारण कर सकता है। जब इन्द्र उद्यान में आता है तब यह हाथी का रूप धारण करता है।[2] जैन ग्रन्थों में भी इसका ऐसा ही उल्लेख है। 'आटानाटिय' सुत्त में उल्लेख है कि धातरट्ठ, विरुल्ह, विरुपाक्ष तथा वेस्सवण ये स्वर्ग के 'चतारो महाराजानो' अर्थात् चार दिशाओं के चार लोक पाल हैं और ये इन्द्र के आधीन हैं।

सुमंगलविलासिनी के अनुसार वेस्सवण (वैश्रवण) बुद्ध भगवान् का विशेष मित्र था और वक्तृत्व कला में बहुत निपुण था।[3] इसके पृष्ठ १६६ में यह अपने दूसरे नाम कुबेर से भी प्रसिद्ध है। सक्क के समान इसमें भी बौद्ध होने के पश्चात् परिवर्त्तन आया था। समन्तपासादिका के अनुसार वह बौद्ध धर्म गृहण करके 'सोतापन्न' होने के पहले अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कुम्मण्ड (एक छोटी श्रेणी के देवताओं को) मारनेके स्वभाव वाला था। बौद्ध हो जाने के बाद वह सज्जनों और धार्मिकों का रक्षक बन गया।[4]

देवलोक की शासन प्रणाली के विषय में बौद्धों की कल्पना मनुष्य लोक की शासन प्रणाली के समान ही है। मनुष्य लोक के समान उनमें भी नैतिकता है। दीघनिकाय के 'महासमयसुत्त' तथा 'आटानाटियसुत्त' में धातरट्ठ गन्धब्बों (गन्धर्वों–स्वर्गके गायकों)का राजा है। सुमंगलविलासिनी में उसे हंसराज कहा गया है और उसका नव्वे सहस्र का परिवार है।[5] डा० आदिकरम का अनुमान है कि अट्ठकथा में नाम परिवर्त्तन का कारण इस नाम की शब्द-व्युत्पत्ति की लोकप्रियता हो सकती है। पाली में

१. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ६५० ।
२. ,, ,, पृ० ६८८ ।
३. ,, भाग ३, पृ० ६६३ ।
४. समन्तपासादिका भाग २, पृ० ४४० ।
५. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० ४० ।

हंसराज का अर्थ राजहंस भी हो सकता है। वैष्णव पुराणों में राजहंस गन्धर्वों का राजा कहा गया है।[१] सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि दस सहस्र ब्रह्माण्डों में ऐसे ही संरक्षक देवता हैं और सर्व ब्रह्माण्डों में उनके ये ही नाम हैं।[२] 'याम' के बारे में उल्लेख है कि अंगुत्तरनिकाय के 'देवदूतसुत्त' में कहा गया है कि ये निरयपाल संरक्षक देव हैं, जो कि यम को शासन में सहायता देते हैं। श्रीलङ्का के कुछ थेर निरयपालों को नहीं मानते थे। उनका कहना था कि 'कम्म' ही पर्याप्त रूप से फल देने में शक्तिशाली है। थेरवाद सम्प्रदाय में प्रथम मत ही मान्य है, दूसरा नहीं। सुमंगलविलासिनी में मार को कण्ह (कृष्ण) और पमत्तबन्धु (प्रमत्तबन्धु) भी कहा गया गया है। अन्य अट्ठकथाओं के समान सुमंगलविलासिनी में भी मार के सैन्य दल का वर्णन एक सा ही है। बुद्ध भगवान् ने बोधि-पल्लंक में तीन मारों–देवपुत्त, मिच्चु (मृत्यु) तथा किलेस (क्लेश) को हराया था, और बाद में खंध और अभिसंखारको। ★

---

१. जॉर्नल ऑफ पाली टेक्स्ट सोसाइटी, १८९३, पृ० २४।
२. सुमंगलविलासिनी भाग २, पृ० ६८७।

## २. पपंचसूदनी

पपंचसूदनी, सुत्तपिटक के द्वितीय ग्रन्थ, मज्झिमनिकाय के ऊपर आचार्य बुद्धघोषकी विस्तृत अट्ठकथा है। इसकी रचना उन्होंने थेर बुद्धमित्त की प्रार्थना पर की थी, जिनके साथ ये भारत से श्रीलंका जाते समय दक्षिण भारत के मयूरसुत्तपट्टन (आधुनिक मयवरम्) में रहे थे। ये थेर उस विहार के अवश्य ही अध्यक्ष रहे होंगे, क्योंकि उनके लिये आचार्य बुद्धघोष ने 'भदन्त' शब्द का प्रयोग किया है—

आयाचितो सुमतिना, थेरेण भदन्त बुद्धमित्तेन।
पुब्बे मयूरसुत्तपट्टनम्हिं सद्धिं वसन्तेन ॥[1]

सुत्तपिटक की अन्य अट्ठकथाओं के समान इसमें भी आचार्य बुद्धघोष ने प्रस्तावना में कहा है कि यह भी उस मूलभूत सिंहली अट्ठकथा का पाली में अनुवाद है, जिसको कि थेर महिन्द ने भारत से अपने साथ लाई हुई पाली अट्ठकथा से सिंहली में भाषान्तर करवाया था और जिसको श्रीलका के महाविहार के थेरों की परंपरा ने सुरक्षित रखा है। इसके अतिरिक्त, उपसंहार की गाथाओं में यह भी लिखा हुआ है, कि अट्ठकथाओं के ये पाली संस्करण, सिंहली महाअट्ठकथा के सार को लेकर (सारं आदाय) संक्षेप रूपमें लिखे गये हैं। सुमंगलविलासिनी तथा अन्य तीन निकायोंके पालीटेक्स्ट सोसाइटी तथा अन्य संस्करणों के समान, पपंचसूदनी के मज्झिमनिकाय के पाठ भी अन्य संस्करणों के मज्झिमनिकाय के पाठ से मिलते हैं।

यह अट्ठकथा भी सुमङ्गलविलासिनी तथा अन्य तीन सुत्तपिटक के ग्रन्थोंकी अट्ठकथाओंकी ही शैली पर लिखी गई है और इसमें भी पौराणिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा दार्शनिक वर्णनों का बाहुल्य है। इसी कारण कोई सन्देह नहीं कि यह भी आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है।

पपंचसूदनी में आचार्य बुद्धघोष लिखते हैं कि जिस प्रकार तीनों वेदों के प्रवचनकर्त्ता गुरु लोग साधारण जनता को आसानी से समझाने के लिये उन्हींकी भाषा में—तमिल लोगों को उन्हीं की मातृ भाषा—तामिल में

---

१. पपंचसूदनी–प्रस्तावना।

तथा आन्ध्र प्रदेश के लोगों को आन्ध्र की भाषा तिलुगु में प्रवचन करते हैं, उसी प्रकार बुद्ध भगवान् भी लोक प्रिय दृष्टिकोण (सम्मुति अथवा सम्मति) को ध्यान में रखकर दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक विषय का उपदेश देते समय श्रोताओं की समझ की आवश्यकता को ध्यान में रखते थे ( यथाहि देस भासा कुसलो तिण्णं वेदानं अत्थान' वण्णनको आचरियो, ये दमिल भासायं वुत्ते अत्थं जानन्ति तेसम् दमिल भासाय अचिक्खेति, ये अन्धक भासादिसु अञ्ञातराय तेसम् ताय ताय भासायेति )।[१] उपर्युक्त कथन से मालूम पड़ता है कि आचार्य बुद्धघोष के समय में चतुर्थ बेद–अथर्ववेद की मान्यता नहीं थी ।

श्री बी० सी० ला का अनुमान है कि केवल 'दमिल' और 'अन्धक' आदि भाषाओं के उल्लेख से आचार्य बुद्धघोष दक्षिणी मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने उत्तरीय भाषाओं का नामोल्लेख नहीं किया । किन्तु यह बात युक्तिसंगत मालूम नहीं पड़ती, क्योंकि सिंहली अट्ठकथा में ऐसा ही उल्लेख होने की सम्भावना हैं, जिसका अनुवाद उन्होंने पाली में जैसा का तैसा कर दिया होगा । दूसरे, यदि यह उन्हीं की उक्ति भी हो तो श्रीलंका वालों के लिये उत्तरीय भाषायें उतनी परिचित नहीं थी, जितनी दक्षिणी भाषायें । इसलिए उन्होंने दक्षिणी भाषाओं का ही उल्लेख किया होगा ।

सुमङ्गलविलासिनी के समान इस अट्ठकथा में भी आचार्य बुद्धघोष ने पाली भाषा को बुद्ध वचनों की भाषा के रूप में अन्य भाषाओं से भिन्न कहा है और बताया है कि यह ध्वनि के दस गुणों से सम्पन्न है । इसमें उदात्त और अनुदात्त स्वरों की उच्चारण विधि, दीर्घ तथा ह्रस्व पदांश लम्बे तथा छोटे छन्द, अनुस्वार तथा अनुनासिक ध्वनि और सुसंबद्ध तथा सुव्यवस्थित वर्णमाला है और यह द्रविड़, किरात, यवनादि उन म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों से रहित है, जिनमें कि सारी स्वर-व्यंजन ध्वनियों का अभाव है ।

सिथिलधनितं च दीघरस्सम्, गरूकलहुकं च निग्गदितम् ।
सम्बन्धनं ववत्थितं विमुत्तं, दसधा व्यंजन बुद्धिया पभेदो ।।

'दमिलकिरातयवनादिमिलेक्खानम् भासाविय व्यंजनपारिपूरिया अभावतो' यहाँ इसकी टीका में म्लेच्छ भाषाओं में पारसीक भाषा का भी ग्रहण किया गया है ।

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १३७—३८ ।

श्री बी० सी० ला कहते हैं कि यवन भाषा[1] से, जिसको कि स्यामी संस्करण में गलती से सवन लिखा गया है, अभिप्राय रोमनों की लेटिन भाषा से है, क्योंकि पुरातत्व विभाग के द्वारा अभी प्राप्त किये गये कुछ स्पष्ट चिन्हों से यह प्रमाणित होता है, कि दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्वमें रोमन लोगों के साथ कांचीपुर के इधर-उधर के स्थानों का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था।[2]

'अरियपरियेसण', 'महासच्चक' तथा अन्य सुत्तों में आचार्य बुद्धघोष ने भगवान् बुद्ध के बारे में कतिपय मनोरंजक कथाओं का उल्लेख किया है, जो कि जातक की निदान कथा से भी मिलती हैं। इसमें निम्न विषयों का वर्णन मिलता है :—चार सत्य, निक्खेप दश बल, बोज्झंग, धम्मचक्क, सब्बधम्ममूल, णिब्बाण, पठवी, तथागत, अभिसंबुद्ध, पापों का नाश, मिथ्या-विश्वास, सद्धा-विश्वास, पुग्गल, 'णिब्बाण' की ओर ले जाने वाले मग्ग (मार्ग), विघ्न, स्पर्श, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, सम्यक्स्मृति, चेतन्य, पासाद भावना, संयम अथवा वासनादमन इत्यादि।

इसमें भी अन्य अट्ठकथाओं के समान मनोरंजक ऐतिहासिक तथा भौगोलिक वर्णन मिलते हैं :—इसमें कुरुदेश का उल्लेख है और कहा गया है कि उस देश के राजा भी कुरु (कौरव) कहलाते थे। इन लोगों के मूल उद्गम के बारे में इस अट्ठकथा में नीचे लिखी काल्पनिक कथा कही गई है :—राजा मान्धाता को चक्ररत्न प्राप्त हुआ था, इसलिये वह चक्रवर्ती राजा कहलाता था। इस चक्ररत्न के प्रभाव से वह किसी भी इच्छित स्थान पर जा सकता था। उसने देवलोक के अतिरिक्त पुब्बविदेह, अपर गोयान और उत्तरकुरु को जीत लिया था। जब वह अपनी उत्तरकुरु की विजय यात्रा से लौट रहा था तो, वहाँ के बहुत से निवासी उसके साथ जम्बूद्वीप आये। जम्बूद्वीप में जहाँ ये लोग अनेक गाँव, नगर और प्रान्त बनाकर बसे, वह सारा प्रदेश कुरु राष्ट्र कहलाया। यही कारण है कि इस देश के लिए बहुवचन 'कुरुसु' प्रयोग किया जाता है।[3] (किन्तु संस्कृत में सभी देशों के लिये बहुवचन का ही प्रयोग होता है।)

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० २०३।

२. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष (१९४६ संस्करण), पृ० ८५।

३. पपंचसूदनी भाग १, पृ० २२५–२६।

इसी प्रकार सावत्थी (श्रावस्ती) नगर के यह नाम पड़ने के बारे में भी एक काल्पनिक व्याख्या इस अट्ठकथा में मिलती है। यह कहा जाता है कि यहाँ सब कुछ अर्थात् व्यापार आदि की सर्व सामग्री मिल जाती थी। इसलिये यहाँ से जाने वाले व्यापारियों से जब अन्य व्यापारी पूछते थे कि वहाँ क्या-क्या वस्तुयें हैं तो वे व्यापारी लोग उत्तर में कहते थे—'सब्बं अत्थि'। इसलिये इस नगरका नाम सावत्थी पड़ा (अर्थात् सब्बं यत्र अत्थि इति सव्वत्थि अथवा सावत्थी)।[1]

'उक्कट्ठ का यह नाम पड़ने का कारण यह था कि इसको बनाते समय उल्काओं (मशालों) के प्रकाश में रात्रि में भी बनाने का कार्य होता था, जिससे कि यह शुभ समय में ही जल्दी पूर्ण हो जावे।

पयाग (प्रयाग) को पपंचसूदनी में गंगा के घाट के रूप में वर्णन किया गया है। यहाँ राजा महापणाद का प्रासाद पृथ्वी के अन्दर समा गया था। हिमालय प्रदेश को इसमें तीन सहस्र योजन के विस्तार वाला वर्णन किया गया है।

पपंचसूदनी के अनुसार 'कम्मासधम्म' कुरु देश का एक नगर था। आचार्य बुद्धघोषके अनुसार यह 'कम्मासदम्म'भी बोला जाता था। कम्मास एक यक्ष का नाम था। वह कम्मासपाद भी कहलाता था। उसके नाम के आगे 'पाद' इसलिये जोड़ा जाता था, कि एक बार उसके एक गहरा घाव लगा और अच्छा होने पर उसने एक चिकने शहतीर के समान चिन्ह कर दिया।

'कलन्दनिवाप' वेलुवन के एक वनप्रदेश का नाम था। इसका यह नाम पड़ने का कारण यह बताया गया है, कि यहाँ गिलहरियों को नियमानुसार प्रतिदिन भोजन दिया जाता था। कहा जाता है कि एक बार एक राजा यहाँ शिकार खेलने आया। अधिक शराब पीने के कारण वह वहाँ एक वृक्ष के नीचे सो गया। उसके परिजन लोग फलों की खोजमें उसे छोड़ कर चले गये। शराब की गंध से एक काला सर्प उसके पास आने लगा। वृक्ष के अधिष्ठातृ देवता ने राजा के ऊपर आते हुए संकट को देखकर गिलहरी का रूप धारण कर लिया और चीं-चीं की आवाज में

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० ५९।

जोर से शोर किया। उसके शोर को सुनकर राजा जाग गया। यह देखकर कि एक गिलहरी ने उसकी जान बचाई है, उसने आदेश निकाला कि उस प्रदेश की गिलहरियों को प्रतिदिन नियमानुसार भोजन दिया जाय। इस कारण उस प्रदेश का नाम कलन्दनिवाप पड़ गया।[१]

इस अट्ठकथा में आकस्मिक तौरसे गंगा यमुना नदियों का, सावत्थी के जेतवन का तथा 'गिरिव्वज' का नाम आता है।[२] गिरिव्वज स्थान का यह नाम इस कारण पड़ा कि यह गायों के घेर की तरह चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ था।[३] गंगा और यमुना के अतिरिक्त इसमें वाहुका, सुन्दरिका, सरस्सति (सरस्वती) तथा बहुमती इन चार नदियों का तथा 'चित्तल' पर्वत का भी वर्णन है।[४] कुरुदेश में भगवान् बुद्ध के विहार के समय में उनके द्वारा किये गये कार्यों का भी इसमें उल्लेख है।[५] इसी प्रकार बोधिवृक्ष और लुम्बिनी उद्यान से सम्बन्धित घटनाओं का भी इसमें उल्लेख है।[६]

इस अट्ठकथा में तावतिंस स्वर्ग के पौराणिक वर्णन में लिखा है कि यह स्वर्ग बहुत सुन्दर है। यहां चार बड़े देवराज सक्क (शक्र=इन्द्र) के सेवक हैं। इसमें 'वेजयन्त' (इन्द्र का भवन) एक सहस्र योजन के विस्तारे वाला है। यहाँ इन्द्र की सुधम्म (सौधर्म) नामकी देव सभा पाँच सौ योजन आयाम वाली है। बेजयन्त स्वर्ग का रथ एक सौ पचास योजन विस्तृत है।[७]

इसमें बुद्ध भगवान् के दो प्रकार के उपदेशों का उल्लेख है—सम्मुतिदेसना तथा परमत्थदेसना। सम्मुतिदेसना सर्व साधारण के लिए होती थी, इसमें अनिच्च (अनित्य), दुःख, अनत्तखंध (अनात्म्यस्कन्ध), आयतन तथा सतिपट्ठान आदि के ऊपर उपदेश सम्मिलित होते थे।[८]

इस अट्ठकथा में दमिलभासा तथा अन्धभासा का उल्लेख मिलता है, जिनकी आधुनिक तामिल और तिलुगु स्थूल रूप से स्थानापन्न कही जा

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० २३४। २. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १२।
३. „ भाग १, पृ० १५१। ४. „ „ पृ० १७८।
५. „ „ पृ० २२५। ६. „ „ पृ० १३।
७. „ „ पृ० २२५। ८. „ „ पृ० १३७।

सकती हैं।[१] इसमें वृक्ष-पूजा का भी उल्लेख है कि उस समय गाँवों और नगरों में ऐसे वृक्ष थे जो पूजे जाते थे।[२] गहपति (कृषक) के कृषि और गोपालन मुख्य व्यवसाय थे और वे उसके लिये कल्याणकारी समझे जाते थे।[३] इसमें पाँच प्रकार की औषधियोंका उल्लेख है[४]:—सप्पि (सर्पि-घी) नवनीत (मक्खन), तेल, मधु और फाणित (गुड़)। इसमें मारको 'पजापति' कहा गया है, क्योंकि उसका अधिकार सारे मनुष्य समाज पर है।[५] इसमें चार प्रकार की पृथ्वी का उल्लेख है[६]:—चिन्हित (चिन्हों वाली) लोष्ठित (ढेलों वाली), भावित (भावपूर्ण) तथा चित (चुनी हुई)।

पपंचसूदनी में उल्लेख है कि बुद्ध भगवान् के अवतार के समय से पहले प्रत्येक बुद्ध ने, 'गन्धमादन पर्वत' पर एक सप्ताह ध्यान में बिताया था। ध्यान से उठकर उन्होंने अपने मुँह 'अनोतत्त सरोवर' में धोये और अपने कपड़े पहनकर, दानपात्र हाथ में लेकर, वे आकाश मार्ग से उछले और 'इसिपत्तन' पर उतरे तथा भिक्षा के द्वारा भोजन प्राप्त कर वे फिर गन्धमादन पर्वत पर चले गये।[७] यह जगह इसिपत्तन इसलिये कहलाई, क्योंकि यहां ऋषि लोग आकाश मार्ग से उतरते थे, और यहीं से वे फिर आकाश मार्ग से गन्धमादन पर्वत पर जाते थे। नादिका एक सरोवर का नाम था। उसके पास का गाँव भी इसी के नाम पर नादिका ग्राम नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें उल्लेख है कि गोसिंगसालवन नादिका सरोवर के पास एक वन-प्रदेश था। आचार्य बुद्धघोष के अनुसार इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि उस जंगल में एक बहुत बड़ा साल वृक्ष था, जिसकी शाखाएँ उसके तने से गोश्रृङ्गों के समान निकली हुई थीं।[८]

आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि बुद्धगया और गया का अन्तर तीन गावुत (गव्यूति) से कम था। एक गव्यूति लगभग छः कोस की होती है।

पपंचसूदनी के अनुसार महावन वेसाली (वैशाली) के पास एक प्राकृतिक वन था।[९] यह कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) से लेकर हिमालय तक

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १३८। २. पपंचसूदनी भाग १, पृ० ११९।
३. ,, ,, पृ० १११। ४. ,, ,, पृ० ९०।
५. ,, ,, पृ० ३३। ६. ,, ,, पृ० २५।
७. ,, भाग २, पृ० १८८। ८. ,, भाग २, पृ० २३।
९. ,, ,, पृ० २६७।

और वहाँ से समुद्र के किनारे तक फैला हुआ था। यह सीमा रेखा से सीमित था। कोसाम्बी (कौशाम्बी) का यह नाम पड़ने के बारे में आचार्य बुद्धघोष दो प्रकार की व्युत्पत्ति देते हैं—पहली, इसके चारों ओर कोसम्ब वृक्ष उगे हुए थे और दूसरी, यह कोसम्ब ऋषि के आश्रम के पास बसा हुआ था। पपंचसूदनी में उल्लेख है कि अङ्ग देश का यह नाम पड़ने का कारण यह था कि वहाँ के राजा लोग अपने शरीर की सुन्दरता के कारण अङ्ग नाम से पुकारे जाते थे, इसीलिए उन्हीं के नाम पर देश का यह नाम पड़ा।[१] इसमें बताया है कि चम्पानगरी का यह नाम पड़ने का कारण था कि वहाँ चम्पक वृक्ष बहुत अधिक थे।[२] इस नगर के पास एक गग्गरा नाम का सरोवर था, जिसे रानी गग्गरा ने खुदवाया था। इसके किनारों पर चम्पक वृक्षों का समूह था, जो कि अपने पुष्पों की सुगन्धि के लिये प्रसिद्ध था। बुद्ध भगवान् ने यहाँ कितनी ही बार विहार किया था। पपंचसूदनी में एक 'बेलुवा' नाम के छोटे गाँव का उल्लेख है जोकि वेसाली के पास, नगर के दक्षिण में था।[३] 'उत्तराप' एक प्रदेश का नाम था, जो कि माही नदी के उत्तर में था। इसका दूसरा नाम अंगुत्तर भी था, क्योंकि यह अङ्ग देश का ही भाग था, जो कि माही नदी के दूसरे किनारे पर था।

लेखन कला के विषय में पपंचसूदनी में उल्लेख है कि कोसल (कौशल) के राजा ने राजा पुक्कुसाति को एक पत्र भेजा था, जिसमें धम्म की व्याख्या थी।[४] महावग्ग में भी उल्लेख है 'सचे खो उपालि लेखम् सिक्खिस्सति।' इससे ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध से पहले भी लेखन कला प्रचलित थी।[५]

पपंचसूदनी में जम्बूद्वीप[६] का क्षेत्रफल दस सहस्र योजन बतलाया गया है। यह प्रचुर अन्न-जल वाला देश था। इसके तीन सहस्र योजन के प्रदेश में लोग रहते थे। दूसरे तीन सहस्र योजन के प्रदेश को हिमालय ने घेर रखा था। इस प्रदेश की चौड़ाई पाँच योजन थी। यह चौरासी

१ पपंचसूदनी भाग २, पृ० ३१२। २. पपंचसूदनी भाग २, पृ० १।
३. ,, भाग ३, पृ० १२। ४. ,, (सिंहली) पृ० ५३४।
५. महावग्ग अध्याय १, पृ० ४३,४६१ ६. ,, भाग २, पृ० २४३,६२३।

सहस्र शिखर, पाँचसौ नदियों और दो सहस्र योजनसे भी अधिक विस्तार वाले सात सरोवरों से सुशोभित था। सरोवरों के नाम कण्णमुण्ड, अनोतत्त, रथकार, चड्डान्त (चुड्डोन्त), कुणाल, मन्दाकिनी तथा सीहप्पपात थे। इनमें से अनोतत्त पाँच पहाड़ियों से वेष्टित था। इन पहाड़ियों के नाम–सुदस्सन, चित्तकूट, कालकूट, गन्धमादन और केलास (कैलाश) थे। सुदस्सन कूट सुनहरे रंग का था और अनोतत्त सरोवर को घेरे खड़ा था। चित्तकूट सर्व प्रकार के रत्नों और मणियों से पूर्ण अथवा चित्रित था। कालकूट का रंग अंजन के सदृश था। गन्धमादन की श्रेणी के ऊपर चौरस प्रदेश था और उसका रंग गहरा था। इसके ऊपर बहुत प्रकार की औषधियों की जड़ी बूटी उगी हुई थ ।[1] जम्बूद्वीप को इसके वन बाहुल्य के कारण, जंगलबहुल तथा पुब्बविदेहको द्वीप कहा गया है।

पावारिक आम्रवन, नालंदा के पावरिक सेट्ठी (श्रेष्ठी) का क्रीड़ोद्यान था। इसके अन्दर पावरिक सेट्ठी ने भगवान् बुद्ध के उपदेश सुन कर और उनसे बहुत प्रसन्न होकर भिक्खुओं के लिये एक विहार बनवाया था और इसको भगवान् बुद्ध के संघ को दान में दिया था।[2] इसमें उल्लेख है कि कोलिय नगर का यह नाम इसलिये पड़ा कि यह कोलिय राजाओं की राजधानी अथवा निवास स्थान था।[3] वहीं यह भी उल्लेख है कि हलिद्द-वसन नगर का यह नाम इसलिए पड़ा कि इसके बनवाने के समय लोगों ने पीले वस्त्र पहनकर 'नक्खत्ताउत्सव' मनाया था। यह उत्सव किसी विशेष मंगलकारी नक्षत्र के उपलक्ष्य में मनाया जाता था। पपंचसूदनी में बताया है कि मखादेवअम्बवन विदेह के राजा मखादेव ने बनवाया था।[4] इसमें कहा गया है कि राजकुमार बोधि का प्रासाद कोकनद कहलाता था, क्योंकि यह लटकते हुए कमल के आकार का बनवाया गया था।[5] निग्रोधाराम एक विहार का नाम था, जिसके चारों ओर परिकोटा था। इसमें अनेक दरवाजे तथा खिड़कियाँ और एक भोजनशाला तथा एक मण्डप था।[6] इसमें मज्झिम देस को जम्बू द्वीप का एक भाग कहा गया है। यह तीन सौ योजन लम्बा, ढाई सौ योजन चौड़ा तथा नौ सौ योजन की परिधि वाला

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० ३४। २. पपंचसूदनी भाग ३, पृ० ५२।
३. ,, भाग ३, पृ० १००। ४. ,, ,, पृ० ३०९।
५. ,, ,, पृ० ३२१। ६. ,, भाग ४, पृ० १५५।

था। यह अनेक बुद्धों, प्रत्येक बुद्धों, थेरों, बुद्ध भगवान् के अस्सी शिष्यों, अनेक सार्वभौम सत्ताधारी राजाओं, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ब्राह्मणों और क्षत्रिय गृहस्थों का निवास स्थान रहा था।[१] तपोदाराम का यह नाम इसलिये पड़ा कि इसमें उष्ण जलका एक कुण्ड था।[२] वेभार पहाड़ी की तराई में पाँचसौ योजन विस्तार का नागों का एक निवास था और वहाँ पर एक बड़ा सरोवर था जिसमें नागलोग क्रीड़ा किया करते थे। उसी सरोवर से तपोदा नदी निकलती थी, जिसका पानी गर्म था।[३] गंगा, यमुना, अचिरावती सरम्भू और साही नदियाँ अनोतत्त सरोवर अथवा झील से निकलती है।[४] पपंचसूदनी में मालुवावेल,[५] एलण्ड (एरण्ड),[६] नीलकुरूण्डक, बन्धुजीवक, और कारिणकार[७] का तथा पुचिमण्ड[८] (नीम) का भी उल्लेख है। आचार्य बुद्धघोष ने इसमें दो प्रकार के वनों का वर्णन किया है—एक तो ऐसे जहाँ वृक्ष लगाये जाते हैं, तथा दूसरे वे जहाँ वृक्ष स्वयं उगते हैं। इनमें अम्बवन, महावन, अंजनवन और सुभगवन कृत्रिम वन थे तथा जेतवन और वेलु.वन स्वाभाविक वन थे।[९] पहले प्रकार के वनों से अभिप्राय शायद उपवनों अथवा पार्कों से है।

बुद्ध भगवान् के उत्पन्न होने के समय होने वाले ओहासो (आभास) के बारे में दीघभाणकों और मज्झिमभाणकों के कथन का अन्तर भी पपंचसूदनी में दिया है।[१०] दीघभाणक कहते हैं कि यह आभास खीर के एक ग्रास के खाने के समय मात्र भी नहीं रहता। यह केवल इतने समय तक रहता है, जितना कि मनुष्य के जागने और पदार्थों को विषय-भूत करने के बीच होता है। मज्झिमभाणक कहते हैं कि यह आभास उंगलियों के चटकाने के समय मात्र तक रहता है। यह इतने समय के पहले लुप्त हो जाता है, जितना कि 'यह क्या' शब्द उच्चारण करने में लगता है। भगवान् बुद्ध के बारे में अत्युक्ति तथा अतिशयोक्ति पूर्ण बातों को पपंचसूदनी में भी संबहुलवार कहा गया है।

---

१. पपंचसूदनी भाग ४, पृ० १७२। २. पपंचसूदनी भाग ४, पृ० १७२।
३. ,, भाग ५, पृ० ४–५। ४. ,, भाग २, पृ० ५८६।
५. ,, भाग २, पृ० ३७१। ६. ,, ,, पृ० ६८।
७. ,, भाग १, पृ० १६७। ८. ,, ,, पृ० ३७२।
९. ,, ,, ११। १०. ,, (सिंहली), पृ० ६२१।

भाणकों के बारे में पपंचसूदनी में कहा गया है कि प्रारम्भ में इनका प्रयोजन बड़ा उपयोगी था, किन्तु बाद में 'गेहसितपेम' अर्थात् 'यह हमारा दीघनिकाय है,' 'यह हमारा मज्झिम निकाय है'—भाणकों के हृदय में आ गया। यह गेहसितपेम अट्ठकथाओं के लिखनेके समयभी प्रचलित था।[१]

पपंचसूदनी में कहा गया है कि हिमालय तीन सौ योजन विस्तार वाला है।[२] वेसाली (वैशाली) नगर का नाम वेसाली इसलिये पड़ा कि यह स्वयमेव दिन पर दिन बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण विशाल होता जाता था। इसी कारण इसके परिकोटे बार-बार दूर-दूर पर बनाये जाते थे।[३] इसमें बताया गया है कि कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) से राजगह (राजगृह) साठ योजन की दूरी पर है।[४] इसमें नादिका का सरोवर के रूप में वर्णन है।[५] घोसिताराम विहार का यह नाम इसलिये पड़ा कि इसको घोसित श्रेष्ठी ने बनवाया था।[६]

पपंचसूदनी (सिंहली) में भगवान् बुद्ध के बारे में उल्लेख मिलता है कि जब वे गर्भ में आये तो चार देवताओं के राजा (चतुम्महाराजिका) उनकी रक्षा के लिये उपस्थित रहते थे। बोधिसत्व की माता के हृदय में किसी भी प्रकार का काम विकार पैदा नहीं होता था और न वे किसी विकार भाव वाले से प्रभावित होती थीं।[७]

पपंचसूदनी में भी अन्य अट्ठकथाओं के समान श्रीलङ्का के बारे में वर्णन मिलता है। इसमें वर्णन है कि दुट्ठगामणि के समय के थेरों में एक बहुत प्रसिद्ध थेर धम्मदिन्न थे। वे अर्हन्त थे और भिक्खुओं के आचार्य तथा अध्यापक थे। उनके पथप्रदर्शन में बहुत से भिक्खुओं ने अर्हन्त पद प्राप्त किया था। उनका यश चारों ओर फैल गया था। तिस्समहाराम के निवासियों ने उनकी महिमा को सुनकर उन्हें उच्च भिक्खु-जीवन के ऊपर उपदेश देने के लिये आमन्त्रित किया था। थेर धम्मदिन्न भिक्खु संघ के साथ (भिक्खु संघ परिवुत्तो) वहाँ गये, किन्तु वे लोग उनकी महत्ता को समझ नहीं सके। मार्ग में उन्होंने दो थेरों के भ्रम को कि वे अर्हन्त हैं,

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० ६।  २. पपंचसदनी भाग २, पृ० ६।
३. ,, ,, पृ० १६।  ४. ,, ,, पृ० १२५।
५. ,, ,, पृ० २३५।  ६. ,, ,, पृ० ३६०।
७. ,, (सिंहली) पृ० ६२२।

बड़े रोचक ढंग से दूर किया। उनमें से एक हंकनविहार के तथा दूसरे चित्तलपव्वतविहार के निवासी थे। दोनों को ही झूठा विश्वास था कि उन्होंने अर्हन्तता प्राप्त कर ली है। उसी प्रकार उन्होंने अपने गुरु महानाग को भी समझाया था कि वे अर्हन्त नहीं हैं। ये गुरु उच्चाट लङ्का में रहते थे।[1] विसुद्धिमग्ग में इनके बारे में यह भी उल्लेख है कि उनको ऐसी ऋद्धि प्राप्त थी कि वे अपने श्रोताओं को स्वर्ग और नर्क के दर्शन करा देते थे।[2]

पपंचसूदनी में मलयवासी थेर मलियदेव के बारे में उल्लेख है कि ये एक सफल उपदेशक थे। इनके बारे में कहा गया है कि इन्होंने 'छछक्कसुत्त' का उपदेश लोहपासाद आदि चौदह स्थानों पर दिया और प्रत्येक स्थान पर साठ-साठ भिक्खुओं को आर्हत्य पद प्राप्त हुआ।[3] इससे अभिप्राय है कि ये श्रीलङ्का के कोने-कोने में उपदेश देते हुए घूमते थे और लोगों को धर्म-लाभ कराते थे। अधिक वृद्धावस्था में इनका अपने हाथ से स्नान करने का वर्णन बड़ा हृदयस्पर्शी है। ये पुरुष को देखकर उसकी योग्यता के अनुसार ध्यान की भिन्न-भिन्न विधि देने में निपुण थे। मलयवासी विशेषण इनके नाम के साथ जोड़े जाने से प्रतीत होता है कि ये श्रीलङ्का के भीतरी पर्वतीय प्रदेश मलय के निवासी थे। थेर मलय महादेव और थेर धम्मगुत्त उन चार थेरों में से थे, जिनको कि थेर धम्मदिन्न ने दुट्ठगामणि के द्वारा दिया हुआ दलिया बांटकर खाया था। यह दलिया वही था, जिसको अक्खखायिका अकाल के समय दुट्ठगामणि ने अपने कानों के मूल्यवान कुण्डलों को देकर प्राप्त किया था।

पपंचसूदनी में वर्णन मिलता है कि दुट्ठगामणि का यह नियम था कि वह किसी भी खाद्य-पदार्थ को, बिना किसी भिक्खु को उसका भाग दिये, नहीं खाते थे। एक बार उन्होंने एक लम्बी मिर्च को बिना किसी भिक्खु को उसका भाग दिये खा लिया था। इसलिये प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने मरीचविहार नाम का विहार भिक्खुओं के लिये बनवाया था। यह विहार

---

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १८४।
२. विसुद्धिमग्ग भाग २, पृ० ३९२।
३. पपंचसूदनी (सिंहली संस्करण), पृ० १०२४।

तीन वर्ष में पूरा हुआ। इस विहार की प्रतिष्ठा अथवा समर्पण उत्सव के समय उसने एक भारी उत्सव किया था, जिसमें एक लाख भिक्खु और नव्वे सहस्र भिक्खुनी सम्मिलित हुई थीं।[1] इसी दिन एक रोचक घटना घटित हुई, जिसका परिणाम पश्चात् समय में हुआ। घटना इस प्रकार है :—किसी छोटे सामणेर को पात्र भर गर्म खीर का भोजन प्राप्त हुआ। वह इस पात्र को अधिक गर्म होने के कारण बड़ी कठिनाई से ले जा रहा था। कभी इसको अपने कपड़ेके छोरों पर बदल-बदल कर रखता तो कभी जमीन पर। एक सामणेरी ने यह देखकर अपना पात्र उसके गर्म पात्र के नीचे रखने को उसे दे दिया। साठ वर्ष बाद श्रीलङ्का में अकाल पड़ा और वे दोनों अलग-अलग श्रीलङ्का को छोड़कर भारत में आ गये। सामणेरी ने, जो कि अब भिक्खुनी थी, सुना कि एक भिक्खु सिंहलद्वीप से भारत आया है। वह उसे देखने गयी। बातचीत करने पर उसको पता चला कि वह भिक्खु वही सामणेर था, जो उसको मरीचविहार के उत्सव के दिन मिला था और जिसको उसने बचपन में अपना पात्र दिया था। उन दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम पैदा हुआ। यद्यपि वे साठ वर्ष के थेर–थेरी थे, वे अपने उच्च भिक्खु जीवन से गिर गये और उन्होंने पाराजिका अपराध किया।

पपंचसूदनी में उल्लेख है कि दुट्ठगामणि के पश्चात्कालीन थेरों में थेर कालबुद्ध रक्खित बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं। वे शायद दुट्ठगामणिके किसी मंत्री के पुत्र थे और बौद्धधर्मके निपुण उपदेशक थे। उनको 'वातकसित पव्वत' पर आर्हन्त्य प्राप्त हुआ था और वे चेतियपव्वतविहार में बहुत से भिक्खुओं के अध्यक्ष बनकर रहते थे। राजा सद्धातिस्स एक बार रात भर खड़े रहकर इनके उपदेश को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते रहे थे।[2]

पपंचसूदनी में थेर तिस्सभूति के बारे में उल्लेख है, कि जब वे विद्यार्थी अवस्था में थे तो उनके हृदय में एक बार गाँव में से जाते समय, एक स्त्री को देखकर प्रबल काम विकार उत्पन्न हुआ। विकार भाव आते ही उन्होंने दृढ़ता से उसको नष्ट कर दिया, किन्तु रात्रि को

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० १४५।
२. ,, ,, पृ० २६३–६४।

सोते समय उनको वह स्त्री फिर दिखाई दी। इस पर वे अपने गुरु मलयवासी थेर महासंघरक्खित के पास गये और उनका परामर्श लेकर ध्यान के द्वारा उस विकार भाव को उन्होंने नष्ट कर दिया। इसके पश्चात् वे अर्हन्त हो गये।[1] जिस प्रकार समन्तपासादिका आदि में महासिवत्थेर आदि प्राचीन थेरों के उल्लेख मिलते हैं, पपंचसूदनी में थेर गोणरविय का उल्लेख मिलता है। थेर चूलनाग के बारेमें इसमें उल्लेख है कि ये विद्वान् उपदेशक थे और इन्होंने अम्बिलविहार में 'छछक्कसुत्त' का उपदेश दिया था।[2] अनत्ता (अनात्मता) के ऊपर दिये गये इनके उपदेश का एक ब्राह्मण के ऊपर विलक्षण प्रभाव पड़ने का उल्लेख, अन्य अट्ठकथाओं की तरह पपंचसूदनी में भी है।[3] इसमें कहा गया है कि थेर तिपिटक चूळाभय और थेर चूळनाग भी दीपविहारवासी थेर सुम्म के ही शिष्य थे।[4] थेर सुम्म का निर्देश इसमें तिपिटक चुल्लसुम्म नाम से भी किया गया है।[5] सम्मोहविनोदनी में इन्हें दिव्वविहार के थेर सुम्म कहा गया है।

राजा सद्धातिस्स(७७-५९ ई० पूर्व) की धार्मिक दृढ़ताका महत्वपूर्ण उल्लेख पपंचसूदनीमें मिलता है, कि ये पूरी रात खड़े रहकर बड़े ध्यानपूर्वक थेर कालबुद्धरक्खित का उपदेश सुनते रहे थे। ये बौद्ध-सिद्धांतों के पक्के अनुयायी थे और नियमों का पालन बड़ी तत्परता के साथ करते थे। इन्होंने एक बार तित्तिर माँस खाने की अपनी उत्कट इच्छा को बराबर तीन वर्ष तक इसलिये अपने हृदयमें दबाकर रखा था, कि यदि उनकी इच्छा लोगोंको ज्ञात हो जावेगी तो लोग कितने ही तित्तिरों को मार डालेंगे और उनके लिये उनका मांस प्राप्त करेंगे। अन्त में तिस्स नाम का एक व्यक्ति इनको मिला जो अपने प्राणों के संकट आने पर भी किसी जीव को नहीं मारता था। इन्होंने पहले उसकी परीक्षा की और फिर उससे ऐसा तित्तिर-मांस लाने को कहा जो, बेचने वाले के पास रखा हुआ हो और विशेषतः इनके निमित्त से तित्तिर को मार कर प्राप्त न किया गया हो।[6]

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० ६६। २. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० १०२५।
३. ,, भाग १, पृ० २३०। ४. ,, भाग १, पृ० १५५।
५. ,, ,, पृ० २३०। ६. ,, भाग २, पृ० २९४।

आचार्य दीघमाणक अभयथेर के बारे में पपंचसूदनी में उल्लेख है कि गालियों को सहने की इनमें अपूर्व सहनशीलता थी। ये वही थेर हैं जिन्होंने चेतियपव्वतविहार को लूटने के लिये आये हुये डाकुओं का स्वागत करके उनको विहार का रक्षक बना दिया था।[१] इसमें उल्लेख है कि किस प्रकार इन्होंने कल्याणी के एक थेर को बताया था, कि उस समय तक उनको आर्हत्त्य प्राप्त नहीं हुआ था।[२]

अन्य अट्ठकथाओं के साथ पपंसूदनी में राजा महादाठ्ठिक महानाग (६७-७६ ई० पश्चात्) का उल्लेख मिलता है कि इनके समय में गिरिमण्ड विहार के बन चुकने के पश्चात् गिरिमण्ड पूजा महोत्सव हुआ।[३] इसी पूजा महोत्सव के सम्बन्ध में लेणगिरि के प्रसिद्ध थेर तिस्स का भी उल्लेख आता है, जो कि पवित्र और धार्मिक जीवन बिताने के लिए प्रसिद्ध थे।

धार्मिक राजा बसम (१२७-१७१ ई०पश्चात्) के बारे में पपंचसूदनी में उल्लेख है कि इन्होंने एक थेर की परीक्षा की थी कि वे अर्हत थे या नहीं।[४] वितण्डवादियोंके बारेमें इसमें उल्लेख मिलता है कि उनका मूलपाठ में भेद नहीं होता है, किन्तु अर्थसंगति में भेद होता है। वे शब्द के ऊपर अधिक चिपटते हैं, अभिप्राय का विचार नहीं करते।[५] इसी में कहा गया है कि वितण्डावादी लोग भी उसी मूलपाठ को उद्धृत करेंगे, जिसको थेरवादी स्वीकार करते हैं[६] (किन्तु अर्थसङ्गति थेरवादियों से भिन्न रहेगी)। कभी-कभी थेरवादी वितंडावादियों के ऊपर दोषारोपण करते हैं कि वे अभिप्राय को न समझ कर मूल 'सुत्तों' को उद्धृत करते हैं।[७]

मज्झिमनिकाय में लिखा है कि कपिलवत्थु में नवीन बने हुए सन्थागार (हाल) में कुछ समय तक उपदेश देने के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने अपने उपस्थापक थेर आनन्द से कहा—'आनन्द, मेरी कमर में दर्द हो उठा है, अब तुम आगे के उपदेश को चालू रखो।[८] किन्तु पपंचसूदनी के

---

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १७६। २. पपंचसूदनी (सिहली), पृ० ८६६।
३. ,, भाग २, पृ० २६८। ४. ,, ,, पृ० ८६६।
५. ,, (सिंहली), पृ० ८२१।
६. ,, भाग, २ पृ० ३६३ तथा पपंचसूदनी(सिंहली), पृ० ६७१।
७. ,, (सिंहली), पृ० ५७२। ८. मज्जिमनिकाय भाग १, पृ० ३५४।

अट्ठकथाकार कहते हैं कि बुद्धों के शरीर में कोई रोग नहीं होता। यह दर्द बहुत मामूली था और बुद्ध भगवान् ने इस अवसर के द्वारा यह प्रदर्शित किया था, कि वे इस सन्थागार को चार प्रकार से प्रयोग कर सकते थे—टहलने में, खड़े होने में, बैठने में तथा लेटने में भी। इस कथन से तथा ऐसे ही अन्य कथनों से केवल यह सार निकलता है, कि निकायों में वर्णित वास्तविक घटनाओं को अट्ठकथाकारों ने बुद्ध भगवान् को दिव्य रूप देने के लिए, कितना परिवर्तित रूप में वर्णन किया है। इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि बुद्ध भगवान् के उपदेश अथवा सुत्त इतने व्यवस्थित थे कि वे आनन्द अथवा अन्य किसी प्रधान शिष्य को मौखिक याद थे और इसी कारण थेर आनन्द ने उस उपदेश को बुद्ध भगवान् के ही शब्दों में चालू रखा। यही कारण था कि उनके परिनिब्बाण के पश्चात् प्रथम संगीति में उनका शब्दशः वाचन हो सका।

पपंचसूदनी में उल्लेख[1] है कि जो भिक्खु आचार्य की उचित विनय नहीं करता, उसको पाली ग्रन्थ (त्रिपिटक), अट्ठकथाएँ, धम्मकथाबन्ध[2] तथा गुह्यग्रन्थ (गुल्हग्रन्थ) नहीं पढ़ाये जाते। इस प्रकार के कथन से स्पष्ट है कि थेरवादी लोग कतिपय गुह्यग्रन्थों को स्वीकार करते थे और वण्णपिटकादि अन्य गुह्यग्रन्थों को (जिनकी सूची समन्तपासादिका के वर्णन में दी जा चुकी है) यह कहकर बहिष्कार करते थे कि वे बुद्ध भगवान् के द्वारा प्रतिपादित नहीं हैं। इस उपर्युक्त कथन से विसुद्धिमग्ग के कथन की पुष्टि होती है कि गुह्यग्रन्थों को पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी को गुरु के समक्ष कहना चाहिए—'मैं अपने आपको आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ' क्योंकि जो ऐसा नहीं करता वह उच्छृङ्खल तथा धृष्ट समझा जाता है।

---

१. पपंचसूदनी भाग २, पृ० २६४।

२. डा० आदिकरम कहते हैं कि "शायद ये ऐसे ग्रंथ थे जो पश्चात्कालीन टीकाओं के आधारभूत थे। शायद 'रसवाहिनी' (सिंहली भाषा का कथा-ग्रन्थ) इन्हीं धम्मकथाबन्धों में आती हो, जिसकी कथाओं को आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में संकेत रूप में उद्धृत किया है।"

—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन, पृ० ९८।

आचार्य उसको न तो सिद्धान्त ग्रन्थों की बातें पढ़ाते हैं और न गुह्यग्रन्थों को ही पढ़ाते है (गुल्हं ग्रन्थं न सिक्खापेति) ।[1]

श्रीलङ्का के चेतियपब्बतविहार के बारे में पपंचसूदनी में अनेक उल्लेख मिलते हैं। यहाँ महिन्दगुहा के अतिरिक्त पियंगुगुहा का भी नाम आता है, जहाँ कि थेर नाग निवास करते थे।[2] इसमें उल्लेख है कि यहीं पर थेर मलियदेव ने सुत्त का उपदेश दिया था जिससे साठ भिक्खुओं को आर्हन्त्य पद प्राप्त हुआ था।[3] पपंचसूदनी में यह भी उल्लेख है कि राजा सद्धातिस्स (राजा दुट्ठगामणि के छोटे भाई) के समय में इस विहारमें थेर कालबुद्धरक्खित रहते थे। राजा इनका बहुत आदर करता था। ये भिक्खुओं की भारी संख्या के बीचमें उपदेश दिया करते थे। पपंचसूदनी में तथा सुमंगलविलासिनी में क्रमशः यहाँ के थेर लोमसनाग तथा प्राचीन खण्डराजी के थेर पांसुकीलिक के बारे में उल्लेख है कि वे यहीं के निवासी थे।[4] राजा देवानांपियतिस्सके छोटे भाई अभय थेरने यहीं दीक्षा ली थी।

पपंचसूदनी (सिंहली) में महाचेतिय के बारे में उल्लेख है कि यह लोहपासाद से भी अधिक मजबूत बनवाया गया था और इसका असदिस (आसदृश) चेतिय नाम से उसमें उल्लेख है।[5] इसी में उल्लेख है कि यह उन पवित्र स्थानों में से एक है जहाँ बुद्धावशेष प्राप्त होंगे।[6] ब्राह्मण तिस्स अकाल के समय भिक्खुओं के भाग जाने के कारण इसकी अवहेलना हो गई थी और इसके आंगन में अरण्ड के पौधे उग आये थे। पपंचसूदनी में लिखा है कि एक भिक्खु ने इस चेतिय की सफेदी कराने में भाग लिया था। इस चेतिय के साथ-साथ यहाँ लोग बोधिवृक्ष की भी वन्दना के लिये जाते थे, जिसको कि वे लोग चेतिय के समान ही पूज्य समझते थे।[7]

---

१. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० ११५।
२. पपंचसूदनी भाग १, पृ० ७८।
३. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० १०२४, समन्तपासादिका भाग १, पृ० १००।
४. ,, भाग १, पृ० ७८ तथा सुमंगलविलासिनी, भाग ३, पृ० १०१०।
५. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० ६६६।
६. ,, ,, पृ० ८८२।
७. ,, भाग २, पृ० ४०३।

पपंचसूदनी (सिंहली) में एक अमच्च (अमात्य अथवा मंत्री) का उल्लेख है, जिसने कि इस चेतिय पर चमेली (मल्लका) के पुष्प चढ़ाये थे और जिसके पुण्य को उसने पाताल के शासक यमके साथ बाँटा था। वह उसी पुण्य के प्रभाव से नर्क की यातनासे छुटकारा पागया और देवलोक में उत्पन्न हुआ।[1] पपंचसूदनी में दक्खिनगिरिविहार के बारे में उल्लेख है कि इसी विहार के पास थेर कालबुद्धरक्खित की जन्मभूमि थी और वे इसी विहार में दीक्षित हुए थे। ये बहुत से भिक्खुओं के शिक्षक थे और गुरु की प्रेरणा से ये 'वातकसितपब्बत' पर गये और इन्होंने वहाँ कठोर ध्यान के द्वारा आर्हन्त्य पद प्राप्त किया।[2] कुटेलीतिस्स के महाविहार का भी इसमें नामोल्लेख है।[3]

नागद्वीप के बारे में पपंचसूदनी में उल्लेख आता है कि यहाँ देवनांपियतिस्स ने 'राजायतनचेतिय' तथा जम्बुकोलविहार बनवाये थे।[4] इसमें 'कल्याणचेतिय' के सम्बन्ध में उल्लेख है कि थेर मलियदेव ने राजा दुट्ठगामणि के समय में 'छछक्क सुत्त' का उपदेश कल्याणी के नाग महाविहार में तथा कलकच्छ गाँव में दिया था।[5] इसी विहार से सम्बन्धित थेर गोधा भी हैं जो समय की पाबन्दी के लिए प्रसिद्ध हैं।[6] मुतियंगनविहार श्रीलङ्का के मलयप्रान्त में था। समन्तपासादिका के अनुसार यहाँ भी भगवान् बुद्ध 'निरोधसमापत्ति' को प्राप्त हुये थे और इसी कारण बाद में यहाँ यह विहार बनाया गया था। पपंचसूदनी के अनुसार यहाँ थेर मलियदेव ने 'छछक्कसुत्त 'का उपदेश दिया था।[7] इसमें उल्लेख है कि पगुरविहार में एक युवा भिक्खु ने 'महाधम्म समादान' सुत्त का उपदेश दिया था।[8]

रोहणप्रान्त के तिस्समहाराम-विहार के बारे में पपंचसूदनी में उल्लेख है कि पानी की कमी के कारण यहाँ से एक भिक्खु चित्तलपब्बत-विहार में चला गया था।[9] इसी के सिंहली संस्करण में कहा गया है कि

१. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० ८५५। २. पपंचसूदनी भाग २, पृ० २८४।
३. ,, ,, पृ० ६९९-७००। ४. ,, ,, पृ० ३९८।
५. ,, ,, पृ० ६-७। ६. ,, भाग १, पृ० १२९।
७. ,, ,, पृ० १०२४। ८. ,, भाग २, पृ० ३७७।
९. ,, भाग २, पृ० ९१।

थेर मलियदेव ने यह "छछक्क सुत्त'का उपदेश दिया था।[1] पपंचसूदनी के अनुसार यहीं पर थेर धम्मदिण्ण ने भी 'अपण्णक सुत्त' का उपदेश दिया था।[2] डा० आदिकरम के अनुसार महागाम ( महागांव ) राजा दुट्ठगामणि की जन्मभूमि थी। यह प्राचीन नगर था। यहाँ के लोग बड़े धार्मिक थे। जब दीघभाणक थेर अभय ने यहाँ 'महाअरियवंस पटिपदा' का उपदेश दिया तो सारा महागाँव (सब्बोमहागामो) सुनने के लिये आया था।[3]

श्रीलंका के उत्तरवड्ढमान गाँव के, जिसको सारत्थप्पकासिनी में अन्तरवड्ढमान भी कहा गया है, एक किसान की कथा अन्य अट्ठकथाओंके समान पपंचसूदनी में भी दी गई है। इसने अम्बरियविहारवासी पिंगलबुद्धरक्खित थेर से सिक्खापद प्राप्त किये थे। एक दिन जब यह जंगल में गया हुआ था तो एक बड़े सर्प ने इसको अपनी कुण्डलियों में लपेट लिया। यद्यपि इसके पास उस सर्प को मार डालने के लिए शस्त्र था, जिससे यह उस सर्प को काट सकता था, किन्तु अपने स्वीकार किये हुए सिक्खापदों का स्मरण करके इसने अपने को सर्प के द्वारा काटा जाना, उसको मारकर अपनी जान बचाने की अपेक्षा अधिक अच्छा समझा। वहां यह भी वर्णन है कि उस समय किसान के हृदय की पवित्रता इतनी अधिक बढ़ गई थी, कि सर्प उसे स्वयं छोड़कर चला गया।[4] इसी अट्ठकथा के सिंहली संस्करण में यह भी लिखा हुआ है कि थेर पिंगलबुद्ध रक्खित का जन्म स्थान इसी उत्तार वड्ढमान गाम के पास था।[5]

रोहण प्रान्त का दूसरा विहार चित्तालपव्वतविहार था। सम्मोहविनोदनी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के समय यहाँ बारह हजार भिक्खु रहते थे। पपंचसूदनी में भी इसे भारी भीड़ वाला (अच्चन्तसंघिको) स्थान बताया है।[6] चित्तलपव्वतविहार के, अपनी तपस्या को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाले भिक्खुओं के उदाहरण अट्ठकथाओं में भरे पड़े हैं। पपंचसूदनी में पधानियथेर के बारे में उल्लेख है कि वे

---

१. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० १०२४। २. पपंचसूदनी भाग १, पृ० १८५।
३. ,, भाग १, पृ० ७९। ४. ,, ,, पृ० २०४।
,, (सिंहली), पृ० ९७८। ६. ,, भाग २, पृ० ९१।

शारीरिक पीड़ा को सहन करते हुये भी ध्यानस्थ रह सकते थे ।[१] वहीं के पिण्डपातिक थेर ने अपने साथी एक भिक्खु के क्रोध को शान्त करने के लिये अपना मूल्यवान पात्र उसे दे दिया था।[२] तिस्समहाराम से पानी की कमी के कारण यहाँ आने वाले एक भिक्खु और दुधमुँहे बच्चे को लेकर धर्म श्रवण के लिए आने वाली एक स्त्री के बारे में उल्लेख हो चुका है। उपर्युक्त भिक्खु के साथ एक सामणेर भी आया था, जिसने अपने आचार्य की गुफा में झाड़ू लगाते समय संयुत्तनिकाय का पाठ किया और 'तेजोकसना ध्यान' का अभ्यास किया था।

पपंचसूदनी में 'तलङ्गविहार' का उल्लेख है कि यह प्रसिद्ध थेर धम्मदिन्न का निवास स्थान था।[३] पपंचसूदनी में मलियदेव के द्वारा 'पाचीन पब्बत' विहार में तथा दीघवापी के विहार में 'छछक्कसुत्त' के उपदेश देने का उल्लेख है।[४] इसमें वजरगिरि के बारे में भी उल्लेख है कि यहाँ थेर कालदेव निवास करते थे।[५] उनकी दिनचर्या के बारे में भी इस में वर्णन है। वर्षाकाल के चातुर्मास के समय वे घण्टा बजाया करते थे और वे इस कार्य में इतने अभ्यस्त हो गये थे कि घण्टा बजाने के ठीक समय को जाननेके लिए इन्हें 'यामयन्तनालिका' नहीं देखनी पड़ती थी। इधर उन्होंने घण्टा बजाया, उधर यामयन्तनालिका बजने लगती थी(नच यामयन्तनालिकम् पायोजेति)। भोजन के लिये भिक्षा को जाकर लौटने के पश्चात् वे अपने पात्र को विहार में रखकर भिक्खुओं के 'दिवाविहारट्ठान' में जाकर ध्यान लगाते थे। ये कालदेव जब ध्यानस्थ हो जाते तो भिक्खु लोग 'कालत्थम्भ' (सूर्य घड़ी-Sundial) में देख कर उनको बुलाने के लिये किसी को भेजते थे, किन्तु वे समय के ज्ञान में इतने पटु थे कि उनको बुलाने के लिये जाने वाले भिक्खु उनको रास्ते में ही मिलते थे। यह वर्णन रोचक होने के साथ-साथ हमको यह सूचना भी देता है कि कम से कम पन्द्रह शताब्दी पहले सिंहलद्वीप में समय बताने वाले यन्त्र थे, जिनमें यामयन्तनालिका स्पष्ट रूप से अलार्म घड़ी (Alarm Clock) थी और कालत्थम्भ सूर्यघड़ी (Sundial) का ही नाम था।[६]

---

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० ७६। २. विसुद्धिमग्ग भाग १, पृ० ३०६।
३. ,, ,, पृ० १८४। ४. पपंचसूदनी (सिंहली), पृ० १०२४।
५. ,, ,, पृ० १२२-१२३।
६. डॉ० आदिकरम-अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

भिक्खुओं के जीवन के बारे में तथा उनकी 'धम्म' में तत्परता के बारे में अट्ठकथाओं में वर्णन भरे पड़े हैं। पपंचसूदनी में कहा गया है कि श्रीलङ्का के गाँवों के उपाश्रयों में कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहाँ भिक्खुओं ने बैठ कर आर्हन्त्यपद प्राप्त न किया हो।[१] इसमें अलिन्दकविहार के थेर पुस्सदेव के बारे में उल्लेख है, कि बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उनको निर्धारित समयमें आहर्न्त्यपद प्राप्ति नहीं हुई तो वे किसप्रकार निराश होकर रोने लगे थे। इसी में बताया गया है कि थेर पुस्सदेव ने उन्नीस वर्ष तक 'गतपच्चागतवत्त' का आभास किया था।[३] इसी प्रकार कालपल्लियमण्डप विहार के थेर महानाग ने सात वर्ष तक या तो खड़े रहने की या चलने की केवल दो ही वृत्ति धारण की थीं। इन सात वर्षों में वे न तो कभी बैठे और न कभी लेटे। इसके पश्चात् सोलह वर्ष तक उन्होंने 'गतपच्चागतवत्त' का अभ्यास किया। इसी में एक दूसरे थेर का वर्णन है, कि उन्होंने चेतियपव्वत पर 'एकासनिकधुतांग' का पचास वर्ष तक पालन किया।[४] (इन तपों के बारे में अधिक जानकारी के लिए विसुद्धिमग्ग, अध्याय १ तथा २ को देखें।)

भिक्खुओं के कठोर अनुशासन के अतिरिक्त उनकी अध्ययन-शीलता के बारे में भी अट्ठकथाओं में बहुतसे वर्णन मिलते हैं। पपंचसूदनी में वर्णन है कि मज्झिमभाणक रेवत्थेर ने बीस वर्ष के पश्चात् भी बिना अशुद्धि के पूरा मज्झिमनिकाय मौखिक सुना दिया था।[५] सामणेर तिस्स झाडू लगाते समय सम्पूर्ण संयुत्तनिकाय को मौखिक पढ़ता रहता था। समन्तपासादिका में लिखा है कि जब तक गुरु जिन्दा रहते थे, तब तक भिक्खु के उनके पास रहने के कारण उसकी शास्त्रों में निपुणता आती रहती थी और उनकी स्मरणशक्ति के कारण ही त्रिपिटक और अट्ठकथायें निरन्तर अक्षुण्ण रूप से चलती रहीं।[६]

---

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० २५७।
२. ,, भाग २, पृ० ३६६।
३. ,, भाग १, पृ० २५७।
४. ,, ,, पृ० १४०।
५. ,, भाग २, पृ० ६१।
६. समन्तपासादिका भाग १, पृ० २६४।

पपंचसूदनी में उस समय की अध्ययन-अध्यापन की परिपाटी का उल्लेख मिलता है। इसमें महाचेतिय के भवन की कक्षा का वर्णन इस प्रकार है। कक्षा में युवाभिक्खु पहले तथा उनके पीछे एक हाथ के अन्तर से भिक्खुनियाँ पढ़ने के लिए बैठती थीं। गुरु के द्वारा पढ़े हुए पाठ को विद्यार्थी ध्यानपूर्वक सुनते जाते थे। प्रत्येक विद्यार्थी के पास 'मुट्ठिपोत्थक' रहता था, जिसमें बुद्ध भगवान् के गुणों के तथा धम्म के विषय में बातें लिखी होती थीं। इस 'मुट्ठिपोत्थक' (पुस्तक या गुटका)के मुख्य प्रयोजन[२] के बारे में पपंचसूदनी में लिखा हुआ है कि जिस समय भिक्खु के हृदय में कोई विकार-भाव उत्पन्न होता था, उस समय वह इस पुस्तक को खोलकर पढ़ने लगता था। भिक्खुओं के पास मुट्ठिपोत्थक के अतिरिक्त अरणि रुई इत्यादि आग जलाने की सामग्री, सिपाटिका (रेजरकेस), अरकण्टक (Thimble) या अंगुलित्राण,पिप्फलक (कैंची),नखच्छेटक,सूची (सुई) आदि आश्यक सामान उनकी थविका (झोली) में रहता था।[३]

पपचसूदनी से ज्ञात होता है कि कभी-कभी चेतिय में सफेदी भी भिक्खु लोग ही किया करते थे और विहारों की मरम्मत की देख भाल के लिये भी भिक्खु लोग नियुक्त किये जाते थे।[४]

श्रीलङ्का के राजाओं के साथ-साथ श्रावक भी धर्मपरायण थे। उनकी धर्म की दृढ़ता के अनेक उदाहरणों का पपञ्चसूदनी में भी उल्लेख हैं। इसमें वर्णन है कि किस प्रकार धर्म में दृढ़ 'उत्तर वड्ढमानगाम' के एक किसान ने अपने पास हथियार होने पर भी सर्प को नहीं मारा था और स्वयं मरना पसन्द किया था, क्योंकि उसने पिंगल बुद्धरक्खित थेर से 'पञ्चसम्पदा' व्रत ले रखे थे।[५] इसी प्रकार इसमें चक्कण श्रावक का उल्लेख आता है कि उसने अपनी माता के प्राणों को बचाने के लिये भी खरगोश को नही मारा था।[६]

यद्यपि वर्ण व्यवस्था के दुर्गुणों का भी श्रीलङ्का में बौद्ध धर्म के कारण उच्छेद हो गया था और अस्पृश्यता नहीं रह गई थी, फिर भी

१. पपंचसूदनी भाग १, पृ० २६४। २ पपंचसूदनी भाग २, पृ० ९१।
३. ,, भाग २, पृ० ९१। ४. ,, ,, पृ० ४०३।
५. ,, भाग १, पृ० २०४। ६. ,, भाग १,पृ० २०३।

पपञ्चसूदनी में अनुराधपुर की वट्टवीथि, वेस्स गिरि विहार आदि नामों का उल्लेख मिलता है जो श्रीलंका में प्राचीनकाल की वर्ण व्यवस्था के साक्षी हैं, और जिससे ज्ञात होता है कि वहाँ भी यह बिल्कुल नष्ट नहीं हुई थी[1]।

भिक्खुओं के कर्तव्यों में उनका श्रावकों को पढ़ाना और उपदेश देना भी सम्मिलित था। पपंचसूदनी में वर्णन मिलता है कि ऐसे उपदेश रात भर होते थे और श्रावक बड़े चाव से उन उपदेशों को सुनते थे। ऐसे उपदेशों के लिये गाँवों और नगरों में सन्थागार ( हॉल ) बने हुए थे। ढोल बजाकर इन विशेष उपदेशों की घोषणा पहले से कर दी जाती थी[2]।

पपंचसूदनी ( सिंहली ) में चेतिय पूजा के बारे में उल्लेख है कि बुद्ध भगवान अथवा उनके प्रधान शिष्यों के अवशेष जिन समाधि-स्थानों में रखे जाते थे वे चेतिय कहलाते थे। ये चेतिय, शरीर-चेतिय तथा परिभोग चेतिय नाम से दो प्रकार के हैं। जिन स्थानों में उनके शरीर के अवशेष रखेजाते हैं वे शरीर-चेतिय तथा जिनमें उनके पात्रादि उपकरण रखे जातेहैं,वे परिभोग-चेतिय कहलाते हैं। बोधि-वृक्ष की दूसरे प्रकार के चेतियों में गणना होतीहै,क्योंकि बुद्ध भगवान् ने उसके नीचे बैठकर बोधि प्राप्त की थी। परिभोग-चेतिय से शरीर-चेतिय अधिक महत्व का है[3]।

स्तूप के महत्व के विषय में पपञ्चसूदनी ( सिंहली ) में उल्लेख है कि स्तूप का होना स्वयं बुद्ध भगवान् के उपस्थित होने के समान[4] है ( धातुसुहि गतासु बुद्धा ठाता वहोन्ति ) और सिंहली लोग इसमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते थे। पपञ्चसूदनी ( सिंहली ) में कहा गया है कि चेतिय का नष्ट करना 'अनन्तरियकम्मों' ( बड़े भारी अपराधों ) में परिगणित[5] है। इसी में 'धातु परिनिव्वाण' का पौराणिक ढंग से वर्णन

---

१. पपञ्चसूदनी(सिंहली), पृ० ७१३।
२. ,, भाग २, पृ० २६४।
३. ,, (सिंहली), पृ० ८७८।
४. ,, ,, पृ० ८८१।
५. ,, ,, पृ० ८७८।

मिलता है कि 'बुद्ध-सासन' के समाप्त होने के पहले श्रीलंका के छोटे से छोटे, सारे अवशेष महाचेतिय में एकत्रित होंगे, तत्पश्चात् नागद्वीप में और अन्त में महाबोधि पल्लंक ( बोधि वृक्ष के नीचे का वह आसन जहाँ भगवान् को बोधि प्राप्त हुई थी ) में पहुँचेंगे। वहाँ मध्यलोक, देवलोक, नागलोक तथा ब्रह्मलोक के सारे अवशेष एकत्रित हो जावेंगे। वहाँ वे सुवर्ण के ढेलों के रूप में इकट्ठे होकर छः गुने आलोक के साथ निकलेंगे और सारे ब्रह्माण्ड के दस सहस्र मण्डलों में चमकेंगे। इसके पश्चात् उनसे ब्रह्मलोक तक ऊंची उठने वाली अग्नि की ज्वाला निकलेगी और उनको पूर्ण रूप से जला देगी[1]।

बोधि-वृक्ष के बारे में पपंचसूदनी ( सिंहली ) में उल्लेख है कि बोधि-वृक्ष की वन्दना ऐसी ही श्रद्धा के भाव से करनी चाहिए जैसे कि स्वयं बुद्ध भगवान् की वन्दना कर रहे हों[2]।

विशेष-विशेष सुत्तों के प्रभाव के विषय में पपञ्चसूदनी ( सिंहली ) में उल्लेख है कि आटानाटियसुत्त, मोरसुत्त, धाजग्गसुत्त तथा रतनसुत्त का प्रभाव करोड़ों ब्रह्माण्डों तक में होता है[3]।

निरयों अर्थात् नरकों के बारे में पपञ्चसूदनी ( सिंहली ) में कहा गया है कि नरकों में निरयपाल होते हैं जो 'यम' को सहायता देते हैं।[4] श्रीलंका में कुछ थेर ऐसे भी थे, जो इनको नहीं मानते थे और कहते थे कि मनुष्य के कर्म ही उसको उसके कर्मों का फल देने में पर्याप्त रूप से शक्ति-शाली हैं, इसलिये निरयपालों के मानने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु कट्टर थेरवादी उन्हें यम के सहायकों के रूप में मानते हैं।

बौद्ध सम्प्रदाय में यम दण्ड देने वाला ही नहीं लोगों को उनके पुण्य कर्मों को याद दिलाकर उनको नरक की यातनाओं से बचाने वाला भी माना जाता है। पपञ्चसूदनी ( सिंहली ) में एक रोचक कथा है कि

---

१. पपंचसूदनी ( सिंहली ), पृ० ८८२।
२. ,, ,, पृ० ८७८।
३. ,, ,, पृ० ८८०।
४. ,, ,, पृ० ९५३।

एक बार एक मन्त्री ने महाचेतिय के ऊपर एक मल्लिका ( चमेली ) के पुष्पों का गुलदस्ता चढ़ाया था और 'यम' के साथ अपने उस गुलदस्ते के चढ़ाने के पुण्य को बांटा था। जब यमराज के पास उसकी पेशी हुई और यमराज के सारे प्रयत्न उसको नरक की यातनाओं से नहीं बचा सके, तो अन्त में यम ने स्वयं उसको उस गुलदस्ते के चढ़ाने की घटना का स्मरण कराया कि "क्या तुमने महाचेतिय पर गुलदस्ता नहीं चढ़ाया था ? और उसके पुण्य को मेरे साथ नहीं बांटा था ?" मन्त्री ने तुरन्त उस घटना को स्मरण किया और इस प्रकार वह नरक यातना से बच गया।[१] यम के साथ पुण्य बांटने का विश्वास श्रीलंका में प्राचीनकाल से ही है और अब भी प्रचलित है।[२]

पपंचसूदनी में 'मार' को 'पजापति' भी कहा गया[३] है। पपंचसूदनी में कहा गया है कि बुद्ध भगवान् के सामने 'राहु' भी उनको विचलित करने में व्यर्थ सिद्ध हुआ[४]। पपंचसूदनी ( सिंहली ) के अनुसार सुमनकूट का अधिष्ठातृ देवता ( स्थानीय देवता ) देवसुमन था और उसकी पुत्री काली का विवाह राजगृह के दीघतफल वृक्ष-देवता के साथ हुआ था[५]।



---

१. पपंचसूदनी ( सिंहली ), पृ० ६५५
२. डा० आदिकरम-अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
३. पपंचसूदनी भाग १, पृ० ३३
४. ,, ( सिंहली ), पृ० ७६०
५. ,, ,, पृ० ८१३

## ३. सारत्थप्पकासिनी

सारत्थप्पकासिनी सुत्तपिटक के तृतीय ग्रन्थ संयुत्तनिकाय के ऊपर निर्विवाद रूप से आचार्य बुद्धघोष के द्वारा लिखी गई विस्तृत अट्ठकथा है। इसे उन्होंने थेर जोतिपाल की प्रार्थना पर लिखा था[1]। डाक्टर आदिकरम के अनुसार शायद ये वही थेर हैं, जिनका उल्लेख 'मनोरथपूरणी' की प्रस्तावना में किया गया है कि जब ये पहले काञ्चीपुर आदि में थे तो उनके साथ रहे थे ( काञ्चीपुरादिसु मया पुब्बे सद्धिं वसन्तेन[2] )। सुत्तपिटक की अन्य अट्ठकथाओं की प्रस्तावनाओं के समान इसकी प्रस्तावना में भी आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि 'मौलिक रूप से सिंहली भाषा में लिखी गई उन सिंहली अट्ठकथाओं के ये पाली भाषा में अनुवाद हैं, जिनको कि थेर महिन्द अपने साथ भारत से श्रीलंका में लाये थे तथा महाविहार के थेरों ने जिनको सुरक्षित रूप में रखा था।'

'पाली टेक्सट सोसाइटी' ने इसे श्री एफ० एल० वुडवार्ड के सम्पादकत्व में तीन भागों में प्रकाशित किया है। इसकी निम्नस्थ पाण्डुलिपियाँ तथा मुद्रित संस्करण मिलते हैं:—(१) सिंहली लिपि में ताड़पत्र पाण्डुलिपि—आद्यार ओरिएण्टल लाइब्रेरी-मद्रास। (२) थेर वजिरसर तथा आँनंद के द्वारा सम्पादित अपूर्ण मुद्रित सिंहली संस्करण—कोलम्बो (१६००-१६०१)। (३) साहमन हेवावितरने त्रिवेस्ट संस्करण (१६२४) प्रथम भाग—डब्लू०पी० महाथेर के द्वारा पुनरीक्षित तथा सम्पादित। (४) सिंहली लिपि में लिखी हुई सुन्दर ताड़ पत्र पाण्डु लिपि[3]।

आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं के समान सारत्थप्पकासिनी भी ऐतिहासिक पौराणिक तथा भौगोलिक विषयों से भरपूर है। यह भी भारतीय तथा सिंहल द्वीप सम्बन्धी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

---

१. सारत्थप्पकासिनी ( सिंहली ) भाग ३, पृ. १३५।
२. मनोरथपूरणी—प्रस्तावना।
३. श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष।

इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष के अनुसार 'गुरु' शब्द लोक में सर्वदा बुद्ध भगवान् को निर्देश करता है। भगवान् बुद्ध दस बलों को धारण करने वाले ( दसबलधी ) वर्णन किये गये हैं [१]। इसमें आचार्य बुद्धघोष ने गंगा, यमुना के मध्यवर्ती एक ऐसे प्रदेश का उल्लेख किया है, जहाँ गायें चरा करती थीं [२]। इसमें अंग और मगध शस्य-सम्पन्न देश बताये गये हैं [३]। इसमें चार प्रकार के बुद्धों का उल्लेख आता है—चतारो बुद्धा—सब्बञ्ञू ( सर्वज्ञ ) बुद्ध, पच्चेक ( प्रत्येक ) बुद्ध, चातुसच्चो ( चतुरार्यसत्य ) बुद्ध, तथा सुत ( श्रुत ) बुद्ध [४]।

इस अट्ठकथा में 'सद्धम्म' शब्द की व्याख्या में कहा गया है कि सद्धम्म में पांच शील, दशबल तथा चार सतिपट्ठान (सम्यक् स्मृत्ति) सम्मिलित हैं [५]। महावन का वर्णन इस अट्ठकथा में एक बड़े स्वाभाविक (स्वयं-रुह ) वन के रूप में आता है, जो कि हिमालय पर्यन्त विस्तार वाला है। इसमें पंच-वेदों का उल्लेख है, जिनमें चार प्रसिद्ध वेद और पाँचवाँ इतिहास (महाभारत) सम्मिलित हैं [६]। इस अट्ठकथा में विमुत्तचित्त ( विमुक्तचित्त ) का अर्थ है—कम्मट्ठानो अर्थात् कर्मस्थानों से रहित हृदय [७]। नाथपुत्त ( महावीर स्वामी ) का अर्थ इसमें—नाथ का पुत्र ( नाथस्स पुत्तो ) किया गया है [८]। मल्लिका इसमें एक गरीब माली की लड़की बताई गई है [९]। किसागोतमी के बारे में इसमें कहा गया है कि वह कृशकाय थी, क्योंकि उसके शरीर पर अधिक मांस नहीं था [१०]। इसमें लोक का—खंधलोक ( स्कन्ध लोक ), धातुलोक का—पंच-भूतमय लोक, सम्पत्तिभव लोक का—समृद्धि लोक तथा विपत्तिभव लोक का—विपत्ति लोक अर्थ किया गया है [११]।

इस अट्ठकथा में मन्दाकिनी—पोक्खरिणी का जो कि पचास योजन

---

१. सारत्थप्पकासिनी भाग १, पृ० १२।
२. वही, पृ० १३। ३. वही, पृ० १५।
४. वही, पृ० २५। ५. वही, पृ० ५५।
६. वही, पृ० ८१। ७. वही, पृ० १४०।
८. वही, पृ० १३०। ९. वही, पृ० १४०।
१०. वही, पृ० १९०। ११. वही, पृ० १२१।

विस्तृत थी, उल्लेख है [1]। इसमें केलास (कैलाश) पर्वत को नागदन्त देवता का निवास-स्थान बताया गया है [2]। इसमें गया का एक गाँव के रूप में उल्लेख है [3]। सिहनाद की व्याख्या तुमुलनाद ( बड़ा भारी कोलाहल ) की गई है [4]। इसमें गंगा तथा यमुना दो बड़ी नदियां वर्णन की गई हैं [5]। दक्खिन गिरि एक देश का नाम है जो कि राजगह को वेष्ठित करने वाले पर्वत के दक्षिण में है [6]।

सारत्थप्पकासिनी में कहा गया है कि मन्दाकिनी एक सरोवर का नाम था, जो कि छद्दक्कवन में था और वह पचास योजन के विस्तार वाला था। इसका अर्धभाग पारदर्शी था और अर्धभाग कमर तक पानी वाला था। यह सफेद कमलों से भरा था। इसके अनुसार गया एक गांव का नाम था। बदरिकाराम, घोसिताराम से एक गव्यूति के अन्तर पर स्थित था। मल्लोपवत्तन नाम के सालवन को रास्ता हिरञ्ञावती नदी के दूसरी ओर के किनारे से जाता था। सरयुनदी के मोड़ के पास अयोध्या-वासियों ने बुद्ध भगवान् के लिये एक विहार बनवाया था, जो कि चारों ओर से वन से घिरा हुआ था। सूकरखात एक गुफा का नाम था, जो कि कस्सपबुद्ध के समय में बनी थी। इसका यह नाम पड़ने का कारण यह है कि एक शूकर ( सूअर ) ने इस के पास एक गड्ढा खोदा था। इसके पश्चात् जोर की वर्षा हुई और वर्षा का पानी मिट्टी को बहा ले गया। परिणाम यह हुआ कि वहाँ एक गुफा प्रगट हुई। एक वनवासी ने इसे देखा और मिट्टी हटा दी। इसके बाद उसने उसके चारों ओर बाड़ लगा दी और उसमें दरवाजे और खिड़कियां लगाकर उसमें सारी आवश्यक वस्तुएँ जुटा दीं। तब उसने इसे भगवान् कस्सपबुद्ध को रहने के लिये भेंट कर दिया।

अम्बपाली ( आम्रपाली ) वेसाली ( वैशाली ) की एक वेश्या का नाम था। इसने बुद्ध भगवान् और उनके संघ को निमन्त्रित किया था और उनको अपना आम्रवन भेंट किया था।

---

१. साररत्थप्पकासिनी भाग १ पृ० २८१
२. वही, पृ० २८२। ३. वही, पृ० ३०२।
४. सारत्थप्पकासिनी भाग २ पृ० ४६। ५. वही, पृ० ५४।
६. वही, पृ० १६७

सालङ्गार आश्रम का यह नाम पड़ने का कारण यह है कि इसके दरवाजे पर सुगन्धित सालड़ वृक्ष खड़े हुए थे। राजकाराम को राजा पसेनदि (प्रसेनजित्) ने बनवाया था। इसी कारण इसका यह नाम पड़ा। इसिपत्तन के यह नाम पड़ने का कारण यह है, कि ऋषि लोग पहाड़ों से आकाश मार्ग से आते समय आकाश से यहीं उतरा करते थे।

'गन्धमादन' पर्वत के ऊपर अपनी यात्रा में प्रत्येक बुद्ध सात दिन ध्यान में बिता कर 'अनोतत्त' सरोवर में स्नान करके फिर मनुष्य लोक में वापिस आते थे। सारत्थप्पकासिनी में कहा गया है कि कदालि नाम का एक मृग होता था जिसका चर्म ढोल दुन्दुभि आदि बड़े बाजों को मढ़ने में काम आता था[1]।

इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने चार प्रकारके सिंहोंका उल्लेख किया है :— घास खाने वाले सिंह, काले सिंह, हल्के पीले ( बादामी ) रंग के सिंह, तथा केसरी सिंह। घास खाने वाले सिंहों का रंग भूरी नीली गाय के समान होता है ( शायद घास खाने वाले सिंहों से मतलब जंगली खूनी साँड़ों से हो, क्योंकि जिला मुजफ्फर नगर के जंगल में अब भी ऐसे सांड़ और गायें पायी जाती हैं।) ये घास खाते हैं और शेर तक को आ रे पास नहीं आने देते। ये गिरोहों में रहते हैं। काले सिंह भी घास पर रहते हैं ( ये शायद जंगली खूनी भैंसे हों जो कि बड़े खूंखार और भयानक होते हैं )। तीसरे हल्के पीले ( बादामी ) रंग के सिंह मांसाहारी होते हैं और शरीर में गाय के बराबर होते हैं। इनका रंग मुर्झायी हुई पीली पत्तियों जैसा होता है। चौथे प्रकार के केसरी सिंह का मुख लाल होता है। इसके एक पूंछ और चार टांगें होती है और तीन धारियाँ सिर से पीठ के मध्य भाग में आती हैं और तब दाहिनी ओर को मुड़ कर जांघों के बीच में समाप्त हो जाती है। इसके कन्धे पर केसर या अयाल होती है। इसका शेष शरीर पिसे हुए धान ( चावल ) के अथवा शंख की पिष्टि के समान सफेद होता[2] है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंहों का वर्णन

---

१. सारत्थप्पकासिनी भाग २, पृ० ३२५।
२. ,, ,, पृ० २८३।

इन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं के आधार पर किया है, नहं. तो घास खाने वाले और काले सिंहों का वर्णन कैसे करते ?

सारत्थप्पकासिनी में आचार्य बुद्धघोष ने चार प्रकार के सर्पों का वर्णन किया[1] है— काष्ठमुख, पूतिमुख, अग्निमुख तथा शस्त्रमुख। काष्ठमुख सर्प के द्वारा काटे हुए मनुष्य का शरीर सूखे काष्ठ के समान सख्त और अकड़ा हुआ हो जाता है। पूतिमुख सर्प के द्वारा काटे हुए मनुष्य का शरीर सड़ जाता है और सड़े हुए कटहल के फल की तरह उससे पीव बहने लगता है। अग्निमुख सर्प के द्वारा काटा हुआ शरीर जल जाता है और राख की तरह हवा में बिखर जाता है। यदि शस्त्र मुख सर्प किसी मनुष्य को काटे तो उसका शरीर बिजली गिरे हुए स्थान की तरह नष्ट हो जाता है।

सारत्थप्पकासिनी में एक कोमल वृक्ष ( मिदुरुक्ख ) का वर्णन है जो कि गंगा के बीच के टापुओं में उगता[2] है। इसी में एक ऐसे वृक्ष का भी वर्णन है जिसके पुष्प कज्जल के समान काले होते थे[3]। इससे शायद तीसी पुष्प अभिप्राय है। इसमें गो-घातक शब्द का भी उल्लेख है। जो गायों को मारता था, तथा उनके मांस को हड्डियों से अलग करता था, वह गो-घातक कहलाता था[4]।

यद्यपि सारत्थप्पकासिनी में आचार्य बुद्धघोष नाली ( नाड़ी ) और दोण के तोल के मापों का उल्लेख करते[5] हैं, किन्तु समन्तपासादिका के समान[6] इसमें वे मगध, द्रविड़ तथा लंका की नाड़ियों का अन्तर स्पष्ट नहीं करते।

सारत्थप्पकासिनी में पाखण्डी ब्राह्मण गुरुओं के एक वर्ग का मनोरंजक वर्णन मिलता है :— इन पाखण्डी ब्राह्मणों को स्यामी संस्करण

---

१. सारत्थप्पकासिनी भाग ३, पृ० ६।
२. ,, ,, पृ० ३७।
३. ,, ,, पृ० २४७।
४. ,, भाग २, पृ० २१८।
५. ,, भाग १, पृ० १५२।
६. ,, भाग ३, पृ० ७०२।

में 'नख' लिखा गया है। इस शब्द का शुद्ध रूप मख या मंख अर्थात् कलाकार है। 'पाली टैक्स्ट सोसाइटी' के संस्करण में इसका दूसरा रूप 'संख्य' मिलता है जोकि गणक का पर्यायवाची मालूम पड़ता है। ये लोग जनता को उपदेश देते समय चलचित्रशाला के द्वारा वर्णनीय विषयों के उदाहरण चित्रों के द्वारा दिखा-दिखा कर कर्म सिद्धान्त का उपदेश दिया करते थे, और उन चित्रों के नीचे चित्रों के अभिप्राय को स्पष्ट करने वाले तदनुरूप लेखों की चिप्पियाँ लगा कर अच्छे कार्यों के सुखमय तथा बुरे और पापमय कार्यों के दु:खमय फलों के उदाहरण दिखाते जाते थे। उन लोगों के द्वारा बनाये गये इस प्रकार के चित्र, बुद्ध भगवान् के समय, चरणचित्र अर्थात् 'चलचित्र' अथवा घूमने वाले चित्र कहलाते थे।[1] आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठसालिनी ( धम्मसंगणि की अट्ठकथा ) में भी इस चित्रकला का ब्यौरेवार वर्णन दिया है।[2]

सारत्थप्पकासिनी में एक और मनोरंजक वर्णन भी मिलता है, कि देवलोग मनुष्यों के बीच में भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनने के लिये आया करते थे। इससे सम्राट अशोक की जम्बूद्वीप में देवों तथा मनुष्यों के समागम विषयक प्रशस्ति पर भी प्रकाश पड़ता है। यह कहा जाता है कि देवलोग जब मनुष्य लोक में आते थे, तो अपने स्वाभाविक दिव्यरूप, शक्ति तथा तेज को छोड़ देते थे, और इस तरह के विशिष्ट, तेजस्वी तथा शक्तिशाली मानवरूप को धारण कर लेते थे, जिससे मालूम पड़ता था कि कोई विशिष्ट पुरुष सुन्दर वेष-भूषा में नाटक अथवा संगीत गोष्ठी में जा रहे हों। इस प्रकार वे सुन्दर सुसज्जित देवलोग मानवरूप में देवलोक से आकर मनुष्यों में मिलजुल जाते थे ( देवता हि मनुस्सलोकम् आगच्छमाना पकतिवण्णम्, पकतिइद्धिं जहित्वा ओळारिकम् अत्तभावं कत्वा अतिरेकवण्णं, अतिरेक इद्धि मापेत्वा नटसमज्जादिनि गच्छन्ता मनुस्साविय अभिसंखातेन कायेन आगच्छन्ति )।[3]

---

१. सारत्थप्पकासिनी, भाग २, पृ० ३२७।

२. अट्ठसालिनी, पृ० ६४।

३. सारत्थप्पकासिनी, भाग १, पृ० १४।

आचार्य बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा में स्पष्ट तौर से 'धारणीगुह्यसमय' तथा 'वेदुल्लवर्गीय' महायानी सिद्धान्त ग्रन्थों का उल्लेख किया है और उनको निम्नस्थ दो आधारों पर अप्रामाणिक तथा असैद्धान्तिक घोषित किया है— (१) उनका संगायन पहली तीन बौद्ध संगीतियों में नहीं हुआ है। (२) वे ग्रन्थ बौद्ध मत के स्वीकृत विषयों की परिधि के बाहर के विषयों का वर्णन करते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष पिटक ग्रन्थों के क्रमशः लोप ( परियत्ति अन्तरधानं ) का वर्णन करते हैं, जोकि लगभग उसी रूप में अनागतवंसं में मिलता है ( तिस्सोपन संगीतियो अनारूढ़ं, धातुकथा, आरम्मणकथा, असुभकथा, ञाणवत्थुकथा, विज्जाकरण्डको ति इमेहि पञ्चहि कथावत्थुहि वहिरं, गूढ़विनयं, गूढ़वेस्सन्तरं, वण्णपिटकं, अंगुलिमालपिटकं, रट्ठपालगज्जितं, आलवकगज्जितं, वेदुल्लपिटकं अबुद्ध वचनं परियत्ति सद्धम्म पटिरूपकंनाम )।[1]

अट्ठकथाओं में 'मार' के अनेक नामों में से सारत्थप्पकासिनी में अधिपति, कण्ह तथा नमुचि आये हैं।[2] 'राहु' के बारे में इसमें उल्लेख है कि इसका शरीर सब देवों से भारी और बड़ा है, किन्तु बुद्ध भगवान् को विचलित करने में यह भी व्यर्थ सिद्ध हुआ।[3]

श्रीलंका के ब्राह्मणतिस्स अकाल की भयंकरता के बारे में भी सारत्थप्पकासिनी में वर्णन आता है कि इस अकाल के समय बागियों के आतंक के साथ-साथ प्रकृति भी क्षुब्ध हो गई थी। परिणामतः श्रीलंका में बारह वर्ष तक भारी अकाल पड़ा। विहार खाली हो गये थे और भिक्खु लोग उनको छोड़-छोड़ कर या तो भारत की ओर अथवा पहाड़ी प्रदेशों में चले गये थे।

दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य थेर चूलनाग के विषय में सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है कि एक बार अनत्ता ( अनात्म्यता ) के विषय में दिये गये इनके उपदेश का एक ब्राह्मण के ऊपर विलक्षण प्रभाव पड़ा था।[4]

---

१, सारत्थप्पकासिनी, भाग २, पृ० २०१-२०२।
२. ,, भाग १, पृ० १६८।
३. ,, ,, पृ० १०८-१०९।
४. ,, भाग २, पृ० २७६।

संयुत्तनिकाय के 'जार सुत्त' में उल्लेख है कि एक बार भगवान् बुद्ध सावत्थि ( श्रावस्ती ) के पास विहार के समय अपनी पीठ धूप में सेक रहे थे, तो उनके उपस्थापक थेर आनंद उनके पास आये और वन्दना करके कहने लगे—"भन्ते, बड़ा आश्चर्य है कि आपके शरीर का चर्म अब चमकीला नहीं रहा, शिथिल पड़ गया है और शरीर में शिथिलता के साथ-साथ झुर्रियां पड़ गई हैं।" बुद्ध भगवान् ने यह सब स्वीकार किया और कहा कि,,युवावस्था में वृद्धावस्था, स्वास्थ्य में बीमारी और जीवन में मृत्यु उत्तराधिकारी के रूप से रहती हैं। यही कारण है कि मेरे शरीर और इन्द्रियों की यह अवस्था हो गई है।" किन्तु सारत्थप्पकासिनी में लिखा है कि "बुद्धों के शरीर में झुर्रियां नहीं पड़तीं, किन्तु थेर आनन्द ने जो देखी थी, वह कन्धों के बीच में केवल बाल के बराबर एक ही झुर्री थी और वह भी केवल थेर आनन्द के द्वारा ही देखी गई थी, क्योंकि बुद्धों का शरीर ( वृद्धावस्था के कारण ) इतना आगे को नहीं झुकता है कि उनके उपस्थापक के अतिरिक्त दूसरे लोग उसको देख सकें। केवल थेर आनन्द ही उनके उपास्थापक होने के कारण, उस झुर्री को देख सके थे। बुद्ध भगवान् की इन्द्रियों की शक्ति में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ था। थेर आनन्द ने यह नहीं कहा था कि उसने यह परिवर्तन देखा था, किन्तु उसने यह अनुमान लगाया था[1]।" इस वर्णन में अट्ठकथाकार बिल्कुल लोकोत्तरवादियों से मिलते हैं, क्योंकि उन्होंने भी महावस्तु में बुद्ध भगवान् के बारे में ऐसा ही वर्णन किया है[2]।

सारत्थप्पकासिनी में वर्णन है कि अनुराधपुर श्रीलंका की राजधानी थी। इस कारण यहाँ के राजा लोग इसकी उन्नति की ओर अधिक ध्यान देते थे। यह प्रदेश श्रीलंका का मध्यदेश कहलाता है[3]। देवनांपियतिस्स के द्वारा बनवाये हुए अनुराधपुर के सबसे बड़े महाविहार के बारे में इस में कहा गया है कि यहाँ एक 'पञ्हमण्डप ( प्रश्नमण्डप ) नाम का स्थान

---

१ सारत्थप्पकासिनी (सिंहली) भाग ३, पृ० १६३–६४।

२ महावस्तु भाग १, पृ० १६६।

३ सारत्थप्पकासिनी भाग २, पृ० १६४।

था, जहाँ शास्त्रार्थ हुआ करते थे[१]। इसी जगह महाचेतिय के विषय में कहा गया है कि चेतिय की वन्दना से भक्तों के हृदय में बहुत ऊँचे तथा उत्कृष्ट भाव उत्पन्न होते हैं और उन भावों के ध्यान से बहुत से भिक्खु अर्हन्त बन गये हैं[२]।

'कलम्बतित्थ' विहार के बारे में सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है कि पचास भिक्खुओं ने यहाँ चातुर्मास किया था और उन्होंने आपस में यह निश्चय किया था कि बिना आर्हन्त्य पद प्राप्त किये कोई किसी से न बोले और वर्षा काल के तीन माह के अन्दर वे सब अर्हन्त हो गये थे[३]। इसमें अन्तरवड्ढमान गाम, (जिसको कि अन्य अट्ठकथाओं में उत्तरवड्ढमान गाम कहा गया है) के एक किसान की कथा पहले पपंचसूदनी में वर्णन की जा चुकी है कि किस प्रकार इसने अपने पास शस्त्र होने पर भी, अपने शरीर पर लिपटे हुए सर्प को इसलिये नहीं मारा था, क्योंकि इसने अम्बरिय विहारवासी थेर पिंगलबुद्धरक्खित से 'सिक्खापद' ले रखे थे और इसी दया के कारण किसान के हृदय के भावों की पवित्रता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि सर्प उसे स्वयमेव छोड़कर चला गया था[४]।

गामेण्डल विहार के थेर चूलपिण्डपातिक के बारे में सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है कि उन्होंने एक 'मिलक्खति' नाम के शिकारी को दीक्षित किया था। भिक्खु होने पर यह गामेण्डल विहार, काजरगाम विहार तथा चित्तलपब्बतविहार में अपने भिक्खु धर्म का पालन बड़े उत्साह से करता रहा था। एक बार इसने 'अरुणवतिसुत्त' का उपदेश सुना और इसके ऊपर ध्यान लगा कर अनागामी हो गया तथा अर्हन्तपद प्राप्त किया[५]। दीघवापी में राजा सद्धातिस्स के द्वारा बनवाये हुए चेतिय के विषय में सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है कि किस प्रकार एक सामणेर इस चेतिय पर सफेदी करते समय फिसल गया और दैवी आश्चर्य के द्वारा बच गया[६]।

---

१ सारत्थप्पकासिनी (सिंहली) भाग ३, पृ० १५१।
२ ,, ,, (सिंहली) भाग ३, पृ० १५१।
३ ,, ,, भाग ३, पृ० १५५।
४ ,, ,, भाग २, पृ० १५०।
५ ,, ,, भाग १, पृ० ३३२।
६ ,, ,, ,, पृ० ३४१।

सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है, कि एक महाथेर ने कहा था कि अनुराधपुर के महाचेतिय के आंगन में इतने बालू के कण नहीं होंगे जितने कि भिक्खुओं ने यहाँ आर्हन्त्यपद प्राप्त किया है। गांवों के उपाश्रयों में कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहाँ भिक्खुओं ने बैठ कर आर्हन्त्य पद प्राप्त न किया हो। इस द्वीप में इतने विहार थे कि 'नानामुख' से 'लिच्छिकलि' तक तथा 'कल्याणी' से 'नागद्वीप' तक घण्टों के शब्द की गूँज की परम्परा दूर तक लम्बी चली जाती थी[1]।

इसमें वर्णित भिक्खुओं और भिक्खुनियों के पढ़ाये जाने की परिपाटी के विषय में पपंचसूदनी के वर्णन के समय कथन हो चुका है कि महाचेतिय के भवन में भिक्खुओं से भिक्खुनियां एक हाथ के अन्तर से पीछे बैठती थीं और गुरू के द्वारा उच्चारण किये गये पाठ को सुन-सुन कर ये सब एक साथ पढ़ा करते थे। उस समय प्रत्येक भिक्खु और भिक्खुनी के पास बुद्ध भगवान् के गुणों और उपदेशों वाली 'मुट्ठिपोत्थक' रहती थी। श्रावक लोग भी उस समय धर्म में इतने दृढ़ थे कि तिस्स नाम के बौद्ध श्रावक ने राजा सद्धातिस्स के द्वारा उसकी परीक्षा के लिये, मृत्युदण्ड का भय दिखाने पर भी मृत्युदण्ड को स्वीकार करना पसन्द किया, किन्तु पक्षी को नहीं मारा था[2]। उत्तरवड्ढमाण गांव के एक किसान और चक्कण की धर्म की दृढ़ता के बारे में उल्लेख आ चुके हैं कि किस प्रकार उन्होंने क्रमशः अपने और अपनी माता के जीवन को बचाने के लिये भी सर्प और खरगोश को नहीं मारा था[3]। सारत्थप्पकासिनी में कहा गया है कि श्रीलंका के जीवन में बौद्ध धर्म इतना समाविष्ट हो गया था कि वहाँ के गीत भी धार्मिक विचारों और उपदेशों से पूर्ण थे। धान के खेत को रखाने वाली एक कृषक बालिका के उपदेश भरे गीत को सुन कर साठ भिक्खुओं को आर्हन्त्य पद प्राप्त हो गया था। डाक्टर आदिकरम कहते हैं कि श्रीलंका में इस समय भी खांसते और छींकते समय लोग 'नमोबुद्धाय' का उच्चारण करते हैं[4]।



१ सारत्थप्पकासिनी भाग ३, पृ० ७५१।
२ सारत्थप्पकासिनी (सिंहली) भाग ३, पृ० ४९।
३ ,, ,, भाग २, पृ० १५०।
४ ,, ,, भाग १, पृ० ३२७।

## ४. मनोरथपूरणी

मनोरथपूरणी सुत्तपिटक के चतुर्थ ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय के ऊपर विस्तृत अट्ठकथा है। यह भी निर्विवाद रूप से प्रसिद्ध अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष की रचना है। इसको भी उन्होंने थेर जोतिपाल की प्रार्थना पर लिखा था, जिनके साथ ये पहले कांचीपुर अथवा काञ्जीवरम् आदि स्थानों में रहे थे और जिनके साथ ताम्रपर्णी द्वीप (श्रीलंका) में भी आये थे।

आयाचितो सुमतिना थेरेण भदन्त जोतिपालेन।
काञ्चीपुरादिसुमया पुब्बे सद्धिं वसन्तेन[१] ॥

इस अट्ठकथा की प्रस्तावना में भी कहा गया है, कि ये अट्ठकथायें उन सिंहली भाषा की अट्ठकथाओं का पाली भाषान्तर हैं, जिनको थेर महिन्द ने भारत से लाकर सिंहली भाषा में लिखवाया था, और जिनको महाविहार के थेरों की परम्परा ने सुरक्षित रखा था। डा० आदिकरम का कहना है कि "यह ध्यान देने की बात है कि मनोरथपूरणी में वर्णित आधी से अधिक घटनाऐं रोहण के प्रान्त से सम्बन्धित हैं जिससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि अंगुत्तरनिकाय के ऊपर अट्ठकथा मनोरथपूरणी ने इसी प्रान्त में अपना अन्तिम रूप प्राप्त किया था।" इससे यह भी सिद्ध होता है, कि यह समन्तपासादिका के बाद रोहणप्रान्त में ही लिखी गई होगी, जब कि महाविहारवासी तमिलों के आक्रमण, और ब्राह्मणतिस्स अकाल के भय के कारण अनुराधपुर छोड़ कर इस प्रान्त में आ गये थे।

मनोरथपूरणी के ऊपर थेर सुमेर के शिष्यों की लिखी हुई एक टीका भी है। ये राजा पराक्रमबाहु के समय में हुए थे। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'चतुत्थ सारत्थ मंजूसा' भी है। डा० मक्सवलेस्सर ने मनोरथपूरणी का प्रथम भाग पाली टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन के लिए सम्पादित किया है। यह पूर्ण ग्रन्थ श्रीलंका, स्याम और बरमा में प्रकाशित हो चुका है[२]।

---

१ मनोरथपूरणी—प्रस्तावना।
२ श्री बी० सी० ला—बुद्धघोष।

मनोरथपूरणी अट्ठकथा में निम्नस्थ विषयों का वर्णन दिया गया है:—आलस्य, मूर्च्छा, गर्व ( मद ), इन्द्रिय सुखकी वाञ्छा, मित्रता, मानसिक स्वतन्त्रता, दुःख, सम्यक् सिद्धि, मानसिक व्यापार, बोज्झंग ( बोध्यंग–सर्वोत्कृष्टज्ञान), महापुरुष के बत्तीस लक्षण, पुद्गल (मनुष्यों) के भेद, तथा चार पटिसंभिधाओं की प्राप्ति।

इसमें निम्नलिखित थेरों एवं थेरियों का भी उल्लेख है:-थेर अञ्ञाकोण्डञ्ञ, सारिपुत्त, मोग्गलान, महाकस्सप, अनुरुद्ध, भद्दिय, पिण्डोल भारद्वाज, पुण्णमन्तानिपुत्त, महाकच्चान, चुल्ल महापन्थक, सुभूति, रेवत, कंखारेवत, सोणकोलिविस,सोणकेटिकण्ण,सीवालि वक्कलि, राहुल,रट्ठपाल, कुण्डधान, बंगीस, उपसेन, दव्व, पिलिन्द वच्च, बाहिय, दारूचीरिय, कुमारकस्सप, महाकोट्ठित, आनन्द, उरूवेल, कस्सप, कालुदायी, वक्कुल, साभित, उपालि, नन्द, नन्दक, महाकप्पिन, सागत, राधा, मोघराज, थेरी महापजापति गोतमी, खेमा, उप्पलवण्णा, पटाचारा, धम्मदिन्ना, नन्दा, सोना, सकुला, भद्दाकुण्डलकेसा, भद्दाकापिलानी भद्दाकच्चाना, किसागोतमी, सिगालकमाता, तपस्सामल्लिका, सुदत्तगहपति, चित्तगहपति, हत्थक, महानामसक्क, उग्ग गहपति, सूर, जीवक कोमारभच्च, नकुलपितागहपति, सुजाता, सेनानिधीता, विसाखा, मिगार माता,खुज्जुत्तरा, सामावती, उत्तरा, नन्दमाता, सुप्पवासा, कोलियधीता, सुप्पिया, कातियानी, नकुलमाता, गहपतानी, काली उपासिका आदि।

इस ग्रन्थ में जम्बूद्वीप, अनोतत्त सरोवर और इसके सोहमुख (सिंहमुख) हत्थिमुख ( हस्तिमुख ), अस्समुख ( अश्व मुख ) तथा उसभ मुख ( वृषभमुख ) नाम के चार नदियों के उद्गम स्थानों का विशद वर्णन मिलता है। गंगा नदी के उद्गम का वर्णन विशेष रूप से सुत्तनिपात की अट्ठकथा में भी दुहराया गया है। बोधिसत्व कुमार सिद्धार्थ के तीन सरोवरों तथा महलों का विस्तृत वर्णन भो इस अट्ठकथा में दिया गया है।

इसमें अस्समेघ, पुरिसमेघ, सम्मापास तथा बाजपेय्य—इन चार यज्ञों की परिभाषा, का वर्णन धार्मिक तथा बुद्धिमान् राजाओं की चार संगह वत्थुओं ( संग्रह वस्तुओं ) के रूप में मिलता है। किन्तु यह परिभाषा स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों की परम्परा से भिन्न प्रकार की है, तथा बौद्धधर्म की

भावनाओं से प्रभावित और अनुरंजित है। इसमें दी हुई ऊपर के यज्ञों की परिभाषाओं के वर्णन से अश्वमेध यज्ञ का वर्णन मेल नहीं खाता है।

इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने थेर और थेरियों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।[1] पहले कुछ प्रसिद्ध थेरों का वर्णन नीचे दिया जाता है :—

**थेर अनुरुद्ध :—** ये शाक्य राजकुमार थे। बोधि प्राप्ति के पश्चात् जब भगवान् बुद्ध ने कपिलवस्तु में विहार किया तो इन्होंने अपने भाइयों महानाग, भद्दिय, भगु, किम्बिल और देवदत्त तथा उपालि नाई के साथ बौद्ध भिक्खु दीक्षा लेने के लिये गृहस्थ जीवन को छोड़ा था। इन्होंने भगवान् के पास जाकर अपने संघ में दीक्षित करने के लिये प्रार्थना की और भगवान ने इन सबको संघ में दीक्षित कर लिया। अनुरुद्ध दिव्यचक्षु ( दिव्य ज्ञान ) धारण करने वाले थेरों में सबसे बढ़े हुए थे।[2]

**थेर पिण्डोल भारद्वाज :—** ये भी भिक्खुओं में प्रधान थे। ये राजगृह के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ये तीनों वेदों के ज्ञाता थे। इनके 'पिण्डोल' नाम पड़ने का कारण यह था कि जहाँ कहीं ये जाते थे, भिक्षा में भोजन मांगते थे। एक बार भगवान् राजगह ( राजगृह ) गये और उन्होंने वहाँ धर्मोपदेश दिया। श्रद्धापूर्ण होकर इन्होंने अपने को भगवान् से संघ में दीक्षित करने की प्रार्थना की। उन्होंने इन्हें संघ में दीक्षित कर लिया और जल्दी ही इन्होंने अर्हत्पद प्राप्त कर लिया।[3]

---

१. थेरियों के विशेष वर्णन के लिये श्री बी० सी० ला की निम्नलिखित पुस्तकें देखें :—
   (१) वीमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, अध्याय ८।
   (२) वीमेन लीडर्स ऑफ दी बुद्धिस्ट रिफार्मेशन ( यह पुस्तक मनोरथपूरणी के कुछ अंशों का अनुवाद है। )

२. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० १८३-१९२।

३. ,, ,, पृ० १९६-९९।

**थेर पुण्णमन्तानिपुत्त** :— ये मन्तानी नाम की ब्राह्मणी के पुत्र थे। ये दोणवत्थुनगर के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। यह नगर कपिलवस्तु के पास ही था। थेर अञ्ञ कोण्डञ्ञ इनके चाचा थे, जोकि इसिपत्तन ( ऋषिपत्तन–सारनाथ ) में धर्मचक्र-प्रवर्त्तन के समय भगवान् के उन पूर्व शिष्यों में से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले भगवान् के 'धम्म' में दीक्षा ग्रहण की थी। अञ्ञ कोण्डञ्ञ ने ही 'पुण्ण' को भगवान् के धम्म में श्रद्धा करने के लिये उत्साहित और प्रेरित किया था। इन्होंने दीक्षा ली और जल्दी ही अर्हत्पद प्राप्त किया। इनका पाँचसौ भिक्खुओं का संघ था। इन सभी ने भगवान् का पथ-प्रदर्शन प्राप्त करके अर्हत्पद लाभ किया। भगवान् ने इनको भी भिक्खुओं में प्रधान घोषित किया था।[1]

**थेर महाकच्चान** :— ये उन भिक्खुओं में प्रधान थे, जोकि बुद्ध भगवान् के संक्षिप्त कथन की सुस्पष्ट और विस्तृत व्याख्या कर सकते थे। ये उज्जैन के राजा चण्डपज्जोत ( चण्डप्रद्योत ) के पुरोहित के पुत्र थे। राजा की प्रार्थना पर ये भगवान् बुद्ध को उज्जैन लिवा लाने के लिये उनके पास वहीं पहुँचे, जहाँ वे उस समय विहार कर रहे थे। भगवान् के उपदेश सुनने के पश्चात् ही इन्होंने अर्हत्पद प्राप्त कर लिया। इन्होंने भगवान् को राजा की प्रार्थना सुनाई किन्तु भगवान् ने वह स्वीकृत नहीं की और उन्हें उज्जैन वापिस जाने को कहा। साथ में यह भी विश्वास दिलाया कि राजा उनको अकेला देख कर क्रुद्ध नहीं होगा, अपितु प्रसन्न ही होगा। राजा भी महाकच्चान की अर्हत्पद प्राप्ति पर बहुत ही प्रसन्न हुआ।[2]

**थेर रेवत** :— वनवासी भिक्खुओं में ये सबसे प्रधान थे। ये प्रसिद्ध 'धम्मसेनापति' थेर सारिपुत्त के अनुज थे। इन्होंने भिक्खुओं के कर्त्तव्यों का वन में रह कर ही पालन किया और यथा समय अर्हत्पद प्राप्त किया।[3]

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० १९९-२०४।
२. ,, ,, पृ० २०४-२०९।
३. ,, ,, पृ० २२३-२३०।

**थेर सोणकोलिविस** :— ये आराधना शक्ति ( आरद्ध विरियानि ) रखने वाले भिक्खुओं में प्रधान थे। ये श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुए थे और भोग-विलास के वातावरण में पले थे। एक बार इन्होंने भगवान् का धर्मोपदेश सुना। इन्होंने अपने माता-पिता की अनुमति लेकर भगवान् से दीक्षा प्राप्त की। यह मालूम करके कि आत्मा का सर्वोपरि उद्देश्य भोग-विलासों से प्राप्त नहीं होता इन्होंने अपनी सारी शक्ति और प्रयत्न धर्माराधन में लगा दिये। प्रत्येक प्रकार के आत्म-निग्रह का पालन करके भी ये अर्हत्पद प्राप्त नहीं कर सके। अतएव इन्होंने फिर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके पुण्यकार्य करने का विचार किया। भगवान् ने इनके विचारों को अपने दिव्यचक्षु से जान लिया, और फिर इनको उपदेश देकर धर्म में उत्साहित किया। तब इन्होंने उचित समय में अर्हत्पद प्राप्त किया।[1]

**थेर राहुल** :— ये सामणेरों में प्रधान थे। ये भगवान् बुद्ध के पुत्र थे। भगवान् ने बोधि-प्राप्ति के पश्चात् जब कपिलवत्थु ( कपिलवस्तु ) में विहार किया तो अपनी माता के कहने से इन्होंने उनसे उत्तराधिकार मांगा और भगवान् बुद्ध ने उत्तराधिकार में इन्हें आठ वर्ष की अवस्था में दीक्षा दी। इन्होंने उचित समय में अर्हत्पद प्राप्त किया।

**थेर रट्ठपाल** :— ये कुरुदेश के एक श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुए थे। ये उन युवकों में से थे जिन्होंने 'अमृत' की खोज में संसार को त्यागा था एक बार बुद्ध भगवान् ने कुरुदेश के थुल्लकोट्ठित निगम में, जोकि रट्ठपाल की जन्मभूमि था, विहार किया। रट्ठपाल ने अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त करके भगवान् से दीक्षा ली। भगवान् के साथ ये सावत्थी (श्रावस्ती) गये और वहाँ अर्हत्पद प्राप्त किया। इसके बाद वे अपने माता-पिता के पास गये और उनको उपदेश देते हुए बहुत संबोधित किया। फिर वे बुद्ध भगवान् के पास श्रावस्ती में ही आगये।[2]

**थेर वंगीस** :— ये सावत्थी नगर के एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। इन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया था। इनको 'चवसीस' मन्त्र

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० २३१-२३७।
२. ,, ,, पृ० २५१-२६०।

सिद्ध था, जिसके द्वारा ये मृत-पुरुष के जन्म स्थान को मालूम कर लेते थे। ये भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमते थे और इस कार्य से आजीविका प्राप्त करते थे। एक बार बुद्ध भगवान् से इनकी भेट हुई। परिणाम स्वरूप, उनके उपदेश को सुनकर ये दीक्षित हो गये। इन्होंने जल्दी ही अर्हत्पद प्राप्त किया। जब कभी ये बुद्ध भगवान् के दर्शन करने आते, तो प्रत्येक बार एक नई गाथा के द्वारा उनकी स्तुति करते। इसी कारण ये प्रतिभाशालियों में अग्रणी रूप से (पटिभानवन्तानं अग्गणी) पुकारे जाते थे।[1]

**थेर कुमारकस्सप :—** ये राजगृह में उत्पन्न हुए थे। इनकी माता को दीक्षा लेते समय ज्ञात नहीं था कि वे गर्भवती थीं। वे दीक्षा लेकर सामणेरी बन गईं। सामणेरी अवस्था में कुमारकस्सप पैदा हुए। सामणेरी के लिये यह उचित नहीं था कि वह सन्तान का पालन करे, इसलिये कोसल ( कौशल ) देश के राजा पसेनदि ( प्रसेनजित ) ने इनका पालन किया। जब ये बड़े हुए तो इन्होंने दीक्षा ले ली और अन्त में अर्हत्पद प्राप्त किया। ये भगवान् के उपदेशक शिष्यों में प्रसिद्ध हुए और तदनुसार ( चित्तकथिकानां अग्रणी ) अर्थात् हृदय ग्राही उपदेशकों में अग्रणी रूप से पुकारे जाते थे।[2]

**थेर महाकोट्ठित :—** ये पटिसंभिधा प्राप्त थेरों में मुख्य थे। ये सावत्थी के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया था। इन्होंने एक बार भगवान् बुद्ध का धर्मोपदेश सुना। श्रद्धापूर्ण होकर इन्होंने उनके धम्म में दीक्षा ली और पटिसंभिधा ( विश्लेषणात्मक ज्ञान ) के द्वारा अर्हत्पद प्राप्त किया।[3]

**थेर आनन्द :—** ये भगवान् बुद्ध के उपस्थापक थे। ये धर्म-सिद्धान्त के भारी ज्ञाता थे। जब भगवान् बोधि-प्राप्ति के अनन्तर कपिलवस्तु आये तो इन्होंने भी अनुरुद्ध, भद्दिय, भगु, किम्बिल और देवदत्त तथा उपालि-नाई के साथ दीक्षा ली थी। इन्होंने प्रथम बौद्ध संगीति के कार्य प्रारम्भ होने से पहले दिन ही अर्हत्पद प्राप्त किया था और इसके पश्चात् सुत्तपिटक

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० २६६-२७०।
२. ,, ,, पृ० २८३-२८५।
३. ,, ,, पृ० २८५-२८६।

के दीघनिकाय का सङ्गायन किया था।[1] इनके बारे में विशेष वर्णन सुमंगलविलासिनी के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

**थेर उरुवेल कस्सप** :— ये बड़े भिक्खु संघ रखने वालों में प्रधान थे। अपने दो छोटे भाइयों के साथ पहले ये जटाधारी साधु बन गये थे। तीनों भाइयों के अलग-अलग बहुत से अनुयायी थे। भगवान् बुद्ध ने अपने अतिशय दिखाकर पहले बड़े भाई उरुवेल को बौद्ध-धर्म में दीक्षित किया। इसके बाद दोनों छोटे भाइयों ने भी बड़े भाई का अनुसरण किया।[2]

**थेर उपालि** :— ये विनयधरों में प्रथम माने जाते थे। इसी कारण प्रथम संगीति में इन्हीं को विनयपिटक के संगायन के लिये चुना गया था। ये जाति के नाई थे। अनुरुद्ध, आनन्द, भगु, किम्बिल और देवदत्त अपने सेवक उपालि के साथ भगवान् के पास भिक्खु दीक्षा लेने के अभिप्राय से गये थे। अपने अभिमान को नष्ट करने के लिये भगवान् से उन लोगों ने प्रार्थना की, कि सबसे पहले वे उपालि को दीक्षित करें। भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उपालि को सबसे पहले दीक्षा दी।[3]

इस अट्ठकथा की लगभग सौ कथाओं में से तेरह कथायें भगवान् बुद्ध की प्रथम शिष्याओं की हैं। वे रोचक होने के साथ-साथ 'थेरीगाथा' की पूरक के रूप में अमूल्य हैं। बौद्ध अट्ठकथाकारों के द्वारा लिखी गई इन थेरियों की कथाओं से, जिन्होंने कि भगवान् बुद्ध की शरण प्राप्त करके संसार को छोड़ा था, उनकी जीवनी उनकी दैनिक चर्या तथा उनकी उच्च धार्मिक भावनाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नीचे कुछ प्रमुख थेरियों का वर्णन दिया जाता है :—

**थेरी महापजापती गोतमी** :— थेरियों में सर्व प्रथम महापजापती गोतमी हैं। ये भगवान् बुद्ध की मौसी हैं, जिन्होंने उनकी माता के स्वर्ग-वास हो जाने पर उनको बड़े स्नेह पूर्वक पाला था। इन्होंने कई बार

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० २८६-२९६।
२. ,, ,, पृ० २९७-३००।
३. ,, ,, पृ० ३११-३१२।

बुद्ध भगवान् से दीक्षा देने की प्रार्थना की थी, किन्तु उन्होंने इन्हें दीक्षा नहीं दी थी। अन्त में दसवीं बार अपने उपस्थापक थेर आनन्द की शिफारिश पर उन्होंने उन्हें दीक्षा दी थी। इस प्रकार ये सर्वप्रथम भिक्खुनी थी।

**थेरी खेमा:**—धम्म में दीक्षित होने से पहले थेरी खेमा रानी थी। इस रानी को अपने सौन्दर्य पर बड़ा गर्व था। इसी कारण इसने भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुनने की बहुत दिनों तक परवाह नहीं की। किन्तु एक दिन भगवान् ने अपने अतिशय से एक अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर अप्सरा इसके सामने प्रगट की, जो क्रमशः वृद्धा ही वृद्धा होती गई, यहाँ तक कि अन्त में जराजीर्ण और बहुत ही कमजोर होकर मर गई। इसको देख कर खेमा को अपनी आगे की आयु में हो जाने वाली ऐसी ही अवस्था का ध्यान आया और वे राजा से आज्ञा मांग कर भिक्खुनी संघ में दीक्षित हो गईं।

**थेरी उप्पलवण्णा:**—इसके पश्चात् एक दूसरी थेरी उप्पलवण्णा का वर्णन आता है। यह इतनी सुन्दर थी कि सारे भारत वर्ष के राजाओं ने इसके पिता से इसे शादी करने के लिये माँगा था। इसलिये पिता संकट में पड़ गये कि किसके साथ इसकी शादी करें। अपने पिता को संकट से बचाने के लिये इसने दीक्षा ले ली और भिक्खुनी संघ में प्रविष्ट हो गई।

थेरी उप्पलवण्णा के बारे में कहा गया है कि पूर्व जन्म में यह कुमारी पद्मावती थी और कमलकोश से उत्पन्न हुई थी। इसके पैरों के नीचे चलते समय कमल उगते जाते थे। बनारस के राजा की यह सबसे अधिक प्रिय रानी थी, इसलिये दूसरी रानियाँ इससे ईर्ष्या करती थीं। एक बार, जब कि राजा युद्ध में गया हुआ था, इसके दो पुत्र पैदा हुए। ईर्ष्यालु सपत्नी रानियों ने उसके नवजात शिशुओं को चुरा लिया और उनकी जगह एक रक्त लिप्त लकड़ी का लट्ठा रख दिया। जब राजा युद्ध से लौटा तो राजा को बतलाया गया कि पद्मावती जादूगरनी है और उसने लकड़ी के लट्ठे को जन्म दिया है। राजा ने पद्मावती को त्याग दिया, किन्तु जल्दी ही वे लड़के, जिनको कि लकड़ी के एक सन्दूक में बन्द कर रखा गया था, पाये गये और सचाई प्रगट हो गई।

**थेरी पटाचारा:**—मनोरथपूरणी में सबसे अधिक हृदय स्पर्शी कथा थेरी पटाचारा की है। यह सावत्थी नगर के एक महाजन की कन्या थी। यह अपने घर के किसी नौकर के प्रेम में फंस कर उसके साथ घर से भाग गई थी। गर्भवती होने के पश्चात् वह अपने घर वापिस आना चाहती थी। इसके पति ने उसको जाने की अनुमति तो दे दी, किन्तु दिन पर दिन उसकी विदाई को टालता गया। अन्त में वह अकेली ही चल पड़ी। इसके बाद उसका पति भी उसके पीछे-पीछे चला आया और उस समय उसके पास पहुंचा जब कि प्रसूति पीड़ा के कारण वह बीच रास्ते में शिशु को जन्म दे चुकी थी। इसके बाद दोनों फिर वापिस अपने घर लौट गये। यही घटना दूसरे बच्चे के जन्म के समय घटी। दूसरे बच्चे के जन्म के समय बड़ी जोर की आँधी आई। उसके पति ने उसके लिये छड़ियों की एक कुटी का ढाँचा तैयार किया। किन्तु जब वह उसके छप्पर के लिये घास काटने गया तो सर्प ने काट लिया और वह मर गया। बड़ी शोकपूर्ण अवस्था में वह दोनों बच्चों को लेकर पिता के घर की ओर चल पड़ी। रास्ते में एक नदी आई, जिसको वह दोनों बच्चों को साथ लेकर पार नहीं कर सकती थी। इसलिये वह बड़े बच्चे को इस पार छोड़कर और छोटे को अपने साथ लेकर नदी के दूसरी पार गई और छोटे बच्चे को किनारे पर सुला कर बड़े बच्चे को लेने के लिये लौटी, किन्तु वह बीच धारा में ही थी कि उसके छोटे बच्चे की ओर एक बाज झपटा उसको भगाने के लिये उसने अपने हाथ उठाये। बड़े बच्चे ने समझा कि उसकी माँ उसको बुला रही है। इसलिये बड़ा बच्चा नदी में आया और धारा में बह गया। इधर उसी समय बाज छोटे बच्चे को लेकर उड़ गया। पटाचारा शोक में डूब गई। इस शोक-विह्वल अवस्था में वह सावत्थी पहुँची। वहाँ पहुँच कर उसको ज्ञात हुआ कि आँधी में उसके पिता का घर नष्ट हो गया और उसी में उसके माता-पिता भी नष्ट हो गये। एक के बाद एक आने वाले इस संकटों के कारण उत्पन्न हुए अपार दुःख और शोक के कारण पटाचारा पागल हो गई। उसने अपने कपड़े फाड़ डाले और नग्न होकर घूमने लगी। अन्त में वह उपदेश देते हुए भगवान् के पास पहुँची। बुद्ध भगवान् ने करुणा और मैत्री भाव प्रकट करते हुए उसे सम्बोधित किया—'बहन फिर होश में आओ। तुम्हारा चैतन्य फिर तुम्हारे हृदय में प्राप्त होवे।' जैसे ही

भगवान् के ये वाक्य उसने सुने, उसको लज्जा लगने लगी। एक मनुष्य ने उसके ऊपर एक कपड़ा फेंक दिया और उससे उसने अपने शरीर को ढक लिया। बुद्ध भगवान् की एक गाथा ने उसको पूरी तरह अच्छा कर दिया और वह दीक्षा लेकर भिक्खुनियों में सबसे अधिक आदरणीय भिक्खुनी गिनी जाने लगी।

किसा गोतमी और सरसों के बीज वाली शोक में सान्त्वना देने वाली कथा भी इसमें दी हुई है। इसमें विसाखा, मिगार माता, मल्लिका आदि धार्मिक स्त्रियों की भी कथाएँ हैं, जिनका वर्णन धम्मपदट्ठकथा के अन्तर्गत दिया गया है।

मनोरथपूरणी में गण्डम्ब ( कदम्ब ) वृक्ष का उल्लेख है, जिसके नीचे बैठ कर भगवान् बुद्ध ने आश्चर्य युगल दिखलाये थे[१]। इसमें चित्तपाटली ( चित्रपाटली ) पौधे का भी उल्लेख है, जिसके पुष्प रंग-बिरंगे होते थे[२]। इसमें वृषभपुंगव, हरिण और बकरे का उल्लेख मिलता है कि इनके चर्म पोशाक अथवा पहनने के वस्त्र बनाने के काम में आते थे[३]।

श्रीलंका के बारे में सुत्तपिटक की अन्य अट्ठकथाओं की अपेक्षा मनोरथपूरणी में अधिक वर्णन मिलता है। थेर दीघनाग राजा उत्तिय के समकालीन थे। थेर तिस्सदत्त भी उन्हीं के समकालीन थे। ये अपनी स्मरण शक्ति के लिये प्रसिद्ध थे[४]। मनोरथपूरणी में उल्लेख मिलता है कि राजा गोथाभय के पुत्र काकवण्ण रोहणप्रान्त के शासक थे और उनकी राजधानी मागाम अथवा महागाम थी। इनके शासन समय में एक निर्धन किन्तु श्रद्धालु पुरुष ने अपने गाढ़े पसीने की कमाई से अम्बरियविहार के थेर पिण्डपातियतिस्स को भोजन दिया था[५]। इस समय के बारे में डा० आदिकरम कहते हैं कि "रोहणप्रान्त की अवस्था इस समय समृद्ध थी।

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० १२५।
२. ,, भाग २, पृ० ३४-३५।
३. ,, ,, पृ० २८५, २९३।
४. ,, ,, पृ० ५४।
५. ,, ,, पृ० ६० तथा आगे।

इस घटना का वर्णन करते समय आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि इस समय भिक्खुओं को भोजनादि आवश्यक वस्तुओं के प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। यद्यपि रोहण की अवस्था सन्तोषजनक थी, किन्तु इसी समय इलार ने महावलिगंगा के उत्तरवर्ती प्रदेश के ऊपर अधिकार कर लिया और उस प्रान्त की अवस्था बिगड़ गई[१]।"

मनोरथपूरणी में दुट्ठगामणि के विषय में उल्लेख मिलता है, कि ये भोजन करने से पहले भिक्खुओं को भोजन देकर तब स्वयं भोजन करने के अपने नियम को बड़ी कठोरता के साथ पालन करते थे। इस नियम को वे संकट के समय भी पालन करते थे। एक बार अपने भाई के साथ युद्ध में वे हार गये और अपने मन्त्री तिस्स के साथ उन्होंने वन में शरण ली। वहाँ उनको बड़ी जोर की भूख लगी, किन्तु जब उनके लिये तिस्स भोजन लाया और उनके सामने रखा, तो उन्होंने उस भोजन को, कुछ भाग किसी भिक्खु को दिये बिना नहीं खाया। तदर्थ घोषणा की गई और पियंगुद्वीप के थेर गोतम ने थेर बोधिमातुतिस्स को भोजन स्वीकार करने के लिये भेजा। राजा ने थेर को भोजन का भाग देकर फिर स्वयं भोजन किया[२]।

थेर धम्मदिन्न के बारे में मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि इनके उपदेश की महिमा के बारे में प्रसिद्धि को सुनकर तिस्समहाराम के भिक्खुओं ने इनको निमन्त्रित किया और ये वहाँ भिक्खुओं सहित ( भिक्खुसंघ परिवुत्तो ) गये[३]।

मनोरथपूरणी में थेर मलियदेव ( जिनका वहीं महादेव नाम से भी उल्लेख है ) के विषय में वर्णन है कि जब ये मण्डल रामक महाविहार में अध्ययन कर रहे थे, तो किस प्रकार एक भक्त महिला ने इनकी सहायता की थी और किस प्रकार इन्होंने अर्हन्त पद प्राप्त किया था तथा उपदेश दिया था, जिसको सुनने के पश्चात् उस स्त्री ने सोतापत्ति ( प्रथम मार्ग )

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
२. मनोरथपूरणी भाग २, पृ० २१२–२१३।
३. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० ४२।

को प्राप्त किया[1]। वहीं यह वर्णन भी इनके विषय में मिलता है कि इन्होंने दीक्षा लेने के तीन ही वर्ष के अन्दर तीनों पिटकों में निपुणता प्राप्त करली थी।

थेर खुज्जतिस्स, जिनका अन्यत्र खुद्दतिस्स नाम से भी उल्लेख है, मनोरथपूरणी के अनुसार राजा सद्धातिस्स के शासन काल में थे। ये वृद्धावस्था में इतने एकान्तप्रिय हो गये थे कि एक बार उन्होंने राजा को भी अपनी विद्वता के विषय में धोखा दे दिया था,[2] ( जिससे कि उनको अपने एकान्तवास को छोड़कर राजा के पास न जाना पड़े )।

मलयवासी महासंघरक्खित, थेर का, जिनको कि जातक में उपरिमण्डल निवासी धम्मरक्खित थेर कहा गया है[3], मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि ये निर्मोह और क्रोध रहित थे[4]। मण्डलाराम के थेर महातिस्सभूति इनके प्रसिद्ध शिष्य थे, जो कि श्रीलङ्का के राजा वट्टगामणि अभय (२९-१७ ई० पूर्व ) के सिंहासनपर आरुढ़ होने के समय प्रसिद्ध थेर हो गये हैं। वहीं गामन्तपब्भार अथवा वामन्तपब्भार के थेर महासिव का भी उल्लेख मिलता है[5]। इनके बारे में इस ग्रन्थ में कहा गया है कि इन्होंने तीस वर्ष तक आर्हन्त्य पद प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न किया था। इसी ग्रन्थ में रोहण के महातिस्स का उल्लेख है कि वे अर्हन्त थे, किन्तु उनको स्वयं इसका ज्ञान नहीं था और उनका भ्रम तलंगवासी थेर धम्मदिन्न ने दूर किया था[6]। मनोरथपूरणी में राजा सद्धातिस्स के बारे में उल्लेख है कि ये बौद्ध सिद्धान्तों के पक्के अनुयायी थे तथा नियमों के पालन करने में दृढ़ थे[7]। एक बार इन्होंने तीन वर्ष तक तित्तिर मांस खाने की बलवती इच्छा को हृदय में इसलिए दमन करके रखा था कि यदि उनकी इच्छा लोगों को ज्ञात हो जावेगी तो बहुत से पक्षी उनकी इच्छा को पूरी करने

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० ३८-३९।
२. " भाग २, पृ० २४७।
३. जातकट्ठकथा वण्णना २ पृ० ३०।
४. मनोरथपूरणी भाग २, पृ० ३९-४०।
५. " " पृ० ४०।
६. " भाग १, पृ० ४२।
७. " भाग २, पृ० ३०।

के लिये मारे जावेंगे। अन्त में एक तिस्स नाम के व्यक्ति को इन्होंने खोजा और उसको परोक्षा की, कि वह प्राणों के ऊपर संकट आने पर भी किसी जोवधारी को नहीं मार सकेगा। जब उनको विश्वास हो गया तो उन्होंने उसको ऐसे तित्तिर के मांस को लाने का आदेश दिया जो रखा हुआ हो और खास तौर से उनके लिये नहीं मारा गया हो। वहीं यह भी उल्लेख है कि जब मांस तैयार करके उनके पास लाया गया तो उन्होंने उस मांस का एक भाग 'तत्थकसाल' परिवेण के एक सामणेर को दिया और वे उस सामणेर के आत्मसंयम से बड़े प्रसन्न हुए[१]। मनोरथपूरणी में राजा सद्धा-तिस्स के समय की एक और घटना का वर्णन है। एक बार ये राजघराने की महिलाओं के साथ विहार के लिये जा रहे थे। लोहपासाद के द्वार पर खड़े हुए एक युवा भिक्खु ने उनमें से एक महिला को देखा और कामासक्त हो गया। वह महिला भी उस युवा भिक्खु को देखकर कामासक्त हो गयी। कहा जाता है कि कामासक्ति के अतिरेक से दोनों ही का देहान्त हो गया[२]। राजा दुट्ठगामणि के समय की सी धार्मिक दृढ़ता और अनुशासन भिक्खुओं में राजा सद्धातिस्स के समय में नहीं रहे थे। किन्तु मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि राजा दुट्ठगामणि के समय की आध्यात्मिक उन्नति एकदम लुप्त हो जाने वाली नहीं थी[३]। प्रसिद्ध थेर खुज्जतिस्स और थेर महाव्यग्ध राजा दुट्ठगामणि के बाद भी रहे थे और सम्भवतः ऐसे अन्य थेर भी रहे होंगे। इन थेरों में बहुत ही प्रसिद्ध थेर कालबुद्धरक्खित थे। वे किसी मन्त्री के पुत्र थे तथा बोद्ध धर्म के निपुण उपदेशक थे।

ब्राह्मणतिस्स अकाल की भीषणता के बारे में मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि भातरगाम के लोग नागाथेरी को अन्य युवा भिक्खुनियों के साथ इसलिये छोड़कर अन्यत्र चले गये थे कि वे लोग इन्हें भोजन नहीं दे सकते थे और उनसे ऐसा कहने का वे साहस भी नहीं कर सके, कि वे लोग उन्हें भोजन देने में असमर्थ हैं[४]।

---

१. मनोरथपूरणी भाग २, पृ० ३०।
२. ,, भाग १, पृ० १३।
३. ,, भाग २, पृ० २४७।
४. ,, (सिंहली), पृ० ६७०-७१।

इस समय के अन्य थेरों में मण्डलाराम के थेर तिस्सभूति, थेर सुमनदेव, थेर पुस्सदेव और थेर उपतिस्स हैं। थेर तिस्सभूति के बारे में मनोरथपूरणी में एक बड़ा रोचक वर्णन मिलता है, कि किस प्रकार उन्होंने अपने मन की कामवासना को दबाने के लिये विकृत विचारों को नष्ट किया। एक दिन जब वे विद्यार्थी थे, तो एक गाँव में से होकर जा रहे थे। एक स्त्री को देख कर उनके मनमें विकार भाव उत्पन्न हुआ। विहार में लौट कर उन्होंने यह घटना अपने गुरू मलयवासी महासंघरक्खित से कह सुनाई। उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया, कि या तो इस विकृत विचार को वे नष्ट कर देंगे अथवा आत्मघात कर लेंगे। उन्होंने बार बार गुरु की वन्दना की और अन्त में पूछने पर अपना निश्चय उनको बता दिया। इसके पश्चात् वे निर्जन एकान्त में चले गये और वहाँ कठिन ध्यान के द्वारा विकृत विचारों को नष्ट कर दिया और अर्हन्त पद प्राप्त कर लिया[1]।

मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि ब्राह्मणतिस्स अकाल के समाप्त होने पर जब फिर श्रीलंका में खुशहाली और समृद्धि आई तो भारत से भिक्खु लोग लौट आये। पहले साठ भिक्खुओं ने जो श्रीलङ्का छोड़ कर नहीं गये थे, भारत से आये हुए भिक्खुओं को खोजा और उन लोगों से अपने कण्ठस्थ किये हुए त्रिपिटक के पाठ मिलाये। सारे पाठ शब्दशः मिल गये। इस समय परियत्ति (धम्मपिटक का अध्ययन) तथा पटिपत्ति (विनय के ऊपर आचरण) की प्रधानता के विषय में विवाद खड़ा हुआ। मनोरथ-पूरणी में यह उल्लेख है, कि 'परियत्तिनु खो सासनस्स मूलम् उदाहु पटि-पत्ति'। शास्त्रार्थ के पश्चात् धम्मकथिका विजयी हुए और परियत्ति अर्थात् धम्म को मुख्यता मिली। पांसुकूलिक अर्थात् विनयपटिक ने अनुसार आचरण करने वाले हार गये। परिणामतः पटिपत्ति पिछड़ गई तथा परियत्ति सर्वोपरि हो गयी, सुत्त ने विनय के ऊपर विजय प्राप्त कर ली, जब कि पूर्व सिद्धान्त था—'विनयो नाम बुद्धसासनस्य आयु' अर्थात् 'विनय' बुद्ध शासन की आयु है[4]।

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० ३९-४०।
२. ,, ,, पृ० ९२।
३. ,, ,, पृ० ९२-९३।
४. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १३।

अन्य अट्ठकथाओं के समान मनोरथपूरणी में भी उल्लेख है कि दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य थेर चूलनाग की उनके तीन साथी थेरों तथा गुरू के साथ मत विभिन्नता थी।[1] (किन्तु पुग्गलपण्णत्ति अट्ठकथा में उन तीनों के मत भी अधिकृत माने जाते हैं)। थेर दीघभाणक अभय का, (जिनकी स्मरण शक्ति तथा गाली या कटु वचनों को सहन करने की शक्ति की प्रसिद्धि के बारे में सुमंगलविलासिनी के वर्णन में उल्लेख आ चुका है), मनोरथपूरणी में दीघभाणक महाअभय थेर के नाम से उल्लेख किया गया है। ये वही थेर हैं, जिन्होंने चेतियपव्वतविहार को लूटने के लिये आये हुए डाकुओं का अपने आतिथ्य सत्कार के द्वारा हृदय परिवर्तन कर दिया था और वे लोग अपने कुत्सित पेशे को छोड़कर विहार के रक्षक बन गये थे। ये प्रसिद्ध और पवित्र सन्त तो थे ही, साथ में ख्यातिप्राप्त उपदेशक भी थे। इनके बारे में पहले पपंचसूदनी के वर्णन में उल्लेख आ चुका है कि एक स्त्री इनके उपदेश को सुनने के लिये अपने दुधमुँहे बच्चे को गोद में लेकर पांच योजन की दूरी को तय करके आई थी।[2]

मनोरथपूरणी में राजा भातिकाभय (३८–६६ ई० पश्चात्) के समय की एक रोचक घटना का उल्लेख है, कि भगवान् बुद्ध के इस कथन की कि मल्लिका (चमेली) की सुगन्धि सब फूलों की सुगन्धि से श्रेष्ठ है—महाचेतिय पर परीक्षा की गई थी। यह राजा पशुघात के इतना विरुद्ध था कि इसने गोमांस खाने के अपराध को अर्थदण्ड के योग्य घोषित किया था।[3]

राजा महादाठिक महानाग (६७–७६ ई० पश्चात्) के बारे में इस अट्ठकथा में भी उल्लेख है कि इस राजा के समय गिरिभण्डकविहार के बन चुकने के पश्चात् गिरिभण्ड पूजा महोत्सव हुआ था। इसी पूजा महोत्सव के सम्बन्ध में लोणगिरि के प्रसिद्ध थेर तिस्स का भी उल्लेख

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० १३३।
२. ,, भाग २, पृ० २४९।
३. ,, (सिंहली), पृ० ८११।

आताहै कि वे धार्मिक और पवित्र जीवन-यापनके लिये प्रसिद्धथे।[१] मनोरथपूरणी सिंहली में लोणगिरि के स्थान में लेनगिरि भी दिया हुआ है )।[२]

महाचेतिय ( जिसको पपंचसूदनी में असदिस महाचेतिय कहा गया है ) के बारे में मनोरथपूरणी में कहा गया है कि इसका प्रमाण (विस्तार) श्रीलंका के सब चेतियों से बड़ा था। इसके बारे में परम्परा प्रचलित है कि थेर महाकस्सप ने इस चेतिय के लिये भगवान् बुद्ध के अवशेष सुरक्षित रखे थे। भगवान् बुद्ध ने इसके स्थान को बैठकर पवित्र किया था तथा थेर महिन्द ने इस स्थान पर इसी कारण फूल चढ़ाये थे।[३] इसी ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि एक 'अमच्च' (आमात्य=मन्त्री) ने इसी महाचेतिय पर मल्लिका के पुष्प चढ़ाये थे, जिसके पुण्य को उसने पाताल के शासक 'यम' के साथ बांटा था, जिससे कि वह नरक की यातना से मुक्त हुआ और देवलोक में जन्म प्राप्त किया।[४] दक्खिनगिरिविहार ( जोकि सांगलिय सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र है ) के बारे में मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि इसी विहार के पास प्रसिद्ध थेर कालबुद्धरक्खित की जन्म-भूमि थी तथा वे इसी विहार में दीक्षित हुए थे। ये बहुत से भिक्खुओं के शिक्षक थे, किन्तु गुरु की प्रेरणा से वातकसितपब्बत पर गये और इन्होंने कठिन ध्यान के द्वारा आर्हन्त्यपद लाभ किया।[५] इस अट्ठकथा में प्राचीन खण्डराजीविहार का भी उल्लेख है।[६] इसी के सिंहली संस्करण में उल्लेख है कि नागद्वीप में राजा देवानांपियतिस्स ने राजायतनचेतिय तथा जम्बुकोल विहार बनवाये थे।[७]

---

१. मनोरथपूरणी ( सिंहली ), पृ० ६७० तथा मनोरथपूरणी भाग १, पृ० २२।
२. मनोरथपूरणी (सिंहली), पृ० ६६६।
३. ,, भाग २, पृ० ५।
४. ,, ,, पृ० २३१।
५. ,, ,, पृ० १७२।
६. ,, (सिंहली), पृ० ४२३-२४।
७. ,, ,, पृ० ६६६।

राजा दुट्ठगामणि के जन्म स्थान महागाम (आधुनिक मागाम जिसको कि पपंचसूदनी में धार्मिक लोगों का स्थान कहा गया है ) के निवासी दारुभण्डक महातिस्स की हृदयस्पर्शी कथा का उल्लेख मनोरथपूरणी में दिया हुआ है, कि इसने किसी शक्कर बनाने के कारखाने में छह माह तक कठोर परिश्रम करके बारह काहापण ( कार्षापण ) कमाये, जिससे इसने अम्बरियविहार वासी पिण्डभातियतिस्स थेर को स्वादिष्ट भोजन कराया था। इस थेर ने भी अपने प्रयत्नों में और वृद्धि की जिससे, कि इस निर्धन व्यक्ति को उसके भोजन कराने का बहुत अधिक फल मिले।[1] तलंगारविहार के बारे में मनोरथपूरणी में अन्य अट्ठकथाओं के समान उल्लेख है कि यह प्रसिद्ध थेर धम्मदिन्न का निवास स्थान था।[2] गामेण्डवालविहार के बारे में मनोरथपूरणी में लिखा है कि इस विहार के थेर 'चूलपिण्डपातिकतिस्स' के द्वारा एक 'मिलिक्खति' नाम का शिकारी दीक्षित किया गया था। भिक्खु होने के पश्चात् यह काजरगामविहार, गामेण्डवालविहार तथा चित्तलपब्बतविहार में बड़े उत्साह के साथ अपने भिक्खु धम्म सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करता रहा था। एक बार इसने पाचीनपब्बत पर 'अरुणवतिसुत्त' का उपदेश सुना और इसके ऊपर ध्यान लगा कर वह अनागामी होगया और इसके पश्चात् वह अर्हन्त हो गया।[3] दीघवापीविहार के बारे में इसमें उल्लेख है कि यहाँ महाजातकभाणक के द्वारा 'महावस्सन्तर' जातक के उपदेश होने के समाचार सुनकर एक सामणेर तिस्समहाराम से नौ योजन पैदल चलकर आया था।[4] वहीं 'भेरपासनविहार' का उल्लेख है। इसमें कुटुम्बियविहार और उक्कटलंका का भी उल्लेख है।[5]

भिक्खुओं की संख्या के बारे में मनोरथपूरणी में कहा गया है,

---

१. मनोरथपूरणी भाग २, पृ० ६०-६५।
२. ,, भाग १, पृ० ४२।
३. ,, ,, पृ० ३५।
४. ,, भाग २, पृ० ३४७।
५. ,, ,, पृ० ३०।

कि यदि सारे साधारण भिक्खुओं के भी स्तूप बनवाये जाते तो सारा श्रीलंका द्वीप भी पर्याप्त न होता।[१]

आचार्य बुद्धघोष ने मनोरथपूरणी में बताया है कि भिक्खु लोग विकृत, अपवित्र और दूषित विचारों को किस प्रकार रोककर और नष्ट करके सदा पवित्र जीवन बिताने का प्रयत्न किया करते थे। ऐसे विकार भावों के हृदय में आने पर, भिक्खु अपने आपको शिक्षा देते थे, कि "जन्म से हम नीच नहीं हैं; हम महाराज महासम्मत की निरन्तर परम्परा में तथा महाराज ओक्काक ( इक्ष्वाकु ) के वंश में उत्पन्न हुए हैं; हम महाराज शुद्धोदन के पौत्र तथा राहुलभद्र के लघुभ्राता हैं। जिन् भगवान् के पुत्र होकर हमको यह योग्य नहीं कि हम अप्रमाद का जीवन बितायें"।[२] भिक्खु जीवन की दृढ़ता के बारे में पहले वर्णन आ चुका है, कि एक सामणेर नौ योजन चल कर महावस्सन्तरजातक का उपदेश सुनने आया था और एक श्राविका पांच योजन पैदल चल कर बच्चे को गोदी में लेकर धर्म श्रवण के लिये आई थी। मनोरथ-पूरणी में उल्लेख मिलता है कि गरवालअंगन के एक भिक्खु ने बिच्छू के काटने की वेदना को इसलिए चुपचाप सहन किया था, कि अन्य श्रोताओं को धर्म-श्रवण में विघ्न न पड़े।[३] एक अन्य थेर 'सोसाणिक-महाकुमार' के बारे में कहा गया है, कि वे श्मशान में लगातार साठ वर्ष तक ध्यान लगाते रहे।[४] वहीं एक अन्य थेर के बारे में उल्लेख है कि उन्होंने पचास वर्ष तक चेतियपब्बत पर 'एकासनिकधुतांग' का पालन किया।

उस समय के विहारों में बरते जाने वाली पढ़ाने की परिपाटी के बारे में पपचसूदनी और सारत्थप्पकासिनी की तरह, मनोरथपूरणी में भी उल्लेख मिलता है। इसमें महाचेतिय के भवन की एक कक्षा का वर्णन है कि युवा भिक्खुओं के पीछे एक हाथ ( आधे गज ) की दूरी पर

---

१. मनोरथपूरणी ( सिंहली ), पृ० ६०७।
२. ,, भाग २, पृ० ६५।
३. ,, ,, पृ० २४८।
४. ,, भाग १, पृ० ७७।

भिक्खुनियां बैठती थीं। गुरु के द्वारा पढ़ाये हुए पाठ को सब सुन-सुन कर सीखते थे। प्रत्येक भिक्खु के पास एक 'मुट्ठिपोत्थक' होता था, जिसमें भगवान् बुद्ध के गुणों और उपदेशों का वर्णन रहता था।[१]

मनोरथपूरणी में राजा दुट्ठगामणि के वर्णन से ज्ञात होता है कि श्रीलंका में शिक्षा की व्यवस्था पूर्ण और सन्तोषजनक थी।[२] विद्वान् भिक्खुओं का राजा और प्रजा दोनों आदर करते थे तथा विद्वान् भिक्खुओं को, भिक्खुओं और श्रावकों, दोनों के मुकद्दमे तय करने के लिए नियुक्त किया जाता था।

सुमंगलविलासिनी के समान मनोरथपूरणी में भी लिखा हुआ है कि चेतिय शब्द पहले यक्खों (यक्षों) के निवास-स्थानों के अर्थमें प्रयुक्त होताथा कहा जाता है. कि बुद्ध भगवान् अपनी बोधि प्राप्ति के पूर्व बीस वर्ष तक प्रायः इन्हीं चेतियों में रहा करते थे। उदाहरण के लिये—गोतमक, चापाल, सारनन्द तथा बहुपुत्त चेतिय, इन नामों के यक्खों के निवास-स्थान थे, जिनमें बुद्ध भगवान् ने निवास किया था।[३] परमत्थजोतिका में उल्लेख है कि अग्गालव तथा गोतमक जैसे बहुत से चेतिय, विहारों में बदल दिये गये, किन्तु उनके मौलिक नाम का ये विहार अब भी धारण किये हुए हैं।[४] मनोरथपूरणी के अनुसार चेतिय का नष्ट करना बहुत बड़े पापों (आनन्तरियकम्मों) में गिना जाता है।[५] इसमें कहा गया है कि चेतिय दो प्रकार के होते हैं— सरीर (शरीर) चेतिय तथा परिभोग चेतिय। शरीर चेतिय में भगवान् बुद्ध अथवा अर्हन्तों के अवशेष रखे जाते हैं तथा परिभोग चेतिय में उनके पात्र उपकरण आदि। बोधि-वृक्ष परिभोग चेतिय गना जाता है; क्योंकि इस वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को बोधि

---

१. मनोरथपूरणी भाग १, पृ० २७।
२. ,, भाग २, पृ० २१४।
३. ,, ,, पृ० ३७३।
४. परमत्थजोतिका ,, पृ० ३४४।
५. मनोरथपूरणी ,, पृ० ६।

प्राप्त हुई थी। परिभोग चेतिय से शरीर चेतिय का अधिक महत्व समझा जाता है।[1]

बोधिवृक्ष के बारे में पपंचसूदनी के समान मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि इसकी वन्दना वैसे ही भक्ति-भाव के साथ करनी चाहिए जैसे स्वयं बुद्ध भगवान् की ही वन्दना कर रहे हों। इसके नष्ट करने को भी भारी पाप माना है।[2]

आटानाटिय सुत्त, मोरसुत्त, धाजग्गसुत्त तथा रतनसुत्त के आधि-दैहिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक उपद्रवों के दूर करने अथवा शान्त करने के प्रभाव के बारे में मनोरथपूरणी में उल्लेख है कि इनका प्रभाव करोड़ों ब्रह्माण्डों तक होता है।[3] सुमंगलविलासिनी के समान इसमें भी वर्णन है कि सक्क ( शक्र ) ने विस्सकम्मा ( विश्वकर्मा ) को दुट्ठगामणि के द्वारा महास्तूप के निर्माण के समय ईंटें बनाने के लिये भेजा था।[4] शक्र के बारे में इसमें उल्लेख है कि ब्राह्मणतिस्स अकाल के समय जब भिक्खुओं ने शक्र से ब्राह्मणतिस्स को नष्ट करने की प्रार्थना की तो उसने भिक्खुओं को भारत चले जाने की सलाह दी थी और उनके समुद्र पार जाने के लिये एक बेड़ा भी बना दिया था।[5]

मनोरथपूरणी के अनुसार थेरवादी सम्प्रदाय में निरयपाल नरक के रक्षक देव माने गये हैं, जो पाताल के स्वामी यम को, लोगों को शुभाशुभ फल देने में, सहायता देते हैं।[6] इसके अनुसार जब कोई जीव नरक में जाता है तो निरयपाल उसको यम के पास अन्तिम निर्णय के लिये ले जाता है। घोर पापी को उसके पास ले जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, क्योंकि उसको तो अपने पापों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता

---

१. मनोरथपूरणी भाग २, पृ० ६-७।
२. ,, ,, पृ० ६-७।
३. ,, ,, पृ० ६।
४. ,, ,, पृ० २३६।
५. ,, भाग १, पृ० ९२।
६. ,, भाग २, पृ० २२७।

है ।[1] इसके अनुसार यम न्यायी राजा है। हिन्दू पुराणों में वह यमराज और धर्मराज भी कहलाता है। यम प्राणियों को नरक में गिरने से बचाने के लिये भरसक प्रयत्न करता है। अन्तिम समय में भी यदि प्राणी अपने किसी पुण्यकार्य का स्मरण कर सके तोभी वह नरक में जाने से बच सकताहै और उसका वह पुण्यकार्य उसको स्वर्गलोक में पहुँचा देता है।[2] मनोरथ-पूरणी में उल्लेख है कि तमिल दीघजन्तु ने सुमनगिरि विहार के आकास चेतिय पर एक रक्तवर्ण के वस्त्र का टुकड़ा चढ़ाया था यद्यपि वह नरक में गया, किन्तु नरक की ज्वालाओं ने उसे उस चढ़ाये हुए लाल कपड़े की याद दिला दी और अपने इस पुण्यकार्य के स्मरण करने से वह स्वर्ग में पहुँच गया।[3] पपंचसूदनी के वर्णन में आ चुका है कि यदि कोई प्राणी अपने पुण्य कार्य को स्वयं स्मरण नहीं कर पाता तो यम उसको, पुण्यकार्य के स्मरण करने में सहायता करता है। मनोरथपूरणी के अनुसार यम 'वैमानिक पेतों' (वैमानिक प्रेतों) का राजा है। कभी वह स्वर्गीय सुखों का आस्वादन करता है, तो कभी नरक यातना का। इस अट्ठकथा में यम का वर्णन बहुत बढ़ा चढ़ाकर किया गया है। इसके अनुसार यम एक नहीं आठ हैं।[4]

★

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | मनोरथपूरणी | भाग २, | पृ० २३०। |
| २. | ,, | ,, | पृ० २२८। |
| ३. | ,, | ,, | पृ० २३०। |
| ४. | ,, | ,, | पृ० २३८। |

## ५. जातकट्ठकथा वण्णना

सुत्तपिटक के मुख्य चार निकायों की अट्ठकथायें लिख चुकने के पश्चात्, आचार्य बुद्धघोष ने खुद्दक निकाय के चार ग्रन्थों की अट्ठकथायें लिखना प्रारम्भ किया। यद्यपि इस बारे में कोई सीधी साक्षी उपलब्ध नहीं होती कि इन चार ग्रन्थों— जातक, धम्मपद, खुद्दकपाठ, तथा सुत्तनिपात की अट्ठकथाओं में से कौन-सी पहले लिखी गयी, फिर भी इतना निश्चित है कि जातकट्ठकथा धम्मपदट्ठकथा से पहली है, क्योंकि धम्मपदट्ठकथा के अन्त में दी हुई एक गाथा से ऐसा प्रतीत होता है।[1] इसी प्रकार परमत्थजोतिका में दी हुई धम्मपद की अट्ठकथा से भिन्न एक और धम्मपदट्ठकथा का परमत्थजोतिका में उल्लेख है, इसलिये यह धम्मपदट्ठकथा परमत्थजोतिका से पूर्व की सिद्ध होती है।[2] सुत्तनिपात की अट्ठकथा में जोकि परमत्थजोतिका का द्वितीय भाग है, जातकट्ठकथा वण्णना की निदानकथा का निर्देश किया गया है, इसलिये यह जातकट्ठकथा वण्णना परमत्थजोतिका से अवश्य ही पूर्व लिखी जा चुकी होगी।

बुद्धघोष ने इसे थेर अट्ठदस्सी, थेर बुद्धमित्त तथा थेर बुद्धदेव की प्रार्थना पर लिखा था। इनमें अन्तिम थेर बुद्धदेव महिंसासक परम्परा के थे, जबकि ग्रन्थ महाविहार की परम्परा के जातक संग्रह के संस्करण के ऊपर आधारित है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कम से कम इस समय तक थेरवादी और महिंसासक परंपराओं में जातकट्ठकथा की अर्थ-संगति के बारे में कोई विरोध नहीं था। दोनों ही परम्पराओं में यह अट्ठकथा समान रूप से मान्य थी।

प्रारम्भ में मूल रूप में जातक ग्रन्थ किस रूप में था—इसमें कथा भाग था या नहीं—यह निश्चय नहीं, किन्तु इतना निश्चय है, कि गाथा भाग इसमें मुख्य था और शायद मूलजातक ग्रन्थ में केवल गाथायें ही थीं।

---

१. श्री गाइगर—दी पाली लिटरेचर एण्ड ल्प्रेशे, पृ० २२।
२. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।

ये गाथायें किसी ग्रन्थ से उद्‌धृत नहीं की गई थीं, अपितु स्वतन्त्र रूप में जातक ग्रन्थ की ही थीं, क्योंकि वे वर्णनात्मक हैं, और पात्रों तथा स्वयं बोधिसत्व के मुख से वे कही जाती हैं। डा० मललसेकर का अनुमान है कि गाथाओं के साथ-साथ कथाओं का मुख्य भाग भी उनके साथ होना चाहिए, क्योंकि गाथाओं में कथा के वर्णनीय पात्रों के नाम नहीं हैं।[1]

वर्तमान रूप में जातकों की संख्या पाँच सौ पचास है। प्रत्येक जातक में आई हुई गाथाओं की एक, दो, तीन आदि संख्याओं के कारण ये बाईस निपातों में बंटी हुई हैं। एक गाथा वाले डेढ़ सौ जातकों का संग्रह 'इकनिपात' है तथा दो गाथा वाले सौ जातकों का संग्रह 'दुकनिपात' हैं। इसी प्रकार 'तिकनिपात' में तीन गाथाओं वाले पचास जातक हैं। इस प्रकार आगे के निपातों में गाथाओं की संख्या बढ़ती जाती है तथा कथाओं की संख्या घटती जाती है। यह क्रम 'विंसतिनिपात' तक चलता है। अन्तिम इक्कीसवें 'पकिण्णनिपात' और बाईसवें 'महानिपात' में गाथाओं की संख्या बहुत अधिक हो गई है। इनकी किसी-किसी कथा में तो गाथाओं का भाग गद्य भाग के विषय से बिलकुल मिलता है। भाषा के विचार से गाथाओं की भाषा गद्य भाग की अपेक्षा बहुत प्राचीन है, इसीलिये हम कह सकते हैं कि गाथाजातक 'खुद्दकनिकाय' का ग्रन्थ है, और अन्य निकाय ग्रन्थों के समान प्राचीन है।

**जातक कथा के अंग :—** प्रत्येक जातक के पांच अंग हैं—पच्चुप्पन्न-वत्थु, अतीतवत्थु, गाथा, अनुसंधि अथवा समोधान तथा वेय्याकरण। जातक की प्रत्येक कथा किसी गाथा के एक भाग से प्रारम्भ होती है, जिसको बुद्ध भगवान् उच्चारण करते हैं। इसके पश्चात् कथा की भूमिका के रूप में 'पच्चुप्पन्नवत्थु' ( वर्त्तमान की कथा ) प्रारम्भ होती है। इसमें उस परिस्थिति विशेष का वर्णन होता है, जिसमें कि बुद्ध भगवान् ने वह कथा सुनाई थी। इसके पश्चात् 'अतीतवत्थु' ( भूतकाल की कथा ) आती है, जिसमें बुद्ध भगवान अपनी पूर्व जन्म की बोधिसत्वावस्था की किसी घटना का वर्णन करते हैं। इसके पश्चात् जातक कथा का अनुसन्धि अथवा

---

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

समोधान भाग आता है। इसमें बुद्ध भगवान् कथा के पात्रों में वर्त्तमान व्यक्तियों का सम्बन्ध स्थापित करते हैं कि कौन-कौन वर्त्तमान व्यक्ति इस कथा में उस समय कौन-कौन से पात्र के रूप में था। प्रत्येक कथा में एक या एक से अधिक गाथाऐं होती हैं, जिनको कि साधारणतः बोधिसत्व ही कहते हैं और जो कथा का गाथा भाग कहलाता है। कभी-कभी स्वयं बुद्ध भगवान् भी गाथाओं को बोलते हैं, और भगवान् बुद्ध के द्वारा उच्चारण की हुई ये गाथाऐं 'अभिसंबुद्ध' गाथाऐं कहलाती हैं। इन जातक कथाओं में विशिष्ट-विशिष्ट शब्दों के ऊपर टिप्पणी भी होती है, जिसे 'वेय्याकरण' कहते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में भूमिका के रूप में निदानकथा दी गई है। इस भूमिका रूप निदानकथा के भी तीन भाग हैं—दूरे निदानम्, अविदूरे निदानम् तथा सन्तिके निदानम्[1]।

**वर्णनीय विषयः**—जातक साहित्य के आख्यान अंग में आता है। इसमें कल्पित कहानियाँ, देवी-देवताओं की कथाऐं तथा युग-युगों से चले आये सांसारिक पुरुषों के प्रतिदिन घटित होने वाले अनुभवों के अभिलेख हैं—इस बात को कट्टर बौद्ध भी अस्वीकृत नहीं कर सकते। दूसरी ओर कट्टर से कट्टर आलोचकों को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसकी अधिकतर गाथायें तथा कथायें बौद्धमत सम्बन्धी हैं। 'पच्चुप्पन्नवत्थु' के विषय में तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। इसके वर्णनों में स्वयं बुद्ध भगवान् के जीवन की घटनायें मिलती हैं, जिनमें कि कभी तो किसी भिक्खु अथवा श्रावक को उसके कदाचरण के ऊपर लताड़ा गया है, और कभी किसी के अच्छे धार्मिक कृत्य के ऊपर उसकी अनुमोदना की गई है, और फिर पूर्वजन्म की अतीत घटना से उसकी पुष्टि की गई है। ये जातक कथायें सर्वाङ्ग रूप से भारतीय हैं, भारत में ही उत्पन्न हुई हैं और भारतीय घटनाओं और वर्णनों को अङ्कित करती हैं। जो इनको विदेशों से ली हुई बताते हैं, वे भूल करते हैं। ये कथायें रूपकों के द्वारा सदाचार की नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा देती हैं। इनमें हमको मानव हृदय की भावनाऐं तथा

---

१. जातकट्ठकथा के विषय में अधिक ब्यौरे के लिये प्रो० रायस् डेविड्स की पुस्तक 'बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज' की भूमिका देखें।

परोपकार और बलिदान के आदर्श मिलते हैं। इसी प्रकार कथानायकों के अध्यवसाय, धैर्य, ईमानदारी, बुद्धिमानी, न्यायपरायणता तथा सच्चे आनन्द के उदाहरण भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ विद्वानों ने इनको ऐसे कलात्मक उपदेशों की संज्ञा प्रदान की है, जिनका उपयोग, जब चाहें तब, श्रोतागण को उपदेश देने के लिये किया जा सकता है। प्रो० कुन्ते ने अपने एक लेख में यह बताने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार ये कलात्मक उपदेश श्रोतागण के मस्तिष्क पर प्रभाव डालते थे [1]। पहले गाथा के एक चरण के द्वारा कथा प्रारम्भ होती है, जिससे भगवान् बुद्ध में श्रोताओं की श्रद्धा जागृत होती है और फिर पूरी गाथा के उच्चारण और कहानी के वर्णन के द्वारा उपदेशक अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं। साधारण श्रोतृ-समाज बुद्ध भगवान् को रहस्यपूर्ण महत्ता से प्रभावित होकर बौद्धिक आनन्द को प्राप्त करता है। जब गाथा के ऊपर वक्तृत्व कलापूर्ण आलोचनात्मक टिप्पणी की जाती है तो श्रोता के मस्तिष्क में बलपूर्वक प्रवेश करने वाला, उपदेशक का प्रभाव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। इसके पश्चात् अतीतवस्तु को कथा के द्वारा धार्मिक तत्त्व का साधारण लौकिक भावों के साथ मेल दिखाया जाता है और अनुसंधि के द्वारा वर्त्तमान के साथ कथा के पात्रों का सामंजस्य तथा विरोध स्थापित किया जाता है, जो कि श्रोताओं के आध्यात्मिक आनन्द का आधार होता है। श्रोता लोग इस भावात्मक आनन्द को प्राप्त करते हैं और जातक कथा को महत्व देते हैं। डा० मललसेकर कहते हैं कि 'यह वर्णन रोचक तथा कौशलपूर्ण तो है, किन्तु कोरा काल्पनिक है[2]।' फिर भी जातकों के द्वारा श्रोतागण जो आनन्द और धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा ग्रहण करते हैं, वह अमूल्य और अपरिहार्य है। इनके द्वारा श्रोताओं की बुद्ध भगवान् में और उनके 'धम्म' में श्रद्धा और आस्था उत्पन्न होती ही है, इस तथ्य को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

यह बात अनिश्चित है कि जातकों का नियमानुसार संकलन कब

---

१. देखें—जॉर्नल ऑफ सीलोन ब्राञ्च आफ रॉयल सोसाइटी में प्रो० कुन्ते का लेख।

२. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

हुआ । सम्भवतः सर्वप्रथम वे मौखिक रूप में और भिन्न-भिन्न तथा असम्बद्ध रूप में प्रगट हुए, तत्पश्चात् उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता ने उनको स्थायी रूप में सम्बद्ध कर देने की आवश्यकता को जन्म दिया; यदि पूरी कथाओं के साथ नहीं, तो कम से कम बीज रूप गाथाओं का संकलन तो बहुत पहले अवश्य किया जा चुका होगा। प्रो० रायस् डेविड्स सफलता पूर्वक सिद्ध करते हैं कि जातक ग्रन्थ एक पृथक् संकलित ग्रन्थ के रूप में बहुत पहले विद्यमान था[1] । डा० मललसेकर दीपवंस[2] का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "सिंहली ऐतिहासिक परम्परा इस बात की साक्षी है कि वैशाली की संगीति के समय में जातक नाम का संकलन विद्यमान था और तिपिटक का एक भाग था, जिसका कि वैशाली के विरोधी भिक्खुओं ने बहिष्कार किया था अथवा अपने अभीष्ट रूप में जिसको परिवर्तित कर लिया था[3] ।"

सिंहली परम्परा के अनुसार मूल जातक ग्रन्थ में केवल गाथाऐं ही थीं और गाथाओं को सम्बद्ध करने वाली कथाओं के साथ इसके ऊपर अट्ठकथा बहुत प्राचीन काल में सिंहली भाषा में लिखी गई थी। इसका पांचवीं शताब्दी ई० पश्चात् में आचार्य बुद्धघोष ने पाली में अनुवाद किया था, जिसके पश्चात् मौलिक सिंहली अट्ठकथा लुप्त हो गई। प्रो० रायस् डेविड्स अपने उपर्युक्त ग्रन्थ की भूमिका में कहते हैं कि "आधुनिक पाली 'अट्ठकथा वण्णना' अपने से पहली एक कट्ठकथा को निर्देश करती है, जिससे वे भी एक ऐसी प्राचीन सिंहली अट्ठकथा की विद्यमानता का अनुमान करते हैं, जो कि इस अट्ठकथा वण्णना का आधार है। इसके अतिरिक्त एक और भी प्राचीन जातक की अट्ठकथा होनी चाहिये, जिसमें से कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अन्य अट्ठकथाओं में उद्धृत कथाऐं ली हैं। यद्यपि जातकट्ठकथा वण्णना और अन्य अट्ठकथाओं में वर्णित कथाओं का विषय मूलरूप में एक ही है, फिर भी वर्णन, प्रकार तथा प्रारम्भिक

---

१. प्रो० रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी बुद्धिस्ट वर्थ स्टोरीज, पृ० ५५।
२. दीपवंस, अध्याय १०, पृ० ३५।
३. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

शब्दावली दोनों की भिन्न है और यह भिन्नता अवश्य ही एक और प्राचीन जातकट्ठकथा का निर्देश करती है[1] ।"

इसके साथ-साथ यह भी समझना है, कि भारहुत और साँची तथा गया के स्तूपों की दीवालों पर जातककथाओं के चित्र खुदे हुए हैं, जिनमें कि कथाओं के शीर्षक ही नहीं, अपितु वे दृश्य भी अंकित हैं, जो केवल गद्य भाग में ही दिये गये हैं[2] । इससे अनुमान होता है कि दूसरी तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में कथा भाग भी पाली भाषा के जातक ग्रन्थ में सम्मिलित था । सम्भव है, उसी पाली जातक के ऊपर उपर्युक्त दोनों सिंहली जातकट्ठकथा आधारित हों । जातक की गाथाऐं निःसदेह उसके गद्य भाग से बहुत प्राचीन हैं । ऐसा इनकी भाषा और शैली से मालूम पड़ता है । गाथाओं की भाषा तथा उनका रूप बहुत ही प्राचीन है, जब कि गद्य भाग सादा और क्रमवद्ध है । फिर भी जातक की बहुत सी कथाऐं तथा गाथाऐं भी बुद्ध भगवान् से भी प्राचीनतर हैं । प्रो० रायस् डेविड्स का विचार है[3] कि "जातक की कथाओं की बहुत बड़ी संख्या जातक ग्रन्थ से भी अति प्राचीनतर है, और उन प्रचलित कथाओं के साथ गाथाऐं बाद में जोड़ी गई हैं, तथा जातक ग्रन्थ के दशमांश की कथायें बिना गाथाओं के थीं, जिनके अन्त में गाथाऐं बाद में जोड़ दी गई थीं और ये गाथाऐं प्राचीनतम हैं, जो कि परम्परा से सिंहली जातक अट्ठकथाओं में आईं और जैसी आई थीं, वे पाली में वैसी ही रहीं । फिर भी, यह सम्भव है कि जातक ग्रन्थ का मूलरूप 'चरियपिटक' के समान केवल गाथामय था । किन्तु बिना कथाओं के बहुत सी गाथाऐं बिल्कुल समझी ही नहीं जा सकती थीं, इसलिये उनके साथ लोक कथाऐं, जो कि पहले से ही विद्यमान थीं, जोड़ दी गईं[4] ।" गाथाओं के बारे में भी डा० विण्टरनिज का मत है कि

---

१. प्रो० रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृ० ६ ।
२. डा० विण्टरनिज्—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २ ।
३. प्रो० रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृ० ७८ ।
४. डा० विण्टरनिज्—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २ ।

सारी गाथाऐं बुद्ध-वचन नहीं हैं, ( भाषा की प्राचीनता के कारण ) कुछ गाथाऐं बुद्ध भगवान् से भी पहले ऋग्वेद के युग की भी हैं तथा कुछ महाभारत और रामायण के युग को भी हो सकती हैं[1] । इसी कारण कुछ विद्वानों ने उनमें प्राग्बौद्धकालीन इतिहास की भी खोज की है। फिर भी, जातक संग्रह उनकी राय में दूसरी तीसरी शताब्दी से पूर्व का नहीं है। उनकी राय में जातकों की अतीतवत्थु ही अधिक ऐतिहासिक महत्व की है, पच्चुप्पन्नवत्थु उतनी नहीं, क्योंकि पच्चुप्पन्नवत्थु में कभी तो अतीतवत्थु ही दुहराई गई है, कभी उसका विषय विनयपिटक, सुत्तपिटक, उपादान आदि अन्य ग्रन्थों से ले लिया गया है।

ये जातक ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ विश्व-साहित्यक महत्व के भी हैं, क्योंकि इनमें वैदिक युग तक के संस्कृतेतर साहित्य के भी दर्शन होते हैं। इन जातकों में वर्णनात्मक साहित्य के कितने ही रूप पाये जाते हैं,—(१) गद्यात्मक वर्णन, जिसमें कि लोककथाओं की तथा देवकथाओं की पद्यात्मक गाथाऐं तथा कहावतें जहां-तहां जोड़ दी गई हैं, (२) पद्यात्मक लोककथा अथवा लोकगीत जो कि कहीं कथनोपकथन रूप में हैं तथा कहीं गद्य पद्यात्मक संवाद के रूप में हैं, (३) गद्य से प्रारम्भ होकर बीच में पद्य से मिल कर लम्बे-लम्बे वर्णन, (४) किसी विषय के ऊपर सूक्तियों का संग्रह, तथा (५) व्यवस्थित काव्य अथवा खण्डकाव्य के रूप में।

विषयवस्तु के आधार पर इसमें निम्न प्रकार के विषयों की कथाऐं हैं—(१) लोककथायें, नीति अथवा सांसारिक व्यवहार कुशलता, नैतिकता और नैतिक शिक्षा देने वाली शिक्षाप्रद कथाऐं, जिनमें से बहुतकम बौद्ध-मतीय हैं, (२) देवकथाऐं, जिनमें पशु रूप धारी देवों की कथाऐं भी शामिल हैं, और जो बौद्ध धर्म की सैद्धान्तिक बातों से वहुत दूर हैं, (३) छोटे-छोटे कथानक अथवा उपाख्यान, हास्य तथा नर्म कथाऐं जिनमें कि बौद्ध धर्म सम्बन्धी कोई विषय नहीं है, (४) उपन्यास और लम्बी-लम्बी प्रेम कहानियाँ, जिनमें कि साहसिक वर्णन भी कथा के मध्य में आते हैं, (५) बिना कथा भाग के लम्बे-लम्बे नैतिक वर्णन, (६) सूक्तियाँ तथा (७) धार्मिक पौराणिक कथाऐं, जो आंशिक रूप से बौद्धमतीय हैं। इस प्रकार

---

१. डा० विण्टरनिज—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २।

अट्ठकथा भाग को छोड़ कर आधे जातक मूलरूप में बौद्धमतीय नहा हैं। डा० विण्टनिज् के अनुमार इसका स्पष्टीकरण यह है कि भिक्खु लोग सब जातियों के तथा सब पेशों वाले होते थे और वे अपने साथ लाये हुए कथानकादि को धार्मिक रूप देने के लिये, धार्मिक परम्पराओं के साथ जोड़ देते थे[1]। इसी कारण ये जातक भारतीय साहित्य के लिये और अधिक महत्व के हैं। बौद्ध उपदेशक भिक्खुओं ने, जो उन्हें पसन्द आया, उसी को जातकों में जोड़ दिया। इन जातकों के परिमाणों में भी बहुत अधिक अंतर है, कुछ तो इनमें आधे-आधे पृष्ठ के हैं तथा कुछ जो लम्बे हैं, छोटे-मोटे स्वतन्त्र उपन्यास ग्रन्थ बन सकते हैं।

ये जातक न केवल साहित्यिक महत्व के हैं, अपितु भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अवर्णनीय ऐतिहासिक महत्व को भी धारण करते हैं। इनके पद्यभाग में तथा कथा भाग में हमें, बौद्धकालीन ही नहीं, अपितु उससे भी पूर्वापरकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के दर्शन होते हैं। इस ग्रन्थ की अट्ठकथा के कुछ भाग के रचने वाले सिंहली थेर भी हैं, अतएव इनमें श्रीलङ्का की भी, ईसवी पूर्व तथा ईसवी पश्चात् की, कई शताब्दियों तक की सभ्यता और संस्कृति की झाँकियां मिलती हैं। जातकों के वर्णनों में हमें भारतीय जनता की सब जातियों और वर्गों के जीवन का चित्रण मिलता है। इनसे हमें उनके तत्कालीन रीति रिवाजों, खेलों, उत्सवों, शिक्षा-परिपाटी, राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक हलचलों का भी पता लगता है।

वर्तमान पाली 'जातकट्ठकथा वण्णना' जिसका अनुवाद प्रो० कॉवेल के सम्पादकत्व में कई विद्वानों के द्वारा किया जाकर फॉसबोल संस्करण के नाम से प्रकाशित हुआ है, कई प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित है "यं पन जातकट्ठकथायं......तं सेसट्ठकथासुचत्थि, तस्मा इदमेव गहेतब्बम्"।[2] किन्तु मूल रूप में यह महाविहार की परम्परावाली अट्ठकथा संग्रह का अनुसरण करती है[3]। इसमें, इसके लेखक का इस

१. विण्टरनिज्—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २।
२. जातकट्ठकथा (फॉसबोल संस्करण) भाग १, पृ० ६२।
३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

आशय का निर्देश भी है कि इससे पहले महाविहार में जातकट्ठकथा विद्यमान थी ( जातकस्स अत्थवण्णनं महाविहारवासीनं वाचनामग्ग-निस्सितं भासिस्सं )[1] । अब हमें देखना है कि महाविहार की जातकट्ठकथा संग्रह के अतिरिक्त ये ऊपर 'सेसट्ठकथासुच' में निर्दिष्ट शेष जातक अट्ठकथायें कौन-सी थीं ? डा० बी० सी० ला के अनुसार[2] इनमें से एक स्यामी संस्करण है । इसकी भूमिका की गाथा से ज्ञात होता है कि यह भी प्राचीन सिंहली 'पोराणट्ठकथा' की ही व्याख्या शैली के ऊपर बड़ी सावधानी से लिखी गई थी ( पुराण सिंहलमासाय पुराणट्ठकथाय च थापितं तं न साधेति साधूनां इच्छितिच्छितम्, तस्मा तं उपनिस्साय पुराणट्ठकथानयं विवज्जेत्वा विरुद्धत्थे विसेसत्थं पकासयं विसेस वण्णनम् सेत्थं करिस्सामट्ठकथा वण्णनंति—स्यामी संस्करण ) । स्यामी संस्करण और 'जातकट्ठकथा वण्णना' में मुख्यतया तीन प्रकार का अन्तर है :—(१) पणाम गाथा दोनों में भिन्न-भिन्न हैं, (२) जातकों के नामों अथवा शीर्षकों में भी जहाँ-तहाँ भिन्नता है । (३) पिछले दस महाजातकों का क्रम और नामों में भी भिन्नता है । दोनों संस्करणों में जातकों की संख्या पांचसौ सैंतालीस ही है । यह संख्या आचार्य बुद्धघोष की सुमंगलविलासिनी आदि अट्ठकथाओं में निर्दिष्ट संख्या पांचसौ पचास से तीन कम है ।

फाँसबोल संस्करण की पणाम गाथा में कहा गया है कि यह जातकट्ठकथा वण्णना तीन थेरों की व्यक्तिगत प्रार्थना पर लिखी गई थी, जबकि स्यामी संस्करण की पणाम गाथा में कहा गया है कि यह ग्रन्थ कितने ही बुद्धिमान और विद्वान् थेरों की प्रार्थना पर लिखा गया था । स्यामी संस्करण के इन्हीं जातकों के उदाहृत चित्र पगन आनन्द पगोडा में चमकीले धातु पत्रों पर अङ्कित हैं । श्री डूरोइसेल्ली का कहना है कि 'इनके और फाँसबोल के जातकों के नामों और शीर्षकों में विशेष अन्तर नहीं है ।[4] महाविहार की उपर्युक्त पोराणट्ठकथा तथा स्यामी संस्करण के

---

१. जातकट्ठकथा ( फॉसबोल संस्करण ), भाग १, पृ० १ ।
२. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ६४–६५ ।
३. दोनों संस्करणों के नामों की सूची के लिए डा० बी०सी० ला की पुस्तक 'बुद्धघोष' पृ० ६५ देखें ।

अतिरिक्त एक तीसरे संस्करण की सूचना और मिली है, जिसमें कि परम्परागत पांच सौ पचास जातकों की संख्या का उल्लेख है। बरमा के शिलालेखों ( एपीग्राफिग्रा बरमानिका ) की भूमिका में श्री डूरोइसेल्ली सूचित करते हैं कि पेटलेइक पगौडा, पगन की मिट्टी की तख्तियों में पांच सौ पचास जातक कथाओं के उदाहृत चित्र दिये गये हैं। यह संख्या किस प्रकार पूरी हुई, इसका पता नहीं चला। किन्तु डा० बी० सी० ला का अनुमान है कि चरियपिटक के महागोविन्द[1] और 'सच्चसव्हायपण्डित'[2] की कथाओं को तथा महावस्तु के 'वृषभ जातक'[3] को, जोकि भारहुत के परिकोटे पर उदाहृत हैं, पांच सौ सैंतालीस में मिलाने से पूरी पांचसौ पचास संख्या बन जाती है। अथवा चरियपिटक की ही उपर्युक्त दोनों कथाओं के साथ 'महालोमहंस कथा' को मिलाकर यह संख्या पूरी की जा सकती है। चरियपिटक को कथाओं को ही लेना समीचीन जंचता है, क्योंकि चरियपिटक के पाली चरिय अनुमानतः जातकों के ऊपर ही आधारित हैं।[4]

इन तीनों संस्करणों के अतिरिक्त सबसे प्राचीन 'चुल्लनिद्देश'[5] में ( भगवा पञ्चजातकसतानि भासन्त, अत्तनो च परेसं च अतीतम् आदिसति ) पांचसौ जातकों की संख्या का उल्लेख है, जिसकी पुष्टि फाह्यान के इस कथन से भी होती है कि उन्होंने श्रीलंका में भगवान् बुद्ध के दन्तावशेष महोत्सव की यात्रा के समय मार्ग के दोनों ओर पांचसौ जातकों के दृश्यों के चित्र देखे थे। श्रीलंका की अभयगिरिविहार परम्परा 'चुल्लनिद्देस' के द्वारा निर्दिष्ट इन्हीं पांचसौ जातकों को मानती है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि जातकों की संख्या आगे चलकर महाविहार परम्परा में पांचसौ पचास तथा अभयगिरि विहार परम्परा में

---

१. चरियपिटक, संख्या ५।
२. ,, ,, २८।
३. महावस्तु, भाग ३, पृ० २८।
४. डा० बी० सी० ला 'बुद्धघोष', पृ० ६५–६६।
५. चुल्लनिद्देस, भाग २, पृ० ८०।

पांचसौ ही मान्य रही। डा० बी० एम० बरुआ ने 'चुल्लनिद्देस' के उदाहरण देकर तथा फाह्यान की श्रीलंका की यात्रा के समय जातक चित्रों के प्रदर्शन का उल्लेख करके जातकों की मूल संख्या पांचसौ ही सिद्ध की है, किन्तु साथ में विभिन्न उपायों से यह भी बताया है कि यह संख्या पाँचसौ से पाँचसौ पचास कैसे हो गई।[1]

यदि हम पांचसौ जातकों की ऐतिहासिक और साहित्यिक भूमिका के ऊपर विचार करें तो सबसे पहले सुत्तन्त जातकों में जातकों का उल्लेख मिलता है जोकि सबसे प्राचीन अभिलेख है तथा अन्य पूर्ववर्ती कल्पित लौकिक दृष्टान्त कथाओं, पौराणिक कथाओं तथा प्रचलित लोककथाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। 'चुल्लनिद्देस' में उनमें से चार के उदाहरण दिये हैं, किन्तु प्रो० रायस् डेविड्स ने उनकी संख्या बढ़ाकर सात के नामोल्लेख दिये हैं— (१) महापदानकथा[2] (२) महासुदस्सन[3] (३) महागोविन्द[4] (४) मखादेव[5] (५) महाविजय का पुरोहित[6] (६) घातिकार[7] तथा (७) पचेतन का चक्रनिर्माता।[8]

इस प्रकार जातकों की संख्या के बारे में परिस्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई। सबसे पहले, यदि और पहले नहीं तो कम से कम, तीसरी शताब्दी ई० पूर्व के लगभग, 'चुल्लनिद्देस' के संकलनकर्त्ता को जातकों की यह पांचसौ संख्या ज्ञात थी। यह वही संकलन है जो अभयगिरिविहार को यदि बाद में नहीं तो, कम से कम फाह्यान की श्रीलंका यात्रा के समय मान्य था। आधुनिक 'जातकट्ठकथा वण्णना' का गाथा भाग, जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर होनेवाले कुछ परिवर्त्तनों, संशोधनों और परिवर्धनों को छोड़कर

---

१. डा० बी०सी०ला–'बुद्धघोष', पृ० ६५–६७।
२. दीघनिकाय भाग २, पृ० १।
३. ,, ,, पृ० १९९।
४. ,, ,, पृ० २२०।
५. मज्झिमनिकाय भाग २, पृ० ७४५।
६. दीघनिकाय भाग १, पृ० १३४।
७. मज्झिमनिकाय भाग २, पृ० ५३।
८. अंगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० १११।

वास्तव में वही है, जो कि मूलग्रन्थ में मिलता है। महाविहार परम्परा जातकों की संख्या पांचसौ पचास मानती है और उसको सिद्ध करने के लिये उन्होंने ग्रंथ रचना भी की है। किन्तु जातक संख्या पांचसौ सैंतालीस है अथवा पाँचसौ पचास, इसके बारे में विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि पांचसौ पचास संख्या पांचसौ सैंतालीस से ही निकलती है, जो कि कहने की सरलता के लिए, बढ़ाकर पांचसौ पचास कर दी है। पांचसौ सैंतालीस को पाँचसौ पचास कह देने में परिणाम में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। पांचसौ पचास संख्या कहने में लगभग अर्थ निहित है।

यदि हम यह भी मान लें कि जातकों की पांचसौ सैंतालीस या पांचसौ पचास की संख्या पांचसौ के अन्दर गर्भित हो जाती है और चुल्लनिद्देस तथा अभयगिरिविहार की परम्परा के अनुसार पांचसौ की यथार्थ जातक संख्या बन जाती है, तो भी पांचसौ पचास की संख्या को अप्रामाणिक ठहरा कर टाल नहीं सकते, क्योंकि समस्या यह खड़ी हो जाती है कि ये पचास अधिक जातक कहाँ से आवें? इसके लिये डा० बी० सी० ला मुख्यतया दो साधनों का निर्देश करते हैं।[1] इन दोनों में एक के द्वारा पचास जातक लिये जा सकते हैं (१) ये पचास जातक 'पण्णासजातक' के नाम से स्याम देश में अलग एक संग्रह में उपलब्ध हैं, अथवा (२) ये पचास जातक पाली निकायों में गर्भित हैं, या चरियपिटक से सम्बन्धित है, अथवा महावत्थु या अन्य ग्रन्थों में समाविष्ट हैं; किन्तु पांचसौ सैंतालीस के संग्रह में सम्मिलित नहीं है। उदाहरण के लिए निकायों में आये हुए—'महाविजय का पुरोहित', 'महागोविन्द','घातिकार' तथा 'पचेतन का चक्रनिर्माता'; इसी तरह चरियपिटक में आये हुए—'सच्च सव्हायपण्डित' 'महालोमहंस' तथा 'महागोविन्द'; इसी तरह महावत्थु में आये हुए—'रक्षित', 'हस्तिनाग', 'ऋषभ', 'गोधा', 'हारप्रदान', 'व्यागघ्री भूता यशोधरा' इत्यादि जातक पांचसौ सैंतालीस वाले संग्रह में नहीं हैं।

इसके साथ ही आचार्य बुद्धघोष जातकों की पांचसौ पचास संख्या से अवगत थे—"अपण्णक जातकादीनि पञ्ञासाधिकानि पञ्चजातकसतानि

---

१. डा० बी०सी०ला —'बुद्धघोष', पृ० ६६-६७।

जातकानंति वेदितव्वम् ।[1] उनका पांचसौ पचास जातकों की संख्या का वर्णन स्पष्टतया महाविहार की परम्परागत सिंहली जातकट्ठकथा के ऊपर आधारित है। उन्होंने अपनी पपंचसूदनी में जातक 'निदानकथा' के कुछ भागको प्रयुक्त किया है। इसमें फाँसवोल संस्करण की 'निदानकथा' के बोधिसत्व के जीवन-चरित्र (सन्तिके निदानं) का संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है। यदि अट्ठसालिनी की भूमिका[2] में फाँसवोल संस्करण की 'दूरे निदानं' की कथा उन्हीं शब्दों में वर्णित है, तो समझना चाहिए कि यह न तो क्षेपकांश है और न मूलग्रन्थ के बाहर की चीज् है; अपितु पाली 'जातकट्ठकथा वण्णना' से ही उद्धृत की गई है।

यद्यपि सिंहली परम्परायें आचार्य बुद्धघोष को ही 'जातकट्ठकथा वण्णना' का रचयिता मानती हैं, फिर भी कुछ पाश्चात्य विद्वान इस बात में सन्देह करते हैं, और इस ग्रन्थ को आचार्य बुद्धघोष के नामराशी चुल्लबुद्धघोष की रचना कहते हैं। डा० बी० सी० ला तथा डा० मललसेकर भी उपर्युक्त कथन से सहमत हैं।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् प्र रायस् डेविड्स अपनी पुस्तक ,बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज् ' की भूमिका में कहते हैं कि "यद्यपि सिंहली परम्परा आचार्य बुद्धघोष को जातकट्ठकथा वण्णना' का रचयिता मानती है, किन्तु यह ध्यान देने की बात है, कि आचार्य बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा में न तो अपने बौद्ध संघ में दीक्षित होने की ओर, न अपनी भारत से श्रीलंका की यात्रा की ओर, और न अपनी ऊँची अकांक्षाओं की ओर तनिक सा भी संकेत किया है। इसी प्रकार न तो वे इसमें अपने भारतीय दीक्षा गुरु का और न अपने अट्ठकथाओं के अध्यापक थेर संघपाल का ही कोई उल्लेख करते हैं।" इससे वे परिणाम निकालते हैं, कि "उनकी इस अट्ठकथा में यह चुप्पी उनको इस अट्ठकथा के रचयिता सिद्ध करने में बिलकुल विश्वस्त रूप में विरुद्ध पड़ती है।" साथ में वे यह भी कहते हैं, कि "आचार्य बुद्धघोष के अन्य बहुत से ग्रंथों को पढ़ने के पश्चात् कोई भी यह विचार कर सकता है कि जातकट्ठकथा की भाषा और वर्णन शैली प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की वर्णन शैली के समान नहीं है। यद्यपि

१. सुमंगलविलासिनी भाग १, पृ० २४।
२. अट्ठसालिनी—भूमिका, पृ० ३२।

यह केवल अर्धचेतना की बात है, फिर भी यह बात है तो है ही।" आगे चलकर, वे स्वयं कहते हैं कि "जातकट्ठकथा सदृश महत्वपूर्ण ग्रन्थ बिना पाली में भाषान्तर किये बहुत दिनों तक रह जाता, यह भी सम्भव नहीं। इसलिये यदि आचार्य बुद्धघोष इसके रचयिता नहीं हैं, तो उनके समकालीन अथवा निकटपश्चात्कालीन कोई अन्य व्यक्ति, उनका ही नामराशी चुल्लबुद्धघोष, इसका रचयिता हो सकता है।[१]

उपर्युक्त बातों का, समर्थन करते हुए डा० बी० सी० ला कहते है[२] कि "इस बात के बहुत से अन्तरंग प्रमाण भी मिलते हैं कि यह रचना प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की नहीं है। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अन्य पिटक-ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में केवल प्रारम्भिक पदावली को छोड़कर जातक कथाओं का जैसे का तैसा वर्णन किया है। इन कथाओं का यदि जातकट्ठकथाओं की कथाओं के साथ मिलान किया जाये तो उसकी समानता और विभिन्नता का स्पष्ट पता लग जाता है। गाथाओं और उनकी व्याख्याओं तथा कथा भाग में तो कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता; अन्तर केवल वर्णन की शब्द-योजना और कथा वर्णन के प्रकार में हैं। उदाहरणार्थ—आचार्य बुद्धघोष का मूलपर्यायजातक का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ होता है—'भूत पुब्बम् भिक्खवे, अञ्ञतरो दिसापामोक्खो ब्राह्मणो वाराणसीयं पतिवसति, तिण्णां वेदानं पारगू' इत्यादि।[३] यही वर्णन 'जातकट्ठकथा वण्णना' में इन शब्दों से प्रारम्भ होता है—'अतीते वाराणसीयं ब्रह्मदत्ते रज्जम् करोन्ते बोधिसत्तो ब्राह्मण कुले णिब्बत्तित्वा वयपत्तो तिण्णं वेदानं पारगू' इत्यादि[४]।" उपर्युक्त उद्धरणों का विश्लेषण करते हुए डा० बी० सी० ला कहते हैं कि दोनों वर्णनों में निम्न बातें विशेष महत्व की हैं[५]:—(१) पपंचसूदनी में आचार्य बुद्धघोष ने

१. प्रो० रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृ० १५।
२. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ६७-६८।
३. पपंचसूदनी, भाग १, पृ० ५७।
४. जातकट्ठकथा (फॉसबोल संस्करण), जातक संख्या २४५।
५. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ६७-६८।

मूलपर्यायजातक की कथा का प्रारम्भ सुत्त पिटक की शब्दावली से किया है जबकि 'जातकट्ठकथा वण्णना' में जातक की ही परिपाटी अपनाई गई है। (२) पपंचसूदनी में आचार्य बुद्धघोष ने उस समय में पाप्य सिंहली जातकट्ठकथा के संस्करण का आधार ले कर स्वतन्त्र रूप से कथा का पाली में वर्णन किया है। (३) आचार्य बुद्धघोष ने गाथा और उनकी व्याख्या सिंहली अट्ठकथासे जैसी की तैसी ली है। इसकी अंशतः पुष्टि मिलिन्दपञ्हो के गाथाओं के अवतरणों से होती है, जो कि जातकों से लिये गये हैं। (४) आचार्य बुद्धघोष ने अपनी कथाओं के पाली के वर्णनों से वर्णन का एक आदर्श स्थापित कर दिया था, जिसको कि अन्य लेखकों ने शीघ्र ही अपना लिया था।

डा० मललसेकर, प्रो० रायस् डेविड्स के उपर्युक्त कथन को उद्धृत करके उनसे सहमत होते हुए कहते हैं[1] कि—(१) 'जातकट्ठकथा'की पणाम गाथा तथा आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की पणाम गाथाओं की भाषा और शैली में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। (२) आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं के भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं, किन्तु इतनी बड़ी इस अट्ठकथा का उनकी अन्य अट्ठकथाओं के समान अन्य नाम नहीं रखा गया है। (३) अन्य अट्ठकथाओं के उपसंहार के उनके प्रशंसात्मक वर्णनों के समान जो उनकी सभी अट्ठकथाओं में सामान्य है, इस अट्ठकथा में उनका कोई ऐसा वर्णन नहीं मिलता। (४) इस अट्ठकथा के लिखने की प्रार्थना करने वालों में उन्होंने महिंसासक परम्परा के थेर बुद्धदेव का भी उल्लेख किया है। (५)उनकी अट्ठकथाओं के उपसंहार की गाथाऐं सर्वसाधारण की कल्याण कामना को प्रगट करती हैं—"कि सारे प्राणी सर्वज्ञ भगवान् के धम्म का आस्वादन करें, यह उत्कृष्ट धम्म चिरन्तन है इत्यादि"। जब कि जातकट्ठकथा वण्णना में ये अपने व्यक्तिगत लाभ की कामना करते हैं कि "मैं तुसित स्वर्ग में पैदा होऊं और जब भगवान् मेत्तेय्य अवतार लें तो बुद्ध होने वालों में मेरा नामकरण हो और पारमिताओं में पूर्णता प्राप्त कर लेने के पश्चात् मैं बुद्ध हो जाऊं।"

उपर्युक्त मतों में से प्रो० रायस् डेविड्स की विरोधी युक्ति के

---

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

समाधान में हम कह सकते हैं, कि (१) आचार्य बुद्धघोष ने किसी भी अट्ठकथा में अपने बारे में कुछ भी प्रशंसात्मक बात नहीं कही। यदि अन्य अट्ठकथाओं में कहते तो यहाँ भी कुछ कहते। (२) भदन्त संघपाल का उल्लेख विसुद्धिमग्ग में इस लिए आ गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ को उनके ही आदेश पर लिखा था। जातकट्ठकथा को लिखने के लिए जिन थेरों ने प्रार्थना की थी, उनका उन्होंने उल्लेख किया ही है। (३) शैली और भाषा की भिन्नता के बारे में डा० आदिकरम ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में धम्मपदट्ठकथा के प्रकरण में स्पष्ट समाधान कर दिया है, कि ग्रंथ तथा विषय की विभिन्नता से भाषा और शैली में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। इसलिये किसी अट्ठकथा के रचयिता के निर्धारित करने में भाषा और शैली की सामान्य समानता को मापदण्ड नहीं बनाना चाहिए। (४) प्रो० रायस् डेविड्स स्वयं भी कहते हैं कि जातक ग्रन्थ बौद्धधर्म का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी अट्ठकथा बहुत दिनों तक बिना लिखे नहीं रह सकती थी, और महावंस के कथनानुसार आचार्य बुद्धघोष से पहले श्रीलंका के किसी भी ग्रन्थकार ने पाली भाषा में कोई ग्रंथ नहीं लिखा था। प्रो० रायस् डेविड्स की यह युक्ति तो इस बात को और सिद्ध करती है कि अवश्य ही आचार्य बुद्धघोष ने चार निकायों की अट्ठकथा लिखने के पश्चात् शीघ्र ही सबसे पहले इस महत्वपूर्ण जातकट्ठकथा को प्रारम्भ किया होगा। (५) प्रो० रायस् डेविड्स ने जो उन्हीं के नामराशी चुल्लबुद्धघोष को जातकट्ठकथा का रचयिता होने का अनुमान किया है, उसके लिए न तो कोई स्पष्ट उल्लेख है और न कोई विध्यात्मक साक्षी ही है। दूसरी बात यह भी है कि इतने बड़े अट्ठकथाकार को छोड़ कर जिसके बारे में इस ग्रंथ के अट्ठकथाकार होने की सिंहली परम्परा तथा महावंसादि की साक्षी भी विद्यमान है, चुल्लबुद्धघोष सदृश अप्रसिद्ध व्यक्ति को रचयिता मानना ठीक नहीं जंचता। (६) पपंचसूदनी और जातकट्ठकथा के प्रारम्भिक वाक्यों की भिन्न-भिन्न पदावली भिन्न-भिन्न रचयिताओं को सिद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि प्रकरण की भिन्नता पदावली में भिन्नता कर देती है। पपंचसूदनी की कथायें स्वयं भगवान् बुद्ध के द्वारा उपदेश के प्रकरण में कही गई हैं; इसलिये वे कथा के पहले 'भिक्खवे', इस सम्बोधनात्मक शब्द से प्रारम्भ

करते हैं। किन्तु जातकट्ठकथा में कथा के कहने का वाक्यांश 'अतीते' इत्यादि अपनाया गया है, जोकि मूल सिंहली जातकट्ठकथा का ही होना चाहिए और सिंहली जातकट्ठकथा की आधारभूत पाली अट्ठकथा में भी, जिसको कि थेर महिन्द भारत से अपने साथ लाये थे, इसी प्रकार की आरम्भ की शब्दावली अवश्य होगी, क्योंकि कथा और कहानियाँ प्राय: इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ की जाती हैं।

इसी प्रकार डा० मललसेकर के द्वारा 'बुद्धवंस' की अट्ठकथा मधुरत्थविलासिनी के रचयिता थेर बुद्धदत्त को केवल इसलिए जातकट्ठ-कथा का रचयिता सिद्ध करना कि जातकट्ठकथा का अविदूरे निदान का तथा थेर बुद्धदत्त की मधुरत्थविलासिनी का शाक्यों के बौद्ध धर्म स्वीकार करने तक का वर्णन मिल जाता है, ठीक नहीं जंचता, क्योंकि (जंसा कि डा० मललसेकर स्वयं भी सम्भावना प्रकट करते हैं) दोनों का आधार एक सामान्य सिंहली अट्ठकथा भी हो सकती है, जैसा कि आचार्य बुद्धघोष की सर्वसम्मत पपंचसूदनी की निदान कथा और जातकट्ठकथा की निदान कथा का आधार भी एक ही है। एक आधार की युक्ति से भी जातकट्ठकथा के रचयिता आचार्य बुद्धघोष ही सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार डा० बी० सी० ला के द्वारा दिखाई हुई पपंचसूदनी की मूलपर्याय जातक की कथा के तथा जातकट्ठकथा के वर्णनों की विभिन्नता की भी युक्ति समीचीन नहीं जंचती। पपंचसूदनी और जातकट्ठकथा के वर्णनों में केवल प्रारम्भिक शब्दावली की विभिन्नता है और वह भी भिन्न-भिन्न विषय और शैली वाले ग्रंथों की विभिन्नता के कारण है। पपंचसूदनी की शैली निकायों के ऊपर है, इसी कारण उसमें 'भिक्खवे' सम्बोधन से कथा आरम्भ की है। प्रकरण के अनुसार भी कथा की प्रारम्भिक शब्दावली में परिवर्त्तन आ जाना सम्भव है। पपंचसूदनी में मूलपर्याय जातक की कथा भिक्खुओं को सम्बोधन करके कही गई है, जबकि जातकों में किसी व्यक्ति विशेष को सम्बोधन न करके कथा सर्व-साधारण के लिये सामान्य रूप से अन्य जातकों की शैली पर ही वर्णन की गई है। इसलिये मानना पड़ेगा कि ग्रन्थों की अपनी-अपनी शैली के अनुसार एक ही कथा की प्रारम्भिक शब्दावली की भिन्नता से ग्रंथकारों की

भिन्नता सिद्ध नहीं हो सकती। डा० बी० सी० ला की चौथी युक्ति तथा प्रो० रायस् डेविड्स की यह युक्ति कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अन्य पाली अट्ठकथाओं की शैली के द्वारा अन्य लेखकों के लिए एक आदर्श स्थापित कर दिया है, उनको जातकट्ठकथा का रचयिता सिद्ध होने से नहीं रोक सकती, क्योंकि जब वे आदर्श स्थापित करने वाले ही हुए तो जातकट्ठकथा के वर्णन के द्वारा उन्होंने स्वतन्त्र कथा के वर्णन के प्रकार का पपञ्चसूदनी से भिन्न सिहली अट्ठकथा के अनुसार यह दूसरा आदर्श स्थापित कर दिया, इसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। साथ में यह भी ध्यान देने के बात है कि ये सारी अट्ठकथायें सिहली अट्ठकथाओं के भाषान्तर है, इसलिए क्यों न यह मान लिया जाय कि सिंहली जातकट्ठकथा का प्रारम्भ इसी प्रकार की सिंहली भाषा की शब्दावली से होगा और पपञ्चसूदनी में आई हुई कथा का प्रारम्भ सिहली भाषा की वैसी ही शब्दावली से होगा। इन दोनों सिंहली शब्दावलियों को उसी रूप में आचार्य बुद्धघोष ने पाली में भाषान्तर कर दिया है। वे अनुवादक हैं, स्वतन्त्र लेखक नहीं। सिंहली अट्ठकथाओं को भी वे आर्ष मानते हैं। इसलिए वर्णन में भी वे परिवर्त्तन नहीं कर सके। 'यावं अज्जतना' में भी उन्होंने सिंहली शब्दावली का अनुवाद ही किया है, नहीं तो वे इस पाली वाक्यांश को भिन्न प्रकार से भी लिख सकते थे।

आचार्य बुद्धघोष को जातकट्ठकथा का रचयिता न सिद्ध करने वाली डा० मललसेकर की पहली युक्ति का तो उत्तर दिया जा चुका कि भाषा, शैली और भाव वर्णनीय विषयानुसार बन जाते हैं। इसलिये जातकट्ठकथा की पणाम गाथाओं की तथा अन्य अट्ठकथाओं की पणाम गाथाओं की वर्णन शैली में ग्रंथों के भिन्न-भिन्न विषयों के कारण अन्तर पड़ गया है। दूसरी युक्ति, कि अन्य अट्ठकथाओं के समान जातकट्ठकथा का भी अन्य नाम न रखने के कारण आचार्य बुद्धघोष को इसका रचयिता नहीं मानना चाहिए, युक्तिसंगत नहीं। अन्य अट्ठकथाओं का तो मूल ग्रन्थों के नाम के अनुसार नाम न रख कर अन्य नाम रखना समीचीन जंचता है, किन्तु जातक की अट्ठकथा का अन्य नाम रखना ठीक नहीं था। जातक शब्द जातकट्ठकथा के नाम के साथ जुड़ जाने से जो अभिप्राय इस नाम में गर्भित रहता है, वह अन्य नाम के रखने में नहीं हो सकता था। वास्तव में

यही अभिप्राय-गर्भित नाम उपयुक्त था, इसीलिये आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपदट्ठकथा के समान मूलग्रन्थ का जातक शब्द इस अट्ठकथा के साथ जोड़कर 'जातकट्ठकथा वण्णना' इसका नाम ठीक ही रखा है। तीसरी युक्ति किसी भी ग्रंथकार को उसका कर्त्ता अथवा अकर्त्ता सिद्ध नहीं कर सकती। वास्तव में 'परम विसुद्धसद्धा' इत्यादि आत्म-प्रशंसात्मक वाक्य आचार्य बुद्धघोष के नहीं हैं, अपितु किसी ग्रंथ लेखक के द्वारा क्षेपकांश रूप में जोड़े गये प्रतीत होते हैं, क्योकि आचार्य बुद्धघोष इस तरह की आत्म प्रशंसात्मक शब्दावली अपने लिये कभी प्रयुक्त नहीं कर सकते थे। इस जातकट्ठकथा की प्रतिलिपि करने वाले लेखक ने वह प्रशंसात्मक पदावली इसमें नहीं लिखी। अतएव इसकी प्रतिलिपि करने वाला लेखक अन्य अट्ठकथाओं के प्रतिलिपिकर्त्ता से, जिनमें यह प्रशंसात्मक पदावली है, अवश्य ही भिन्न होगा। यह प्रशंसात्मक पदावली निःसन्देह प्रतिलिपि-कर्त्ता की जोड़ी हुई है, अट्ठकथाकार की कभी नहीं हो सकती।

जातकट्ठकथा लिखने के लिये आचार्य बुद्धघोष से प्रार्थना करने वाले लोगों में महिंसासक थेर बुद्धदेव का उल्लेख करना तो उनकी और अधिक धार्मिक उदारता और सहनशीलता का परिचायक है। यह भी सम्भव है, कि जातकों के विषय में विरोध न होने के कारण ही थेर बुद्धदेव ने इनसे प्रार्थना की हो। भाणकों के वर्णन के समय आचार्य बुद्धघोष ने संकीर्णता वाले 'गेहसित प्रेम' की निन्दा स्वयं की है। इसीलिए महिंसासक भिक्खु का उल्लेख करके उन्होंने उदारता प्रदर्शित की है।

जातकट्ठकथा तथा अन्य अट्ठकथाओं के उपसंहार की गाथाओं के भावों में अन्तर भी जातकों की तथा अन्य अट्ठकथाओं की विषय विभिन्नता के कारण है और वह भी अर्थगर्भित है। जातकों का धार्मिक आदर्श, जैसा कि डा० बी० सी० ला ने भी निर्दिष्ट किया है, निर्वाण प्राप्त करने वाले आर्हन्त्य पद की प्राप्ति नहीं है, अपितु बोधिसत्व अवस्था है, जिसमें कि भगवान बुद्ध ने अपने अनेक जन्मों में पारमिताओं के अभ्यास द्वारा अपने उन अनेक गुणों को विकसित किया था, जिनके द्वारा बुद्ध होने की तैयारी हुई थी। अतएव जातकों के आदर्श स्वरूप बोधिसत्व अवस्था के अनुरूप ही आचार्य बुद्धघोष ने जातकट्ठकथा के उपसंहार में

पारमिताओं के अभ्यास द्वारा बोधिसत्व अवस्था प्राप्त करके बुद्ध बनने की व्यक्तिगत कल्याण कामना की है, जब कि अन्य ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में, जिनका कि आदर्श अर्हन्तपद प्राप्त करना है, उन्होंने 'बुद्ध भगवान् के 'धम्म' के आचरण करने के द्वारा सब सुख प्राप्त करें' ऐसी सर्व साधारण के लिए कल्याण की कामना की है। वैसे भी भिन्न ग्रंथों में प्रतिपादित विषय के अनुसार, मंगलाचरण अथवा उपसंहार के वाक्यों की विभिन्नता हो ही जाती है। ऐसा प्रत्येक ग्रन्थ रचयिता के ग्रंथों में देखा जाता है।

इस प्रकार विरोधी युक्तियों का भले प्रकार समाधान हो जाता है। साथ में विध्यात्मक प्रमाण भी आचार्य बुद्धघोष को ही इस ग्रन्थ का रचयिता बताते हैं। बौद्ध परम्परा तो सदा से प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष को 'जातकट्ठकथा वण्णना' का रचयिता कहती आई है। इसके अतिरिक्त गंधवंस में आचार्य बुद्धघोष के द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची में भी 'जातकट्ठकथा वण्णना' का नाम दियागया है[1]। यही नहीं, डा० मललसेकर अपनीपुस्तक ,दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन' में कहतेहैं कि 'पाली जातकट्ठकथा वण्णना' का एक बहुत पुराना परिभाषिक शब्दकोष सिंहली भाषा में है, जिसका रचनाकाल उसमें नहीं दिया है, किन्तु निश्चय पूर्वक वह तेरहवीं शताब्दी ई० पश्चात् के पाली 'जातकट्ठकथा वण्णना' के सिंहली अनुवादसे प्राचीनतर है, और उसमें भी आचार्य बुद्धघोष को पाली 'जातकट्ठकथा वण्णना' का रचयिता कहा गया है। डा० मललसेकर वहीं फिर लिखते हैं कि सुत्तनिपातट्ठकथा में, जो कि निर्विवाद रूप से आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है, पाठकों से 'जातकट्ठकथा वण्णना' की निदानकथा को निर्दिष्ट किया गया है।[2] इससे भी वह आचार्य बुद्धघोष की ही रचना ठहरती है। डा० मललसेकर, प्रो०रायस् डेविड्स की पूर्वोक्त भूमिका[3] का उल्लेख देते हुए स्वयं कहते हैं कि महावंस ( चुल्लवस ऑफ धम्मकित्ति ) के कथन से यह स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष के श्रीलंका में जाने के पूर्व किसी भी

---

१. गंधवंस, पृ० ५६।

२. सुत्तनिपातट्ठकथा, पृ० २।

३. प्रो० रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृ० ६५-६६।

सिंहली अट्ठकथा का पाली में अनुवाद नहीं हुआ था।[1] इसका स्पष्ट अर्थ है कि इन्होंने अपने द्वारा रचित 'जातकट्ठकथा वण्णना' की निदान कथा को सुत्तनिपात की अट्ठकथा में निर्दिष्ट किया होगा। अब इस प्रकार 'जातकट्ठकथा वण्णना' का रचना काल बुद्धघोष के 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथा की रचना के पूर्व निश्चित हो गया। इसीलिये पश्चात्कालीन चुल्लबुद्धघोष का, जिसको कि प्रो० रायस् डेविड्स, डा० बी० सी० ला तथा डा० मललसेकर पाली जातकट्ठकथा के रचयिता के रूप में स्वीकार करते हैं,इसके रचयिता होनेका अब प्रश्न ही नहीं उठता। इन चुल्लबुद्धघोष को तो इन सभी ने आचार्य बुद्धघोष का पश्चात्कालीन स्वीकार किया है। निश्चय पूर्वक, थेर बुद्धदत्त की बुद्धवंस के ऊपर लिखी गई मधुरत्थ-विलासिनी अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के बाद की है और इसीलिये उसकी निदानकथा 'जातकट्ठकथा वण्णना' से ली गयी है, क्योंकि महावंस के अनुसार आचार्य बुद्धघोष से पहले कोई पाली अट्ठकथा नहीं लिखी गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सुत्तनिपात की अट्ठकथा में भी आचार्य बुद्धघोष अपनी ही जातकट्ठकथा को निर्दिष्ट करते हैं और थेर बुद्धदत्त ने भी उन्हीं की जातकट्ठकथा से निदानकथा का वह अंश लिया है।

यह अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की है और उन्होंने इसे अन्य अट्ठकथाओं के समान, महाविहार की परम्पारा के अनुसार ही लिखा है जैसा कि उन्होंने इस अट्ठकथा में स्वयं भी निर्दिष्ट किया है[1]। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है प्रो० चाइल्डर्स भी इसको उन्हीं की रचना मानते हैं। श्रीलङ्का के प्रसिद्ध बड़े-बड़े मनीषी विद्वान् भी आचार्य बुद्धघोष को ही इसका कर्त्ता स्वीकार करते हैं। इनमें पिछली शताब्दी के बौद्ध साहित्य के सबसे बड़े विद्वान् श्री एच० सुमंगल भी हैं[2]।

कुछ विद्वान् 'जातकट्ठकथा वण्णना' को पृथक्-पृथक

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।
२. जातकट्ठकथा—(फॉसवोल संस्करण), भाग १, पृ० १।
३. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन।

लेखकों की रचना मानते हैं और कहते हैं कि यह बाद में गाथाओं की संख्या के अनुसार व्यवस्थित कर ली गई है। किन्तु यह बात भी ठीक नहीं जंचती। यह एक ही ग्रन्थकार की रचना है, क्योंकि इसकी पच्चुप्पन्नवत्थु में स्थान-स्थान पर आगे और पीछे के जातकों को निर्दिष्ट किया गया है। इसी प्रकार इसकी गाथाओं को संक्षिप्त करके पाठकों को इन गाथाओं के विस्तार के लिये अन्यत्र दी हुई गाथाओं के लिये निर्देश दिया गया है। ये बातें भिन्न-भिन्न लेखकों की रचना में सम्भव नहीं हो सकती थीं। दूसरी बात यह भी है,कि प्रारम्भ से लेकर अन्ततक जातकों की कथा के वर्णन में एक सी ही प्रणाली बरती गई है। यदि भिन्न-भिन्न रचयिता होते तो वर्णन शैली में अवश्य ही कुछ न कुछ भिन्नता आ जाती[1]। इस प्रकार यह भी सिद्ध हुआ कि जातकट्ठकथा मूल रूप में किसी एक ही भारतीय लेखक की रचना है। जिसने जातक ग्रन्थ की गाथाओं के अनुरूप कथाओं को संकलित और सम्पादित करके सर्वप्रथम पाली में 'जातकट्ठकथा' लिखी थो और फिर वह थेर महिन्द और उनके साथी थेरों के द्वारा श्रीलङ्का में लाई गई थी। वहां यह सिंहली थेरों के द्वारा सिंहली में अनुवादित और परिवर्धित हुई। 'सेसट्ठकथासु' इस वाक्यांश से ज्ञात होता है कि श्रीलंका में सिंहली में इसके एक से अधिक संस्करण ( शायद वहाँ प्रचलित भिन्न-भिन्न परम्पराओं के कारण ) थे, जिनको देख कर आचार्य बुद्धघोष ने अपनी यह 'जातकट्ठकथा वण्णना' पाली में लिखी।

**जातक कथाओं के स्रोत:**—जातक ग्रन्थ की रचना उत्तर भारत के मध्यदेश कहलाने वाले प्रदेश में हुई थी[2]। श्री गाइगर का मत है कि इसकी अतीतवत्थु तो पश्चिमोत्तर भारत ( गान्धार इत्यादि प्रदेश ) की है और पच्चुप्पन्नवत्थु पूर्वीय भारत ( मगध, कौशल इत्यादि प्रदेश ) की है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य तथा अन्य व्यक्ति, जिनको उद्देश्य करके अथवा जिनके बारे में पच्चुप्पन्नवत्थु कही गई है, इसी प्रदेश के थे। उनका कहना है कि जातक एक प्रकार के आख्यान हैं, किन्तु सब नहीं। जातकों की कुछ कथाऐं 'पञ्चतन्त्र' तथा

---

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटररेचर आँफ सीलोन।

२. प्रो० रायस् डेविड्स—बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० १७२।

'कथासरितसागर' आदि में पायी जाती हैं, जो कि जातकों में से ही ली गई प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार कुछ कथाओं के समानान्तर रूप महाभारत, रामायण, पुराणों तथा जैन शास्त्रों में भी मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उनको जातककथाओं के रूप में परिणत कर लिया गया है। इनके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जातकों की बहुत सी अतीतवस्तु की कथाऐं प्राचीन काल में लोककथाओं के रूप में विद्यमान थीं। इनमें गाथा, पच्चुप्पन्नवत्थु, वेय्याकरण तथा अनुसन्धि जोड़ कर इनको जातककथा का रूप दे दिया गया। इसी कारण जातकों में वर्णित विषय विशेषतः बौद्धमतीय नहीं है। ये लोककथाऐं जनता की सामान्य निधि थीं, जो कि अज्ञात रचयिता के द्वारा रची जाकर महाभारत और जातक दोनों में अपनाई गईं। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि जातक और महाभारत दोनों के कथा वर्णन में बहुत सी समानता परिलक्षित होती है। गाथाओं में से भी बहुत सी बुद्ध भगवान् से पहले की थीं, और बहुत सी बुद्ध भगवान् के द्वारा स्वयं भी रची गई थीं।

ये जातक बौद्ध ग्रन्थों के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। यह बात इनको बौद्धधर्म के नव अङ्गों की तथा बारह धर्म प्रवचनों की सूची में सम्मिलित करने से सिद्ध होती है। अङ्गों की सूची में इनका सातवां तथा धर्म प्रवचनों में नौवाँ क्रम है।

**जातकों का उद्‌गमः**—जातकों के उद्‌गम के बारे में यह है कि सद्धर्म पुण्डरीक से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध अपने असंख्य श्रोताओं की योग्यता तथा ग्राह्य शक्ति को देखकर उपदेश देते थे। इनमें वे मनोरंजक और सुहावनी कहानियां भी साथ में कहते थे, जो कि उपदेशात्मक भी होती थीं और जिनको सुनकर भक्त लोग अपने मनोरंजन के साथ-साथ धर्म लाभ करके अपने लोक और परलोक दोनों में सुखी जीवन प्राप्त करते थे[1]। उसी ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि बुद्ध भगवान् सुत्तों से भी उपदेश देते थे तथा गाथाओं से भी, इसी प्रकार पौराणिक कथाओं से भी तथा जातकों से भी[2]। उपदेश देते समय बुद्ध भगवान् सम्भवतः लोक

१. सद्धर्म पुण्डरीक (एस०बी०ई०), अध्याय २१, पृ० १२०।

२. वही, पृ० ४४।

लोककथाओं को भी प्रयुक्त करते थे तथा कल्पित कथाओं को भी प्रयोग में लाते थे। यही परिपाटी उनके विद्वान् शिष्य थेरों ने भी अपनाई। बोधि प्राप्त करने से पूर्व की बुद्ध भगवान् की इस जन्म की तथा पहले अनेक जन्मों की अवस्था बोधिसत्व अवस्था कहलाती है। पूर्व जन्मों में वे कभी श्रेष्ठी, कभी राजा, कभी देव, कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी उच्च कुलीन तथा कभी नीच कुल में पैदा होने वाले होते थे। इन असंख्यात् जन्मों में उन्होंने पारमिताओं के अभ्यास द्वारा मानवीय उच्च गुण प्राप्त किये। किसी जन्म में दया, किसी में परोपकारार्थ अपने शरीर का बलिदान, किसी में अध्यवसाय तथा किसी में धैर्य, सन्तोष, बुद्धिमत्ता, आदि गुण प्रदर्शित किये। उन बोधिसत्वावस्था के गुणों के उपदेश देते समय वे कथाओं में गाथा जोड़ कर उन गुणों को प्रगट करते थे और वह गाथारूप कथाभाग जातककथा कहलाईं। इनमें उन्होंने प्रचलित लोक कथाओं को तथा पौराणिक कथाओं को भी जातक रूप में परिणत किया। एक ओर तो उनके द्वारा इन लोक कथाओं को तथा पौराणिक कथाओं को साधारण रूप में भी बिना बोधिसत्व के निर्देश के सुत्तों में उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिये चुल्लवग्ग का 'तित्तिर जातक'[1] तथा महावग्ग का 'दीघतीकोसलजातक'[2] दिये जा सकते हैं। दूसरी ओर कुल वास्तविक जातक कथाओं को भी सुत्तों में वर्णन किया गया है उदाहरण के लिये दीघनिकाय के 'कूटदन्त सुत्त' तथा 'महासुदस्सन सुत्त' का उल्लेख किया जा सकता है।

जातकों में भारतीय प्राचीन साहित्य तथा इतिहास के अभिलेख तो सुरक्षित हैं ही, साथ में ये बोद्धमत के इतिहास के दृष्टिकोण से भी बहुत ही ऊंचे महत्व के हैं। इनसे लोकप्रिय बौद्ध मत का भीतरी ज्ञान होता है। जातकों की सारी प्रणाली बौद्धों के महत्वपूर्ण कर्म सिद्धान्त के ऊपर आधारित है। इसका धार्मिक आदर्श निर्वाण प्राप्त करने वाला सीधा अर्हत्पद नहीं है, किन्तु बोधिसत्व अवस्था है, जिसमें बोधिसत्व ने अपने अनेक जन्मों में पारमिताओं के अभ्यास द्वारा अनेक मानवीय तथा

१. चुल्लवग्ग, अध्याय ६, भाग ३, पृ० ३७।
२. महावग्ग, अध्याय १०, भाग २-३, पृ० ३७१।

दिव्य गुण प्राप्त करके अपने को बुद्ध होने के योग्य बनाया था। बोधिसत्व अवस्था में वे चाहे जितनी ऊंची नीची योनियों में उत्पन्न हुए, किन्तु प्रत्येक जातक अथवा जन्म में उन्होंने दूसरों की सहायता की, दयालुता दिखाई तथा अलौकिक बुद्धिमत्ता, धैर्य, अध्यवसाय और बलिदान के उच्चतम आदर्श उपस्थित किये। सिविजातक ( जातक संख्या ४९९ ) में उन्होंने अपनी आँखें दान में दीं तथा वेस्सन्तरजातक ( जातक संख्या ५४७ ) में उन्होंने एक दुष्ट ब्राह्मण को अपने बच्चे तक दान में दे डाले। इस प्रकार ये जातक धार्मिकता के मानक पाठ हैं। इनसे यह भली भांति समझा जा सकता है कि पारमिता का सिद्धान्त, जो कि यद्यपि जातकों की गाथाओं में नाम रूप से प्रगट नहीं किया गया, किन्तु 'बुद्धवंस', 'चरियपिटक' तथा 'जातकट्ठकथा' में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हैं और जो महायानी बौद्ध सम्प्रदाय में अत्यन्त महत्व का माना गया है, जातकों में किस प्रकार गुप्त रूप में छिपा हुआ है। जातकों का महत्व तथा लोकप्रियता इसी से ज्ञात होती है कि ये जातक बौद्धमत के सारे सम्प्रदायों में समान रूप से मान्य हैं। जितने ये महायानियों में महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, उतने ही ये हीनयानियों, सहजयानियों तथा वज्रयानियों में भी। ये बौद्ध मत के प्रचार के मुख्य साधन हैं और बौद्ध मत की सर्वप्रियता के साक्षी हैं।[1]

प्रो० रायस् डेविड्स अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट इण्डिया' में कहते हैं कि "हमारा आधुनिक जातक ग्रन्थ केवल एक आंशिक अभिलेख है, इसमें वे सारी जातक कथायें नहीं हैं, जो बौद्ध सम्प्रदाय में जातक साहित्य की प्राथमिक अवस्था में प्रचलित थीं। मेरा सुझाव है कि दस प्राचीनतर जातकों के चरित्र अपने प्राग्बौद्धकालीन आकार में जातकों के प्राग्बौद्ध साहित्यिक रूप का पता देते हैं। विशेषकर उनमें से कोई भी बौद्ध साहित्यिक नहीं है। वे शायद न्यूनाधिक रूप में परिवर्तित और संशोधित किये जाकर बौद्ध मत के अनुरूप बना लिये गये हैं। इनमें महासुदस्सन जातक, जो कि बहुत ही इस रूप में है, मुख्य रूप से सूर्य पूजा की

१. डा० विण्टरनिज्— एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग ७, पृ० ४९४।

पौराणिक कथा है और शेष पूर्व-बौद्धकालीन भारतीय लोक कथायें हैं। उनमें कोई भी बौद्धमतीय विशेषता नहीं है। उनमें जो धार्मिकता है वह भी सामान्य रूप से भारतीय है। उनके प्राचीनतम आकार में जो बौद्धमतीय बात है, वह केवल उनका इस अभिप्राय की पूर्ति के लिये चुनाव किया जाना है। उस समय और भी लोक कथा साहित्य था, किन्तु वह अन्धविश्वासों से पूर्ण था, इस लिये छोड़ दिया गया था। इन जातक कथाओं में धार्मिकता भी बहुत ही साधारण रूप की है। यह बच्चों के लिये दूध के समान हैं। यह बात यशस्वी महाराज सुदस्सन की कथा से प्रगट है। यह कथा अपनी पश्चात्कालीन जातककथा के रूप में सर्व सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता के ऊपर बल देती है और यह संसार की अनित्यता का उपदेश प्राचीनकाल का भारतीय उपदेश है। यही कथा सुत्तन्त के आकार में ध्यानों के ऊपर बल देती है जो कि प्राग्बौद्धकालीन है। यह कथा ब्रह्मविचार के ऊपर भी जोर देती है, जो कि निश्चय पूर्वक स्पष्ट रूप से बौद्धमतीय है और बहुत ही गम्भीर और कठिन है।"

डा० मललसेकर भी अपनी पुस्तक 'दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन' में डा० विण्टरनिज़ के कलकत्ता रिव्यू के लेख का सहारा लेकर उपर्युक्त विषय पर प्रकाश डालते हैं। अनेक धार्मिक और गुणी राजाओं की तथा पवित्र साधुओं और विशिष्ट पुरुषों की कहानी कहना भारत की प्राचीन प्रथा है। ऐसी कथाओं के सुनने से लोगों का विश्वास था कि पाप और दुःख दूर होते थे तथा पुण्य लाभ और सुख प्राप्त होता था। 'एतरेय ब्राह्मण' में कहा गया है कि 'पुत्र कामना करने वालों को शुनःशेप की कथा सुननी चाहिये। इससे उनकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। अच्छी-अच्छी नैतिक और धार्मिक शिक्षाओं के देने के लिये भी कहानी कहना, यह भारतीय लोगों के स्वभाव की एक विशेष प्रवृत्ति रही है। इस लिये परम्पराओं से हमें ज्ञात होता है कि जब कभी अवसर आता, बुद्ध भगवान् का भी यह स्वभाव था कि वे अपने सारे लम्बे उपदेशक जीवन में अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं की व्याख्या करने और उनकी आलोचना करने के लिये, अपने पूर्वभव की उसी प्रकार की कथा कहा करते थे।

---

१. प्रो० रायस् डेविड्स—'बुद्धिस्ट इण्डिया'।

पूर्वजन्मों का अनुभव उनको हमेशा याद रहता था और वे इस अनुभव को किसी नैतिक शिक्षा के उपदेश देने और कहानी को रोचक बनाने के लिये उपयोग में लाते थे। इस प्रकारकी कथाओं का उनके शिष्यों ने संग्रह किया और बाद में जातक ग्रन्थ तैयार किया, जिसके ऊपर भारत में और फिर श्रीलंका में अट्ठकथा लिखी गई।[1]

यह शास्त्रीय तथ्य है कि बुद्ध भगवान् भी उपदेश के लिये जातकों का उपयोग करते थे। उनमें से कुछ जातक कथायें निकायों में भी आती हैं, जैसे— 'तित्तिर जातक' 'चुल्लवग्ग' में तथा 'महासुदस्सन जातक' 'दीघनिकाय' में। चरियपिटक तो वास्तव में जातक ग्रन्थ ही है, जिसमें कि भगवान् बुद्ध के उन पूर्वजन्मों का वर्णन पद्य में दिया गया है, जो उन्होंने बोधि प्राप्ति के लिये अत्यावश्यक पारमिताओं की प्राप्ति के लिये धारण किये थे। इसी तरह 'खुद्दकनिकाय' का 'अपदान' भी पद्यमय जातक ग्रन्थ ही है, जिसमें कि अर्हतों के जीवन में घटित होने वाली घटनायें पद्य में वर्णन की गई हैं। ये 'अपदान' की कथायें जातक की प्रारम्भिक कथाओं से मिलती जुलती हैं। इसी प्रकार 'बुद्धवंस' भी जातक ग्रन्थ ही है, जिसमें भगवान् बुद्ध की उस सम्पूर्ण बोधिसत्वावस्था का वर्णन है, जिसमें कि उनको चौबीस पूर्वबुद्धों के हाथ विवरणा ( बुद्ध होने की घोषणा ) मिली थी।

आजकल भी श्रीलंका में तो जातक इतने लोकप्रिय हैं कि लोग घरों में, गोष्ठियों में, और खेतों में बड़े चाव से जातक की कहानियाँ कहते हैं तथा सुनते हैं। यहाँ पर पाठकों के ज्ञान के लिये कुछ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध जातक कथाओं का संक्षिप्त सार दे देना असंगत नहीं होगा :—

चुल्लकसेट्ठी जातक ( भाग १ ) में वर्णन है कि एक युवक को एक मरी हुई चुहिया मिली और उसने उसे बेचकर पैसा प्राप्त किया, जिससे उसने व्यापार किया और वह धनवान बन गया।

देवधम्म जातक ( भाग १ ) से ज्ञात होता है कि लोगों का विश्वास था कि यक्ष मनुष्यों को पकड़ लेते थे और खा जाते थे।

मक्खदेव जातक ( भाग १ ) में वर्णन आता है कि एक राजा ने

---

१. डा० मललसेकर—दी पाली लिटरेचर आँफ सीलोन।

अपने सिर में एक सफेद बाल देखकर गृहस्थ जीवन छोड़ दिया और भिक्खु बन गया।

निग्रोधमिग जातक ( भाग १ ) में दिखाया गया है कि एक हरिण ने किस प्रकार न केवल अपने, किन्तु सारे प्राणियों के प्राणों की रक्षा की थी।

मतकभत्त जातक ( भाग १ ) में वर्णन है कि एक ब्राह्मण पितरों को पिण्डदान देने के लिये एक बकरे की बलि देना चाहता था। उस बकरे ने अपनी बलि चढ़ाये जाने से पहले बड़ी खुशी और बड़े रंज के चिन्ह दिखाये। पूछने पर दोनों बातों का कारण स्पष्ट किया।

आयचित-भत्त जातक ( भाग १ ) में दिखाया गया है कि सच्ची मुक्ति यज्ञ में पशुओं के बलिदान से नहीं होती।

नलपान जातक (भाग १) में कहा गया है कि एक तालाब में एक यक्ष रहता था, जो पानी पीने आने वाले पशुओं को पकड़ लेता था। बोधिसत्व ने बुद्धिमानी से यह जान लिया और उन्होंने दूर से ही नली से पानी पिया।

कुलावक जातक ( भाग १ ) में वर्णन है कि किस प्रकार अपने किसी विशेष पुण्य कार्य से एक ब्राह्मण स्वर्ग में पहुँचा और उसकी तीन पत्नियाँ भी अपने-अपने पुण्य कार्यों के फलस्वरूप स्वर्ग में पैदा हुईं।

सकुन जातक ( भाग १ ) में दिखाया गया है कि किस प्रकार एक वृक्ष में आग लगने पर बुद्धिमान पक्षी उड़ गये और मूर्ख पक्षी मोहवश उसी पर बैठे रहे और आग में जल मरे।

खदिरंगार जातक ( भाग १ ) में लिखा है कि एक कोषाध्यक्ष ने, मार के अनेक प्रयत्नों द्वारा रोके जाने पर भी, एक पच्चेक बुद्ध को भोजन दिया।

दुम्मेध जातक ( भाग १ ) में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार पशु यज्ञ करने वाले एक राजा ने पशुओं को यज्ञ में बलि देना बन्द कर दिया।

सुरापान जातक ( भाग १ ) में सन्यासियों के सुरापन करने के प्रभाव का वर्णन है।

कटाहं जातक (भाग १) में वर्णन है कि किस प्रकार एक दास ने

छल के द्वारा अपने स्वामी के नाम पर एक धनपति की पुत्री से विवाह कर लिया और उसके स्वामी ने इसका उससे कोई बदला नहीं लिया, अपितु उस दास की पत्नी को उपदेश दिया कि वह अपने पति के अभिमान की प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न करे।

एकपण्ण जातक (भाग १) में वर्णन है कि किस प्रकार एक विषैले पौधे की उपमा देकर एक राजकुमार का सुधार किया गया।

वलाहस्स जातक ( भाग २ ) में वर्णन है कि टूटे हुए जहाज के मल्लाह लोग एक उड़ने वाले घोड़े की सहायता से यक्षों के चंगुल से बचकर निकल आये।

महापिंगल जातक ( भाग २ ) में वर्णन है कि किसी दुष्ट तथा निर्दय प्रजापीड़क राजा की मृत्यु पर, जहाँ सब लोग हर्षित हो रहे थे, वहाँ एक नौकर इस डर से दुखी था कि कहीं यमराज भी उसकी निर्दयता से डरकर उसे फिर वापिस मध्य लोक में न भेज दे, क्योंकि राजा जब उसे देखता था तभी उसे मुक्कों से मारा करता था।

जरुद्पान जातक ( भाग २ ) में वर्णन है कि कुछ लोगों को जमीन खोदते हुए खजाना मिला, किन्तु लालचवश अधिक जमीन खोदने पर वह खजाना लुप्त हो गया।

खुरप्प जातक ( भाग २ ) में कहा गया है कि एक शूरवीर और साहसी पुरुष ने महाजनों की डाकुओं के समूह से रक्षा की थी।

एकराज जातक ( भाग ३ ) में वर्णन है कि बनारस के एक धार्मिक राजा को उसके शत्रु राजा ने कैद कर लिया और उसे बहुत कष्ट दिये, किन्तु उस राजा ने अपने धैर्य और सहनशीलता से उस अत्याचारी राजा पर विजय पायी और फिर उस शत्रु राजा ने अपने किये हुए पर बहुत पश्चात्ताप किया।

चुल्लधम्मपाल जातक ( भाग ३ ) में कहा गया है कि किसी राजा ने अपनी पत्नी के साथ यह ईर्ष्या होने से कि वह अपने पुत्र को उससे अधिक प्रेम करती थी, अपने पुत्र को मार डाला, और इस पाप के फल-स्वरूप वह नरक में डाल दिया गया।

चम्मसाटक जातक ( भाग ३ ) में किसी मूर्ख सन्यासी ने किसी मेंढ़े के आक्रमण करते समय उसके सिर झुकाने को समझा कि मेंढ़ा उसे

नमस्कार कर रहा था। किन्तु अपनी मूर्खता के कारण वह उसी मेंढ़े द्वारा मार डाला गया।

खन्तिवादि जातक ( भाग ३ ) में एक निर्दयी राजा ने किसी भिक्खु के साथ निर्दयता का व्यवहार किया और भिक्खु ने उसके दुष्ट व्यवहार को सन्तोष और धैर्य के साथ सहन कर लिया। राजा अपने इस दुष्ट व्यवहार के कारण नरक में गया।

कण्ह जातक ( भाग ४ ) में इन्द्र ने किसी साधु को उससे प्रसन्न होकर वर दिये। साधु ने वर माँगने में बुद्धिमत्ता से काम लिया।

दसरथ जातक ( भाग ४ ) में दो राजकुमार अपनी बहन के साथ वन में चले गये थे। जब उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बारे में सुना तो बड़े राजकुमार ने अपनी खड़ाऊं, सिंहासन पर अपना अधिकार करने के लिये भेज दी, किन्तु जब उनको अ ा र्णय की गलती मालूम हुई तो वे दुखी हुए।

नडिनिका जातक ( भाग ५ ) में वर्णन है कि शक्र ने किसी सन्यासी से ईर्ष्या के कारण उस देश के राजा के पास जाकर कहा कि देश में सूखा का कारण वह सन्यासी है, इस लिये सन्यासी की तपस्या भंग करने के लिये राजा को सलाह दी, कि वह अपनी पुत्री को उसके पास भेजे। राजकुमारी के जाल में सन्यासी फंस गया। सन्यासी का पिता कहीं दूर गया हुआ था। जब वह लौट कर आया तो उसने अपने पुत्र सन्यासी को स्त्रियों के मायाजाल के विषय पर उपदेश देकर सावधान किया।

महासुतसोम जातक ( भाग ५ ) में कहा गया है कि एक राजा को नरमांस भक्षण करने का चस्का लग गया और वह अपनी प्रजा के लोगों को मरवा कर खाने लगा। जब लोगों को यह मालूम हुआ तो उन्होंने उसको जंगल में खदेड़ दिया। एक दिन उस राजा ने अपने एक मित्र राजा को पकड़ लिया, जो कि उसका गुरू भी था। राजा ने उसको इस शर्त पर छोड़ दिया कि वह अपना वायदा पूरा करके फिर वापिस आ जावेगा। राजा के वापिस आजाने पर उस राक्षस राजा ने प्रसन्न होकर राजा को चार वर दिये। राजा की प्रार्थना पर उसने नरमांस भक्षण छोड़ दिया।

महानारदकस्सप जातक ( भाग ६ ) में किसी राजा ने किसी

सन्यासी से धार्मिक कर्त्तव्यों के बारे में पूछा। वह राजा तो स्वयं सांसारिक भोगों में लिप्त हो गया, किन्तु उसकी पुत्री धर्मात्मा बन गई। उसने अपने पिता का नास्तिकता से उद्धार करने का प्रयत्न किया। अन्त में बुद्ध भगवान ने उसे अपने धर्म में दीक्षित कर लिया।

विदुरपण्डित जातक (भाग ७) में चार राजा, जिनमें शक्र भी था, आपस में लड़ने लगे कि उनमें कौन सबसे अधिक धर्मात्मा था। इसके निर्णय के लिये वे किसी बुद्धिमान पुरुष के पास गये। उसने उन चारों को समान बताया। नागराज की पत्नी ने उस बुद्धिमान पुरुष के हृदय को खाने की इच्छा की। नागराज ने एक यक्ष को उसे मारने के लिये भेजा, किन्तु उस बुद्धिमान पुरुष ने अपनी बुद्धि से उस यक्ष को प्रसन्न कर लिया।

जातकट्ठकथा वण्णना में महाब्रह्मा और सक्क (शक्र) को बुद्ध भगवान् का भक्त और पापिमा मार को उनका विरोधी कहा गया है।[1] इसी में वणन है कि भगवान् बुद्ध की बोधिप्राप्ति के दिन बहुत सबेरे सेनानी की पत्नी सुजाता ने वृक्ष देवता को चढ़ाने के लिये खीर पकाई। यह जानकर कि यह खीर बुद्ध भगवान को दी जावेगी और यह उनका बोधिप्राप्ति के पूर्व बोधिसत्वावस्था का अन्तिम भोजन होगा, इसलिये सारे बड़े-बड़े देवों ने सुजाता की रसोई में इकट्ठे होकर उसे खीर पकाने में सहायता दी। 'चत्तारो महाराजानो' ने चूल्हे के ऊपर पहरा दिया। महाब्रह्मा ने इसके ऊपर छत्र धारण किया। शक्र ने लगतार ईंधन डाल कर आग का जलाये रखा। जब बोधिसत्व बोधि प्राप्ति के पूर्व बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे थे तो बड़े-बड़े देव जिनमें कि महाब्रह्मा और शक्र भी सम्मिलित थे, उनकी स्तुति करने आये। उसी समय भयानक 'मार' अपने डरावने परिकर के साथ वहाँ आया। बोधिसत्व अविचलित रहे, किन्तु वे बड़े-बड़े देव उसको देखते ही डर के मारे इधर-उधर भाग गये। शक्र अपने शंख विजयुत्तर को पीठ पर लटका कर भागा और ब्रह्माण्ड के छोर तक नहीं रुका। महाब्रह्मा अपने श्वेत छत्र को छोड़कर भाग गया।[2]

---

१. जातकट्ठकथा (फॉसवोल संस्करण), भाग १, पृ० ६८।
२. वही, पृ० ७२।

बौद्धोंमें ब्रह्मा सबसे बड़े देव माने गये हैं। ये पवित्र और ब्रह्मचर्यका जीवन व्यतीत करते हैं और इन्द्रिय विषयों से परे रहते हैं। ये बुद्ध भगवान के भक्त होते हैं और बोधि से पहले और बाद में उनके पास जाते हैं। बुद्ध भनवान् के जन्म समय में महाब्रह्मा ने सुवर्ण जाल में उनको लिया था।[१] जब जन्मते ही बुद्ध भगवान ने 'सत्तपदविहार' किया ( सात पग चले थे ) और विश्व के ऊपर अपनी महत्ता की घोषणा की तो महाब्रह्मा ने उनके ऊपर छत्र धारण किया था।[२] और जब बुद्ध भगवान ने संसार को त्यागा था तो महाब्रह्मा घातीकार ने उनको सन्यासी के योग्य आठ वस्तुऐं लाकर दी थीं।[३] बौद्ध धर्म में ब्रह्मा कितने ही हैं। जातकट्ठकथा के अनुसार ब्रह्मा संहपति ने बोधिप्राप्ति के पश्चात् सबसे पहले उनको उपदेश देने के लिये प्रार्थना की थी।[४]

अभयत्थेर जातक में 'मार' के बारे में उल्लेख है कि उसने सन्यासियों को नष्ट करने के लिये षड्यन्त्र रचा था।[५] जातकट्ठकथा में उल्लेख है कि इन्द्र के परिवार में पंचसिख, विस्सकम्म तथा माली के अतिरिक्त उसकी आसा, सद्धा, सिरि और हिरि, ये चार पुत्रियाँ भी हैं।[६] इन्द्र के चत्तारो महाराजानो (लोकपालों) में से वेस्सवण ( वैश्रवण ) के बारे में जातकट्ठकथा में उल्लेख है कि एक वेस्सवण के मर जानेपर इन्द्र ने दूसरा वेस्सवण नियुक्त किया था।[७]

जातकट्ठकथा में उल्लेख है कि 'चत्तारो महाराजानो' ने बुद्ध भगवान् की माता की, बुद्ध भगवान् के माता के गर्भ में आने से लेकर जन्म तक रक्षा की थी।[८] वहीं पर उल्लेख है कि बोधि के पश्चात्

---

१. जातकट्ठकथा (फाँसवोल संस्करण), भाग १, पृ० ५२।
२. ,, ,, ,, ,, पृ० ५३।
३. ,, ,, ,, ,, पृ० ६५।
४. ,, ,, ,, ,, पृ० ८१।
५. ,, ,, ,, भाग २, पृ० ३६४।
६. ,, ,, ,, भाग ५, पृ० ३६२।
७. ,, ,, ,, भाग १, पृ० ३२८।
८. ,, ,, ,, ,, पृ ५१।

उन्होंने चार मिट्टी के पात्र बुद्ध भगवान् को दिये, जो कि आश्चर्य के साथ मिलकर एक बन गये ।[1]

जातकट्ठकथा में यम को वैसायी कहा गया है ।[2] यह यमराज मनुष्यों को उनके कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक में भेजता है । उनके पुण्यकर्मों को स्मरण कराकर नरक से बचाने और स्वर्ग की प्राप्ति कराने में भी यह सहायता करता है । इसमें वर्णन है कि जब 'मार' के सारे प्रयत्न बुद्ध भगवान को विचलित करने के व्यर्थ हो गये तो वह अपने परिकर के साथ बुद्ध भगवान् के साथ अपने प्रसिद्ध 'मारयुद्ध' के लिये सन्नद्ध होकर आया था ।[3] उसने बुद्ध भगवान् को अनेक प्रलोभनों से विचलित करना चाहा । जब वे विचलित नहीं हुए तो उनको अनेक प्रकार के भय प्रदर्शन के द्वारा बोधिमार्ग से डिगाना चाहा । किन्तु बुद्ध भगवान अविचलित ही रहे और इस प्रकार उन्होंने मार के सारे प्रयत्न विफल कर दिये । जातकट्ठकथा में नरक के लिये यमसदन नाम आया है ।[4] ★

---

१. जातकट्ठकथा (फॉसबोल संस्करण), भाग १, पृ० ८० ।
२. ,, ,, ,, भाग २, पृ० १८ ।
३. ,, ,, ,, भाग १, पृ० ७१ ।
४. ,, ,, ,, भाग ५, पृ० ३०४ ।

## ६. धम्मपदट्ठकथा वण्णना

धम्मपदट्ठकथा सुत्तपिटक के पांचवे खुद्दकनिकाय के 'धम्मपद' ग्रंथ के ऊपर अट्ठकथा है। धम्मपद भी जातक ग्रन्थ के समान मूलरूप में चारसौ तेईस गाथाओं का समूहरूप ग्रन्थ है। ये गाथाऐं दस से बीस तक के वर्गों में विषयानुसार अथवा उपमाओं के अनुसार बंटी हुई हैं। जिस प्रकार भागवद्गीता वैष्णवों में मान्य है, उसी प्रकार यह ग्रन्थ बौद्धों में मान्य है। उपसम्पदा वाले इसे कण्ठस्थ याद करते हैं। यह ग्रन्थ नैतिक शिक्षाओं के कारण योरोप में भी बौद्ध ग्रन्थों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। प्रो० एस० सी० हरमन ने इस सम्पूर्ण ग्रंथ को इसके अट्ठकथा भाग सहित पाली टैक्स्ट सोसाइटी के लिये सम्पादित किया है। श्री ई० डब्लू० बुर्लिङ्गम ने 'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' के नाम से इसका तीन भागों में अंग्रेजी में अनुवाद किया है। श्री सी० डूरोइसेल्ली ने रंगून की पत्रिका 'बुद्धिज्म' में इसका अंग्रेजी में अनुवाद निकलवाया है। इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

जातकट्ठकथा के समान धम्मपदट्ठकथा में भी गाथाओं की व्याख्या, पच्चुप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, वेय्याकरण तथा अनुसंधि अथवा समोधान दी हुई हैं। प्रत्येक गाथा अथवा गाथा-समूह के पहले यह लिखा हुआ है, कि भगवान् ने यह 'धम्मदेसना' ( गाथा और उसकी कथा का धर्मोपदेश ) अमुक समय, अमुक व्यक्ति के सम्बन्ध में अथवा अमुक घटना के प्रकरण में दी थी। इसके पश्चात् कथा प्रारम्भ होती है, और उसका अन्त गाथा अथवा गाथाओं के साथ होता है, जिनकी व्याख्या शब्दशः हो जाती है। ये सब गाथा, कथा इत्यादि बुद्ध भगवान के मुख से निकलती हैं। उपसंहार में यह भी कहा जाता है, कि इस धम्मदेसना के श्रवण करने के पश्चात् बहुतों ने अथवा सैकड़ों ने अथवा हजारों ने धर्म लाभ किया, धर्म में स्थिति प्राप्त की अथवा धर्म की ऊंची अवस्था प्राप्त की। कभी-कभी इसमें अतीतवत्थु, पच्चुप्पन्नवत्थु से पहले भी आ जाती है, तथा बहुधा एक से

---

१. रंगन की पत्रिका 'बुद्धिज्म' भाग २, पृ० १६०५ से १६०८।

अधिक कथाऐं अतीतवत्थु के रूप में आ जाती हैं। श्री बुर्लिङ्गम ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' की भूमिका में कहा है, कि "वैदिक अथवा संस्कृत टीकाओं में कथा के उल्लेख का प्रयोजन, शब्दों और मूलपाठकी व्यख्या करना तथा उसके अर्थ को कथा के द्वारा उदाहरण देकर स्पष्ट करना होता है, और कथाभाग गौण होता है, किन्तु बौद्ध अट्ठकथाओं में मामला बिल्कुल उलटा है। धम्मपदट्ठकथा में भी व्याख्या का महत्त्व गौण हो गया है और पृष्ठभूमि में डाल दिया गया है। यह भी अन्य कथात्मक अट्ठकथाओं के समान नाम और आकार मात्र में अट्ठकथा है, अन्यथा वास्तव में तो यह पौराणिक कथाओं तथा लोककथाओं का बृहदाकार संग्रह है।

प्रस्तावनाओं की गाथाओं के अनुसार धम्मपदट्ठकथा भी आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं के समान अपनी पूर्ववर्ती मूलभूत सिंहली अट्ठकथा का पाली भाषा में अनुवाद है, जिसमें आचार्य बुद्धघोष द्वारा अपनी कुछ टिप्पणी जोड़ दी गई हैं। यह अट्ठकथा थेर कुमारकस्सप की प्रार्थना पर लिखी गई थी। उनकी अन्य अट्ठकथाओं के समान यह भी महाविहार की परम्पराओं के ऊपर आधारित है।

इस अट्ठकथा में अधिकतर कथाऐं निकायों से, विनयपिटक से, उदानों से, अन्य अट्ठकथाओं से तथा जातकट्ठकथा से ली हुई मालूम पड़ती हैं। इसकी पचास से अधिक कथाऐं या तो शब्दशः जातक की कथा हैं, या जातक कथाओं से बिलकुल मिलती जुलती हैं। इसकी कितनी ही मुख्य कथाऐं जातक की पच्चुप्पन्नवत्थु में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी जातक की गाथाऐं इसमें उद्धृत । यह अन्य अट्ठकथाओं की अपेक्षा भाषा एवं शैली में जातकट्ठकथा से अधिक मिलती है। इसलिये यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यह जातकट्ठकथा से पश्चात्कालीन है। यह बात इस अट्ठकथा के उपसंहार में दी हुई एक गाथा से भी सिद्ध होती है, जिसमें कि स्पष्ट रूप से जातकट्ठकथा को निर्देश किया गया है। यह अट्ठकथा 'धम्मपद', 'सुत्तनिपात' तथा 'खुद्दकपाठ' की सम्मिलित अट्ठकथा 'परमत्थजोतिका' से पूर्व रची गई थी, क्योंकि 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथा में एक और स्वतन्त्र धम्मपदट्ठकथा का कितनी ही ार उल्लेख आया है, जो कि यहीं धम्मपट्ठकथा हो सकती है।

यद्यपि इस अट्ठकथा के अन्त में परिचयात्मक उपसंहार में स्पष्ट रूप से आचार्य बुद्धघोष को इस अट्ठकथा का रचयिता कहा गया है, गंधवंस में भी आचार्य बुद्धघोष की रची हुई अट्ठकथाओं की सूची में धम्मपदट्ठकथा का स्पष्ट उल्लेख है, तथा महावंस में भी कहा गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने सारी सिंहली अट्ठकथाओं का पाली में अनुवाद किया;[1] फिर भी योरोपियन विद्वान् आचार्य बुद्धघोष को इस ग्रन्थ का रचयिता नहीं मानते। श्री बी० सी० ला उनसे सहमत हैं।

श्री बुर्लिङ्गम कहते हैं कि सारी धम्मपदट्ठकथा में केवल यही उपसंहार के वाक्य की साक्षी है, अन्यत्र कोई साक्षी नहीं पाई जाती, कि आचार्य बुद्धघोष इसके रचयिता हैं और यह अंश भी क्षेपकांश मालूम पड़ता है। वे कहते हैं कि समान भाषा, शैली तथा वर्णनीय विषय के दृष्टिकोण से जातकट्ठकथा और धम्मपदट्ठकथा दोनों के एक ही रचयिता होने चाहियें। वे प्रो० रायस् डेविड्स से इस बात में सहमत होते हैं कि महावंस के कथन का तात्पर्यार्थ यह नहीं निकलता कि आचार्य बुद्धघोष ने सारी सिंहली अट्ठकथाओं का पाली में अनुवाद किया था।

प्रो० रायस् डेविड्स की राय में आचार्य बुद्धघोष ने 'समन्तपासादिका', 'विसुद्धिमग्ग' तथा चार निकायों की अट्ठकथाओं से पहले जातकट्ठकथा नहीं लिखी, नहीं तो निकायों की अट्ठकथाओं की प्रस्तावना में इसका नामोल्लेख अवश्य होता। और इन ग्रंथों के पश्चात् भी आचार्य बुद्धघोष ने जातकट्ठकथा नहीं लिखी, यदि ऐसा होता तो इसमें उन ग्रंथों का नाम निर्देश अवश्य होता। दूसरे, जातकट्ठकथा की प्रस्तावना में न तो उन्होंने अपने भारतीय तथा सिंहली गुरुओं का ही उल्लेख किया है और न अपने बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का, और न अपनी भारत से श्रीलंका की यात्रा का तथा अपने पूर्व ग्रन्थों का।" इससे वे तात्पर्य निकालते हैं कि आचार्य बुद्धघोष जातकट्ठकथा के रचयिता नहीं हैं और इसीलिये वे धम्मपदट्ठकथा के भी कर्त्ता नहीं हो सकते।[2]

श्री फॉसबोल गंधवंस के कथन का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि

---

१. महावंस, अध्याय ३७, भाग २।

२. श्री ई० डब्लू० बुर्लिङ्गम—'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' की भूमिका।

आचार्य बुद्धघोष विसुद्धिमग्ग, समन्तपासादिका तथा चार निकायों की अट्ठकथाओं के तो निर्विवाद रचयिता हैं, किन्तु यह विश्वास करना कठिन है कि उन्होंने उतने ही बड़े-बड़े छः ग्रन्थ और लिखे और वे भी उन्हीं तीन वर्षों के अन्दर जबकि वे श्रीलंका में रहे थे और जब कि उनको केवल अनुवादक ही नहीं बतलाया जाता, अपितु स्वतन्त्र लेखक बतलाया जाता है।"

श्री बुलिङ्गम उपर्युक्त दोनों विद्वानों का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "प्रो० रायस् डेविड्स् तथा श्री फॉसबोल की युक्तियां विश्वसनीय हैं, और धम्मपद के विषय में तो दोनों ग्रन्थों की आपस में एक दूसरे की आधीन या समान प्रकृति होने से और भी अधिक उनकी युक्तियां लागू होती हैं, किन्तु सबसे बलवती युक्ति यह है कि आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ विसुद्धिमग्ग और अन्य निर्विवाद अट्ठकथाओं की तथा जातकट्ठकथा और धम्मपदट्ठकथा की भाषा और शैली में इतनी भिन्नता है, कि यह बिल्कुल सम्भव नहीं हो सकता कि आचार्य बुद्धघोष इन दोनों में से किसी के रचयिता हों। इन युक्तियों का इकट्ठा बल तो अपरिहार्य है।"[1]

इसके साथ ही साथ कुछ विद्वान, जिनमें कि श्री बी० सी० ला भी हैं, कहते हैं कि ये दोनों अट्ठकथाएं प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की नहीं, अपितु उन्हीं के नामराशी दूसरे बुद्धघोष की हैं, जिनको कि चुल्लबुद्धघोष कहते हैं। आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं और जातक तथा धम्मपद की अट्ठकथाओं की शैली की असमानता से वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दोनों का रचयिता एक नहीं होना चाहिये।

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं के समान धम्मपदट्ठकथा के परिचयात्मक उपसंहार में भी, 'विपुल विसुद्धबुद्धिना बुद्धघोसोति गुरूहि गहितनामधेयेन कतायं धम्मपदट्ठ-कथावण्णना'—यह वाक्य दिया हुआ है। अर्थात् भारी और विशुद्ध बुद्धि वाले बुद्धघोष ने यह ग्रन्थ धम्मपदट्ठकथा वण्णना लिखा है। यद्यपि यह वाक्य आचार्य बुद्धघोष का लिखा हुआ मालूम नहीं पड़ता, फिर भी, चूंकि यह उनकी अन्य प्रसिद्ध अट्ठकथाओं और विसुद्धिमग्ग के भी उपसंहार में

---

१. श्री ई० डब्लू० बुलिङ्गम—'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' भूमिका।

लिखा हुआ मिलता है, इसलिये विश्वसनीय है, क्योंकि किसी जानकार लेखक के द्वारा ही यह वाक्य जोड़ा गया होगा। साथ में डा० बी० सी० ला का कथन है, कि "धम्मपदट्ठकथा के रचयिता विन्ध्यप्रदेश, आन्ध्र और चोलदेश से अच्छी तरह परिचित थे। निश्चय ही श्रीलङ्का के चुल्लबुद्धघोष उपर्युक्त प्रदेशों का इस तरह के परिचय के साथ वर्णन नहीं कर सकते, वह वर्णन तो किसी ऐसे भारतीय का ही हो सकता है जो उन प्रदेशों में रह चुका हो, और यह बात हमको आचार्य बुद्धघोष में ही मिलती हैं, क्योंकि श्रीलंका जाते समय उनकी यात्रा का मार्ग यही था, जहाँ कि उन्होंने स्थान-स्थान पर विहारों में ठहर-ठहर कर यात्रा की थी।

डा० मललसेकर अपनी पुस्तक 'दी पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन' में एक सिंहली ग्रन्थ 'पूजावलिय'[1] का उल्लेख करके कहते हैं कि उस ग्रन्थ में यह लिखा है कि "आचार्य बुद्धघोष ने यह ग्रन्थ राजा सिरिनिवास और उसके मन्त्री महानिगम को प्रार्थना पर लिखा था।" यह राजा सिरिनिवास अवश्यमेव राजा महानाम है। और समन्तपासादिका में कहा गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने यह ग्रन्थ (समन्तपासादिका) महानिगम मन्त्री के द्वारा बनवाये हुए ग्रन्थागार परिवेण में रहते हुए लिखा और यह कि वे किसी समय स्वयं राजा के द्वारा बनवाये हुए प्रासाद में रहे थे; यह प्रासाद उसी महाविहार का एक भाग था, जिसमें कि आचार्य बुद्धघोष सिंहली अट्ठकथाओं को पढ़नेके लिये आये थे। धम्मपदट्ठकथा के अन्तमें भी इस आशय का यह पद लिखा हुआ है:—

विहारे अधिराजेन कारितम्हिं कतञ्ञुना
पासादेसिरिकुड्डस्स रञ्ञो विहरता मया॥

अर्थात् 'महाराज के द्वारा बनवाये हुए विहार में सिरिकुड्ड राजा के प्रासाद में रहते हुए मैंने'। यहाँ डा० मललसेकर कहते हैं कि सिरिकुड्ड स्पष्ट तौर से राजा सिरिनिवास महानाम का ही दूसरा नाम है (क्योंकि कुड्ड का अर्थ निवास होता है)[2]।

---

१. 'पूजावलिय' (कोलम्बो संस्करण १८९७), पृ० १६।

२. श्री डी० बी० विजयतिलक—सिखावलंदि,
(कोलम्बो संस्करण, १९२३), भूमिका, पृ० ७।

इस प्रकार इससे यह भी सिद्ध हो गया कि आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका भी उसी विहार के प्रासादमें लिखीथी; जिसमें कि उन्होंने धम्मपदट्ठकथा लिखी और साथ में यह भी सिद्ध हो गया कि ये दोनों ग्रन्थ उन्होंने राजा सिरिनिवास महानाम के समय में लिखे। इसके साथ-साथ गन्धवंस और महावंस की साक्षी भी अविश्वसनीय नहीं, क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों के कथन का आधार अवश्य ही महाविहार की परम्परा रही होगी, जोकि सम्भव है, वहां लिखित रूप में विद्यमान हो।

आचार्य बुद्धघोष के 'धम्मपदट्ठकथा' तथा 'जातकट्ठकथा' के रचयिता होने में मुख्य बाधक युक्ति उनकी अन्य असंदिग्ध अट्ठकथाओं की तथा इन दोनों ग्रन्थों की भाषा और शैली की विभिन्नता समझी जाती है। यदि हम 'धम्मपदट्ठकथा' की शैली और भाषा का मिलान करें तो यह 'मज्झिमनिकाय' की अट्ठकथा पपंचसूदनी की अपेक्षा जातकट्ठकथा से अधिक सादृश्य रखेगी। 'धम्मपदट्ठकथा' किसी एक संकलक अथवा सम्पादक की कृति प्रतीत होती है, जिसने धम्मपदके उपदेशों और कथाओं को, उसमें अपनी कल्पित कथाओं को न जोड़ कर, किन्तु पहले से ही विद्यमान लोक कथाओं को साहित्यिक पाली भाषा में व्यवस्थित करके संकलित और सम्पादित किया और यह व्यवस्थित करने की शैली 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथा की शैली से भी भिन्न थी। किन्तु यह शैली की विभिन्नता सम्भवतः अट्ठकथाओं के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के वर्णनीय विषयों की विभिन्नता के कारण है।

श्री० बी० सी० ला अपनी पुस्तक 'बुद्धघोष' में इस बात को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "सुत्तनिकायके चार निकायों के ग्रन्थ गद्य-पद्यमय होने के कारण, केवल गाथाओं में ही लिखे गये ग्रन्थ 'धम्मपद' से भिन्न हैं, क्योंकि उसमें गद्यभाग बिल्कुल नहीं है, जबकि निकायों के ग्रन्थों में गद्यभाग स्वयं मूलग्रन्थों का ही भाग है। इस कारण धम्मपद को निकायग्रन्थों की बराबरी में लाने की आवश्यकता हुई।" इसी कारण इसमें गद्यभाग बादमें ऊपरसे मिलाया गया जोकि स्वाभाविक तौरसे अपनी भिन्न शैली के कारण, भाषा और शैली में भिन्न बन गया। आचार्य बुद्धघोष की 'धम्मपदट्कथा' उस 'धम्मपद' की सिंहली अट्ठकथा के संस्करण का अनुवाद है, जो कि पाली गद्य-पद्यमय धम्मपद के ऊपर आधारित था,

जबकि उनकी अन्य निकायों को अट्ठकथाऐं सीधे निकायों के ऊपर लिखी गई सिंहली संस्करणों की अट्ठकथाओं के अनुवाद हैं, इसी कारण मूलग्रन्थों की भाषा और शैली ने आचार्य बुद्धघोष की निकायों की और खुद्दक निकाय के धम्मपदादि पद्यमय ग्रन्थों की अट्ठकथाओं की शैली और भाषा में अन्तर डाल दिया।

बौद्ध ग्रन्थों के कैटेलॉग (ग्रन्थ सूची) की भूमिका में श्री हुघ् नेविल अपने निम्नस्थ विचार प्रगट करते हैं—"सिंहली धम्मपदट्ठकथा उन तीन बड़ी अट्ठकथाओं (महाअट्ठकथा, महापच्चरी अट्ठकथा तथा कुरुन्दी अट्ठकथा) में सम्मिलित नहीं थी, जिनका कि आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलंका में आकर अध्ययन किया था। यह कथाओंका एक ऐसा संग्रह था, जिसको कि आड़ु• विहार की सभा ने स्वीकार कर लिया था, किन्तु या तो तब तक इसको निकाय ग्रन्थों के समान आदर प्राप्त नहीं था, या फिर अन्य प्रतिस्पर्द्धी सम्प्रदायों के द्वारा इसको बिना किसी विरोध के निकाय ग्रंथों की सूची में स्वीकार कर लिया गया था, इसी कारण इसके लिखे जाने की आवश्यकता नहीं हुई थी। आचार्य बुद्धघोष के समय तक इसने पर्याप्त अधिकार प्राप्त कर लिया था और इसीलिये उन्होंने अपनी इच्छानुसार इसको व्यवस्थित करके इसका सिंहली से पाली में अनुवाद किया।" श्री नेविल और आगे कहते हैं कि "यह बिल्कुल सम्भव है कि इन कथाओं का मूल निकास भारत में अथवा अन्यत्र कहीं हुआ हो और ये थेर महिन्द के सम्प्रदाय में सम्मिलित न हों; यही कारण इसकी भिन्न वर्णन शैली का भी हो सकता है। निकायों की और धम्मपद की अट्ठकथाओं में जहां एक ही कथा में भिन्न-भिन्न पाठान्तर दिये गये हैं वहाँ उत्तरदायित्व आचार्य बुद्धघोष का नहीं है, किन्तु उन भिन्न-भिन्न पाठों का है जहाँ से कि उन्होंने अपनी भिन्न-भिन्न अट्ठकथाओं के लिये विषय प्राप्त किये हैं। यही बात कुछ जातककथाओं के बारे में भी लागू होती है, जिनका कि निकायों की अट्ठकथाओं में जातकट्ठकथा से प्रारम्भ भिन्न प्रकार का[2] है। धम्मपद की कथाओं के भी भिन्न-भिन्न

---

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष' पृ० ८१।

२. ऐसे उदाहरणोंके लिये देखें—श्री हार्डी का निबन्ध, जाँर्नल आँफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८९८, पृ० ७४१-७४४।

पाठ थे, यह बात इस ग्रन्थ को धम्मपद के चीनी संस्करण के साथ मिलान करके दिखायी गयी है।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो गया कि धम्मपदट्ठकथा के रचयिता आचार्य बुद्धघोष ही हैं और योरोपियन विद्वानों का यह विचार, कि इसके रचयिता चुल्लबुद्धघोष हैं, बिल्कुल ठीक नहीं है।

श्री बुर्लिङ्गम महोदय धम्मपदट्ठकथा की 'नरककुण्ड'[2] कथा की अन्तःसाक्षी देकर इस ग्रन्थ का रचना समय ४५० ई० पश्चात् निश्चित करते हैं। इस कथा में यह वाक्य आता है कि 'यद्यपि वे चार दुष्ट प्राणी, कौशल देश के राजा पसेनदि ने जब से उन आवाजों को सुना है तभी से नरक कुण्ड में डूब रहे हैं, किन्तु अब भी (अज्जापि) एक सहस्र वर्ष भी व्यतीत नहीं हो पाए।' वे कहते हैं कि "राजा पसेनदि सम्राट् अजातशत्रु के समकालीन थे, जिनका लगभग समय ५०० ई० पूर्व है। इसलिए ऊपर के 'अज्जापि' (अद्यापि=आज भी) शब्द का निर्देश बताता है कि यह अट्ठकथा ४५० और ५०० ई० पश्चात् के बीच में लिखी गई होगी। 'अज्जापि' शब्द से ज्ञात होता है कि इस अट्ठकथा के लिखते समय एक सहस्र वर्ष व्यतीत नहीं हुए थे, किन्तु इसके लगभग होगये थे। इसलिये ५०० ई० पूर्व से ४५० ई० पश्चात् तक ९५० वर्ष होगये, यह ठीक बैठता है।"

उपर्युक्त कथन के बारे में यह कहना है कि यह अनुमान ठीक नहीं बैठता। पहले तो यह ध्यान देने की बात है कि यह कथा आचार्य बुद्धघोष की लिखी हुई नहीं है, उन्होंने तो अनुवाद मात्र किया है। जिसने भी यह कथा लिखी होगी या तो वह भारत का अथवा श्रीलंका का कम से कम पहली दूसरी शताब्दी ई० पश्चात् से पूर्व का होगा और उसी ने भारतीय पाली अथवा सिंहली में अज्जापि का कोई पर्यायवाची शब्द दिया होगा, जिसका कि पाली में आचार्य बुद्धघोष ने अज्जापि' पाली शब्द दिया है। समन्तपासादिका की आचार्यों की सूची में 'यावं अज्जतना' शब्द के समान

---

१. श्री नोरमेन—धम्मपदअट्ठकथा भाग २, पृ० १५-१६।

२. बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स (श्री ई० डब्लू० बुर्लिङ्गम कृत धम्मपदट्ठकथा का अंग्रेजी अनुवाद), भाग ५, कथा १।

यह 'अज्जापि' शब्द भी सिंहली लेखक के समय की ओर संकेत करता है, न कि आचार्य बुद्धघोष के समय की ओर। दूसरी बात यह भी है कि निश्चित अन्त:साक्षियाँ इसके रचनाकाल को राजा सिरिनिवास महानाम के समय से संबद्ध करती हैं जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। इसलिये कथा के 'अज्जापि' शब्द से इसके रचना के समय का अनुमान नहीं हो सकता। जो विद्वान् आचार्य बुद्धघोष को इस अट्ठकथा का लेखक नहीं मानते, वे भी कहते हैं कि यह रचना उनके समकालीन अथवा निकट पश्चात्कालीन किसी दूसरे बुद्धघोष की है। इससे भी इसका रचनाकाल ४५० ई० पश्चात् तक नहीं पहुँच सकता। साथ में यह भी ध्यान देने की बात है कि आचार्य बुद्धघोष की 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथा में इसका उल्लेख है। इससे भी यह ४३० ई० पश्चात् के पहले लिखी जा चुकी होगी। यदि 'अज्जापि' शब्द वर्त्तमान पाली लेखक को भी संकेत करता हो, तो भी यह आचार्य बुद्धघोष के समय को संकेत कर सकता है। क्योंकि उसमें लिखा है कि 'एक सहस्र वर्ष व्यतीत नहीं हो पाये'। इससे 'नौसौ पच्चीस या नौसौ तीस वर्ष व्यतीत हुए हैं',ऐसा भी अर्थ लिया जा सकता है और यही समय आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का उचित रचनाकाल समझा गया है।

धम्मपदट्ठकथा का विषय स्पष्ट रूप से बिल्कुल बौद्धमतीय है, जबकि जातकों में सांसारिक बातों का भी वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य, जिसको कथाऐं जतलाना चाहती हैं, कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन है। विषय धार्मिक होने के कारण इसमें विनय, निकायों, पेतवत्थु, विमानवत्थु आदि के अनेक उद्धरण मिलते हैं। कथा की पर्यालोचना करने से ज्ञात होता है कि इसमें बड़ी-बड़ी कथाओं के साथ छोटी-छोटी और बढ़ाई हुई पौराणिक कथाऐं हैं, जिनमें से कुछ तो गाथाओं के उदाहरण स्वरूप आविष्कृत की गई हैं, अतएव अरूचिपूर्ण तथा उकता देने वाली हो गई है, और कुछ बहुत ही रोचक कथाऐं हैं, जिनमें बहुत सी लोक-प्रिय साहित्य से ली गई लोककथाऐं तथा देवकथाऐं भी हैं। इसमें मोग्गलान की मृत्यु की कथा अभिप्राय-गर्भित है, क्योंकि धम्मपदट्ठकथा की बहुत सी कथाओं के समान, इसमें निर्ग्रन्थ साधुओं के प्रति विरोध भाव दिखाया गया है। विसाखा की कथा में भी निर्ग्रन्थ साधुओं के प्रति विरोध

प्रदर्शित किया गया है, यद्यपि इस कथा की नैतिक शिक्षा इतना ही दिखाना चाहती है कि इस धनवती श्राविका ने पूर्वजन्म में तत्कालीन किसी बुद्ध का आदर सत्कार किया था और इसी कारण वह इस जन्म में धनवती और भाग्यशालिनी हुई, और इस जन्म में भी वह संघ को दान देने में अपने धन को खर्च करके पुण्य संचय कर रही है'।

इसकी कुछ कथाऐं त्रिपिटक की कथाओं ही रूपान्तर हैं। गोधिक अर्हत् की कथा, जिसमें कि वह निर्वाण प्राप्त करने के लिये अपना गला काट लेता है और इस पर 'मार' व्यर्थ ही उसको खोजने का प्रयत्न करता है, थोड़े ही अन्तर से 'संयुत्तनिकाय' में मिलती है। जातकों की बहुत सी कथाओं के समान, इस अट्ठकथा की कथाओं में भी, हास्यरस के दर्शन होते हैं। इसका उदाहरण धृष्ट गर्दभ है। इस अट्ठकथा की बहुत सी कथाऐं आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की कथाओं के बिल्कुल समानान्तर हैं। इसी प्रकार जातकट्ठकथा की पचास कथाऐं तथा इसकी कथाऐं समान हैं; किसी में शब्दशः समानता है, तो औरों में जातककथा का केवल रूपान्तर है। उदाहरणतः—इसमें देवदत्त, बोधिराजकुमार, छन्ना आदि की कथाऐं 'विनयपिटक' से, तथा महाकस्सप सामावती, विसाखा, सोणा, केतिकण्ण, सुन्दरी, नन्दा, सुप्पवासा आदि की कथाऐं 'उदानों' से ली गई हैं। इसमें जातकों से मिलने वाली कथाऐं-देवधम्म, कुलावक, तेलपट्ट, सालिट्टक, बब्बु, गोधा, चुल्लपलोभन, अननुसोचिय, केसवसालिय, कुस, धात, इत्यादि की हैं। इसके अतिरिक्त इसकी कुछ कथाऐं 'थेरीगाथा' और 'अंगुत्तरनिकाय' की अट्ठकथाओं की कथाओं से मिलती हैं। उदाहरण के लिये—कुण्डलकेसी पटिचारा, नन्दा, खेमा, धम्मदिण्णा आदि। श्री बुर्लिङ्गम ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' में बताया है कि धम्मपदट्ठकथा की सत्तरह कथाऐं 'संयुत्तनिकाय' में हैं, जिनमें से पन्द्रह तो जैसी की तैसी मिलती हैं।[1] इसी प्रकार मट्ठकुण्डली, सुमन, एकसाटक ब्राह्मण, पेसकार धीता, सिरिमा आदि कथाऐं 'मिलिन्दपञ्हो' में मिलती हैं।[2] इसमें कुछ कथाऐं 'दिव्यावदान' तथा 'कण्डजुर' से मिलती हैं।[3]

१. श्री ई० डब्लू० बुर्लिङ्गम—बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स, भाग १, पृ० ४५-४६।
२. ,, ,, ,, ,, ,, पृ० ६०-६२।
३. ,, ,, ,, ,, ,, पृ० ६३-६४।

आचार्य बुद्धघोष अथवा सिंहली मूल लेखक सच्ची ऐतिहासिक कथाओं में कल्पित कथाओं को मिला देने में तनिक भी संकोच नहीं करते, जैसे कि उन्होंने कोसाम्बी के राजा परन्तप की कथा में किया है। इस अट्ठकथा में भास कवि के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' की नायिका वासवदत्ता के नायक राजा उदयन के साथ भाग जाने की कथा का वर्णन भी ठीक उसी तरह किया है, जैसा कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में है। इसमें यह भी बताया है कि राजा उदयन के मागन्दिया नाम की एक पहली रानी भी थी, जो कि ब्राह्मण कन्या थी।[1] अनाथ पिण्डक ने चौवन करोड़ काहापण (कार्षापण) खर्च करके जैतवन विहार बनाकर बुद्ध भगवान को अर्पित किया था।[2]

इस ग्रन्थ के बरमी संस्करण में उल्लेख है कि अनाथ पिण्डक के कुटुम्ब की एक कन्या राजा सातवाहन की राजधानी में गई थी और उसने वहाँ एक भिक्खु को दान दिया। एक बड़े थेर ने इस बात की सूचना राजा को दी और राजा ने उस कन्या को अपनी पटरानी बना लिया।[3]

बुद्धघोष धम्मपद की अट्ठकथा में काठ के बनाये हुए एक गरुड़ पक्षी का वर्णन करते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य आकाश में उड़ा करते थे और जिसके ऊपर एक साथ तीन या चार मनुष्य बैठ सकते थे।[4] इसमें एक हत्थिलिंग पक्षी का भी वर्णन है जिसमें पांच हाथियों का बल था और जो पीछे चले हुए रास्ते की ओर देखता जाता था।[5] इसमें आचार्य बुद्धघोष जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर के श्रीलंका में जाने का उल्लेख करते हैं।[6] जहां कि अनुमानतः बुद्धघोष की अट्ठकथाऐं लिखी गई थीं। प्रो० हार्डी लिखते हैं कि धम्मपदअट्ठकथा की घोषक श्रेष्ठी की कथा 'अंगुत्तरनिकाय' की

---

१. श्री ई०डब्लू०बुर्लिङ्गम—बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स, उदेनवत्थु, पृ० १६१।
२. ,, ,, ,, ,, भाग १, पृ० ४-५।
३. श्री बी०सी०ला—हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर, भाग २, पृ ४५२।
४. धम्मपदट्ठकथा, भाग ३, पृ० १३४।
५. ,, भाग १, पृ० २।
६. ,, भाग ४, पृ० ७४।

मनोरथपूरणी अट्ठकथा से भिन्न है।[1] यहाँ और प्रत्येक जगह जहाँ कहीं भी भिन्नता दृष्टिगोचर हो, यह समझ लेना चाहिए कि आ० बुद्धघोष अट्ठकथाओं के स्वतन्त्र मौलिक लेखक नहीं हैं। उन्होंने तो अधिकतर भिन्न-भिन्न सिंहली अट्ठकथाओं का, जैसी और जहाँ मिली, मागधी में भाषान्तर किया है। कभी महाअट्ठकथा से, कभी महापच्चरी से और कभी कुरुन्दी अट्ठकथा से। इसलिये भिन्न-भिन्न लेखकों की अट्ठकथाओं का अनुसरण करने के कारण, भिन्न-भिन्न अट्ठकथाओं में कथाओं की भी भिन्नता हो गई है। इस भिन्नता के लिये आचार्य बुद्धघोष उत्तरदायी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि इन भिन्न-भिन्न प्राचीन अट्ठकथाओं में से एक-एक अट्ठकथा में अनेक-अनेक बौद्ध भिक्खु लेखकों और विद्वानों की सामूहिक रचना है, और वे लोग अपने-अपने समय में, अपने-अपने मत के अनुसार भगवान् के वचनों की सङ्गति, भगवान् के समय से लेकर आचार्य बुद्धघोष के समय पर्यन्त, लगाते रहे थे।

धम्मपदट्ठकथा में ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं स्थानों का उल्लेख निम्न प्रकार है :—

प्रसिद्ध राजा—बिम्बसार, अजातसत्तु ( अजातशत्रु ), पसेनदि (प्रसेनजित), उदेन (उदयन) इत्यादि।

अन्यधर्मावलम्बी साधु—अचेलक, निग्गण्ठ ( निग्रंथ ) आजीवक, जटिल, मिच्छादिट्ठिक ( मिथ्या दृष्टिक ) आदि। इनमें पहले तीन जैन सम्प्रदाय के साधु हैं।

सरोवर—अनोतत्त, ह्रदका।

मुख्य नगर—तक्कसिला (तक्षशिला), कपिलवत्थु (कपिलवस्तु), कुरुरट्ठ ( कुरुराष्ट्र ), कोसम्बि ( कौशाम्बी ), कोसल (कौशल), वाराणसी, सोरेय्य, मगध, राजगह ( राजगृह ), सावत्थी ( श्रावस्ती ), वेसाली ( वैशाली ) इत्यादि।

पर्वत—हिमवन्त ( हिमालय ), सिनेरू ( सुमेरु ), गन्धमादन, गिज्झकूट (गृद्धकूट) इत्यादि।

---

१. जॉर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, सन् १८९६, पृ० ७४१–७६४।

प्रधान बौद्ध महिलाऐं—महापजापति गोतमी, खेमा, यसोधरा, सुमना देवी, मयादेवी, मल्लिका, पटाचारा, सुजाता, राहुल माता, वासुल दत्ता, विसाखा, सुप्पवासा, दिन्ना, किसा गोतमी, रूपनन्दा इत्यादि ।

स्वर्ग—तावतिंस (त्रायस्त्रिंश), तुसित (तुषित) आदि ।

वन—वेलुवन, महावन, जेतवन आदि ।

तालाब—मंगल, पोक्खरणी आदि ।

नदियाँ—गंगा, रोहिणी इत्यादि ।

प्रसिद्ध वैद्य—जीवक (कोमारभच्च) ।

प्राचीन जातियाँ—लिच्छवि, मल्ल इत्यादि ।

प्रसिद्ध पुरुष—सिद्धत्थ ( सिद्धार्थ ), सारिपुत्त, महिन्द, राहुल, आनन्द, वेस्सवन ( वैश्रवण ), सोणकुटिकण्णो, मोग्गलान (मौद्गलायन) तथा मेण्डुक आदि ।

धम्मपदट्ठकथा में उल्लेख है कि कोसाम्बी वासी तिस्स एक थेर थे, वे कोसाम्बी ( कौशाम्बी ) के किसी गहपति के पुत्र थे । उन्होंने भगवान् बुद्ध से दीक्षा ली थी । उन थेर के पालक ने अपने सप्तवर्षीय पुत्र को तिस्स को दिया । तिस्स ने लड़के को सामणेर बना लिया । और उस सामणेर बालक ने बाल कटते ही अर्हत्पद प्राप्त किया ।[1]

इस ग्रन्थ में बुद्धघोष ने राजा परन्तपकी एक पौराणिक कथा का उल्लेख किया है, जिसकी कुछ बातें स्कन्दपुराण की एक कथा से मिलती हैं । कथा इस प्रकार है[2]—कोसाम्बी में एक परन्तप नाम का राजा रहता था । एक दिन वह अपनी गर्भवती पत्नी के साथ धूप में बैठा था । पत्नी ने लाल कम्बल ओढ़ा हुआ था । उस समय पांच हाथियों के बल वाला एक हत्थिलिंग नाम का पक्षी आकाश से आया और लाल कम्बल से ढकी हुई रानी को मांसपिण्ड ( लोथड़ा ) समझ कर अपने पंजों में पकड़ कर आकाश में ले गया । रानी ने सोचा कि इसके द्वारा खाये जाने से पहले वह रोवे ताकि पक्षी उसको छोड़ दे । इस पक्षी की आदत थी कि यह चलते

१. धम्मपदट्ठकथा भाग २, पृ० १८२–१८५ ।
२. स्कन्दपुराण अध्याय ५, ब्रह्मखण्ड ।

समय अपने पीछे के रास्ते को देखा करता था। रानी रोई और पक्षी ने उसे एक निग्रोध वृक्ष पर छोड़ दिया। उस समय भारी वर्षा हुई, और रात भर होती रही। प्रातः जब सूर्य निकला, उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक साधु उधर आ निकला और उसने निग्रोध ( न्यग्रोध ) वृक्ष के ऊपर रानी को देखा। यह वृक्ष उसके आश्रम के पास ही था। जब रानी ने अपना परिचय दिया कि वह क्षत्राणी है तो उसने बच्चे को उतारा। रानी उसके आश्रम में आई और साधु उसके साथ उसके बच्चे को लेकर आया। रानी ने साधु को अपना पति बनने पर राजी कर लिया और वे दम्पति के रूप में रहने लगे। एक दिन साधु ने आकाश में नक्षत्रों की ओर देखा और मालूम किया कि राजा परन्तप का नक्षत्र बिगड़ गया है। उसने रानी को राजा परन्तप की मृत्यु की सूचना दी। रानी रोने लगी और साधु से कहा—'राजा परन्तप मेरा पति था और मैं उसकी रानी हूँ। यदि मेरा पुत्र वहाँ होता तो वह अब राजा होता।' साधु ने उसको विश्वास दिलाया कि वह उसके पुत्र को सिंहासन दिलाने में सहायता देगा। अन्त में उसका पुत्र राजा हुआ और उदयन नाम से प्रसिद्ध हुआ। नये राजा ने कौशाम्बी के कोषाध्यक्ष की कन्या सामावती का पाणिग्रहण किया। बुद्धघोष इसके ऊपर यह वर्णन करते हैं कि उदयन उज्जयिनी से वासवदत्ता को साथ लेकर भाग आये थे,[1] जैसा कि अपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में भास ने वर्णन किया है।

थेर महाकच्चान के जीवन के बारे में इस ग्रन्थ में वर्णन मिलता है कि जब वे अवन्ति में रह रहे थे तो बुद्ध भगवान् उस समय प्रसिद्ध उपासिका विसाखा मिगारमाता के महल में विहार कर रहे थे। यद्यपि बुद्ध भगवान् और थेर महाकच्चान के बीच में इतनी दूरी थी, फिर भी जब कभी भगवान् का उपदेश होता था तो थेर महाकच्चान वहां उपस्थित हो जाते थे और इसी कारण भिक्खु लोग उनके लिये एक आसन सुरक्षित रखते थे[2]। इसमें यह भी लिखा हुआ है कि जब थेर महाकच्चान अवन्ति देश के कुररघर शहर में रह रहे थे तो सोणकुटिकण्णो नाम का उपासक उनका धर्मोपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने थेर से दीक्षा देने

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० २०३।
२. „ भाग २, पृ० १७६–७७।

के लिये प्रार्थना की। थेर ने उसको दीक्षा दी[१]। एक बार बुद्ध भगवान् ने बनारस में सत्तसिरिसक वृक्ष के नीचे एरकपत्त नाम के एक नागराज को उपदेश दिया था कि मनुष्य जन्म बहुत दुलर्भ है[२]।

इस ग्रन्थ की कुछ कथाओं का संक्षेप नीचे दिया जाता है:—

एक व्यापारी गधे पर अपना सामान लाद कर व्यापार किया करता था। एक बार वह व्यापार करने के लिये तक्षशिला गया और वहाँ उसने अपने गधे की पीठ के ऊपर से सामान उतार कर उसे आराम करने को छोड़ दिया[३]।

एक बार बनारस का एक व्यापारी पाँचसौ गाड़ियों में लाल कपड़ा लादकर श्रावस्ती जा रहा था। रास्ते में वह एक पानी से भरी नदी को पार न कर सका, इसलिये अपना सामान बेचने के लिये उसे वहीं ठहरना पड़ा[४]।

बनारस में महाधन श्रेष्ठी नाम का एक महाजन था। उसके पिता ने उसको नृत्य और संगीत कला सिखायी थी। एक दूसरे धनवान् महाजन के एक पुत्री थी, उसने भी उसको नृत्य और संगीत कला सिखायी थी। दोनों का विवाह हो गया। महाधन श्रेष्ठी शराब पीने लगा और जुआ खेलने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसने अपनी और अपनी पत्नी की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी और इसके बाद वह भीख मांगने लगा[५]।

बनारस के एक राजा ने एक युवा ब्राह्मण को गुरु दक्षिणा में एक सहस्र काहापण भेंट देकर एक मन्त्र सीखा। राजा के सेनापति ने राजा के नाई को उसी मन्त्र से राजा को मारने के लिये फुसलाया। राजा ने उस मन्त्र से अपनी रक्षा करके अपने को बचाया[६]।

तक्षशिला के एक ब्राह्मण ने अपने सुमन नाम के पुत्र को एक ब्राह्मण

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ४, पृ० १०१।
२. ,, भाग ३, पृ० २३०।
३. ,, भाग १, पृ० १२३।
४. ,, भाग ३, पृ० ४२९।
५. ,, ,, ३, पृ० १२९।
६. ,, भाग ४, पृ० २५१।

गुरू के पास, जो कि उसका मित्र था, वैदिक मन्त्र सीखने के लिये भेजा और ब्राह्मण ने उसे अच्छी तरह वेद मन्त्र सिखाये[१]।

बनारस का एक युवक धनुर्विद्या सीखने के लिये तक्षशिला के एक प्रसिद्ध गुरू के पास गया और वहां धनुर्विद्या में पारंगत हो गया। गुरू ने अपनी लड़की के साथ उसका विवाह कर दिया[२]।

बनारस का एक राजा वेश बदल कर बाहर प्रजा में यह जानने के लिये गया कि कोई उसकी प्रजा का आदमी उसकी बुराई तो नहीं करता है। उसने बनारस के एक ब्राह्मण को एक सहस्र काहापण देकर उससे एक ऐसा मन्त्र सीखा जिससे कि वह दूसरे लोगों के हृदय के विचार जान सके[३]। अच्छा शासन होने पर भी उसके देश में अपराध होते थे।

बनारस में एक चक्खुपाल नाम का वैद्य था उसने एक स्त्री को दवा दी। स्त्री ने उसको झूंठ बोल कर धोखा दिया, इसलिए वैद्य ने क्रुद्ध होकर उसको ऐसी दवा दी, जिससे वह अन्धी हो गई[४]।

महाकोसल के पुत्र पसेनदि ने तक्षशिला में शिक्षा पायी थी। लिच्छवि राजकुमार महालि तथा कुसीनारा के मल्लराजकुमार उसके सहाध्यायी थे[५]। कौशल देश में पसेनदि राजा से पहले श्रेष्ठी लोग नहीं रहते थे। उसने मण्डाक श्रेष्ठी तथा धनञ्जय श्रेष्ठी से कौशल में आकर बसने के लिये आग्रह किया और वे आकर कौशल में बस गये[६]। कौशल का राजा पसेनदि किसी सुन्दर स्त्री पर मोहित हो गया और उसने उसके पति को मार कर उसे प्राप्त करना चाहा, किन्तु बुद्ध भगवान् के उपदेश से उसने यह विचार छोड़ दिया[७]।

एक बार कौशल के राजा पसेनदि के पास कुछ चोर पकड़ कर लाये गये। राजा ने उनको रस्सों और जंजीरों से बाँधे जाने का हुक्म दिया,

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ४४५।
२. ,, भाग ४, पृ० ६६।
३. ,, भाग १, पृ० २५१।
४. ,, ,, १, पृ० २०।
५. ,, ,, १, पृ० ३३७-३३८।
६. ,, ,, १, पृ० ३८४।
७. ,, भाग २, पृ० १।

और वे इस प्रकार बांध कर जेल में डाल दिये गये। भिक्खुओं ने भगवान् बुद्ध को यह घटना सुनाई और उनसे पूछा कि क्या इससे भी अधिक कठिन और कष्ट दायक कोई बन्धन हो सकता है? बुद्ध भगवान् ने उत्तर में कहा कि स्त्री, पुत्र और धन के मोह का बन्धन इससे भी अधिक कठिन और शक्तिशाली होता है[१]।

कौशल देश में एक नन्द नाम का धनवान् ग्वाला रहता था। वह समय-समय पर अनाथपिण्डक के घर पञ्चगव्य लेकर जाया करता था। उसने बुद्ध भगवान् को निमन्त्रण दिया और बुद्ध भगवान् ने उसे स्वीकार किया। उसने सात दिन तक बराबर इसी प्रकार दान दिया। सातवें दिन भगवान् ने दान और शील का उपदेश दिया। उसको सुनकर नन्द को प्रथम उपसम्पदा प्राप्त हुई[२]।

महासुवण्ण श्रावस्ती का एक महाजन था, उसके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र ने भगवान् बुद्ध से भिक्खु दीक्षा प्राप्त की और चक्खुपाल नाम से प्रसिद्ध हुआ[३]। मट्ठकुण्डलि श्रावस्ती के एक धनवान् लोभी ब्राह्मण का पुत्र था। बुद्ध भगवान् को प्रणाम करने मात्र से वह स्वर्गगामी हुआ[४]। थुल्ल तिस्स भगवान् बुद्ध के पिता की बहन ( बूआ ) का पुत्र था। वह श्रावस्ती में भिक्खु बन कर रहता था। बुद्ध भगवान् ने उसको शान्ति प्रदान की[५]। कालियक्खिनी नाम की एक यक्षिणी की श्रावस्ती की जनता पूजा किया करती थी। वह अवग्रह ( वृष्ट्यभाव ) तथा अतिवृष्टि की भविष्य वाणी कर सकती थी[६]।

श्रावस्ती के लोग बड़ी संख्या में भिक्खु और भिक्खुनी होते थे। उन्होंने अपने जीवन की पवित्रता के कारण संघ का नाम ऊँचा किया था और संघ की प्रसिद्धि और कीर्ति बढ़ायी थी। पटाचारा श्रावस्ती के एक धनवान् महाजन की पुत्री थी। बाद में भारी इष्ट-वियोगों के कारण वह

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ४, पृ० ५४-५५।
२. ,, भाग १, पृ० ३२२।
३. ,, ,, पृ० ३।
४. ,, ,, पृ० २५।
५. ,, ,, पृ० ३७ तथा आगे।
६. ,, ,, पृ० ४५ ,, ।

भिक्खुनी हो गई और पटिचारा नाम से प्रसिद्ध हुई[१]। किसागोतमी भी श्रावस्ती के एक श्रेष्ठी की कन्या थी। अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु के होने पर वह उसके मृत शरीर को लेकर बुद्ध भगवान् के पास गई और उनसे उसे जीवित करने की प्रार्थना की। बुद्ध भगवान् ने उसको धर्मोपदेश दिया और उसको सुनकर वह भी भिक्खुनी हो गई[२]।

अनित्थि गन्धकुमार ब्रह्मलोक से च्युत होकर श्रावस्ती के एक धनवान् घराने में पैदा हुआ। जब कभी उसे कोई स्त्री छू देती तो वह रो पड़ता था। बुद्ध भगवान् ने बाद में उसे अपने संघ में दीक्षित कर लिया[३]।

वक्कुलि श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ था। वह बुद्ध भगवान् के शरीर की सुन्दरता को देख कर भिक्खु बन गया[४]। श्रावस्ती के एक ब्राह्मण के नौकर ने भिक्खु दीक्षा ली और अन्त में वह अर्हत्पद को प्राप्त हुआ[५]।

नन्द महापजापती गोतमी का पुत्र था। बुद्ध भगवान् ने उसे श्रावस्ती में भिक्खु दीक्षा दी[६]।

धम्मपदट्ठकथा में बौद्ध धर्म के प्रति दीर्घकालीन निरन्तर चले आए विरुद्ध धर्मावलम्बी पाखण्डियों के वैमनस्य और वैरभाव का भी उल्लेख है। धर्मविरोधी पाखण्डियों ने कुछ लोगों को पैसा देकर बुद्ध भगवान् के अन्यतम प्रधान शिष्य मोग्गलान को पिटवाया था[७]। वे मगध के कुल्लबालगाम में रहा करते थे। पहले पहल वे बहुत आलसी थे, बाद में बुद्ध भगवान् के द्वारा प्रोत्साहन पाकर उन्होंने कठिन प्रयत्न किया और 'सावकपारमी' का पालन किया। सारिपुत्त ने, जो कि स्वयं मागध थे, यहीं पर 'पारमिता' प्राप्त की[८]।

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग २, पृ० २६० तथा आगे।
२. ,, ,, पृ० २७० ,,।
३. ,, भाग ३, पृ० २८१ ,,।
४. ,, भाग ४, पृ० ११८ ,,।
५. ,, ,, पृ० १६७ ,,।
६. ,, ,, पृ० १५ ,,।
७. ,, भाग ३, पृ० ६५ ,,।
८. ,, भाग १, पृ० ९६ ,,।

इस अट्ठकथा में हमको एक कल्पित कथा भी मिलती है कि मगध के राजा बिम्बिसार पौराणिक देश उत्तरकुरु के जोतिय के सुन्दर प्रासाद को देखने गये थे। उनके पुत्र अजातशत्रु भी उनके साथ थे और उन्होंने जोतिय के प्रासाद में भोजन किया था। जोतिय ने बिम्बिसार को एक अमूल्य मणि भेंट में दी थी, जिसके प्रकाश से सारा घर जगमगा जाता था[१]।

बौद्ध धर्म के विरोधी 'संसारमोचक' जाति के पाखण्डियों ने बुद्ध भगवान् के अन्यतम प्रधान शिष्य मोग्गलान के ऊपर आक्रमण करने के लिये कुछ आदमियों को पैसा देकर नियुक्त किया था[२]।

बुद्ध भगवान् के दो प्रमुख शिष्य राजगृह गये और वहाँ उनको संघ के लिये खूब दान मिला। उसमें से एक रेशमी पोशाक देवदत्त को दी गई थी[३]।

राजगृह के एक महाजन की कन्या को सोतापत्ति ( श्रोतापत्ति ) फल प्राप्त हुआ था[४]।

सिरिमा राजगृह की एक सुन्दर वेश्या थी। उसने बुद्ध भगवान् के समक्ष पुण्णक श्रेष्ठी की पुत्री उत्तरा से अपने अपराध की क्षमा याचना की थी। इसके बाद वह बुद्ध भगवान् की साधारण शिष्या ( श्राविका ) बन गई थी और उसने बुद्ध भगवान् और उनके संघ के लिये बहुत धन खर्च किया था[५]।

कुमारकस्सप की माता राजगृह के एक महाजन की पुत्री थी। जब वह बड़ी हुई तो उसने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। किन्तु माता-पिता ने मना कर दिया। जब वह अपने पति के घर गई तो उसने अपने पति को प्रसन्न करके उनसे दीक्षा लेने की अनुमति प्राप्त की[६]।

श्रावस्ती का रहने वाला एक ब्राह्मण 'गिज्झकूट का अर्हत्' नाम से

---

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | धम्मपदट्ठकथा | भाग ४, | पृ० २०६ तथा आगे। | |
| २. | ,, | भाग ३, | पृ० ६५८ | ,, । |
| ३. | ,, | भाग १, | पृ० ७७ | ,, । |
| ४. | ,, | भाग ३, | पृ० ३० | ,, । |
| ५. | ,, | ,, | पृ० १०४ | ,, । |
| ६. | ,, | ,, | पृ० १४४–४५ । | |

प्रसिद्ध था। वह बुद्ध भगवान् के शरीर सौन्दर्य को देखने का अभिमानी था। बुद्ध भगवान् ने उससे कहा—'मेरे शरीर के सौन्दर्य को देखने से कोई लाभ नहीं, मेरे धम्म को देखो, तभी तुम मुझे देख सकोगे[1]।'

कुण्डलकेसी के बारे में लिखा हुआ है कि वह राजगृह के किसी महाजन की कन्या थी और सोलह वर्ष तक कुमारी रही। इसी अवस्था में स्त्रियां शादी की इच्छा किया करती हैं[2]।

राजगृह के मघ नाम के एक गृहस्थ ने अपने मामा की सुजाता नाम की लड़की से विवाह किया था[3]।

आनन्द अपनी बुआ की लड़की उप्पलवण्णा के ऊपर मोहित हो गया और उससे विवाह करना चाहता था[4]।

असुरों के राजा वेपचित्ति ने अपनी लड़की को असुर राजकुमारों को देने से मना कर दिया और उनसे कहा कि मेरी लड़की स्वयं अपनी इच्छा से अपने पति को स्वयंवर में चुनेगी। उसने असुर राजकुमारों को इकट्ठा किया और अपनी लड़की को फूलों की एक माला देकर कहा—'इन राजकुमारों में से किसी एक को, जिसको तुम ठीक समझो, अपना पति चुन लो।' कन्या ने एक राजकुमार को चुन कर उसके गले में माला डाली[5]।

इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि एक धनवान् मनुष्य की कन्या विवाह के योग्य हुई, तो उसने उसको अपने सात मंजिल वाले महल की सबसे ऊपर की मंजिल में एक राजसी ठाठ वाले मकान में रखा और उसकी देख-रेख के लिये एक स्त्री सेविका ( दासी ) रखी। उस घर में कोई पुरुष सेवक नहीं रखा गया था[6]।

साधारण तौर से उच्च कुलों की लड़कियां घरों से बाहर नहीं निकलती थीं। वे रथ या और किसी सवारी में यात्रा करती थीं, जब कि

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ४, पृ० ११७-१८।
२. ,, भाग २, पृ० २७।
३. ,, भाग १, पृ० २६५।
४. ,, भाग २, पृ० ४९।
५. ,, भाग १, पृ० २७८।
६. ,, भाग २, पृ० २१७।

दूसरी साधारण कुलों की कन्याऐं साधारण गाड़ियों में अथवा अपने सिर के ऊपर ताड़पत्र लेकर चलती थीं, किन्तु जब ताड़पत्र नहीं मिलता था तो अपने अधोवस्त्र के किनारे को अपने कन्धों पर डाल लेती थीं[1]।

ऊपर के उदाहरणों से यह युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि विवाह से पहले और बाद में दूसरे कारणों के साथ, अपहरण से बचने और सतीत्व की रक्षा के लिए भी स्त्रियाँ परदा रखा करती थीं। किन्तु इसके अपवाद भी मिलते हैं। उदाहरण के लिये विसाखा अपने विवाह के बाद जब सावत्थी नगर में प्रवेश में करती है तो खुले रथ में अपने को सारे नगर के सामने दिखाती हुई चलती है, वह परदे के अन्दर नहीं जाती[2]। ऊँचे घरानों की लड़कियां प्रायः घर से बाहर नहीं निकलती थीं, किन्तु जब उत्सव या पर्व के दिन नदी में नहाने जाती थीं, तो अपने परिजनों के साथ पैदल जाती थीं और नदी में स्नान करती थीं[3]।

धम्मपद की अट्ठकथा की विसाखावत्थु में कन्या के पिताओं के द्वारा दहेज दिये जाने का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में वर्णन है कि श्रावस्ती के कोषाध्यक्ष मिगार ने अपनी लड़की विसाखा के विवाह के समय दहेज में पांच गाड़ियों में भरे हुए सोने के बर्तन, चांदी के बर्तन, तांबे के बर्तन, भिन्न-भिन्न प्रकार की रेशमी पोशाकें, घी से भरे बर्तन, हल, हलों के फल तथा अन्य कृषि के उपकरण दिये थे। साथ में साठ हजार हृष्ट-पुष्ट बैल, साठ हजार दूध देने वाली गायें तथा कुछ बछड़े भी दिये थे[4]।

इसी प्रकार वजिरा कौशल देश के राजा पसेनदि की कन्या थी। उसका विवाह मगध के राजकुमार अजातशत्रु के साथ हुआ था और उसको उसके स्नान और सुगन्धित अनुलेपन के खर्च के लिये राजा ने कासी गाम दिया था[5]। श्रावस्ती के कोषाध्यक्ष मिगार ने अपनी लड़की विसाखा के विवाह के समय पचास करोड़ रुपये का खजाना उसके सुगन्धित अनुलेपन तथा स्नान के खर्च के लिये दिया था[6]।

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग १, पृ० ३९१।
२. ,, भाग १, पृ० ३८४।
३. ,, भाग १, पृ० १९०-९१।
४. ,, भाग १, पृ० ३८४।
५. ,, भाग ३, पृ० २६०।
६. ,, भाग १, पृ० ३९८।

धम्मपदट्ठकथा में विवाहों के अवसर पर किसानोंसे भेंट (पुण्णकारं) वसूल करने का भी उल्लेख है। उसमें लिखा हुआ है कि धनंजय श्रेष्ठी की कन्या विसाखा के मिगार श्रेष्ठी के पुत्र के साथ विवाह के अवसर पर प्रत्येक प्रकार की सौ-सौ वस्तुऐं सौ गाँवों से भेंट स्वरूप इकट्ठी की गई थीं।[1] विवाह के पश्चात् लड़की को निम्नस्थ शिक्षाओं के साथ श्वसुर-गृह भेजा गया था :—

१- घर के भीतर की आग को बाहर मत ले जाना।
२- घर के बाहर की आग को घर के भीतर मत लाना।
३- उसी को दो जो तुमको देता है।
४- उसको मत दो जो तुम्हें नहीं देता है।
५- उन दोनों को दो जो देता है और नहीं देता है।
६- सुखपूर्वक बैठो।
७- सुखपूर्वक खाओ।
८- सुखपूर्वक सोओ।
९- अग्नि को सदा सावधानी के साथ रखो।
१०-गृह देवताओं का आदर करो।

इन दस शिक्षाओं का अर्थ निम्न प्रकार से लगाया जाता था[2]:—

(१) यदि सास अथवा अन्य कोई घर की स्त्री घर के अन्दर कोई गुप्त बात करे, तो उस बात को नौकरों अथवा दास-दासियों को न कहना चाहिए, क्योंकि ऐसी बातें इनके द्वारा इधर-उधर कह दी जाती हैं और व्यर्थ ही झगड़े का कारण बन जाती हैं।

(२) दास-दासियों अथवा नौकरों की बातों को घर के लोगों से नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसी बातें इधर-उधर फैलकर व्यर्थ ही झगड़ा खड़ा कर देती हैं।

(३) उसी को घर के उपकरणादि दो जो उनको वापिस करदे।

(४) उसको घर की चीजें नहीं देनी चाहिए जो लौटावे नहीं।

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग १, पृ० ३८४।
२. ,, ,, पृ० ४०३-४०४।

(५) अपने गरीब सम्बन्धियों की, जो तुमसे सहायता चाहते हैं, बिना इस बात का ख्याल किये कि ये लौटा सकेंगे, अथवा नहीं, सहायता करो।

(६) अपनी सास अथवा श्वसुर को देखकर खड़ी हो जाओ, बैठी मत रहो।

(७) स्त्री को अपने सास-श्वसुर तथा पति के भोजन करने से पहले स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए। उसे उनको पहले भोजन परोसना चाहिए तथा जब वे लोग, जो कुछ उनको चाहिए, ले चुकें तभी उसको भोजन करना चाहिए, कभी भी उससे पहले नहीं।

(८) स्त्री को अपने सास, श्वसुर और पति से पहले नहीं सोना चाहिए। उनके लिये उसके जो कर्त्तव्य हैं, उन्हें पूरा कर चुकने के बाद ही उसको सोना चाहिए।

(९) स्त्री को अपनी सास, श्वसुर और पति को अग्नि की ज्वाला अथवा नागदेव समझना चाहिये।

(१०) जब कोई भिक्खु अथवा साधु बहुत दिन तक सुदूर जंगल में रह कर आवे और उसको गृहपत्नी स्त्री देख ले तो ऐसे साधु को उसे जो कुछ रूखा-सूखा घर में हो, देना चाहिए और तब स्वयं भोजन करना चाहिये।

धम्मपदट्ठकथा में बहु-विवाह के बारे में यह उल्लेख है कि मगध के एक 'मघ' नाम के गहपति के एक साथ नन्दा, चित्ता, सुधम्मा और सुजाता नाम की चार पत्नियाँ थीं।[1] इसी प्रकार श्रावस्ती का एक गृहस्थ पहली स्त्री के बाँझ ( वन्ध्या ) होने के कारण दूसरी पत्नी लाया। जब यह गर्भवती हुई तो दूसरी बाँझ सपत्नी ने ईर्ष्या के कारण दवा देकर उसका गर्भपात करा दिया। तीन बार यह नृशंस और नीचतापूर्ण कार्य उसने किया और अन्तिम गर्भपात होने के समय दूसरी पत्नी मर गई। पति को जब यह मालूम हुआ तो वह इस अपराध के दण्ड से बच न पाई। उसने उसको स्त्रीघ्नी और कुलघ्नी घोषित करके पीट-पीट कर मार डाला।[2]

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग १, पृ० २६९।
२. ,, ,, पृ० ४५।

गृह कार्य करने के अतिरिक्त दासी का कार्य धान कूटना,[१] और बाजार का कार्य करके लाया भी था।[२] राजा उदयन की रानी सामावती के लिये उसकी खुज्जुत्तरा नाम की एक दासी प्रतिदिन आठ काहापण के फूल लाया करती थी। उसमें से वह चार काहापण चुरा कर रख लिया करती और चार के फूल लाया करती थी। एक दिन जब वह माली के घर गयी तो उसने बुद्ध भगवान का धर्मोपदेश सुना। उसने सोतापत्तिफल (श्रोतापत्तिफल) प्राप्त किया। तब से उसने चार काहापण चुराना बन्द कर दिया और आठों काहापणों के फूल लाने लगी। रानी ने उससे प्रश्न किया कि आठ काहापणों के वह इतने फूल कैसे लाई। दासी का धर्म में विश्वास दृढ़ हो गया था, उसने सब हाल कह दिया कि बुद्ध भगवान् के उपदेश सुनने के बाद उसको मालूम हुआ कि चोरी करना पाप है। रानी ने उससे भगवान् के धर्मोपदेश को जैसा उसने सुना था वैसा ही उसके सामने दुहराने को कहा। खुज्जुत्तरा ने रानी और उसकी पांचसौ सेविकाओं के समक्ष वह उपदेश सुनाया। रानी ने इस दासी को उसके चार कार्षापण प्रतिदिन चुराने के लिये तनिक भी बुरा भला नहीं कहा, प्रत्युत उसकी प्रशंसा की कि उसने उसको बुद्ध भगवान् का उपदेश सुनाया। तब से रानी और उसकी पांचसौ दासियों ने उस दासी को माता और गुरू के समान माना और उसको कहा कि वह प्रतिदिन बुद्ध भगवान् का उपदेश सुनने जाया करे और आकर उनको सुनाया करे। इस प्रकार कुछ समय के बाद वह दासी त्रिपिटक में निष्णात हो गई।[३]

सिरिमा प्रसिद्ध राजवैद्य जीवककी सबसे छोटी (कनिष्ठ) बहन थी। वह असाधारण रूपवती वेश्या थी और राजगृह में रहती थी। एक बार राजगृह के कोषाध्यक्ष के पुत्र सुमत की पत्नी और पुण्णक कोषाध्यक्ष की पुत्री श्राविका उत्तरा ने उसे एक पक्ष के लिये एक सहस्र कार्षापण प्रति रात्रि के किराये पर रखा था,[४] ताकि वह उसके पति की सेवा में रहे।

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ ३२१।
२. ,, भाग १, पृ० २०८।
३. ,, ,, पृ० २०८।
४. ,, भाग ३, पृ० ३०८–३०९।

एक दिन उसने उत्तरा को नाराज कर दिया, किन्तु उसने उसको मनाने के लिये उससे क्षमा याचना की। उत्तरा ने उसको कहा कि यदि बुद्ध भगवान उसे क्षमा कर देंगे तो वह अवश्य उसे क्षमा कर देगी। एक दिन भगवान अपने भिक्खु संघ के साथ उत्तरा के घर आये और जब वे भोजन कर चुके तो सिरिमा ने उनसे क्षमा मांगी। भगवान् ने धन्यवाद देकर धर्मोपदेश दिया। सिरिमा ने बड़े ध्यान पूर्वक उनका उपदेश सुना और धर्म का प्रथम मार्ग प्राप्त किया और तब से वह प्रतिदिन आठ भिक्खुओं को भोजन देने लगी।[1] उसकी मृत्यु के बाद उसका शव जलाया नहीं गया, किन्तु आभाक सुसासतम् शवगृह में रखा गया और उसके ऊपर पहरेदार नियुक्त कर दिया गया कि उसको कौवे और कुत्ते न खा जावें। राजा बिम्बसार ने बुद्ध भगवान् को उसकी मृत्यु की सूचना दी और भगवान ने राजा से प्रार्थना की कि उसके शव को जलाया न जावे, बल्कि उसको सुरक्षित रखा जावे, ताकि भिक्खु लोग उसके शरीर की अवस्था देखकर अशुभ भावना प्राप्त करें। भिक्खु लोगों ने इसको प्रतिदिन देखा और अनुभव किया कि सबसे सुन्दर शरीर की भी यह अवस्था होती है कि वह सड़ जाता है, कीड़ों द्वारा खाया जाता है और अन्त में बिना मांस की हड्डियाँ रह जाती हैं। नागरिकों को भी मजबूर किया गया कि वे भी सिरिमा के शरीर को देखें, क्योंकि यह राज-घोषणा थी कि जो उसको देखने से मना करेगा उसके ऊपर आठ कार्षापण अर्थदण्ड के होंगे। यह इस कारण किया गया था कि लोगों को शिक्षा मिले कि यह शरीर इतना परिवर्त्तनशील है और इसका सौन्दर्य केवल त्वचा तक ही सीमित है।[2]

दिन्ना बुद्ध भगवान की उपासिका थी। वह राजा उग्रसेन की रानी थी। एक बार एक राजा ने एक न्यग्रोध-वृक्ष के देवता से प्रतिज्ञा की थी कि यदि अपने पिताकी मृत्युके बाद उसको सिंहासन मिला तो वह उसकी पूजा द्वीप के सौ राजाओं के रक्त से करेगा। राज्य सिंहासन प्राप्त करने के बाद उसने सारे जम्बू द्वीप के राजाओं को एक-एक करके जीत लिया और उनके रक्त से वृक्ष देवता की पूजा करने के लिये गया। वृक्षदेवता ने यह सोचकर

---

१. धम्मपदट्ठकथा, भाग ३, पृ० २०४।
२. ,, ,, पृ० १०६।

कि इतने राजा व्यर्थ में ही मारे जावेंगे, उनके ऊपर दया अनुभव की और इस कारण उसकी पूजा को अस्वीकार कर दिया कि राजा उग्रसेन जिसको कि उसने हरा दिया है, की रानी दिन्ना नहीं लाई गई। रानी दिन्ना को भी राजा ने बुलवा लिया। रानी ने उन सब के सामने प्राणि-हिंसा के त्याग के ऊपर व्याख्यान दिया, और उसको वृक्ष देवता ने अनुमोदित किया। राजा प्राणिहिंसा से विरत हुआ और उसने सब बन्दी राजाओं को छोड़ दिया। राजाओं ने दिन्ना की बहुत प्रशंसा की, क्योंकि उसी के द्वारा वे सब बचाये गये थे।[1]

किसागोतमी सावत्थी के एक धनिक घराने में पैदा हुई थी और एक महाजन के पुत्र के साथ उसका विवाह हुआ था, जिसके पास चालीस करोड़ की सम्पत्ति थी।[2] बोधिसत्त ( बोधिसत्त्व ) उसके मामा के पुत्र थे। एक दिन बोधिसत्व राहुल के जन्म के समाचार सुनकर घर लौट रहे थे तो किसागोतमी ने अपने महल से उनको देखा। बुद्ध भगवान् के शरीर सौन्दर्य और शोभा को देख कर किसागोतमी ने कहा कि जिस माता को ऐसा पुत्र मिला है, जिस पिता को ऐसा पुत्र मिला है और जिस पत्नी को ऐसा पति प्राप्त हुआ है, वे अवश्य बहुत ही निब्बुत्त (निवृत्त अर्थात् सुखी) होंगे। बोधिसत्व ने निब्बुत्त शब्द को निब्बाण ( निर्वाण ) अर्थ में लिया और उसको एक मोतियों की माला भेंट में दी कि उसने उनको ऐसे मंगलमय शब्द सुनाये।[3]

जब बोधिसत्व बुद्ध हो गये तो किसागोतमी उनकी पूजा के लिये आकाश मार्ग से आयी, किन्तु उसने देखा कि शक्र अपने परिजनों के साथ भगवान् के सामने बैठा हुआ है। उसने यह उचित नहीं समझा कि वह उतर कर नीचे उनके पास जावे। इसलिये उसने भगवान् की पूजा वहीं से की और चली गई। शक्र ने किसागोतमी को देख लिया था। उसने भगवान् से पूछा कि वह कौन थी। भगवान् ने उत्तर दिया कि वह उनकी पुत्री थी। किसागोतमी भगवान्के भिक्खुनिओं के संघ में सबसे आगे बढ़ी हुई थी और बहुत ही मोटे और साधारण वस्त्र पहनती थी।[4]

---

१. धम्मपदट्ठकथा, भाग २, पृ० १५।
२. ,, ,, पृ० २७०-७५।
३. ,, भाग १, पृ० ८५।
४. ,, भाग ४, पृ० १५६-५७।

एक बार राजा पसेनदि ने भगवान् बुद्ध को अपनी रानी मल्लिका और वासभखत्तिया को, जो कि धर्म सुनने की बड़ी इच्छुक थीं, धर्मोपदेश देने के लिये निमन्त्रित किया। किन्तु बुद्ध भगवान् प्रतिदिन नहीं जा सकते थे, इस कारण उन्होंने राजा से कहा कि वह थेर आनन्द को निमन्त्रित करें। इसके बाद राजाने थेर आनन्द को निमन्त्रित किया। थेर आये और उन्होंने धम्मका उपदेश दिया। मल्लिका ने बड़ी तत्परता से उपदेश सुना और पूर्णरूप से हृदयंगम किया, किन्तु वासभखत्तिया ने ध्यान नहीं दिया और वह कुछ नहीं सीख पायी[1]।

राजा पसेनदि ने एक बार अर्धरात्रि के समय चार भयंकर शब्द सुने। ब्राह्मणों ने उसका फल राजा के लिये मृत्युकारक बताया और उसके अनिष्टफल से अपनी रक्षा करने के लिये उसको यज्ञ करने की सलाह दी। राजा ने सारा आयोजन कर लिया। किन्तु मल्लिका ने राजा को बुद्ध भगवान् के पास जाकर उनके निदेश लेने के लिये प्रेरित किया। बुद्ध भगवान् ने उन चार भयंकर ध्वनियों का यथार्थ अर्थ बताया और राजा को यज्ञ करने से विरत किया। इस प्रकार मल्लिका ने इतने प्राणियों के प्राण बचाये। इस अवसर पर राजा पसेनदि ने बुद्ध भगवान् और उनके संघ को दान दिये जाने के लिये निम्न प्रकार प्रबन्ध किया[2]।

(१) उसने शाल वृक्ष की लकड़ियों से एक विशाल मण्डप तैयार करवाया, जिसके अन्दर पांचसौ भिक्खु बैठ सकते थे और इतने ही बाहर बैठ सकते थे।

(२) मण्डप के अन्दर पांचसौ सुनहरी किश्तियां रखी गई और उनमें एक-एक क्षत्रिय कन्या, दो-दो भिक्खुओं के बीच में खड़ी होकर सुगन्धि फैंक रही थी।

(३) पाँचसौ हाथी पाँचसौ छत्र लेकर पांचसौ भिक्खुओं के पीछे खड़े किये गये।

(४) एक-एक क्षत्रिय राजकुमारी दो-दो भिक्खुओं के बीच में खड़ी हुई थी।

(५) सुनहरी किश्तियों में सुगन्धित द्रव्य भरे हुए थे।

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग १, पृ० ३८२।
२. ,, भाग ३, पृ० १८३।

इतनी धर्मतत्पर होने पर भी मल्लिका देवी को मृत्यु के बाद अवीचि नरक की यातना भोगनी पड़ी, क्योंकि एक बार उसने अपने अनाचार ( दुराचार ) को छिपाने के लिये अपने पति को धोखा दिया था[१] ।

रानी मल्लिका की लड़की का नाम भी मल्लिका था। वह सेनापति बन्धुल की पत्नी थी, किन्तु बहुत दिनों तक निःसन्तान रही। इसलिये बन्धुल ने उसको हमेशा के लिये उसके पिता के घर भेज दिया। घर जाते समय वह बुद्ध भगवान् की वन्दना करने के लिये जैतवन गई और भगवान् से कहा कि उसका पति उसको निःसन्तान होने के कारण उसके पिता के घर भेज रहा है। बुद्ध भगवान् ने उसको वापिस उसके पति के घर जाने को कहा। अन्त में बन्धुल को भी यह बात मालूम हुई और उसने समझा कि भगवान् को अवश्य मालूम होगा कि यह गर्भवती होगी। गर्भ के चिन्ह उसके शरीर पर प्रगट हुए और उसकी इच्छा हुई कि वह सुरक्षित सरोवर का जल पीवे और उसमें स्नान करे। उसके पति ने उसे ऐसे ही तालाब में स्नान कराया और उसका पानी पिलाया[२] ।

उत्तरा और उसका पति राजगृह के किसी श्रेष्ठी की नौकरी में थे। एक बार श्रेष्ठी किसी प्रसिद्ध उत्सव में गया था और उत्तरा और उसका पति घर पर रहे। एक दिन उत्तरा का पति खेतों को जोतने के लिये गया हुआ था। उत्तरा उसके लिये भोजन लेकर खेत पर जा रही थी। रास्ते में उसको सारिपुत्त मिले, जो कि अभी निरोध समापत्ति से उठे थे। उसने उनको भोजन दिया और इसका फल यह हुआ कि वह राजगृह की सबसे धनवती महिला हो गई और उसका पति महाधन श्रेष्ठी के नाम से प्रसिद्ध हुआ[३] ।

पुण्णा सावत्थी के किसी महाजन की नौकरानी थी। एक बार जब वह रात्रि में धान कूट रही थी तो तनिक आराम करने को घर के बाहर गई। इस समय मल्लजातीय दब्ब, अतिथि भिक्खुओं के सोने के लिये स्थान का प्रबन्ध करने वाला अधिकारी था। पुण्णा कुछ रोटी लेकर बाहर आई

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ११९ ।
२. ,, भाग १, पृ० ३४९–३५१ ।
३. ,, भाग ३, पृ० ३०२ ।

और उसने उससे रात्रि में रोशनी के साथ घूमने का कारण पूछा । दब्ब ने उसको कारण बताया । उसी समय उसको उस रास्ते पर भोजन के लिये आते हुए बुद्ध भगवान् मिले । उसने अपने लिये एक भी रोटी न रख कर सारी रोटियां बुद्ध भगवान् को दे दीं और उन्होंने वे सारी स्वीकार कर लीं । पुण्णा सोच रही थी कि बुद्ध भगवान्, न जाने उसकी रोटियों को खायेंगे अथवा नहीं, किंतु बुद्ध भगवान् ने उन रोटियों को, बिना किसी तरह के संकोच के उसी के घर बैठकर खाया । इसका फल यह हुआ कि पुण्णा को उसी जगह जहां कि भोजन दिया गया था, सोतापत्तिफल प्राप्त हुआ[1] ।

रोहिणी अनुरूद्ध की बहन थी । उसके श्वेत कुष्ठ की बीमारी थी और वह अपने भाई अनुरुद्ध के पास इसलिये नहीं जाता थी कि कहीं यह रोग उसके भाई के शरीर में भी संक्रमित न हो जावे । अनुरुद्ध ने उसे बुलाया और इस रोग के पाप से छुटकारा पाने के लिये उससे कहा कि वह भिक्खुओं के लिये विहार बनवाये । उसने ऐसा ही किया और उसको उस समय भी साफ रखा जब कि वह बनाया जा रहा था । जब वह बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ इसकी सफाई बहुत दिनों तक करती रही तो अन्त में उसको अपने इस रोग से छुटकारा मिल गया । थोड़े दिन के बाद बुद्ध भगवान् कपिलवस्तु गये और रोहिणी को बुलवाया । उन्होंने उसे बताया कि अपने पूर्व जन्म में वह बनारस के राजा की रानी थी । बनारस का राजा उस समय एक वेश्या के सौन्दर्य के ऊपर मोहित था । रानी यह जानकर उससे ईर्ष्या करने लगी और उसने उस वेश्या के कपड़ों और नहाने के पानी में कोई ऐसी चीज डाल दी, जिससे उसके सारे शरीर में भयङ्कर खुजली हो गई । इसी पाप के कारण उसको श्वेत कुष्ठ हुआ था । इस पर उसको सोतापत्तिफल प्राप्त हुआ और उसका सारा शरीर सुनहरा हो गया[2] ।

एक कृषक कन्या के अधिकार में एक धान का खेत था । एक बार जब कि वह अपने खेत में धान भून रही थी, थेर महाकस्सप, जोकि पिप्फली

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ३२१ ।
२. ,, ,, पृ० २९५ ।

गुफा में एक सप्ताह से ध्यान में लीन थे, उस लड़की के पास भिक्षा के लिये आये। उस लड़की ने आल्हादपूर्ण हृदय से थेर को भुने हुए धानों की भिक्षा दी, जिसको कि थेर ने स्वीकार किया। जब वह लड़की थेर महाकस्सप के पास से अपने धान भूनने के स्थान पर जा रही थी तो एक विषैले सर्प ने उसको काट लिया और वह तत्क्षण मर गई। इस पुण्य कार्य के फलस्वरूप मृत्यु के बाद उसने तावतिंस स्वर्ग के सुवर्ण प्रासाद में जन्म लिया और उसका लाजदेवधीता नाम रखा गया। महाकस्सप की सेवा के द्वारा और अधिक पुण्य प्राप्त करने के लिये वह स्वर्ग से महाकस्सप की सेवा में उपस्थित होती थी। वहाँ जाकर वह उनकी कुटीर को साफ रखती थी और उनके लिये पानी भरकर रखती थी, किन्तु दो दिन बाद ही उसको और अधिक सेवा करने से मना कर दिया गया, क्योंकि यह मालूम हो गया कि वह देवी थी। थेर महाकस्सप की सेवा से वंचित होने के कारण उसको बहुत शोक और दुःख हुआ। बुद्ध भगवान् को यह मालूम हुआ तो उन्होंने उसको धर्मोपदेश दिया, जिससे उसको सोतापत्तिफल प्राप्त हुआ[1]।

कुमारकस्सप की माता दीक्षा लेने से पहले गर्भवती थीं। किन्तु उनको स्वयं यह मालूम न था। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वे गर्भवती हैं तो इस मामले की सूचना बुद्ध भगवान् को दी गई। बुद्ध भगवान् ने इस मामले की जांच करने के लिये थेर उपालि को नियुक्त किया। उपालि ने इस मामले को राजा पसेनदि, श्रेष्ठी अनाथपण्डिक और विसाखा को सुपुर्द किया। इसके बाद केवल विसाखा ही इस मामले के निर्णय करने के लिये नियुक्त हुई। विसाखा ने मालूम किया कि वह दीक्षा लेने से पहले ही गर्भवती थी[2]।

रूपमुद्रा बुद्ध भगवान् की सौतेली बहन थी। उसने सोचा कि उसके सबसे बड़े भाई ने संसार को छोड़ कर बुद्धपद प्राप्त कर लिया, उसके छोटे भाई नन्द भी भिक्खु थे, राहुलकुमार ने भी दीक्षा ले ली, उसके पतिदेव भी भिक्खु बन गये और उसकी माता महापजापति गोतमी भी

---

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ६–९।
२. " भाग ३, पृ० १४४।

भिक्खुनी बन गई। उसने सोचा कि उसके इतने सम्बन्धियों ने संसार से वैराग्य ले लिया तो उसको भी उनके ही मार्ग का अनुसरण करना योग्य है। वह बुद्ध भगवान् के पास इसलिये नहीं जाती थी कि उसको अपने रूप का गर्व था और बुद्ध भगवान् रूप की अनित्यता का उपदेश दिया करते थे। दूसरे भिक्खु और भिक्खुनी सदैव उसके सामने बुद्ध भगवान् की प्रशंसा किया करते थे और उससे कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न रुचि के होने पर भी सब लोग बुद्ध भगवान् को देख कर प्रसन्न होते हैं[1]।

श्रावस्ती के एक गृहस्थ नन्दसेन की पत्नी नन्दा बुद्ध भगवान् के ऊपर तनिक भी श्रद्धा नहीं रखती थी। एक बार दूसरी भिक्खुनियों के साथ उसने बुद्ध भगवान् के पास जाने की सोची, किन्तु उसने अपने आपको बुद्ध भगवान् को दिखाया नहीं। बुद्ध भगवान् को यह मालूम हो गया कि दूसरी भिक्खुनियों के साथ नन्दा भी आई है। उन्होंने उसके रूप के गर्व को कम करना चाहा। उन्होंने अपने आश्चर्यकारी अतिशय के प्रभाव से वहाँ एक सबसे अधिक सुन्दर कन्या अपने पार्श्व में खड़े होकर पंखा झलती हुई पैदा की। नन्दा ने उस सुन्दर कन्या को देखा और उसको तत्क्षण प्रतीत हुआ कि उसका सौन्दर्य उसके सामने बहुत ही अधिक तुच्छ है। वह सेविका कन्या धीरे-धीरे आश्चर्य के साथ युवती के रूप में, तत्पश्चात् एक बच्चे की माता के रूप में, वृद्धा के रूप में और अन्त में मृत रूप में दिखाई दी। नन्दा ने यह सब होते हुए अपनी आँखों से देखा और अपने रूप का गर्व त्याग दिया और शारीरिक सौन्दर्य की अनित्यता का अनुभव किया। बुद्ध भगवान् ने नन्दा के हृदय के भावों को जानकर धर्मोपदेश दिया[2]।

विसाखा अंगदेश के भद्दियनगर के मेण्डक श्रेष्ठी के पुत्र धनञ्जय की पुत्री थी। मेण्डक के कुटुम्ब के लोग बुद्ध भगवान् के परम भक्त थे। कौशल के राजा प्रसेनजित की प्रार्थना पर धनंजय श्रेष्ठी साकेत से जाकर उसके राज्य में रहने लगा। विसाखा का मिगार श्रेष्ठी के पुत्र पुण्णवड्ढन के साथ पणिग्रहण हुआ था, जो कि निर्ग्रन्थों के मत का अनुयायी था। विवाह

१. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ११५।
२. ,, ,, पृ० ११३।

के बाद वह अपने श्वसुर के साथ श्रावस्ती में रहने लगी। एक दिन मिगार श्रेष्ठी ने पांचसौ निर्ग्रन्थ साधुओं को निमन्त्रित किया। जब ये निर्ग्रन्थ साधु आये तो श्रेष्ठी ने अपनी पुत्रवधू बिसाखा से वहाँ आकर उन अर्हन्तों को नमस्कार करने को कहा। अर्हन्तों का नाम सुनकर वह आई और उनको देख कर कहा—'ऐसे लज्जारहित प्राणी अर्हन्त नहीं हो सकते। मेरे श्वसुर ने मुझे यहाँ क्यों बुलाया है?' ऐसा कहकर उसने अपने श्वसुर को दोष दिया और अपने निवासभवन में चली गई। निर्ग्रन्थ साधुओं ने यह देख कर श्रेष्ठी को दोष दिया और श्रेष्ठी से उसको घर से बाहर निकाल देने को कहा, क्योंकि वह श्रमण गौतम की अनुयायिनी है। किन्तु श्रेष्ठी ने यह जानकर कि ऐसा करना सम्भव नहीं है, उन साधुओं से क्षमा माँगी और उनको विदा किया।

इस घटना के बाद एक दिन श्रेष्ठी एक अमूल्य आसन पर बैठ कर सुनहरे बर्तन से शहद निकाल-निकाल कर उसके साथ रबड़ी खा रहा था। और बिसाखा उसके पार्श्व में खड़ी उसके ऊपर पंखा झल रही थी। उस समय एक बौद्ध भिक्खु भिक्षा के लिये उसके घर में घुसा और उसके सामने आकर खड़ा हो गया, किन्तु श्रेष्ठी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस बात को देख कर विसाखा ने भिक्खु से कहा—'महाराज, दूसरे घर जाइये, मेरा श्वसुर बासा भोजन खा रहा है। इस पर श्रेष्ठी क्रुद्ध हुआ, खाना बन्द कर दिया और अपने आदमियों को आज्ञा दी कि उसको वे घर से बाहर निकाल दें। इन पर विसाखा ने कहा कि उसके अपराध का निर्णय होना चाहिये। श्रेष्ठी ने इस बात को मान लिया और उसके रिश्तेदारों को बुला लिया और उनको बतलाया कि मेरी पुत्रवधू ने एक बौद्ध भिक्खु के आगे कहा कि मैं बासा भोजन कर रहा था, जब कि में शुद्ध शहद के साथ रबड़ी खा रहा था। विसाखा के रिश्तेदारों ने विसाखा से इस बात की सच्चाई के बारे में पूछ-ताछ की। विसाखा ने कहा कि मैंने ऐसा नहीं कहा। मैंने तो केवल यह कहा है कि मेरे श्वसुर अपने पूर्व जन्म के पुण्यों का फल भोग रहे हैं। इसके बाद विसाखा ने उस सारी बात को स्पष्ट कर दिया, जिसके कारण उसके श्वसुर ने उसके ऊपर अपराध लगाया था। जब उसके रिश्तेदारों ने उसको निरपराध पाया तो वह श्वसुर के घर को छोड़ने के लिये तैयार हो गई। इस पर उसके श्वसुर ने क्षमा माँगी और

पुत्रवधू से घर में ही रहने के लिये अनुरोध किया। विसाखा इस शर्त्त पर घर में रहने के लिये तैयार हुई कि उसको अपनी इच्छानुसार बौद्ध भिक्खुओं का सत्कार करने की अनुमति दी जाये।

दूसरे दिन उसने बुद्ध भगवान् को निमन्त्रण दिया। निर्ग्रन्थ साधुओं ने यह जानकर कि मिगार श्रेष्ठी के घर भगवान् बुद्ध जा रहे हैं, उसके घर को घेर लिया। विसाखा ने अपने श्वसुर को कहलवाया कि वे आयें और स्वयं बुद्ध भगवान् को भोजन परोसें। निर्ग्रन्थ साधुओं ने श्रेष्ठी को वहाँ जाने से रोक दिया। इस पर विसाखा ने भगवान् बुद्ध को और उनके भिक्खुओं को स्वयं भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर विसाखा ने श्वसुर का कहलवाया कि वे आकर भगवान् का धर्मोपदेश सुन लें। इस पर निर्ग्रन्थ साधुओं ने श्रेष्ठी से कहा कि उसका उस समय पर जाना अत्यन्त अनुचित है। इस पर भी जब वह उपदेश सुनने गया तो निर्ग्रन्थ साधुओं ने वहाँ पहले से ही पहुँच कर एक पर्दा लगा दिया और श्रेष्ठी से पर्दे के बाहर बैठने को कहा। श्रेष्ठी बाहर बैठ गया, बुद्ध भगवान् का उपदेश सुना और धर्म की प्रथम अवस्था को प्राप्त किया। इसके बाद अपनी पुत्रवधू के पास जाकर कहा—'अब से तुम मेरी माता हो।' तब से विसाखा मिगार माता के रूप में प्रसिद्ध हुई। मिगार ने बौद्धधर्म स्वीकार किया। बाद में विसाखा ने श्रावस्ती में सत्ताईस करोड़ की लागत का एक बौद्ध विहार बनवाया[1]।



१. धम्मपदट्ठकथा भाग १, पृ० ३८४।

## ७. परमत्थजोतिका

धम्मपदट्ठकथा के पश्चात् आचार्य बुद्धघोष ने 'खुद्दकनिकाय' के खुद्दकपाठ तथा सुत्तनिपात ग्रन्थों के ऊपर सम्मिलित अट्ठकथा परमत्थ-जोतिका लिखी। श्री बी० सी० ला परमत्थजोतिका में धम्मपदट्ठकथा को भी सम्मिलित करते हैं, और कहते हैं कि 'परमत्थजोतिका', 'खुद्दकनिकाय' के 'खुद्दकपाठ', 'धम्मपद' तथा 'सुत्तनिपात' ग्रन्थों के ऊपर आचार्य बुद्धघोष की सामान्य अट्ठकथा कही जाती है। उनके अनुसार यह तीनों ग्रंथों की सामान्य अट्ठकथा 'परमत्थजोतिका', 'धम्मपदट्ठकथा' से भिन्न है और धम्मपदट्ठकथा से बाद में लिखी गई है, क्योंकि 'परमत्थजोतिका' की सुत्तनिपात की अट्ठकथा में कितनी ही बार एक भिन्न 'धम्मपदट्ठकथा' का उल्लेख आया है।

श्री बी० सी० ला परमत्थजोतिका को भी प्रसिद्ध अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष की रचना नहीं मानते और कहते हैं कि "यह भी 'जातकट्ठकथा' की तरह उन्हीं के नामराशी दूसरे बुद्धघोष की लिखी हुई है, जिनका कि चुल्लबुद्धघोष के नाम से उल्लेख आता है। ये वही बुद्धघोष हैं जिनकी प्रार्थना पर आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी और सम्मोह-विनोदनी की रचना की थी। अपने कथन की पुष्टि में श्री बी० सी० ला कहते हैं कि "परमत्थजोतिका की पणामगाथा की पहली पंक्ति और इसके अन्त में दी हुई दो गाथाऐं इस बात को आसानी से प्रमाणित करती हैं, और यह बात दोनों ग्रन्थों की रचना की सामान्य शैली से भी प्रगट होती है कि दोनों ग्रन्थ किसी एक लेखक के हैं और वह लेखक आचार्य बुद्धघोष नहीं हैं; चुल्लबुद्धघोष ही हो सकते हैं।"[1] और आगे वे कहते हैं कि—"खुद्दकपाठ और सुत्तनिपात के 'मंगल', 'रतन', और 'मेत्त' सुत्त की अट्ठकथा जातक की अट्ठकथा के समान है, जब कि 'मज्झिमनिकाय' के 'सेल' और 'आसेट्ठ' सुत्तों की अट्ठकथा और सुत्तनिपात की अट्ठकथा में कई प्रकार का अन्तर है। खुद्दकपाठ की अट्ठकथा का विवरण अनुभागों में

---

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ६९-७०।

विभक्त, सुसंगत और विद्वतापूर्ण है, जो कि प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष के उन्हीं विषयों के लेखों से बहुत अधिक आगे बढ़ा हुआ है। उदाहरणार्थ खुद्दकपाठ अट्ठकथा के 'सरण' विषयक विवरण के मिलान से यह बात स्पष्ट रूप में प्रतीत होती है।"[1] साथ में वे यह भी कहते हैं कि "खुद्दकपाठ अट्ठकथा में आई हुई द्वात्तिसंकार वण्णना से ज्ञात होता है कि आचार्य बुद्धघोष इस विषय को अपने विसुद्धिमग्ग में पहले वर्णन कर चुके हैं।" एक ओर वे कहते हैं कि 'परमत्थजोतिका के रचयिता श्रीलंका के थेर थे।'[2] और दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि—'इसके लेखक विन्ध्य प्रदेश, आन्ध्र और चोलदेश से भी अच्छी तरह परिचित थे।'[3]

इसी प्रकार डा० आदिकरम इस अट्ठकथा को आचार्य बुद्धघोष की रचना कहने वाली परम्परा की जांच करते हुए कहते हैं कि 'आचार्य बुद्धघोष की वे अट्ठकथाऐं, जिनके कर्तृत्व के विषय में कोई सन्देह नहीं है, किसी न किसी थेर की प्रार्थना पर लिखी गई हैं, जब कि इस अट्ठकथा में ऐसी किसी भी प्रार्थना का उल्लेख नहीं किया गया है। यद्यपि 'खुद्दकपाठ' और 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथाओं की कुछ पणाम गथाऐं एक दूसरे की गाथाओं से मिलती हैं, किन्तु आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की गाथाओं से भिन्न हैं।[4] और आगे वे कहते हैं कि 'यह भी अभिप्राय-गर्भित है कि 'परमत्थजोतिका' की इन दोनों अट्ठकथाओं में से किसी में भी यह नहीं कहा गया है कि ये महाविहार के थेरों के अभिलेखों के ऊपर आधारित हैं. जब कि आचार्य बुद्धघोष अपनी अट्ठकथाओं में इस बात का उल्लेख करने में कभी भी भूल नहीं करते। ये बातें इनके परमत्थजोतिका के रचयिता होने की

---

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ७०–७१।
२. ,, ,, पृ० ७१।
३. ,, ,, पृ० ७५।
४. मिलान करें—परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० २५३ तथा भाग २, पृ० ६०८ और विसुद्धिमग्ग, भाग २, पृ० ७१२-१३, अथवा सम्मोहविनोदनी, पृ० ५२३–५२४।

परम्परा के सत्य होने में सन्देह उत्पन्न करती हैं।' किन्तु वे स्वयं ही कहते हैं कि 'केवल ये ही बातें उस परम्परा को असमीचीन करने में भी पर्याप्त नहीं हैं।'[1]

आगे वे 'खुद्दकपाठ' की अट्ठकथा का विशेष तौर से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि—"इसके बारे में तो कुछ निश्चित बात भी कही जा सकती है। इस अट्ठकथा की प्रारम्भ की गाथाओं में ग्रन्थकार यह भाव प्रगट करते हैं कि 'उनके समान धम्म को भली भाँति न समझने वाले व्यक्ति के लिये खुद्दकपाठ की अट्ठकथा लिखना कितना कठिन कार्य है,[2] किन्तु तो भी वे ग्रन्थ रचना करने का दुःसाहस करते हैं, क्योंकि उनके समय तक प्राचीन पूर्वाचार्यों के निश्चय (पुब्बाचरिया विनिच्छयो) विद्यमान हैं।' इस प्रकार की हीनता या दुर्बलता का प्रदर्शन आचार्य बुद्धघोष ने अपने अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं किया है। जो आचार्य बुद्धघोष 'विसुद्धिमग्ग सदृश ग्रन्थ के रचने में समर्थ हों, उनके लिए इस प्रकारकी क्षमा प्रार्थना करना असंगत प्रतीत होता है।[3] इसके अतिरिक्त इस अट्ठकथा का बहुत सा विषय सीधा विसुद्धिमग्ग से लिया गया मालूम पड़ता है।[4] इस ग्रन्थ के अन्त में भी समान रूप से उनकी प्रत्येक अट्ठकथा के अन्त में आने वाला अवतरण आता है,जिसमें कि अपने बारे में प्रशंसात्मक कथन है, जिसमें उनको बुद्ध भगवान् के सिद्धान्तों में, जिनमें कि अट्ठकथा सहित त्रिपिटक का भी समावेश है, असाधारण ज्ञान रखने वाला कहा गया है (तिपिटक परियत्तिप्पभेदसाट्ठकथे सत्थुसासने अप्पटिहतञाणप्पभावेन)[5]।

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

२. खुद्दकानं गभीरत्ता, किञ्चापि अतिदुक्करा।
वण्णनामादिसेनेसा अबोधन्तेन सासनं॥

३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

४. मिलान करें:—परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० ३७ से ७५ और विसुद्धिमग्ग, पृ० २३९ से २६६ तथा परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० १०१ से १०९ और विसुद्धिमग्ग, पृ० २०९ से २१२ तथा परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० ८९ से ९८ और समन्तपासादिका भाग १, पृ० ४ से १६।

५. परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० २५३।

उपरिनिर्दिष्ट प्रस्तावना की गाथाओं के सामने यह कथन कितना असंगत प्रतीत होता है।[1] वे कहते हैं कि "इस अट्ठकथा की शैली-विशेष भी ध्यान देने योग्य है। 'रतनसुत्त' की व्याख्या करते समय ग्रन्थकार कहते हैं कि 'कुछ आचारियों का विचार है कि यह सम्पूर्ण 'सुत्त' बुद्ध भगवान के द्वारा कहा गया था, जब कि दूसरे कहते हैं कि प्रथम पाँच सुत्त उनके कहे गये हैं।' इसके पश्चात् ग्रंथकार कहते हैं कि 'ऐसा हो अथवा वैसा, हमारे लिये अनुसंधान की क्या आवश्यकता है, हम तो इस सारे 'रतनसुत्त' के ऊपर व्याख्या करेंगे।'[2] इस तरह का विचार अथवा कथन आचार्य बुद्धघोष का नहीं हो सकता।"[3]

उपर्युक्त सम्पूर्ण कथन का उपसंहार करते हुए डा० आदिकरम कहते हैं कि "ऊपर कहे गये सारे तथ्यों के ऊपर विचार करके हम न्यायसंगत निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह ग्रन्थ आचार्य बुद्धघोष के द्वारा नहीं रचा गया, और प्रशंसात्मक कथन इसके अन्त में ऊपर से जोड़ा हुआ क्षेपकांश है। चूंकि परम्परागत विश्वास इस ग्रंथ को आचार्य बुद्धघोष की ही रचना कहने के पक्ष में है; इसलिये यह भी सम्भव है कि इसके रचयिता दूसरे बुद्धघोष हों। शायद ये बुद्धघोष वही हैं, जिन्होंने आचार्य बुद्धघोष से अट्ठसालिनी और सम्मोहविनोदनी लिखने की प्रार्थना की थी।[4] वे और आगे कहते हैं कि 'यद्यपि इन दोनों अट्ठकथाओं में, जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, कुछ समानता है, किन्तु निम्नस्थ युक्तियाँ इस बात को असम्भव कर देती हैं कि ये दोनों अट्ठकथाऐं किसी एक ही अट्ठकथाकार की रचनाऐं हैं। (१) दोनों अट्ठकथाओं में 'रतन'[5], 'मंगल'[6] और 'मेत्त'[7] सुत्तों पर पूर्ण व्याख्या की गई है। यह पुनरुक्ति अनावश्यक होती यदि दोनों के अट्ठकथाकार एक ही होते। (२) सुत्तनिपात

---

१. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
२. परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० १६५।
३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
४. अट्ठसालिनी, पृ० १ तथा सम्मोहविनोदनी, पृ० ५२३।
५. परमत्थजोतिका, भाग १, पृ० १५७।
६. ,, ,, पृ० ८८ तथा भाग २, पृ० ३००।
७. ,, ,, पृ० २३ ,, ,, पृ० १९३।

की अट्ठकथा में पाठकों के लिये ग्रन्थकार निर्देश करते हैं कि 'द्वातिसंकार' के विषय में कुछ ब्यौरों के लिये विसुद्धिमग्ग देखें।[1] किन्तु खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में उन ब्यौरों की पूर्णरूप से व्याख्या की गई है[2]। यदि दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थकार के होते तो वैसे ही संक्षिप्त वर्णन की हम खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में भी आशा करते। (३) इसी प्रकार सुत्तनिपात की अट्ठकथा में 'एवं मे सुत्त' इस वाक्यांश की व्याख्या के लिये निर्देश किया गया है कि पपंचसूदनी में देखें,[3] जबकि इसी वाक्यांश की व्याख्या खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में ब्यौरेवार दी गई है[4]।

श्री बी० सी० ला और डा० आदिकरम की उपर्युक्त युक्तियों के ऊपर विचार करने से ज्ञात होता है, कि ये युक्तियां परमत्थजोतिका को आचार्य बुद्धघोष की रचना असिद्ध करने में असमर्थ हैं। जातकट्ठकथा वण्णना को हम युक्तिपूर्ण रूप से सिद्ध कर चुके हैं कि यह आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है, अन्य किसी की नहीं हो सकती। इसलिये यदि उससे परमत्थ-जोतिका की शैली मिलती है तो इसके भी उन्हीं की रचना होने में कोई आपत्ति नहीं,प्रत्युत इससे यह भी उन्हीं की रचना सिद्ध होतोहै। और अन्त में श्री बी०सी० ला स्वयं ही कहते हैं कि परमत्थजोतिका की द्वातिसंकार वण्णना से ज्ञात होता है कि इस विषय को वे अपने विसुद्धिमग्ग में पहले वर्णन कर चुके हैं। फिर इससे बढ़ कर और इस बात का अन्तरंग प्रमाण क्या हो सकता है कि यह उन्हीं की रचना है। साथ में श्री बी० सी० ला अपनो पुस्तक 'बुद्धघोष' में यह भी कहते हैं कि परमत्थजोतिका के रचयिता विन्ध्यप्रदेश, आन्ध्र और चोलदेश से अच्छी तरह परिचित हैं। क्या श्रीलंका के थेर इन प्रदेशों से इतनी अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं, जिससे कि वे इतना स्पष्ट और यथार्थ वर्णन कर सकते। यदि ऐसा होता तो आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के अतिरिक्त श्रीलङ्का के अट्ठकथाकारों की अट्ठकथाओं में भी वैसा वर्णन अवश्य मिलता। यह वर्णन आचार्य बुद्धघोष

---

१. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० २४६, २४८, २४९।
२. ,, भाग १, पृ० ३७।
३. ,, भाग २, पृ० ३००।
४. ,, भाग १, पृ० १००।

की ही अट्ठकथाओं में मिल सकता है, क्योंकि वे विन्ध्यप्रदेश के आस-पास के रहने वाले थे, और वहीं शास्त्रार्थ करते और योगसूत्रों को पढ़ते समय उनको थेर रेवत ने देखा और दीक्षित किया था। फिर श्रीलंका जाते समय उनका मार्ग आन्ध्र और चोल देश में होकर ही था, जहाँ कि वे स्थान-स्थान पर विहारों में ठहर-ठहर कर श्रीलंका गये थे। श्री मललसेकर भी अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर' में कहते हैं कि सुत्तनिपात की अट्ठकथा में, जो कि निश्चय रूप से आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है, जातकट्ठकथा वण्णना की निदानकथा को निर्दिष्ट किया गया है। इससे भी जातकट्ठकथा वण्णना तथा परमत्थजोतिका दोनों ही प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की रचना प्रमाणित होती हैं। गंधवंस में भी परमत्थजोतिका को आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की सूची में गिनाया-गया है। अवश्य ही गंधवंस के रचयिता ने यह सूची किसी ठोस आधार पर दी होगी, जोकि महाविहार में अथवा उसकी परम्पराओं में सुरक्षित होगी। महावंस का लेख भी कहता है कि आचार्य बुद्धघोष से पहले कोई पाली अट्ठकथा नहीं लिखी गई थी। फिर सुत्तनिपात की अट्ठकथा में निदानकथा का निर्देश कैसे किया जाता। इससे भी सिद्ध है कि जातकट्ठकथा वण्णना आचार्य बुद्धघोष ने पहले लिखी थी और फिर उसकी निदानकथा का अपनी सुत्तनिपात की अट्ठकथा में निर्देश किया है। इसलिए परमत्थजोतिका उनकी ही रचना है।

डा० आदिकरम की यह युक्ति कि 'आचार्य बुद्धघोष की सारी अट्ठकथाऐं किसी न किसी थेरकी प्रार्थना पर लिखी गई हैं और इस अट्ठकथाके लिये किसी की प्रार्थना का उल्लेख नहीं है, इसलिये यह उनकी नहीं है,' ठीक नहीं जचती, क्योंकि, क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि इस अट्ठकथा के लिखने के लिये किसी ने प्रार्थना ही नहीं की हो, अथवा नहीं कर पायी हो और उन्होंने इसे क्रम प्राप्त होने पर लिखना प्रारम्भ कर दिया हो। मुख्य-मुख्य अट्ठकथाओं के लिये थेरों ने प्रार्थना की होगी, किन्तु गौण समझ कर इसके लिखने की किसी ने पहले से प्रार्थना नहीं की होगी और क्रम प्राप्त होने पर इसको उन्होंने प्रारम्भ कर दिया होगा। थेरों ने विचार किया होगा कि मुख्य-मुख्य अट्ठकथा समाप्त हो जाने पर फिर इन ग्रन्थों की अट्ठकथा लिखने के लिये प्रार्थना करेंगे, किन्तु उससे पहले ही यह अट्ठकथा प्रारम्भ की जा चुकी होगी। दूसरी बात यह भी है कि जिन

अट्ठकथाओं में इस तरह का निर्देश है, उनके विषय में भी लोग उनकी रचना होने में सन्देह करते हैं।

पणाम गाथाओं के अन्य अट्ठकथाओं से न मिलने से ग्रन्थकार भिन्न होंगे ही, ऐसी भी कोई युक्ति नहीं चल सकती। पणाम गाथाऐं ग्रन्थ विशेष के साथ, भिन्न विषय होने के कारण, भिन्न भी हो सकती हैं। डा० आदिकरम स्वयं भी कहते हैं कि 'खुद्दकपाठ' और 'सुत्तनिपात' की अट्ठकथाओं के लेखक भिन्न-भिन्न हैं,' फिर भी इन दोनों ग्रन्थों की पणाम गाथाऐं मिलती हैं। आगे डा० आदिकरम कहते हैं कि 'परमत्थजोतिका' की अट्ठकथाओं की प्रस्तावनाओं में यह नहीं लिखा कि ये महाविहार की परम्परा पर आधारित हैं, इसलिये ये आचार्य बुद्धघोष की नहीं मालूम पड़तीं। यह युक्ति भी कुछ सार नहीं रखती। हो सकता है कि इन दोनों ग्रन्थों की सिंहली अट्ठकथाओं का सब सम्प्रदाय समान रूप से आदर करते हों अथवा इनकी सिंहली अट्ठकथाऐं अन्य सम्प्रदायों में भिन्न हों ही नहीं और एक ही संस्करण हो जिसको सब स्वीकार करते हों। महाविहार की परम्परा का उल्लेख करने की तो तब आवश्यकता होती जब कई भिन्न-भिन्न संस्करण होते।

डा० आदिकरम भी निश्चित रूप से नहीं कहते कि यह आ० बुद्धघोष की रचना नहीं है, उनको सन्देह है, जिसके बारे में वे स्वयं ही अन्त में कहते हैं कि केवल ये ही बातें आचार्य बुद्धघोष की रचना होने की परम्परा को असमीचीन ठहराने में समर्थ नहीं हैं।

आगे डा० आदिकरम परमत्थजोतिका के द्वितीय भाग में दी हुई सुत्तनिपात की अट्ठकथा को तो यथाकिंचित् आचार्य बुद्धघोष की रचना स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु खुद्दकपाठ की अट्ठकथा के बारे में निश्चित रूप से कहते हैं कि यह आचार्य बुद्धघोष की रचना नहीं हो सकती, क्योंकि इस अट्ठकथा की प्रस्तावना में 'खुद्दकानं गभीरत्ता' इत्यादि के द्वारा रचयिता ने अपनी हीनता दिखायी है, जिसको कि विसुद्धिमग्ग, सदृश ग्रन्थ के ग्रन्थकार नहीं दिखा सकते। किन्तु इस हीनता के दिखाने के बारे में एक तो यह बात भी हो सकती है कि मूल सिंहली अट्ठकथा में इस प्रकार का कोई लेख हो, जिसका पाली में उनको ऐसा अनुवाद करना पड़ा हो। दूसरे विद्वान् लोग विषय की गम्भीरता दिखाने और अपनी निरभिमानता

प्रदर्शित करने के लिये ऐसा लिख ही देते हैं और खुद्दकपाठ को तो वास्तव में ही बौद्धाचार्य गम्भीर और कठिन मानते हैं। परन्तु पहली बात अधिक सम्भव जचती है।

उनकी यह युक्ति कि 'विसुद्धिमग्ग आदि में आये हुए विषयों का लेखक ने खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में तो वर्णन ब्यौरेवार किया है, किन्तु सुत्तनिपात की अट्ठकथा में उनका संक्षेप में वर्णन करके उन विषयों के विशेष विवरण के लिये विसुद्धिमग्ग तथा अन्य अट्ठकथाओं में देखने के लिये निर्देश कर दिया है,' सारयुक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा करके लेखक ने पुनरुक्ति करने की गुंजायश ही नहीं रक्खी। आचार्य बुद्धघोष ने खुद्दकपाठ की अट्ठकथा पहले लिखी है, क्योंकि यह परमत्थजोतिका का प्रथम भाग है और सुत्तनिपात की अट्ठकथा जो इसका द्वितीय भाग है बाद में लिखी है। उन्होंने खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में विषय को पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया है और फिर उन्हीं विषयों के प्रकरण जब सुत्तनिपात कट्ठकथा लिखते समय आये तो उन्होंने खुद्दकपाठ के विवरण से भी अधिक स्पष्ट व्याख्या वाले अपने विसुद्धिमग्ग तथा अन्य अट्ठकथाओं के वर्णन की ओर निर्देश कर दिया है। खुद्दकपाठ की अट्ठकथा का निर्देश इसलिये नहीं किया कि वहां तो उस ग्रन्थ में है ही। विशेष के लिये अन्य विशेष ग्रन्थ देखें, ऐसा लिख दिया है। इससे पुनरुक्ति के दोष का बिल्कुल परिहार हो जाता है। रही विसुद्धिमग्ग तथा अन्य अट्ठकथाओं के विषय को खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में दुहराने की, सो इसमें भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि परमत्थजोतिका भिन्न अट्ठकथा है, वहां जो विषय प्रकरणप्राप्त था, उसकी एक बार इस अट्ठकथा के प्रथम भाग खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में स्पष्ट व्याख्या करनी ही थी। इसलिये स्पष्ट है कि 'परमत्थजोतिका' भिन्न ग्रन्थ होने के कारण इसमें विसुद्धिमग्ग आदि के विषय को उनको दुहराना पड़ा, किन्तु इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग में जब वही विषय आया तो उसको संक्षेप से कथन करके उन्होंने अपने अन्य ग्रन्थों को निर्दिष्ट कर दिया। इससे द्वातिसंकार वण्णना के विषय की तथा 'एवं मे सुत्त की' खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में स्पष्ट व्याख्या करना और सुत्तनिपात की व्याख्या में संक्षिप्त कथन के पश्चात् विसुद्धिमग्ग और पपंचसूदनी को निर्दिष्ट करना भी संगत सिद्ध हो गया।

'रतन सुत्त' के बारे में जो डा० आदिकरम ने आपत्ति उठाई है, वह भी निराधार है। ग्रन्थकार ने 'आचरियों' के मत का उल्लेख करके स्पष्ट कह दिया है कि 'रतन सुत्त' के सारे सुत्त चाहे बुद्ध भगवान् के वचन हों अथवा उनमें से पांच सुत्तों के अतिरिक्त शेष सुत्त किसी और आचार्य के हों, किन्तु थेरवादी सम्प्रदाय में बुद्ध वचनों से उनके विषय में कोई विरोध नहीं, इसलिये कथावत्थु की तरह वे बुद्धवचन ही समझे जाते हैं, इसलिये आचार्य बुद्धघोष उन सबकी व्याख्या करने को कहते हैं, इसमें भी कोई आपत्ति नहीं जचती। इसके अतिरिक्त अधिक सम्भव यह है कि यह पाठ उनकी अट्ठकथा की आधारभूत सिंहली अट्ठकथा का हो और उन्होंने ज्यों का त्यों उसका अनुवाद कर दिया हो।

'तिपिटक परियत्तिप्पभेद साट्ठकथे' इत्यादि प्रशंसात्मक कथन तो आचार्य बुद्धघोष का है ही नहीं, क्षेपकांश है, ऐसा सब विद्वान् तथा डा० आदिकरम स्वयं भी मानते हैं। इसलिये इस आपत्ति का स्वयं परिहार हो जाता है। इससे तो उलटा यह सिद्ध हो जाता है कि परमत्थजोतिका भी उन्हीं की रचना है, क्योंकि यह प्रशंसात्मक कथन उनकी प्रत्येक अट्ठकथा के अन्त में जुड़ा हुआ है। यह कथन महाविहार की किसी सुरक्षित परम्परा के अनुसार ही होगा, जिसको कि किसी लेखक ने परम्परा के आधार पर इसमें जोड़ा है। और यह प्रशंसात्मक कथन अतिअर्वाचीन भी नहीं जचता। अवश्य ही प्राचीन परम्परा से उनकी अट्ठकथाओं के अन्त में जुड़ा हुआ चला आता है, अन्यथा किसी के अन्त में होता किसी के अन्त में नहीं; कोई लेखक किसी अट्ठकथा में जोड़ता, दूसरा नहीं।

इस प्रकार विरोध में कोई ठोस युक्ति न होने से तथा जो युक्तियाँ दी गई थीं उनका परिहार हो जाने से 'परमत्थजोतिका' के रचयिता आचार्य बुद्धघोष ही निश्चित होते हैं। परम्पराएें भी इसी बात की पुष्टि करती हैं, तथा इसमें आचार्य बुद्धघोष के द्वारा विसुद्धिमग्ग तथा अन्य अट्ठकथाओं का निर्देश करना भी उन्हीं को इसका रचयिता सिद्ध करता है, जोकि इस बात के समर्थन के लिये निश्चित और अन्तरङ्ग ठोस प्रमाण समझा जाना चाहिये।

## ( क ) खुद्दकपाठ अट्ठकथा:-

परमत्थजोतिका के प्रथम भाग में खुद्दकपाठ की अट्ठकथा है, तथा दूसरे भाग में सुत्तनिपात की। अब क्रमशः खुद्दकपाठ और सुत्तनिपात की अट्ठकथाओं के वर्णन दिये जाते हैं। आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं के समान खुद्दकपाठ अट्ठकथा में भी सुन्दर ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सामाजिक सूचनाऐं मिलती हैं।

इसमें लिच्छिवियों के मूल उद्गम के विषय में पौराणिकता से मिश्रित एक रोचक घटना का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है:-एक बार वाराणसी के राजा की पट्टरानी गर्भवती हुई। यह जान कर रानी ने राजा को अपने गर्भवती होने की सूचना दी। राजा ने गर्भ की रक्षा के लिये रीति-रिवाज के अनुसार अनुष्ठान किये। इस प्रकार पूर्ण रक्षा के साथ जब गर्भ पूर्णरूप से परिपक्व हो गया तो रानी ने प्रसव के लिये पवित्र और धार्मिक स्त्रियों के साथ प्रसूतिगृह में प्रवेश किया। उषाकाल में प्रसव हुआ। किन्तु बालक के स्थान पर लाख और बन्धुजीवक के पुष्प के समान रक्तवर्ण का एक मांसपिण्ड गर्भ के बाहर आया। तब अन्य रानियों ने सोचा कि यदि राजा को यह कहा जावेगा कि पट्टरानी के आशासित सुनहरी रङ्ग के सुन्दर शिशु के स्थान पर रक्तवर्ण का एक मांसपिण्ड उत्पन्न हुआ है तो राजा उन सबके ऊपर क्रुद्ध होगा, इसलिये उन रानियों ने राजा के क्रोध के भय से उस मांसपिण्ड को एक टोकरी में रखकर, अच्छी तरह बन्द करके, तथा राजमुद्रा से मुद्रांकिन करके, गङ्गा के प्रवाह में विसर्जित कर दिया। जैसे ही यह मांसपिण्ड की टोकरी गङ्गा की धारा में विसर्जित की गई, एक देव ने उस मांसपिण्ड की रक्षा की और स्वयं अपनी इच्छा से एक सोने के पत्र पर सिंगरफ के टुकड़े से यह लिख कर कि 'यह बनारस के राजा की पट्टरानी की सन्तान है,' उसे उस टोकरी में बांध दिया और तब उसे गङ्गा के प्रवाह की एक ऐसी धारा में विसर्जित किया, जहां किसी भी जलराक्षस का उसको नष्ट करने का डर न था।

उस समय ग्वालों के घोष के निकट एक साधु गङ्गा के किनारे टहल रहा था। जब वह गङ्गा के जल में प्रातः स्नान करने उतरा तो उसने अपनी

ओर आती हुई उस टोकरी को देखा। यह सोच कर कि उस टोकरी में पांशुकूल ( फटे पुराने कपड़े ) होंगे, उस साधु ने उस टोकरी को पकड़ लिया। किन्तु जब उसने इसके ऊपर राजमुद्रांकित लेख पढ़ा तो उसने इसे खोला और इसके अन्दर उस मांसपिण्ड को रखा हुआ पाया। साधु ने अपने मन में सोचा कि यह गर्भ होना चाहिये, क्योंकि इसमें कोई सड़ाँद अथवा दुर्गन्ध नहीं है। तब उसने इसको अपनी कुटी में ले जाकर एक पवित्र स्थान पर रखा। अर्धमास व्यतीत होने पर उस मांसपिण्ड के दो टुकड़े हो गये। साधु ने उन टुकड़ों की और भी अधिक सावधानी के साथ रक्षा की। अर्धमास और व्यतीत हो जाने पर उन दोनों टुकड़ों में सूजन प्रकट हुई और वह सूजन एक-एक सिर और दो-दो हाथ और दो-दो पैरों में परिणत हो गई। आधा महीना और व्यतीत हो जाने पर एक पिण्ड तो सुनहरी आभा वाला पुत्र बन गया और दूसरा एक सुन्दर पुत्री। साधु का हृदय इन दोनों सन्तानों के ऊपर पैत्रिक प्रेम से भर गया और इसी कारण उसके अंगूठे से दूध निकलने लगा। इसके बाद वह चावल से दूध निकाला करता। चावल को वह स्वयं खाता और दूध बच्चों को पीने के लिये देता। जो कुछ इन बच्चों के पेट में जाता वह इनके पेट में ऐसा मालूम पड़ता मानो पारदर्शी स्फटिक मणि के अन्दर रखा हुआ हो और इस कारण वे निच्छवि अर्थात् ऐसे मालूम पड़ते मानो उनके पेट पर चर्म ही न हो। दूसरे लोग उनको लीनछवि अर्थात् जिनके पेट की खाल और उसके अन्दर की चीज एक दूसरे के अन्दर लीन हुई हैं, अथवा सिली हुई हैं, ऐसा कहते। इस कारण ये दोनों बच्चे निच्छवि अथवा लीनछवि होने के कारण 'लिच्छवि' कहलाये।

साधु को इन बच्चों का पालन-पोषण करने के लिये प्रातः उठ कर गांव में भिक्षा के लिये जाना पड़ता था और फिर वह बहुत दिन चढ़े वापिस आता था। जब गोपालों को यह मालूम हुआ तो उन्होंने उस साधु को कहा—"आर्य बच्चों का पालन-पोषण साधु के लिये बड़ा कठिन और कष्टप्रद है। कृपया इन बच्चों को आप हमें सौंप दीजिये; हम इनका पालन-पोषण करेंगे और आप अपनी साधु-वृत्ति से रहिये।" साधु ने बड़ी खुशी से उनका प्रस्ताव स्वीकार किया। दूसरे दिन गोपाल लोगों ने सड़क को समतल और साफ करके उस पर फूल बिखेरे, उसके किनारों पर

झण्डियाँ लगाईं और बाजे-गाजे के साथ साधु की कुटिया पर आये। साधु ने उन बच्चों को उन्हें सौंप दिया और कहा—"देखो, ये बच्चे बड़े पुण्यात्मा और गुणी हैं, इनका पालन-पोषण बड़ी सावधानी के साथ करना और जब ये बड़े हो जायें तो इनका आपस में विवाह कर देना। राजा को प्रसन्न करके एक जमीन का टुकड़ा लेकर उस पर एक नगर बसा कर उस नगर का राजकुमार को राजा बनाना।" गोपालों ने 'बहुत अच्छा महाराज, ऐसा ही करेंगे,' कह कर वचन दिया और बच्चों को ले जाकर उनका अच्छी तरह पालन-पोषण किया। ये बच्चे खेलते समय जब बच्चों के साथ झगड़ा करते तो गोपालों के बच्चों को ये लात और घूंसों से मारा करते। वे बच्चे जब रोते और उनके मां-बाप जब उनसे उनके रोने का कारण पूछते तो वे बच्चे कहते—'ये साधु के छोटे ( बच्चे ) बिना मां-बाप के, हमको बड़े जोर से पीटते हैं।' तब इन गोपालों के बच्चों के मां-बाप कहते—ये बच्चे दूसरे बच्चों को तंग करते हैं और कष्ट पहुँचाते हैं। ये रखने योग्य नहीं हैं, ये विज्जितब्ब हैं अर्थात् निकाल देने योग्य हैं, अतएव इनको निकाल देना चाहिये। इस तरह वे विज्जितब्ब से विज्जित या विज्जिय कहलाये। तब से वह तीन सौ योजन का देश भी जहाँ वे रहते थे विज्जि देश कहलाया।

इसके बाद गोपालों ने राजा को प्रसन्न करके उससे यह देश उन बच्चों के लिये प्राप्त किया। और वहां एक नगर बसा कर और उस बालक को उस नगर का राजा बना कर उसका राज्याभिषेक किया, और तब उस षोडश वर्षीय राजकुमार का उस लड़की के साथ विवाह कर दिया। तत्पश्चात् उस युवक राजा ने यह नियम बना दिया कि 'अब से उस देश में कोई भी लड़की विवाह में न तो बाहर से लाई जावे और न किसी को देकर उस देश से बाहर भेजी जाये। इसके अनन्तर उस दम्पत्ति के एक लड़के और एक लड़की का युगल उत्पन्न हुआ और फिर इसी प्रकार सोलह युगल उत्पन्न हुए। इस प्रकार जब वे सोलह युगल क्रमशः युवावस्था को प्राप्त होते गये, उनका विवाह होता गया। उनके लिये उद्यान, क्रीड़ागृह, निवासस्थान आदि के लिये तथा उनके परिजनों और सेवकों आदि के लिये, नगर में पर्याप्त स्थान न रहा तो नगर के चारों ओर एक के बाद दूसरा दूसरे के बाद तीसरा परिकोटा बनवाया गया। इस प्रकार तीन परिकोटे

एक दूसरे से एक-एक कोस की दूरी पर, बनवाये गये। इस प्रकार चूंकि यह नगर बार बार अधिक ही अधिक बड़ा बनाया गया, तो इसकी 'विसालिकता' ( विशालता ) के कारण इसका नाम वेसाली ( वैशाली ) पड़ा। यह वैशाली का इतिहास है[1]।

इस अट्ठकथा में हमको यह कथा भी मिलती है कि सावत्थी ( श्रावस्ती ) में एक धनवान और सम्पन्न श्रेष्ठी रहता था। वह बुद्ध भगवान् का भक्त था। एक दिन उसने बुद्ध भगवान् को उनके संघ के साथ निमन्त्रित करके भोजन कराया। एक बार धन की आवश्यकता पड़ने पर राजा ने इस श्रेष्ठी को बुला कर धन मांगा। श्रेष्ठी ने उत्तर दिया कि उसके पास छिपाया हुआ खजाना है और वह उस खजाने को अपने साथ लाकर उसकी सेवा में फिर उपस्थित होगा [2]

जब बुद्ध भगवान् एक बार श्रावस्ती में विहार कर रहे थे तो बहुत से भिक्खु भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आकर उनके पास कम्मट्ठान ध्यान को सीखने के लिये इकट्ठे हुए। बुद्ध भगवान् ने उनके स्वभाव और शक्ति को देख कर उनको कम्मट्ठान सिखाया। पाँचसौ भिक्खुओं ने कम्मट्ठान सीखा और उसका अभ्यास करने के लिये वे हिमालय की तराई के वन में जाकर रहने लगे। वहाँ वृक्षों के अधिष्ठातृ देवता उनको देखकर भयभीत हुए और उन्होंने इन भिक्खुओं को तरह-तरह से दुखी करके उनको भगाने का प्रयत्न किया। उन देवताओं के द्वारा दुःखी होकर भिक्खु लोग बुद्ध भगवान् के पास आये और अपनी दुःख-कथा कह सुनाई। बुद्ध भगवान् ने उनसे कहा कि उनके हृदय में वृक्षदेवताओं के प्रति मैत्री भाव नहीं है और यही उनके कष्ट का कारण है। तदनुसार बुद्ध भगवान् ने उनको 'मेत्तसुत्त' सिखाया और उसका अभ्यास करने के लिये उनको आदेश दिया। ऐसा करने पर सारे वृक्षदेवता उन भिक्खुओं के मित्र बन गये।[3]

इस अट्ठकथा में हमको प्राचीन भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषयों की महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इसमें अनाथ पिण्डक

१. परमत्थजोतिका (खुद्दक पाठ अट्ठकथा) भाग १, पृ० १५८–१६०।
२. ,, ,, ,, पृ० २१६–१६०।
३. ,, ,, ,, पृ० २३९ तथा आगे।

के जैतवन के विहार का,[१] कपिलवत्थु का,[२] राजगृह के अठारह विहारों का,[३] सत्तपण्णि ( सप्तपर्णि ) गुफा का,[४] वेसाली का,[५] मगध और गया सीस का,[६] गङ्गा का,[७] राजा बिम्बसार का,[८] लिच्छवियों का,[९] थेर उपालिका,[१०] थेर महाकस्सप का,[११] थेर आनन्द का,[१२] राजा महागोविन्द का,[१३] विसाखा श्राविका का, धम्मदिण्णा का,[१४] तथा मल्लिका,[१५] इत्यादि का वर्णन मिलता है।

उपरिलिखित थेर, थेरी, राजा आदि का और नगर, देश तथा स्थानों का वर्णन पहले भी इस पुस्तकमें आ चुका है। थोड़े-बहुत अन्तर के साथ ये वर्णन समन्तपासादिका, सुमङ्गलविलासिनी, पपञ्चसूदनी, मनोरथ-पूरणी, सारत्थप्पकासिनी, जातकट्ठकथा वण्णना तथा धम्मपदट्ठकथा वण्णना के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं।

इस अट्ठकथा की व्याख्याऐं छोटे-छोटे मूल पाठों से बहुत बड़ी हैं। इसकी शैली बोझीली तथा थका देने वाली है तथा अतिशयोक्ति और अत्युक्तिपूर्ण हैं।

---

१. परमत्थजोतिका (खुद्दकपाठ अट्ठकथा) भाग १, पृ० २३।
२. ,, ,, ,, १, पृ० २३।
३. ,, ,, ,, १, पृ० ६४।
४. ,, ,, ,, १, पृ० ६५।
५. ,, ,, ,, १, पृ० १६१।
६. ,, ,, ,, १, पृ० २०४।
७. ,, ,, ,, १, पृ० १६३।
८. ,, ,, ,, १, पृ० १६३।
९. ,, ,, ,, १, पृ० १६३।
१०. ,, ,, ,, १, पृ० ९७।
११. ,, ,, ,, १, पृ० ९१।
१२. ,, ,, ,, १, पृ० ९२।
१३. ,, ,, ,, १, पृ० १२८।
१४. ,, ,, ,, १, पृ० २०४।
१५. ,, ,, ,, १, पृ० १२९।

## (ख) सुत्तनिपात अट्ठकथा:---

'सुत्तनिपात अट्ठकथा' परमत्थजोतिका का द्वितीय भाग है। यह खुद्दकनिकाय के ग्रन्थ सुत्तनिपात की अट्ठकथा है। यह भी आचार्य बुद्धघोष की रचना है। अन्य अट्ठकथाओं की तरह इसमें भी ऐतिहासिक, भौगोलिक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सूचनाओं का भण्डार है। इसमें राग, तण्हा, मान, दोस, मोह, असूया, अकुसलमूल आदि बौद्ध धर्म शास्त्रों के सांकेतिक शब्दों की ज्वलन्त परिभाषा दी हुई है। इसी प्रकार सति, ब्रह्मलोक, उपोसथ, संकप्प, पमाद, झाण, धम्म, गम्भीरपञ्ञा, मुसावाद, पाणातिपात, उपाधि आदि विशिष्ट शब्दों की अर्थसंगति, कहीं तो नियमानुसार तथा कहीं अटकलपच्चू दी गई है। उदाहरणार्थ णिब्बुत्त शब्द को लीजिये। इसकी व्याख्या धनिय गोपाल के प्रकरण में बड़े रोचक ढङ्ग से की गई है, तथा दूसरी जगह खग्गविसाण सुत्त में इसकी व्याख्या में तीन प्रकार के डिण्डिम ( ढोलों ) का निर्देश है।

गन्धमादन पर्वत तथा चण्डगब्भ गुहा ( गुफा ) आदि के वर्णन के साथ-साथ बनारस, मगध, सावत्थी, कपिलवत्थु, कोसल, नेरञ्जरा, आदि के वर्णन में आचार्य बुद्धघोष अपने भौगोलिक ज्ञान का भी परिचय देते हैं। इसी प्रकार इसमें दिये हुए बिम्बसार, सुन्दरी परिव्वाजक, कोसलराज पसेनदि ( प्रसेनजित ) आदि के विशद वर्णनों से उनके ऐतिहासिक ज्ञान का भी पूर्ण आभास मिलता है। वे लिखते हैं कि बिम्बसार को मागध भी कहते थे, क्योंकि वह मगध देश का स्वामी था, वह सेनिय ( श्रेणिक ) इस कारण कहलाता था कि उसके पास बहुत बड़ी सेना थी और बिम्बसार इसलिये कहलाता था, क्योंकि उसके शरीर का वर्ण तपे हुए सोने के समान था।

राजगह ( राजगृह ) मानधाता, महागोविन्द आदि प्रसिद्ध राजाओं की राजधानी थी, इस कारण यह नगर राजगृह कहलाता था। बुद्ध भगवान् के समय में यह एक बड़ा नगर हो गया था, किन्तु किसी समय यह उजाड़ और बिना बसा हुआ था तथा किसी अन्य समय में यह यक्षों का नगर भी रहा था।

इस ग्रन्थ के वर्णनों के द्वारा बहुत सी इधर-उधर की बातों पर भी आकस्मिक तौर से प्रकाश पड़ता है। उनमें से कुछ का यहाँ वर्णन देना लाभप्रद होगा:—

एक बार बनारस के एक बढ़ई ने एक काठ का पक्षी तैयार किया और उसके द्वारा उसने हिमालय में एक भूमि का प्रदेश जीता और उसका राजा बन गया। उसकी राजधानी कट्ठवाहनगर नाम से प्रसिद्ध हुई। उसने बनारस के राजा को बहुत सी कीमती चीजें भेट रूप में भेजीं और उससे मित्रता कर ली। बदले में बनारस के राजा ने उसके पास बनारस में भगवान् कस्सपबुद्ध के आगमन के समाचार भेजे वहाँ का युवराज अन्य साथियों के साथ बनारस के लिये चल पड़ा। किन्तु जब वे लोग बनारस पहुँचे तो कस्सप बुद्ध का महापरिनिब्बाण हो चुका था। बाद में युवराज एक भिक्खु और कस्सप बुद्ध के अवशेषों को लेकर वापिस कट्ठवाहनगर को गये। भिक्खु बाद में राजा और उसकी प्रजा को बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लेने में सफल हुआ।[1]

बनारस का एक व्यापारी पांचसौ गाड़ी लेकर माल खरीदने के लिये सीमान्त प्रदेश में गया और वहाँ उसने चन्दन खरीदा।[2] ( यह बात सिहली अट्ठकथा में होगी अन्यथा सीमान्त देश में चन्दन कहाँ मिलता, भारत में तो चन्दन दक्षिण में ही मिलता है। यह भी सम्भव है कि वहाँ किसी के पास चन्दन का संग्रह रहा हो )।

सावत्थी ( श्रावस्ती ) में पसुर नाम का एक परिव्राजक रहता था। वह बड़ा शास्त्रार्थ करने वाला था। उसने एक जम्बुवृक्ष की (जामुन की) शाखा गाढ़ दी और घोषणा कर दी कि जो कोई उसके साथ शास्त्रार्थ करने में समर्थ हो वही इसको उखाड़े। सारिपुत्त ने उसे उखाड़ा। पसुर ने सारिपुत्त के साथ 'ऐन्द्रिय सुख' तथा 'चाक्षुष सान्निकर्ष जन्य ज्ञान' के विषयों पर शास्त्रार्थ किया। पसुर हार गया और सारिपुत्त से दीक्षा लेने के लिये और शास्त्रार्थ कला सीखने के लिये उनके साथ जैतवन गया। जैतवन विहार में उसकी लालुदायी भिक्खु से भेंट हुई। यह सोच कर कि

---

१. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ५५।

२. ,, ,, पृ० ५२३।

यह लालुदायी बड़ी विद्वान् होगा, उसने उससे दीक्षा ली। उसने लालुदायी से शास्त्रार्थ किया और लालुदायी को परिव्राजक बना लिया; यद्यपि वह इसके बाद भी भिक्खु के कपड़े पहनता रहा। पसुर इसके बाद श्रावस्ती में गौतम बुद्ध से शास्त्रार्थ करने गया। उनसे उसका शास्त्रार्थ हुआ, किन्तु वह हार गया। तब भगवान् बुद्ध ने उसको उपदेश दिया और वह पुनः बौद्ध भिक्खु बन गया।[1]

परमत्थजोतिका से पता चलता है कि सुत्तनिपात के 'कोकालिक' सुत्त की अन्तिम दो गाथाओं की व्याख्या सिंहली महाअट्ठकथा में नहीं दी गई थी, इस कारण आचार्य बुद्धघोष समझते हैं कि वे दो गाथाऐं मूलसुत्त में नहीं थीं, बाद में इसमें जोड़ दी गई हैं।[2]

परमत्थजोतिका में श्रीलंका के बारे में भी कुछ सूचनाएं मिलती हैं। अन्य अट्ठकथाओं के समान इसमें भी मरीचविहार के समर्पण महोत्सव के दिन घटित होने वाली एक छोटे सामणेर की गर्म खीर वाली घटना का उल्लेख है, जिसके नीचे रखने के लिये एक सामणेरी ने अपना पात्र दिया था और साठ वर्ष बाद भारत में फिर मिलने पर उन दोनों के हृदय में वासना जागृत हुई थी, और उन दोनों ने पाराजिका अपराध किया था[3]। इसमें अन्य अट्ठकथाओं के समान कहा गया है कि श्रीलङ्का के गाँवों के उपाश्रयों में कोई स्थान ऐसा नहीं था, जहाँ बैठकर भिक्खुओं ने आर्हन्त्य पद प्राप्त नहीं किया हो[4]। इसमें कहा गया है कि थेर पुस्सदेव ने उन्नीस वर्ष तक 'गतपच्चागतवत्त' का अभ्यास किया था। इसी प्रकार काल-पल्लिय मण्डप के थेर महानाग ने सात वर्ष तक खड़े रहने की और चलते रहने की केवल दो ही वृत्तियां धारण की थीं तथा बाद में सोलह वर्ष तक 'गतपच्चागतवत्त' का अभ्यास किया था[5]। भिक्खुओं की विहारों में रहते समय की दिनचर्या के बारे में प्रकाश डालते हुए इसमें बताया गया

१. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ५३८।
२. ,, ,, पृ० ४७७।
३. ,, ,, पृ० ७१।
४. ,, ,, पृ० ५३।
५. ,, ,, पृ० ५५-५६।

कि भिक्खु का कर्त्तव्य था कि वह विहार को साफ सुथरा रखे, बोधिवृक्ष तथा चेतिय के आंगन को साफ करे, झाड़ू को ठीक रखे, भिक्खुओं के काम में आने वाले पानी को ठीक रखे। ऐसे विहार में भिक्खुओं का जीवन शान्ति और सहयोग पूर्ण व्यतीत होता है[1]। इसमें यह भी बताया गया है कि श्रीलङ्कावासियों के जीवन में बौद्ध धर्म इतना घुल-मिल गया था कि जनता के गीत भी धार्मिक होते थे। एक बार धान के खेत को रखाने वाली एक बालिका के इसी प्रकार के गीत को सुन कर साठ भिक्खुओं को आर्हन्त्य पद प्राप्त हो गया था[2]। अब भी श्रीलङ्का वाले जब खांसते अथवा छींकते हैं तो 'नमोबुद्धाय' शब्दों का उच्चारण करते हैं[3]। इसमें चेतियों के बारे में उल्लेख है कि चेतिय पहले यक्खों के निवास स्थान थे। बाद में अग्गलाव तथा गोतमक जैसे बहुत से चेतिय विहारों के रूप में बदले गये, किन्तु मूल नामको वे अबभी धारण किये हुए हैं[4]। इसमें उल्लेख है कि भूत-प्रेतादिक की बाधा को दूर करने के लिये परित्तसुत्तों ( रक्षा सुत्तों ) का पाठ किया जाता था[5]। भगवान् बुद्ध ने सबसे पहले महामारी ( प्लेग ) के भय को दूर करने के लिये 'रतन सुत्त' का पाठ किया था। राजा उपतिस्स ने भी अकाल के दुष्परिणामों को दूर करने के लिये भिक्खुओं से इसी सुत्त का पाठ करवाया था।

इसमें ब्रह्मा सहंपति के बारे में कहा गया है कि इन्होंने बुद्ध भगवान् के धम्मचक्कपवत्तन ( सर्व प्रथम धर्मोपदेश देने ) के समय उनको सिनेरु ( सुमेरु ) के बराबर लम्बी रत्नों की माला भेंट की थी[6]। इसी के अनुसार यह ब्रह्मा सिंहलद्वीप में भी चतारो महाराजानो तथा सक्क ( शक्र=इन्द्र ) के साथ एक बार आया था, जबकि एक थेर को आर्हन्त्य पद प्राप्त हुआ था[7]। जिस प्रकार इन्द्र की चार पुत्रियां—आसा ( आशा )

---

१. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ५७।
२. ,, ,, पृ० ३९७।
३. डा० आदिकरम–अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
४. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ३४४।
५. ,, भाग १, पृ० १५७।
६. ,, ,, पृ० १७१।
७. ,, भाग २, पृ० ५६।

सद्धा ( श्रद्धा ), सिरी ( श्री ) तथा हिरि ( ह्री=लज्जा ) हैं, उसी प्रकार परमत्थजोतिका में मार की तीन पुत्रियों का उल्लेख है। उनके नाम तण्हा ( तृष्णा ), अरति तथा रागा हैं[1]। अन्तर इतना है कि इन्द्र धार्मिक देव है इस कारण उसकी पुत्रियां भी धार्मिक-सात्त्विक गुण रूप हैं और मार पाप्मा ( पापात्मा ) समझा जाता है, इस कारण उसकी पुत्रियां भी विकार रूप हैं और प्राणी को पाप की ओर अग्रसर करती हैं। वास्तव में इन्द्र और मार की पुत्रियाँ हृदय की अच्छी और बुरी प्रवृत्तियों की प्रतीक हैं। इन्द्र के हाथी का नाम एरावन ( ऐरावत ) है। यह देवों की कामरूप जाति का है, जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है। जब इन्द्र उद्यान में जाता है तो यह ऐरावत हाथी का रूप धारण कर लेता है[2]। जैन पुराणों में भी ऐरावत हाथी का ऐसा ही वर्णन और प्रयोजन बताया गया है, किन्तु वहाँ उसके शरीर का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण है। ★★

---

१. परमत्थजोतिका भाग २, पृ० ५४४।
२. ,, ,, पृ० ३६८।

# पंचम अध्याय

## अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाऐं

### १. अट्ठसालिनी

'अट्ठमालिनी' 'अभिधम्मपिटक' के प्रथम ग्रन्थ 'धम्मसंगणि' अथवा 'धम्मसंगह' के ऊपर आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा है। विभंग की अट्ठकथा सम्मोहविनोदनी के समान इसे भी आचार्य बुद्धघोष ने भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर लिखा था। श्री बी० सी० ला के अनुसार गंधवंस में इन्हीं यति बुद्धघोष का चुल्लबुद्धघोष के नाम से दो अट्ठकथाओं के रचयिता के रूप में उल्लेख किया गया है[1]। इस ग्रन्थ को श्री ई० मुल्लर ने पाली टैक्स्ट सोसाइटी के लिये रोमन लिपि में सम्पादित किया है। श्री पेमोंगटिन ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है तथा श्रीमती रायस् डेविड्स ने इसी का पुनरीक्षित संस्करण निकाला है। डा० बापट ने इसका देवनागरी संस्करण भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना के लिये सम्पादित किया है। इसके ऊपर पाली भाषा में 'पथम परमत्थपकासिनी' नाम की टीका भी है। इसके अतिरिक्त इसके संक्षिप्त सार के रूप में 'अभिधम्मकथा' नाम की एक पुस्तक पाली गद्य में भी है। यह पुस्तक बौद्ध सिद्धान्त के विद्यार्थियों के लिये प्रारम्भिक पथ-प्रदर्शन के लिये अत्युत्तम है। श्री बी० सी० ला इस अट्ठकथा के बारे में कहते हैं कि बौद्ध सिद्धान्त के विद्यार्थी इसे अच्छी तरह पढ़ते हैं और अभिधम्म के लेखक इसके अवतरण अपने लेखों और पुस्तकों में उद्धृत करते हैं। श्री पेमोंगटिन का कहना है कि इसके 'प्राचीन निस्सय' तथा 'नवीन निस्सय' नाम से बरमी भाषा में दो अनुवाद हैं। इस ग्रन्थ की मौलिक पाण्डुलिपि बर्नार्ड फ्री लाइब्रेरी रंगून में सुरक्षित है।

बौद्ध परम्परा तथा महावंस के अनुसार अट्ठसालिनी उन्हीं प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की रचना है, जिन्होंने विनयपिटक तथा सुत्तपिटक के

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष' (१९४६ संस्करण), पृ० ८८

ग्रन्थों के ऊपर अट्ठकथाऐं लिखी हैं[१]। महावंस में यह भी उल्लेख है कि णाणोदय पकरण को लिख कर उन्होंने अट्ठसालिनी भारत में ही लिखी थी—

तत्थ णाणोदयं नाम कत्वापकरणं तदा।
धम्मसंगणियाकासि कच्छं सो अट्ठसालिनीं ॥[२]

सासनवंस इस वर्णन की पुष्टि करता है[३]। सद्धम्मसंगह में इसके बारे में एक दूसरी ही परम्परा का उल्लेख है कि आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलङ्का जाकर महापच्चारी अट्ठकथा को सिंहली से मागधी में लिखा और तब धम्मसंगणि की अट्ठकथा अट्ठसालिनी लिखी[४]।

अट्ठसालिनी के देवनागरी संस्करण की भूमिका में डा० बापट कहते हैं कि यह बात सम्भव नहीं कि आचार्य बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग से पहले भारत में अट्ठसालिनी लिखी, क्योंकि—जैसा प्रो० कोसम्बी ने विसुद्धिमग्ग की भूमिका में दर्शाया है[५]—अट्ठसालिनी की प्रस्तावना की गाथाओं में विसुद्धिमग्ग का उल्लेख है:—

कम्मट्ठानानि सब्बानि चरियाभिञ्ञा विपस्सना।
विसुद्धिमग्गे पनिदं यस्मा सब्बं पकासितं ॥[६]

अट्ठसालिनी में चार ध्यानों के ऊपर आलोचना भी विसुद्धिमग्ग की सी है, जिसके अन्त में लेखक कहते हैं—सब्बकम्मट्ठानं हि भावनाविधानं, सब्बं अट्ठकथानयेन गहेत्वा विसुद्धिमग्गे वित्थरितं, किं तेन तत्थ तत्थ पुन वुत्तेनेति न तं वित्थारयाम। पालिया पन हेट्ठा अनागतं अत्थं अपरिहायेत्वा निरन्तरं अनुपदं वण्णनं करिस्साम[७]। इसी प्रकार इसमें

---

१. महावंस (चुल्लवंस) अध्याय ३७, श्लोक २१५–२४६।
२. ,, ,, ,, श्लोक २२५।
३. सासनवंस, पृ० ३१।
४. जॉर्नल ऑफ पाली टैक्स्ट सोसाइटी सन् १८९०।
५ विसुद्धिमग्ग (देवनागरी संस्करण)—भूमिका, पृ० १४–१५।
६. अट्ठसालिनी, पृ० १, गाथा १८।
७. ,, पृ० ४८१–८८।

समन्तपासादिका तथा निकायों की अट्ठकथाओं का भी उल्लेख मिलता है[1]। श्रीमती रायस् डेविड्स अपनी पुस्तक 'मेनुअल ऑफ बुद्धिस्ट साइकोलॉजी एण्ड एथिक्स' में इसके बारे में समाधान करती हुई कहती हैं कि 'चाहे यह ग्रन्थ गया में लिखा गया हो, किन्तु बाद में श्रीलङ्का में आने के बाद तथा सिंहली अट्ठकथाओं का अध्ययन करके आचार्य बुद्धघोष ने इसको आद्योपान्त पूर्णरूप से दुहरा कर फिर नवीन संस्करण लिखा है[2]।'

डा० मललसेकर भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि 'यह मत जैसा कि श्रीमती रायस् डेविड्स ने भी दिखाया है, इस बात से और भी अधिक पुष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में सिंहली अट्ठकथाओं, थेरों आचरियों तथा विसुद्धिमग्ग के उल्लेख आते हैं तथा उनके उद्धरण भी उद्धृत किये गये हैं।' इससे स्पष्ट हो गया कि यह ग्रन्थ पहले भारतमें लिखा गया था, क्योंकि भारत में अभिधम्म की प्रधानता थी, जबकि श्रीलङ्का में विनय की थी।.आचार्य बुद्धघोष ने त्रिपिटक पढ़ने के बाद इसी कारण भारत में णाणोदय लिखने के बाद अट्ठसालिनी अट्ठकथा सबसे पहले आरम्भ की थी। किन्तु गुरू के बतलाने पर कि अट्ठकथाएं श्रीलंका में प्राप्य हैं, भारत में नहीं, ये श्रीलंका गये और क्योंकि वहाँ विनय की प्रधानता थी, इसी कारण वहां उन्होंने विसुद्धिमग्ग के पश्चात सबसे पहले विनयपिटक की अट्ठकथा 'समन्तपासादिका' लिखी और बाद में अपनी पूर्व लिखित अट्ठसालिनी को दुहरा कर उसका नवीन संस्करण लिखा। उपर्युल्लिखित धम्मसंगह का लेख भी इसी रूप में संगत बैठता है, क्योंकि सिंहली अट्ठकथा महापच्चरी विनय के ऊपर थी। उसका मागधी भाषान्तर लिखने के बाद उन्होंने अट्ठसालिनी लिखी। इससे इस बात का भी समाधान हो जाता है कि समन्तपासादिका तथा सुत्तपिटक के ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में अट्ठसालिनी का नाम क्यों आता है। शायद इनमें उन्होंने अपनी भारत में लिखी हुई अट्ठसालिनी का उल्लेख किया हो और जब अट्ठसालिनी श्रीलंका में दुहराई गई तब उसमें समन्तपासादिका तथा निकायों की अन्य अट्ठकथाओं का,

---

१. अट्ठसालिनी, पृ० ९७-९८।

२. श्रीमती रायस् डेविड्स—इण्ट्रोडक्शन टू दी मेनुअल ऑफ बुद्धिस्ट साईकोलाजी एण्ड एथिक्स, पृ० २७।

सिंहली अट्ठकथाओं का, विसुद्धिमग्ग का और श्रीलंका के थेरों का उल्लेख आया है।

डा० बापट कहते हैं कि प्रायः सभी अट्ठकथाओं का एक दूसरी में उल्लेख इस कारण है कि ये बाद में बार-बार लिखी गई हैं और विद्वान् लेखकों ने उनको जब कभी लिखा, अपने समय के तत्कालिक रूप में लाने के लिये उनमें बीच-बीच में क्षेपकांश जोड़ दिये, जिससे कि अपने से बाद वाली अट्ठकथाओं के भी उल्लेख उनमें आ गये हैं। डा० बापट ने अट्ठसालिनी ( देवनागरी संस्करण ) की भूमिका में समन्तपासादिका के सिंहली और चीनी संस्करणों का मिलान करके यह बात स्पष्ट करके दिखा दी है[1]।

अट्ठसालिनी की प्रस्तावना की गाथा १६ से ज्ञात होता है कि यह अट्ठकथा भी महाविहार की परम्परा के अनुसार लिखी गई है। यद्यपि बौद्ध परम्परा, महावंस, गंधवंस, सासनवंस तथा धम्मसंगह इस ग्रन्थ को प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की रचना मानते हैं, किन्तु डा० बापट कहते हैं कि यह उनकी रचना नहीं हो सकती[2]। वे कहते हैं कि "यद्यपि अट्ठसालिनी और विसुद्धिमग्ग में ऐसे अगणित स्थल हैं, जहाँ दोनों में समानता है, किन्तु ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं है, जहाँ दोनों की व्याख्याओं में असमानता है। और यह असमानता केवल क्षेपकांशों तक ही सीमित नहीं है, अपितु दार्शनिक विचारों और बौद्ध दर्शन के सांकेतिक ( तकनीकी ) दृष्टिकोणों तक में देखी गई है। उन्होंने अट्ठसालिनी की भूमिका में ऐसी असमानताओं के पच्चीस स्थल उद्धृत किये हैं,[3] जिनमें से अधिकतर उपमाओं के देने न देने के अथवा उपमाओं की व्याख्या के हैं। इन स्थलों में से कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां विसुद्धिमग्ग का अभिमत मतान्तर रूप में दिया गया है। किन्तु बाईसवें स्थल में उन्होंने दिखाया है कि अट्ठसालिनी में धम्मसंगणि के अनुसार अनुच्छेद २०३ में आठ कसिण तथा अड़तीस कम्मट्ठान स्वीकृत किये गये हैं, जबकि विसुद्धिमग्ग में दस कसिण तथा अड़तालीस कम्मट्ठान स्वीकार किये गये हैं। इसी प्रकार तेईसवें स्थल में

१. मिलानविषयक ब्यौरे के लिये इस पुस्तक के पृ० ६३-६४ भी देखें।
२. डा० बापट—अट्ठसालिनी (भूमिका)।
३. अट्ठसालिनी (देवनागरी संस्करण), पृ० ३५-३६।

वे कहते हैं कि अट्ठसालिनी के 'मन्दपञ्ञस्स चत्तारि अनुलोमानि'[1] पाठ में मन्द प्रज्ञा वाले के चार अनुलोम स्वीकृत किये गये हैं, जबकि विसुद्धिमग्ग में 'यस्स चत्तारि अनुलोमानि पटिक्खितं तस्स सारतो पच्चेतब्बम्' इस पाठ के द्वारा वे प्रतिक्षिप्त अर्थात अस्वीकृत कर दिये गये हैं[2] ।

इस प्रकार वे कहते हैं कि उपर्युक्त उदाहरणों के द्वारा दिखाई गई अन्त:साक्षियों के आधार पर हम देख सकते हैं कि अट्ठसालिनी के कुछ पदों की व्याख्या कई प्रकार से विसुद्धिमग्ग की तथा अन्य अट्ठकथाओं की जिनके कि आचार्य बुद्धघोष निर्विवाद रूप से रचयिता सिद्ध हैं, व्याख्याओं से भिन्नता रखती है। यदि यह ग्रन्थ भी आचार्य बुद्धघोष का रचा हुआ होता तो अर्थसंगतियों में, अथवा कम्मट्ठान और अनुलोमों के दार्शनिक दृष्टिकोणों में अन्तर नहीं होना चाहिये था। ऐसे स्थलों में भी जहाँ कि निकायों की अट्ठकथाऐं विसुद्धिमग्ग को प्रमाण रूप में निर्दिष्ट करती हैं, अट्ठसालिनी के रचयिता अपनी निजी व्याख्या देते हैं। इसी प्रकार विसुद्धिमग्ग की व्याख्याओं को अट्ठसालिनीकार ने मतान्तरों के रूप में ग्रहण किया है। यदि बुद्धघोष ही इसके रचयिता होते तो उनके समान प्रकाण्ड विद्वान् अपने ही ग्रन्थ की व्याख्याओं को मतान्तर रूप में क्यों देते ? इस प्रकार इस ग्रन्थ के अन्त में उनकी अन्य अट्ठकथाओं के समान प्रशंसात्मक उपसंहार के होने पर भी उपर्युक्त कारणों से आचार्य बुद्धघोष के अट्ठसालिनी के रचयिता होने की परम्परा विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है[3] ।" इसीलिये वे आगे कहते हैं कि "मालूम पड़ता है कि अट्ठसालिनी किसी अन्य बाद के बुद्धघोष की रचना प्रतीत होती है, जोकि केवल त्रिपिटक को ही अपनी अट्टकथा का आधार नहीं रखते, किन्तु सिंहली महाअट्ठकथा, आगमट्ठकथा, मिलिन्दपञ्हो, विसुद्धिमग्ग तथा श्रीलंका के बड़े-बड़े आचरियों की भी व्याख्याओं का आधार लेते हैं। उन्होंने सिंहली अट्ठकथा और आचरियों की रचनाओं के अध्ययन

---

१. अट्ठसालिनी ( देवनागरी संस्करण ) अध्याय ३ अनुच्छेद ५०७।
२. डा० बापट—अट्ठसालिनी ( भूमिका ) ।
३. डा० बापट—अट्ठसालिनी ( भूमिका ) ।

के परिणाम क्रमशः अट्ठसालिनी की 'द्वारकथा'[१] और 'विपाक उद्धार कथा'[२] में दिये हैं।"

अपने कथन की साक्षी स्वरूप डा० बापट ने श्रीलंका के आचरियों तथा थेरों की सूची दी है और कहा है कि 'यह ग्रन्थ श्रीलंका में ही रचा गया था क्योंकि प्रस्तावना की चौदहवीं गाथा के 'दूधमुत्तमंदीपं' इस वाक्यांश से यह बात स्पष्ट होती है।' इसी वाक्य को सिद्ध करने के लिये उन्होंने अट्ठसालिनी में आये हुए श्रीलंका के राजाओं, पर्वतों, ग्रामों, चेतियों और थेरों की सूची का भी उल्लेख किया है और बताया है कि 'श्रीलंका और श्रीलंका के उपर्युक्त राजाओं, पर्वतों आदि का वर्णन देशभक्तिपूर्ण होने से वे श्रीलंका के ही रहने वाले थे ऐसा सिद्ध होता है।' आगे वे कहते हैं कि 'दूसरी ओर जब वे भारतीय जीवन और वातावरण तथा ऐतिहासिक और भौगोलिक बातों का वर्णन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनका वर्णन ग्रन्थीय है अथवा परम्परा से ज्ञात किया हुआ[३] है। उनके इस उपसंहार वाक्य से कि 'उन्होंने यह ग्रन्थ भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर रचा था' श्री बी० सी० ला निष्कर्ष निकालते हैं कि ये प्रार्थना करने वाले बुद्धघोष ग्रन्थकर्त्ता से भिन्न कोई तीसरे बुद्धघोष होंगे, जिन्होंने चुल्लबुद्धघोष से इसके रचने की प्रार्थना की थी[४]।' किन्तु श्रीमती रायस् डेविड्स का मत है कि 'प्रार्थना करने वाले आचार्य बुद्धघोष हैं और रचयिता उनके शिष्य बुद्धघोष हैं।"

श्री बी० सी० ला ने अपनी पुस्तक 'बुद्धघोष' में सोदाहरण बताया है कि "आचार्य बुद्धघोष पोराणाचरियों के अतिरिक्त अन्य आचार्यों के मतों को नहीं मानते, जबकि अट्ठसालिनी के रचयिता अन्य आचरियों के मतों को भी ग्रहण करते हैं। इससे भी अट्ठसालिनी

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ९२-१७२।
२. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ५८७-६५०।
३. डा० बापट—अट्ठसालिनी की भूमिका।
४. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।

के रचयिता प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष न होकर कोई अन्य बुद्धघोष ठहरते हैं और वे कोई तीसरे बुद्धघोष हैं।"[१]

डा० बापट के उपर्युक्त कथन की युक्तियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने जो पच्चीस स्थल असमानता के उद्धृत किये हैं उनमें से उपमाओं के देने न देने के अथवा उपमाओं की व्याख्या सम्बन्धी असमानताओं के बारे में यह कहा जा सकता हैं कि विसुद्धिमग्ग में जो उपमाऐं स्पष्ट नहीं की गईं, वे अट्ठसालिनी में स्पष्ट कर दी गई हैं तथा वहाँ जो नहीं दी गई थी, अट्ठसालिनी में नवीन दे दी गई हैं। विसुद्धिमग्ग के अभिमतों के मतान्तर रूप में देने वाली उनकी युक्ति के बारे में भी यह विचार कर लेना चाहिये कि विसुद्धिमग्ग में वे स्वतंत्र लेखक हैं, जब कि अट्ठसालिनी में वे धम्मसंगणि की सिंहली अट्ठकथा के अनुवादक हैं। इसलिये अट्ठसालिनी में उनको सिंहली अट्ठकथा के अनुसार चलना पड़ा है, जबकि विसुद्धिमग्ग में उनके अपने स्वतंत्र विचार हैं। इसलिये विसुद्धिमग्ग लिखते समय उनको दस कसिण तथा अड़तालीस कम्मट्ठान जचे तो उन्होंने उतने ही लिख दिये और अलोक कसिण की जगह परिच्छिन्नाकास कसिण का उल्लेख किया, किन्तु अट्ठसालिनी में धम्मसंगणि की सिंहली अट्ठकथा के अनुसार आठ कसिण और अड़तीस कम्मट्ठान देने पड़े। चार अनुलोमों के बारे में भी कहा जा सकता है कि विसुद्धिमग्ग में उन्होंने उनको अस्वीकृत किया, किन्तु अट्ठसालिनी लिखते समय धम्मसंगणि के अनुसार ही मन्द प्रज्ञा वाले के लिये चार अनुलोमों को स्वीकार करना पड़ा। अट्ठसालिनी में विसुद्धिमग्ग के अभिमतों को मतान्तर रूप में रखने के बारे में भी यही बात लागू हो सकती है कि अट्ठसालिनी लिखते समय धम्मसंगणि की सिंहली अट्ठकथा के दृष्टिकोण को प्रधानता देनी पड़ी और साथ में अपने विसुद्धिमग्ग के जो अभिमत थे वे भी उनको ठीक जचे, इसीलिये उनको मतान्तर रूप में वहाँ रख दिया, अन्यथा अनभिमत मतान्तरों को वहाँ रखने की क्या आवश्यकता थी? उनको मतान्तर रूप में वहाँ रखने से तो 'धम्मसंगणि से असमानता होने पर भी उन्होंने अपने अभिमतों की मतान्तर रूप में पुष्टि ही की,' ऐसा अभिप्राय निकलता है। इन असमानताओं के बारे में श्री बी० सी० ला अपनी पुस्तक 'बुद्धघोष'

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।

में लिखते हैं कि 'ये असमानताऐं केवल शब्दों में तथा वर्णन मात्र में हैं, किन्तु वर्णनीय विषयों की सैद्धान्तिक व्याख्या में नहीं हैं[1]।' दूसरी बात यह भी हो सकती है कि जो असमानताएं हैं वे क्षेपक भी हो सकती हैं। फिर भी डा० बापट का बौद्ध शास्त्रों का बहुत अधिक और गंभीर अध्ययन है और इसलिये उनकी राय अधिक वजनी हो सकती है; किन्तु साथ में महावंसादि प्राचीन ग्रन्थों और प्राचीन बौद्ध परम्पराओं की साक्षियों के साथ उनके मत के विरुद्ध ऊपर दी गई युक्तियां भी आचार्य बुद्धघोष को अट्ठसालिनी का रचयिता सिद्ध करने में समर्थ हो सकती हैं, इसमें कोई आपत्ति नहीं; विद्वान् स्वयं इस बारे में और खोज कर सकते हैं। अन्य ग्रन्थों के समान इसमें भी उपसंहार के वाक्य का होना आचार्य बुद्धघोष के ही इस ग्रन्थ का रचयिता होने की पुष्टि करता है, क्योंकि यह वाक्य किसी निश्चित प्राचीन परम्परा के अथवा किसी लेख के आधार पर ही लिखा गया होगा, यों ही मनघड़न्त बात का प्रसिद्ध ग्रन्थों में जोड़ा जाना सम्भव नहीं।

श्रीलंका और उसके राजाओं तथा पर्वतों इत्यादि के वर्णन तथा भारतीय ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन तो सिंहली अट्ठकथाकार के हैं, वे श्रीलंका के बारे में स्नेहपूर्ण और स्पष्ट होने ही चाहियें। आचार्य बुद्धघोष तो उनके अनुवादक हैं। उन्हें जैसा वर्णन सिंहली अट्ठकथाओं में मिला वैसा ही अनुवाद कर दिया। दूसरी बात यह भी हैं कि अट्ठसालिनी लिखते समय आचार्य बुद्धघोष को भी कितने ही वर्ष श्रीलंका में व्यतीत हो चुके थे, इस कारण उनको वहाँ के ऐतिहासिक और भौगोलिक ब्यौरों का स्पष्ट ज्ञान अवश्य हो गया होगा। इस कारण भी वर्णन में स्पष्टता हो सकती है। भारतीय भौगोलिक वर्णन के बारे में हो सकता है कि यह वर्णन उन्होंने सिंहली ग्रन्थों और परम्पराओं के आधार पर किया हो, क्योंकि यह सम्भव है कि उन दिनों में यातायात तथा संचार के साधन इतने नहीं थे कि आचार्य बुद्धघोष सारे भारत की भौगोलिक अवस्थाओं को स्पष्ट रूप से जान लेते। इसके लिये तो अन्य ग्रन्थों और परम्पराओं का सहारा लेना पड़ता था। यदि यह ग्रन्थ भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर लिखा गया है, और किसी बुद्धघोष ने लिखा है, तो फिर किसी तीसरे

१. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ८८।

बुद्धघोष की कल्पना करनी पड़ती है, जैसा कि श्री बी० सी० ला ने की है। किन्तु तीसरे तत्कालीन विद्वान् बुद्धघोष का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ये दूसरे चुल्लबुद्धघोष यदि इस ग्रन्थ के कर्त्ता होते तो उनकी दो और अट्ठकथाओं के साथ अट्ठसालिनी का भी नाम उनके रचे हुए ग्रन्थों की सूची में अवश्य होता। साथ में यह भी सोचने की बात है कि यदि चुल्लबुद्धघोष अट्ठसालिनी के कर्त्ता होते तो वे विन्ध्य प्रदेश और दक्षिणी प्रदेशों का इतना स्पष्ट वर्णन नहीं कर सकते थे जैसा कि अट्ठसालिनी में मिलता है।

श्रीमती रायस् डेविड्स का यह कथन कि आचार्य बुद्धघोष की प्रार्थना पर उनके शिष्य चुल्लबुद्धघोष ने यह ग्रन्थ रचा, बिल्कुल ही असंगत है। यदि ऐसा होता तो शिष्य चुल्लबुद्धघोष प्रार्थना शब्द नहीं प्रयोग करते, 'आदेश' शब्द देते, जैसा कि स्वयं आचार्य बुद्धघोष ने अपने गुरु भदन्त संघपाल के लिये अपने विसुद्धि-मग्ग की रचना के प्रकरण में दिया है। फिर चुल्लबुद्धघोष इतने बड़े विद्वान् भी तो मालूम नहीं पड़ते, जो इतनी प्रौढ़ता के साथ अट्ठसालिनी लिख सकते। उनके ग्रन्थों के साथ अट्ठसालिनी का मिलान करने से यह बात और भी स्पष्ट हो सकती है।

योरोपियन विद्वान् और श्री बी० सी० ला, डा० मललसेकर तथा डा० आदिकरम प्रभृति भारतीय एवं सिंहली विद्वान् चुल्लबुद्धघोष को जातकट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा तथा परमत्थजोतिका का भी रचयिता कहते हैं। और अपने दो अन्य अट्ठकथा ग्रन्थों के वे रचयिता हैं ही। फिर समझ में नहीं आता कि छः अट्ठकथाओं के रचयिता, जिनमें कि जातकट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा, अट्ठसालिनी तथा परमत्थजोतिका सदृश प्रसिद्ध और बड़े-बड़े ग्रन्थ सम्मिलित हैं, किस प्रकार इतने अप्रसिद्ध रह जाते कि महावंस, गन्धवंस, सासनवंस, सद्धम्मसंगह तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थ और बौद्ध परम्परायें उनको इन ग्रन्थों के रचयिता के रूप में उल्लिखित न करतीं और भुला देतीं ! जबकि, उपर्युक्त विद्वानों के अनुसार उसी समय के और उतनी ही अट्ठकथाओं—समन्तपासादिका, सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी, सारत्थप्पकासिनी, मनोरथपूरणी तथा सम्मोहविनोदनी के रचयिता आचार्य बुद्धघोष इतनी प्रसिद्धि पा गये कि केवल बौद्ध परम्पराओं ने ही नहीं,

उपर्युक्त महावंसादि सर्व ग्रन्थों ने उनका अपने ग्रन्थों में इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अट्ठसालिनी, जातकट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा तथा परमत्थजोतिका के भी रचयिता के रूप में उल्लेख किया है।

इसलिये मानना पड़ता है कि अट्ठसालिनी के रचयिता प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ही हैं। श्री बी० सी० ला स्वयं भी अपनी पुस्तक 'बुद्धघोष' में कहते हैं, कि उन्होंने इस ग्रन्थ को विसुद्धिमग्ग के पूरक के रूप में लिखा था। इसी कारण इसमें धम्म के विषयों के ऊपर विस्तृत वर्णन न होकर केवल धम्मसंगणि में आये हुए सांकेतिक शब्दों के साधारण अर्थ, शब्द-प्रति-शब्दों के रूप में दिये हैं, और उनकी विशेष और विस्तृत व्याख्या के लिये उन्होंने अपने विसुद्धिमग्ग को निर्दिष्ट कर दिया है।

यह ग्रन्थ आचार्य बुद्धघोष का ही है, इसके लिये अन्तःसाक्षियाँ भी हैं। 'कम्मट्ठानानि सब्बानि चरियाभिञ्ञा विपस्सना। विसुद्धि मग्गे पनिदं यस्मा सब्बं पकासितं। इस गाथा में तथा 'सब्बकम्मट्ठानंहि·········· विसुद्धिमग्गे वित्थरितं, किं तेन तत्थ तत्थ पुनवुत्तेनेति न तं वित्थारयाम' इस गद्यांश में स्पष्ट रूप से अट्ठकथाकार विसुद्धिमग्ग को ऐसे रूप से और शब्दावली से निर्दिष्ट करते हैं कि विसुद्धिमग्ग उन्ही का लिखा हुआ ग्रन्थ है। 'विसुद्धिमग्गे पकासितं' तथा 'विसुद्धि मग्गे वित्थारितं··· ··किं तेन तत्थ तत्थ पुनवुत्तेन' इस प्रकार की शब्दावली किसी अन्य लेखक के विसुद्धिमग्ग को निर्देश करने में नहीं दी जाती। दूसरी अन्तरङ्गयुक्ति यह है कि अट्ठसालिनी में विभंग अट्ठकथा का निर्देश है और ग्रन्थकार निश्चयपूर्वक कहते हैं कि अमुक शब्द या विषय का ब्यौरेवार वर्णन विभंग अट्ठकथा ( सम्मोहविनोदनी ) में दिया जायेगा[१]। इसमें 'पटिच्च समुप्पाद विभंग' तथा 'बोज्झंग विभंग' का निर्देश है, जिनके वर्णन का सम्मोहविनोदनी में ग्रन्थकार निर्देश देते हैं[२]। इससे प्रतीत होता है कि अट्ठसालिनी के लिखते समय आचार्य बुद्धघोष के मन में इस ग्रन्थ के बाद सम्मोहविनोदनी के लिखने की योजना बन चुकी थी। सम्मोहविनोदनी निर्विवाद रूप से आचार्य बुद्धघोष की रचना है, इसलिये यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि

१. अट्ठसालिनी अध्याय ५, अनुच्छेद ५५–१४५।
२ ,, अध्याय ३, ,, ७०।

अट्ठसालिनी भी उन्हीं की रचना है, नहीं तो उपर्युक्त निर्देश वे अट्ठसालिनी में क्योंकर देते। डा० बापट अट्ठसालिनी के देवनागरी संस्करण की भूमिका में कहते हैं कि "इस ग्रन्थ की शैली निकायों की अट्ठकथाओं तथा विसुद्धिमग्ग से मिलती है।" इसलिये भी यह आचार्य बुद्धघोष की ही रचना निश्चित होती है। इसके अतिरिक्त डा० बापट ने वहीं यह भी कहा है कि "सम्मोहविनोदनी तथा अट्ठसालिनी में घनिष्ट सम्बन्ध है, क्योंकि सम्मोहविनोदनी में केवल इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का ही उल्लेख नहीं है, अपितु इसके अध्यायों तथा अनुच्छेदों अथवा अनुभागों तक का उल्लेख है। अध्यायों के नाम के साथ हेट्ठा ( ऊपर अर्थात् अट्ठसालिनी में ) शब्द भी दिया हुआ है, जैसे "हेट्ठा चित्तुप्पादकण्डे रूपावचरनिद्देसे[1]।" इसके बाद डा० बापट कहते हैं कि इससे प्रतीत होता है कि अट्ठसालिनी सम्मोहविनोदनी से पूर्व की रचना है तथा विभंग अट्ठकथा ( सम्मोहविनोदनी ) बाद की। और यदि दोनों के रचयिता एक ही नहीं तो दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध अवश्य सिद्ध होता है। यहाँ यह सोचा जा सकता है कि इतने अधिक साम्य के होने पर और घनिष्ठ सम्बन्ध क्या हो सकता है, सिवाय इसके कि दोनों के रचयिता एक ही हैं।

यद्यपि आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि यह धम्मसंगणि की अट्ठकथा है, किन्तु इसके और धम्मसंगणि के प्रतिपाद्य विषयों की व्यवस्था में असमानता है। धम्मसंगणि के कुछ अध्याय इन्होंने बिल्कुल छोड़ दिये हैं तथा कुछ स्वतन्त्र रूप से अपनी ओर से जोड़ दिये हैं, जिससे कि धम्मसंगणि की अपेक्षा यहाँ वर्णन अधिक वैज्ञानिक ढंग का हो गया है। विसुद्धिमग्ग की तुलना में प्रतिपाद्य विषयों के वर्णन में इसकी शैली, भाष्यकारिता तथा विस्तृत व्याख्याओं के रूप में कम है, किन्तु इसकी वर्णन शैली में ताजगी और मौलिकता अपेक्षाकृत अधिक है,[2] जैसाकि बाद की रचना में होना ही चाहिये।

अट्ठसालिनी छः भागों में बांटी जा सकती है:—

१—निदानकथा, जोकि सारे ग्रन्थ की भूमिका है।

---

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ३७१।

२. डा० बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।

२—मातिका वण्णना ( धम्मसंगणि की विषय सूची )।
३—चित्तुप्पादकण्ड वण्णना।
४—रूपकण्ड वण्णना।
५—निक्खेपकण्ड वण्णना।
६—अट्ठकथाकण्ड वण्णना।

इनमें अन्तिम चार अध्याय धम्मसंगणि के चार भागों के ऊपर अट्ठकथा हैं। इन छः भागों के अतिरिक्त ग्रन्थ के प्रारम्भ में गाथायें ( विसतिगाथा ) हैं तथा अन्त में निगमन अथवा उपसंहार है।

**निदान कथाः**—निदानकथा का प्रारम्भ अभिधम्म शब्द की निरुक्ति से होता है:—क्योंकि इसमें कथन शैली विशेष प्रकार की और अन्यत्र अलभ्य है, इसलिये यह अभिधम्म अर्थात् उच्चतम धम्म कहलाता है ( धम्मातिरेक धम्मविसेसट्ठेन अभिधम्मोति वेदितब्बो )[१]।

इसके साथ ही साथ सुत्तन्त और अभिधम्म का अन्तर बताते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि सुत्तन्त में पांच निकायों का वर्गीकरण अंशतः अथवा अपूर्ण रूप में है, जबकि अभिधम्म में यह वर्गीकरण तीन प्रकारों से किया गया है–सुत्तन्त वर्गीकरण, अभिधम्म वर्गीकरण तथा प्रश्नोत्तर वर्गीकरण। ग्रन्थकार का कहना है कि सुतन्त वर्गीकरण अपूर्ण और दोषयुक्त है।

इसके अनन्तर इसमें अभिधम्म के सात भागों का सविस्तार वर्णन है[२]। यहाँ शिथिलपंथियों की इस आपत्ति का कि कथावत्थु को मोग्गलिपुत्त तिस्स थेर की रचना होने पर भी अभिधम्म में सम्मिलित क्यों किया गया, निराकरण किया गया है कि तिस्स थेर ने भी बुद्ध वचनों को ही कथावत्थु में रखा है, इसलिए बुद्ध वचन होने के कारण वह भी अभिधम्म ही है। कथावत्थु की अभिधम्म ग्रन्थों में गणना तृतीय संगीति में हुई थी। प्रथम और द्वितीय संगीतियों में इसके स्थान पर 'धम्महदय विभंग' था। फिर तृतीय संगीति में महाथेर तिस्स के द्वारा धम्महदय विभंग विभंग होने के कारण अभिधम्मपिटक के द्वितीय ग्रन्थ विभंग में अन्तिम अध्याय के रूप में सम्मिलित कर लिया गया और कथावत्थु इसके स्थान

१. अट्ठसालिनी, अध्याय १ अनुच्छेद ३।
२. ,, ,, ,, ४।

में अभिधम्म का स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया गया और इस प्रकार अभिधम्म ग्रन्थों की परम्परागत संख्या सात ही रही। 'महाधातुकथा' अथवा 'महाधम्महदय' में कथावत्थु के सम्मिलित करने में कुछ अन्तरंग दोष आते हैं, इस कारण धातुकथा, कथावत्थु का स्थानापन्न नहीं हो सकता, वह अभिधम्म का स्वतन्त्र ग्रन्थ ही होना चाहिये, क्योंकि महाथेर तिस्स ने स्वयं बुद्ध भगवान् के ही विषयों को और प्रकारों को अपनाया है और स्वयं बुद्ध भगवान् ने भी पहले से ही देख लिया था कि थेर तिस्स तीसरी संगीति में ऐसा करेंगे।

इसके बाद आचार्य बुद्धघोष अट्ठसालिनी में अभिधम्म के उद्गम और इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि सबसे पहले बुद्ध भगवान् ने अभिधम्म का उपदेश तावतिंस स्वर्ग में अपनी माता को दिया, फिर उसे अनोतत्त सरोवर पर धम्मसेनापति सारिपुत्त के समक्ष दुहराया। और धम्मसेनापति ने इसको अपने पांचसौ शिष्य भिक्खुओं को सिखाया। अभिधम्म का सबसे पहले मानसिक अध्ययन बुद्ध भगवान् ने बोधिवृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में किया था। इसके मूल उद्गम और संख्या का श्रेय उन्होंने महाथेर धम्मसेनापति सारिपुत्त को दिया।

इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष सुत्त, विनय और अभिधम्म की परिचयात्मक व्याख्या के रूप में बहुत से पद्यात्मक अंशों को भी उद्धृत करते हैं। उनका कहना है कि अभिधम्म उन लोगों के लिये है जोकि शरीर और सारी वस्तुओं को यह समझते हैं कि यह मैं हूँ और ये स्त्री-पुत्र धनधान्यादि मेरे हैं, तथा जो यह नहीं समझते कि आत्मा भी, पञ्चभूतमयी अन्य वस्तुओं के समान, नाम, रूप, वेदना, ज्ञान और संस्कार का समूह है, कोई शाश्वत वस्तु नहीं। उनके अनुसार अभिधम्म को पढ़ने और जानने का अभिप्राय आत्मा को पुद्गल (शरीरादि) से भिन्न समझना और अपने आप को ऊँचे और धम्म के ज्ञान में लगाना है।

इसके बाद वे इस ग्रन्थ में सिद्ध करते हैं कि तीनों पिटक स्वयं बुद्ध भगवान् के ही वचन हैं, क्योंकि वे भिक्खु, जो विनय का परिशीलन करते हैं, तीन प्रकार के 'विञ्ञाण' को प्राप्त करते हैं; जो सुत्तपिटक में निपुण होते हैं, वे छः प्रकार की अभिञ्ञा को प्राप्त करते हैं, तथा जो अभिधम्म में सुसंस्कृत होते हैं, वे चार प्रकार की पटिसंभिधा को प्राप्त होते हैं।

इस ग्रन्थ में निकायों के नाम पड़ने का कारण भी बताया गया है। पहले निकाय का नाम दीघनिकाय है, क्योंकि इसमें चौंतीस बड़े-बड़े सुत्त ( उपदेश ) हैं और निकाय नाम समूह का है। अर्थात् बड़े-बड़े सुत्तों का समूह। दूसरे का नाम मज्झिमनिकाय है, क्योंकि इसमें मध्यम लम्बाई के एक सौ बावन सुत्त हैं। संयुत्तनिकाय दीर्घ और लघु सुत्त मिलाकर ७७६२ सुत्तों का समूह है तथा अंगुत्तर निकाय में ९५५७ सुत्त हैं जोकि श्री बी० सी० ला की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ पाली लिटरेचर' के अनुसार प्रायः भोजन के बाद में भगवान् के द्वारा अनेक स्थानों पर दिये गये थे। खुद्दकनिकाय का यह नाम इस कारण पड़ा है कि यह उपर्युक्त चार निकायों, विनय और अभिधम्म से भिन्न है तथा इसमें खुद्दकपाठ, धम्मपद, जातक, सुत्त-निपात आदि सम्मिलित हैं।

इसके बाद इस अट्ठकथा में नव अंगों और चौरासी सहस्र पाठों का वर्णन है। इसमें आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि अभिधम्म वर्गीकरण के द्वारा पिटक है और इसका उपदेश देने का अधिकार केवल बुद्धों को ही है, क्योंकि ये बुद्ध वचन ही हैं। अभिधम्मिक लोग ( अभिधम्म के ज्ञाता ) अपने आपको सर्वोत्कृष्ट वक्ता कहते हैं। किन्तु अभिधम्म केवल बुद्धों के लिये ही ज्ञान और उपदेश का क्षेत्र है, अन्य किसी के लिये नहीं। थेर तिस्सभूति को उद्धृत करके वे कहते हैं कि थेर तिस्सभूति ने अभिधम्म का मूल 'पदेस विहार सुत्त' बतलाया है जिसमें कि बुद्ध भगवान् ने बोधि-प्राप्ति के स्थान पर प्राप्त अपने सम्पूर्ण गुणों और शक्तियों के अनुभव का वर्णन किया है।

इसमें बुद्ध वचनों को चार प्रकार के विभागों में विभक्त किया गया है:— १– तिपिटक २– चार निकाय ३– नव अंग तथा ४– चौरासी हजार पाठ या अनुभाग। अभिधम्म इन चार विभागों के दृष्टिकोण से तिपिटकों में अभिधम्मपिटक नाम से सम्मिलित है, जोकि वेय्याकरण प्रकार से सम्बद्ध है। इसके पाठों की संख्या कई सहस्र हैं।

आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ में वाम अथवा शिथिलपंथियों के द्वारा उठाई गई आपत्ति का कि 'अभिधम्म को बुद्ध-वचन में क्यों सम्मिलित किया गया'—समाधान किया है और विनयपिटक तथा सुत्तपिटक

( महागोसिंगसुत्त ) के उद्धरणों को उद्धृत करके इसके बुद्ध-वचन होने की पुष्टि की है[1]। उन्होंने यह भी बताया है कि अभिधम्म का विद्वान् ही वास्तविक धम्म का उपदेशक है, सुत्त और विनय के विद्वान् उपदेशक तो लिहाज अथवा आदरवश धम्म उपदेशक कहलाते हैं।

इसके पश्चात् शिथिलमार्गियों की इस आपत्ति का भी आचार्य बुद्धघोष ने सविस्तार समाधान किया है कि अभिधम्म में अन्य बुद्ध बचनों के समान—एक समयं भगवा राजगहे विहरति इत्यादि—निदान ( भूमिका ) नहीं है। इसका समाधान करते हुए वे कहते हैं[2]:—(१) पहले तो जातक, सुत्तनिपात तथा धम्मपद के समान अन्य ऐसे बुद्ध वचन भी हैं, जिनमें निदान नहीं है। (२) दूसरे अभिधम्म उन लोगों के अगोचर हैं जो बुद्ध नहीं हैं, और बुद्ध भगवान् का ज्ञान असीमित है, इसलिये उनके लिये निदान वाक्य की आवश्यकता नहीं हैं। (३) तीसरे मण्डलाराम के थेर तिस्स के अनुसार 'पदेसविहार सुत्त' में अभिधम्म के लिये निदान वाक्य है। (४) चौथे गामवासी थेर सुमनदेव के अनुसार अभिधम्म में भी निदान वाक्य है, जोकि शिथिलपंथियों के अगोचर है। (५) पांचवे इसमें एक नहीं दो निदान हैं—पहला अधिगमनिदान (भूमिका वर्णन) कि किस प्रकार बुद्ध भगवान् ने दीपंकर बुद्ध के चरणों में दृढ़ निश्चय किया और बोधिवृक्ष के नीचे किस प्रकार अभिधम्म को प्राप्त किया। दूसरा देसना निदान कि किस प्रकार ब्रह्मा ने भगवान् को अभिधम्म के उपदेश के लिये प्रेरित किया। (६) छठे इसमें तीन निदान हैं—दूरे निदान, अविदूरे निदान तथा सन्तिके निदान; जैसा कि तीनों निदान जातकट्ठकथा वण्णना में और बहिर निदानवण्णना, समन्तपासादिका में तथा दीघनिकाय की अट्ठकथा की भूमिका में दिये गये हैं।

इसके बाद इसमें आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलंका में धम्म की शिक्षा के प्रसार के इतिहास का वर्णन दिया है। उनके अनुसार अभिधम्म का उद्गम श्रद्धा के साथ हुआ और पांचसौ पचास जातकों में पुष्ट हुआ और बुद्ध भगवान् के द्वारा उपदिष्ट हुआ। इसमें बुद्ध भगवान् के मुखारविन्द से

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय १, अनुच्छेद ७०-७१।
२. ,, ,, ,, ७३-७६।

निकले हुए ठीक वही वचन हैं । इसके उपदेश की परम्परा तीसरी संगीति तक उपदेशक थेरों की लम्बी शृङ्खला के द्वारा अविच्छिन्न भाव से चली, जिसके प्रारम्भ में धम्मसेनापति महाथेर सारिपुत्त हैं और मध्य में उनके शिष्यों की लम्बी परम्परा है। इस अट्ठकथा की भूमिका में बुद्ध भगवान् की बोधि प्राप्ति से पूर्व के जीवन वृत्तान्त के वर्णन में अविदूरे निदान कथा को मिलाकर विस्तार बढ़ा दिया है, जोकि जातकट्ठकथा में होने के कारण अनावश्यक था। श्री बी० सी० ला के अनुसार इस ग्रन्थ की सबसे उपयोगी देन इसकी द्वारकथा का वर्णन है।

**मातिका वण्णना:**—इसके पश्चात् इस ग्रन्थ का दूसरा अध्याय ( अथवा कण्ड ) मातिका वण्णना है। इसमें मातिकाओं को पन्द्रह भागों में विभक्त किया गया है—एक 'तिकों' के लिये तथा चौदह 'दुकों' के लिये[1] । ये विभाग दो समूहों में बाँटे जा सकते है—पहले में आंशिक वर्णन वाले तथा दूसरे में पूर्ण व्याख्या वाले। इसके पश्चात् मातिका में दिये हुए सारे शब्दों की शाब्दिक व्याख्या है।

**चित्तुप्पादकण्ड वण्णना:**—इसके अनन्तर चितुप्पादकण्ड वण्णना का सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक महत्वपूर्ण तीसरा अध्याय आता है। यद्यपि इसमें मातिकाओं के पहले तिक का भी पूर्ण रूप से वर्णन नहीं है, फिर भी इसने ग्रन्थ का साठ प्रतिशत भाग घेर रखा है। इसमें कुसलधम्म,[2] अकुसलधम्म[3] और अव्याकतधम्म के कुछ भाग अर्थात् विपाक अव्याकत[4] तथा किरिया अव्याकत[5] का वर्णन है। कुसलधम्म दो शीर्षकों में विभाजित हैं—पहला, 'ते भूमिक'—भवत्तयसम्पत्ति निब्बत्तकं-अर्थात् तीनों लोकों की सम्पत्ति को रचने वाला, तथा दूसरा, 'लोकुत्तर-लोकत्तयं समतिक्कम्म अभिभुय्यतिट्ठति। अर्थात् तीनों लोकों को समतिक्रमण करके तथा अभिभूत करके जो ठहरते हैं। ते भूमिक के कामावचर (इच्छा संबन्धी),

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय २, अनुच्छेद ३–५।
२. ,, अध्याय ३, ,, १-५३९।
३. ,, ,, ,, ५४०-५६९।
४. ,, ,, ,, ५७०-६५८।
५. ,, ,, ,, ६५९–६६६।

रूपावचर ( रूप सम्बन्धी ) तथा अरूपावचर ( अरूपसम्बन्धी ) इस प्रकार तीन भेद हैं। इनमें कामावचर कुसलचित्त के कुसलधम्मों का विवेचन—धम्म ववत्थनवार, संगहवार तथा सुञ्ञतावार, इन तीन रूपों से किया गया है तथा इसने इस विभाग का अधिकतर भाग घेर रखा है, जबकि बाकी के सात चित्तों का वर्णन कुछ ही अनुच्छेदों में समाप्त कर दिया गया है[1]। इसके पश्चात् परिशिष्ट रूप में कुछ अनुच्छेद पुण्यकार्यों के ब्यौरे के रूप में दिये गये हैं[2]। सारे कामावचर कुसलधम्म इन आठ प्रकार के चित्तों से सम्बन्धित हैं। इसके बाद कामावचर कुसलचित्तों के ऊपर अट्ठकथा भाग में महाअट्ठकथा के ऊपर आधारित, द्वारकथा इसमें विषयान्तर रूप में दी गई है। इसमें कम्म, कम्मद्वार विञ्ञाति तथा अकुसल और कुसल पथ की स्पष्ट व्याख्या है।

इसके अनन्तर कुसलधम्मों की व्याख्या है जोकि रूपावचर, अरूपावचर तथा लोकुत्तर चित्तों से सम्बन्धित है। इसके बाद बारह प्रकार के अकुसल चित्तों से सम्बन्धित अकुसलधम्मों की व्याख्या संक्षेप में दी हुई है। इसका वर्णन प्रकार वैसा ही है जैसा कि कुसलचित्तों का।

विपाक अव्याकत भाग का वर्णन कुछ पेचीदा है। यहां आचार्य बुद्धघोष फिर विपाक उद्धारकथा के रूप में विषयान्तरित हो गये हैं। इसमें उन्होंने श्रीलंका के तीन थेरों की व्याख्याओं की सहायता लेकर कुछ ब्यौरेवार वर्णन किया है। उनके मतों का संक्षिप्तसार देकर जो उनको युक्तिसंगत जचा है, ग्रहण कर लिया है[3]।

जहाँ तक हेतुओं का सम्बन्ध है, यह आवश्यक नहीं कि कामावचर के क्षेत्र में विपाक उन कर्मों के समान हो जिनसे कि विपाक उत्पन्न होता है, क्योंकि तिहेतुक कम्म से भी दुहेतुक पटिसंधि होना या दुहेतुक कम्म से अहेतुक पटिसन्धि का होना सम्भव है। कामावचर क्षेत्र में कुसल ( पुण्य ) कम्म यदि सहेतुक हैं तो वे मानव जगत में तथा कामावचर देवलोक में

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय ३, अनुच्छेद ३०९–३१३।
२. ,, ,, ,, ३१४–३२५।
३. इनके ब्यौरे के लिये डा० बापट की अट्ठसालिनी ( देवनागरी संस्करण ) का परिशिष्ट ए, पृ० ३३८ से ३४९ देखें।

फल पैदा करते हैं[1]। यदि वे अहेतुक हैं तो वे प्राणी को ऐसे विकलांग मनुष्य रूप में पैदा करते हैं जैसे कि अन्धे, बहरे, बुद्धिहीन, नपुंसक आदि होते हैं। अकुसल कम्म वाले हीन जाति में पैदा होते हैं। रूपावचर अथवा अरूपावचर क्षेत्र वाले विपाक ठीक उन्हीं क्षेत्र वाले कुसलकम्मों के समान होते हैं। शीघ्र ही ये फल अगले जन्म में जाते हैं, जबकि कामावचर वाले विपाकों का फल अनिश्चित रूप में मिलता है[2]। लोकुत्तर विपाक का विवरण कुसलकम्म विपाक के समान होता है। यहां भी ग्रन्थकार सुञ्ञातामग्ग, अनिमित्तमग्ग तथा अप्पणिहितमग्ग शब्दों की व्याख्या करते हैं।

अगले भाग 'किरिया अव्याकत' में सारे प्राणियों के अहेतुक कम्मों तथा सहेतुक कम्मों का वर्णन है। ये कम्म कुसल अथवा अकुसल नहीं कहला सकते। वे केवल किरिया ( क्रिया ) हैं और अच्छे बुरे किसी तरह के फल को पैदा नहीं करते।

**रूपकण्ड वण्णनाः**—इसके अनन्तर रूपकण्ड वण्णना का चतुर्थ अध्याय है। इसमें तीसरे अध्याय के अनुच्छेद ५७१ में उल्लिखित चार अव्याकत धम्मों में से तीसरे रूपधम्म की व्याख्या है। यहाँ रूप की व्याख्या में कुछ अनुच्छेद विसुद्धिमग्ग के अनुच्छेदों से मिलते हैं। इस अध्याय के अनुच्छेद २ में निर्दिष्ट पच्चीस रूप अनुच्छेद १२ के सत्ताईस के समान हो है क्योंकि वहाँ फोट्ठब्यायतन और आपोधातु की जगह चार महाभूत ले लिये गये हैं। फोट्ठब्यायतन शेष तीन धातुओं—पठिवी, तेजो, वायु—को अन्तर्हित कर लेता है। विसुद्धिमग्ग में इन रूपों की संख्या अट्ठाईस दी गई है। वहाँ, क्योंकि उपादानरूपों में हृदयवत्थु को सम्मिलित कर लिया है, ये उपादान रूप तेईस की जगह चौबीस हैं, जैसा कि इस अध्याय के अनुच्छेद १२ और २५ में दिया गया है। यह संख्या भी वही है, जोकि इस अध्याय के अनुच्छेद ११२ में छब्बीस कर दी गई है, क्योंकि धम्मसंगणि की शब्दावली के अनुसार फोट्ठब्यायतन पठिवी, तेज और वायु धातुओं की जगह रखा गया है। धम्मसंगणि की सूची में हृदयवत्थु को क्यों नहीं

१. अट्ठसालिनी अध्याय ३, अनुच्छेद ५८५।
२. ,, ,, ,, ६५१।

सम्मिलित किया गया, इसके लिये डा० बापट द्वारा सम्पादित अट्ठसालिनी की भूमिका का पृष्ठ २० देखें। संक्षेप में यह है कि बुद्ध भगवान् इस साधारण विश्वास को, कि बौद्धिक कार्यों का स्थान हृदय है, स्वीकार नहीं करते। आचार्य बुद्धघोष धम्मसंगणि के चित्त शब्द का आश्रय लेकर उसके पर्यायवाची शब्द के रूप में 'हृदयवत्थु' व्याख्या करते हैं। अतएव हृदयवत्थु को स्वतन्त्र रूप मानकर रूपों की सूची में सम्मिलित करते हैं। उनका आधार 'तिक पट्ठान निस्सायपच्चय' की व्याख्यारूप—'यं रूपं निस्साय मनोधातु च मनो विञ्ञाणधातु च वत्तन्ति' यह वाक्य है। इसमें रूप को विचार का आधार माना गया है।

इसके बाद ग्रन्थकार मिद्धरूप तथा अन्य रूपों—बलरूप, संभवरूप, जातिरूप तथा रोगरूप—की सत्ता में विश्वास रखने वाले मत का उल्लेख करके उसका खण्डन करते हैं और हृदयवत्थु को सम्मिलित करके रूपों को थेरवादी सख्या छब्बीस की पुष्टि करते हैं, जोकि प्रकारान्तर से ऊपर बताये अनुसार विसुद्धिमग्ग की संख्या अट्ठाइस से ही है। अभयगिरिविहार की परम्परा वाले ग्रन्थ विमुत्तिमग्ग में जाति रूप और मिद्धरूप ये दो रूप इन में और सम्मिलित किये गये हैं। अभयगिरिविहार जोकि महाविहार का प्रतिद्वन्दी है मिद्धरूप को मानता है। इसी कारण आचार्य बुद्धघोष, धम्मपाल आदि थेरवादी अट्ठकथाकार उसके निराकरण करने पर जोर देते हैं[1]।

इस अध्याय का शेष भाग धम्मसंगणि के पाठ की ठीक-ठीक शाब्दिक व्याख्या है जिसमें कहीं-कहीं दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ भी है, जैसे कि चक्खु, सोत, घ्राण—इन्द्रियों के ऊपर अथवा लिंग परिवर्त्तन पर। ग्रन्थकार के अनुसार प्रथम कप्प ( कल्प ) के प्राणियों का लिंग कार्यशील जीवन में निश्चित होता था, किन्तु बाद में वह गर्भाधान के समय निश्चित होने लगा, यद्यपि वह कार्यशील जीवन में भी परिवर्तित होने के योग्य हो सकता था। लिंग परिवर्तन की सम्भावना के समर्थन में उन्होंने विनयपिटक को उद्धृत किया है। इसके पश्चात् ग्रन्थकार दो प्रकार के उभय लिंगियों का वर्णन करते हैं, जिनके दोनों लिंग होते थे, किन्तु जो एक समय में एक ही लिंग वाले होते थे। पहली प्रकार के स्त्री उभय लिंगी गर्भधारण भी कर सकते

---

१. डा० बाटप—अट्ठसालिनी ( देवनागरी संस्करण ), भूमिका।

थे और गर्भाधान भी कर सकते थे, जबकि दूसरे प्रकार के अर्थात् पुरुष उभयलिंगी केवल गर्भाधान ही कर सकते थे—"यस्माचस्स एकमेव इन्द्रियं होति, इत्थि उभयतो व्यंजनको सयंपि गब्भं गण्हाति, परांपि गण्हापेति। पुरिस उभयतो व्यंजनको, परं गब्भं गण्हापेति, सयं न गण्हातीति"[1]

इस अध्याय में भिन्न-भिन्न प्राणियों के खाद्य की अपेक्षाकृत सूक्ष्मता और स्थूलता का वर्णन रोचक है[2]। यह भी ध्यान देने की बात है कि बौद्ध दर्शन के अनुसार आपोधातु इस ग्रन्थ में भी अस्पर्शनीय रूप मे ही वर्णन की गई है—"आपोधातु पन पठवी धातुपि तेजोधातुवायुधातुयोपि अफुस्सित्वा व आवध्नाति अफुस्सित्वाच तापेति"[3]। इसलिये यह फोट्ठव्यायतन में सम्मिलित नहीं की गई, जबकि अन्य तीनों धातु फोट्ठव्यायतन में सम्मिलित हैं। एक दूसरो रोचक व्याख्या 'रजत' शब्दकी दी गई है। इसकी व्याख्या में "काहापणो, लोहमासको, दारुमासको, जतुमासको-ये वोहारं गच्छन्तितिवुत्तं सव्वंपि इध गहितम्[4]", अर्थात् रजत शब्द से लोहमासक, दारुमासक तथा लाक्षमासक अर्थ भी ग्रहण किये जाते हैं[5]।

अट्ठसालिनी में उल्लेख है कि कुछ बालकों को गली में धूल में खेलते हुए अचानक कुछ काहापण मिले। उनमें से कुछ बालक उन काहापणों के सफेद ( पण्डुर ) रङ्ग से, कुछ उनके बड़े परिमाण ( साइज ) से तथा कुछ उनके बड़े चौकोर आकार ( पुथुलचतुरस्र ) से आकर्षित हुए। उनमें से एक ने उसको सर्वमान्य टकसाली सिक्के के रूप में पहचान लिया और अपनी मां को दे दिया। उसकी मां ने इसको सांसारिक व्यवहार में प्रयुक्त किया[6]।

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय ४, अनुच्छेद ६६।
२. ,, ,, ,, ९०–९१।
३. ,, ,, ,, १००–१०२।
४. ,, ,, ,, ५४।
५. एतद्विषयक विशेष सूचना के लिये—विनयपिटक अध्याय ३, पृ० २३८, दीघनिकाय अट्ठकथा भाग १, पृ० ७८ और संयुत्तिनिकाय अट्ठकथा अध्याय ३, पृ० ३०४ देखें।
६. अट्ठसालिनी अध्याय ३, अनुच्छेद ६२२।

धम्म संगणि के अनुच्छेद ६५८ तथा ६६० में कुछ सदोष और अपूर्ण व्याख्या है[1]। इन अनुच्छेदों की व्याख्या के बारे में अट्ठसालिनीकार चुप हैं और बिना किसी प्रकार के कथन के आगे बढ़ जाते हैं।

**निक्खेपकण्ड वण्णनाः**—अगला अध्याय निक्खेपकण्ड वण्णना है। निक्खेप पद की दो व्याख्याऐं दी गई हैं[2]। निक्खेप नाम इसलिए रखा गया, (१) क्योंकि इसमें विस्तार पूर्वक वर्णन का बहिष्कार किया गया है ( वित्थारदेसनं निक्खिपित्वा ) अथवा (२) क्योंकि इसमें दिये हुए विषयों के अनुसार व्याख्या दी गई हैं ( निक्खिपित्वा देसितत्ता )। इस अध्याय में सारो मातिकाओं की संक्षेप में व्याख्या है। डा० बापट ने धम्मसंग ण ( देवनागरी संस्करण ) की भूमिका में संक्षेप में कारण दिये हैं कि यह निक्खेपकण्ड वण्णना का अध्याय बाद का जोड़ा हुआ प्रतीत होता है[3]। सुत्तन्तमातिका के भाग को ग्रन्थकार ने थेर सारिपुत्त की रचना बताया है[4]। इस भाग में ग्रन्थ के पाठ की शाब्दिक व्याख्या है तथा साथ में कहीं-कहीं शास्त्रार्थ भी हैं। ऐसे स्थलों में ग्रन्थकार को शिथिलमार्गियों के झूठे दृष्टिकोणों के ऊपर व्याख्या करने का अवसर प्राप्त हुआ है—जैसे मिद्ध के रूपात्मक और अरूपात्मक स्वभाव के ऊपर[5]। यहाँ ग्रन्थकार दोनों पक्षों की युक्ति-प्रत्युक्ति देकर शास्त्रार्थ में पड़ जाते हैं। डा० बापट कहते हैं कि यद्यपि लोभनिद्देस के शब्दों की व्याख्या[6] महानिद्देस अट्ठकथा की व्याख्या[7] से तथा दीघनिकाय अट्ठकथा की नाम के ऊपर

---

१. धम्मसंगणि, अनुच्छेद ६५८ तथा ६६० की सदोष व्याख्या के बारे में डा० बापट ने धम्मसंगणि ( देवनागरी संस्करण ) की भूमिका, पृ० १५ में प्रकाश डाला है, वहाँ देखें।
२. अट्ठसालिनी अध्याय ५, अनुच्छेद १–२।
३. डा० बापट—धम्मसंगणि ( देवनगरी संस्करण ) भूमिका पृ० १५।
४. अट्ठसालिनी अध्याय १, अनुच्छेद १८।
५. ,, अध्याय ५, ,, ८८–९४।
६. ,, ,, ,, ४७–५२।
७. महानिद्देस अट्ठकथा, अध्याय १, पृ० ३८–४२।

दी गई व्याख्या से मिलती है; किन्तु 'भोजने मत्तञ्ञुता'[1] की व्याख्या विसुद्धिमग्ग[2] की व्याख्या से नहीं मिलती।

**अट्ठकथाकण्ड वण्णना:**—छठा और अन्तिम अध्याय 'अट्ठकथाकण्ड वण्णना' ग्रन्थ में सबसे अधिक संक्षिप्त विभाग है। मूल 'अट्ठकथाकण्ड' को कोई परम्परा सारिपुत्त की रचना बतलाती है; किन्तु ग्रन्थकार कहते है कि महाअट्ठकथा इस बात को न मानकर इसे बुद्ध भगवान के वचन ही कहती है क्योंकि अभिधम्म अबुद्ध गोचर नहीं—'अभिधम्मो न सावक विसयो, न सावक गोचरो, बुद्ध विसयो एस, बुद्धगोचरो"[3]। प्रथम अध्याय में भी कहा गया है 'अभिधम्मो नामेस सब्बञ्ञु बुद्धानं येब विसयो, न अञ्ञेसं विसयो'[4]। इस अध्याय में निक्खेपकण्ड में वर्णित मातिकाओंके केवल अभिधम्म भागके ही विषयका वर्णन है, किंतु यह निक्खेप-कण्ड के वर्णन से अधिक व्यवस्थित और सीमित है तथा कहीं-कहीं संख्यात्मक विशेष भेदों की ओर झुकता हुआ है। डा० बापट इस ग्रन्थ के देवनागरी संस्करण की भूमिका में कहते हैं कि "यह विलक्षण बात ध्यान देने की है कि अट्ठसालिनीकार ने 'निब्बाण' के ऊपर कुछ कथन नहीं किया। इसी प्रकार वे 'असंखात धातु' को भी उपेक्षित कर देते हैं। यद्यपि अन्यत्र धम्मसंगणि[5] में आये हुए उसी पद की व्याख्या में केवल इतना कहते हैं—'असंखाता धातुतिपदेन निब्बाणं निप्पदेसेन गहितं' अर्थात् असंखाता धातु पद से सारा निब्बाण पदार्थ ग्रहीत है।"

**ग्रन्थ का नाम:**—धम्मसंगणि को सम्मोहविनोदनी[6] में, पपंच-सूदनी[7] में तथा सुमंगलविलासिनी[8] में, धम्मसंगह नाम से भी उल्लिखित किया गया है, इसलिये धम्मसंगणि की अट्ठकथा 'अट्ठसालिनी'

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय ५, अनुच्छेद १३६–१३९।
२. विसुद्धिमग्ग अध्याय १, पृ० ८९–९४।
३. अट्ठसालिनी अध्याय ६, अनुच्छेद २।
४. ,, अध्याय १, ,, ७३।
५. धम्मसंगणि, अनुच्छेद ५८३।
६. सम्मोहविनोदनी, पृ० २९७, ४२३।
७. पपंचसूदनी, भाग ४, पृ० ११६।
८. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० ७१।

नाम के साथ-साथ 'धम्मसंगहट्ठकथा' नाम से भी इस ग्रन्थ के अध्याय ३ से अध्याय ६ तक के अन्त में निर्दिष्ट है ( अट्ठसालिनिया धम्मसंगहट्ठकथाय आदि )। यह नाम विभंग की अट्ठकथा सम्मोहविनोदनी[1] में भी आया है। डा० बापट इसके देवनागरी संस्करण की भूमिका में कहते हैं कि "यही नाम इसी रूप में समन्तपासादिका के पाली संस्करण[2] में तथा चीनी संस्करण में भी पाया गया है, इससे प्रतीत होता है कि समन्तपासादिका का यह अंश क्षेपक होगा, क्योंकि समन्तपासादिका न केवल इस ग्रन्थ में अपितु निकायों की अट्ठकथा में भी उल्लिखित है।" यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि क्षेपकांश इतनी शीघ्र समन्तपासादिका के चीनी संस्करण में किस प्रकार सम्मिलित हो गया, क्योंकि समन्तपासादिका का चीनी संस्करण ४८९ ई० पश्चात् में लिखा गया था। इससे प्रतीत यही होता है कि सम्भवतः वह अंश क्षेपक न होकर आचार्य बुद्धघोष की भारत में रची गई अट्ठसालिनी की ओर निर्देश करता है।

इस ग्रन्थ में अभिधम्म को बुद्ध वचनों में सम्मिलित करने के विषय में वितंडावादियों का मत, उसका खण्डन तथा अपना अन्तिम निर्णय भी दिया हुआ है। अन्य अट्ठकथाओं के समान इस अट्ठकथा में भी शब्दों के अनेक पर्यायवाची शब्द देकर पाठ के विशेष प्रकरण में ठीक बैठने वाला अपनी पसन्द का शब्द अन्तिम निर्णय रूप में दिया गया है। अन्य अट्ठकथाओं के समान इस ग्रन्थ में भी शाब्दिक निरुक्तियाँ दी गई हैं, जिनमें कि विशिष्ट-विशिष्ट अर्थ के लिये उस शब्द के अक्षरों का भी आधार लिया गया है। उदाहरण के लिये कुसल शब्द को ले सकते हैं। इसकी निरुक्ति कु+सल अर्थात् 'कुच्छिते ( कुत्सिते ) पापके धम्मे सलयन्ती'ति', अथवा 'कुच्छितेन आकारेन सलयन्ती'ति' अथवा कुस+ल अर्थात् 'कुच्छितानं वा सानतो वा तनुकरणतो ओसानकरणतोञाणं कुसं नाम तेनकुसेन लातव्वा'ति कुसला'[3] इसी प्रकार सुख, चित्त आदि शब्दों की निरुक्ति पूर्वक व्याख्या इसमें है।

---

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४३, १०५, ३९६, ५७८।
२. समन्तपासादिका भाग १, पृ० १५०, १५१।
३. अट्ठसालिनी, अध्याय २, अनुच्छेद १०।

शब्दों की व्याख्या करने में ग्रंथकार लक्खणा ( लक्षणा ), रस ( कार्य ), पच्चुपट्ठान ( स्पष्टीकरण ) तथा पदट्ठान ( तात्कालिक कारण ) इन चार प्राचीन प्रणालियों का प्रयोग करते हैं। अर्थ को स्पष्ट करने के लिये ग्रन्थकार ने उपमाओं का तथा दृष्टान्तों का भी आश्रय लिया है, जैसे चित्त अथवा चित्तुप्पाद की व्याख्या करते समय "राजा आगतोति वुत्ते न परिसं विहाय एकाकी आगतो"[1]। इस प्रकार चित्त और चित्तुप्पादों की उपमा क्रम से राजा और उसकी परिषद से दी है। इसी प्रकार चेतना की प्रधानता को स्पष्ट करने के लिये कक्षा के मानीटर अथवा कारखाने के मुख्य मिस्त्री की उपमा दी है। कुछ उपमाऐं इनको बहुत ही प्रिय हैं, जैसे राजा और परिषद की, उदकप्पसादमणि की, तथा 'दूरे रुक्खं छिन्दन्तानं पि' इत्यादि। ग्रन्थकार लम्बी उपमाओं को काम में लेते हैं, यह भी उनकी विशेषता है, जैसे भाण के पञ्चकनय के स्पष्टीकरण के लिये अमच्चपुत्र ( अमात्य पुत्र ) की, एक साथ चारों आर्य सत्यों के ज्ञान के लिये पेलोपमा की, अकुसलचित्तों के नष्ट करने के लिये 'विजित संगामेहि योधेहि' इत्यादि की।

इनकी इस ग्रन्थ की व्याख्याऐं अन्य अट्ठकथाओं के समान अधिकतर प्राचीन अधिकृत पाली ग्रन्थों, पोराणाचरियों, अट्ठकथाओं, अट्ठकथाचरियों, आगमट्ठकथा, महाअट्ठकथा, मिलिन्दपञ्हो और विसुद्धिमग्ग पर आधारित हैं। अपने विसुद्धिमग्ग तथा निकायों की अट्ठकथाओं के अतिरिक्त ये उपाख्यानों तथा कहानियों से भी, जिनमें कि अधिकतर सिंहली जीवन की होती हैं, अपना विषय लेकर व्याख्या करते हैं। उब्बेग की व्याख्या में उन्होंने वट्टकालकगाम नाम के गांव की एक लड़की का उल्लेख किया है कि वह अपने घर के दरवाजे पर खड़ी हुई थी और उसका ध्यान पास के गिरिकण्डविहार के चेतिय के जलते हुए दीपक पर केन्द्रित था। परिणामतः उब्बेगपीति के फलस्वरूप वह चेतिय के आँगन में पहुँच गई।[2] इसी प्रकार चक्कण उपासक की कथा है, जिसने कि एक खरगोश को, अपनी किसी रोग विशेष से पीड़ित माता

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ४३, ६३।
२. ,, ,, ,, २०४, २०५।

की चिकित्सा के लिये पकड़ा था किन्तु अहिंसा धर्म के पालन के कारण बिना मारे छोड़ दिया और माता के द्वारा कारण पूछने पर सच बोलने के पुण्य के प्रभाव से उसकी माता बिल्कुल नीरोग हो गई।[1] इसी प्रकार उत्तरवड्ढमाण पर्वत पर रहने वाले उपासक की कथा है, जोकि अपने दयाभाव के कारण सर्प की घातक पकड़ से भी बच गया था। इसी प्रकार अट्ठसालिनी की व्याख्याओं में हमें श्रीलंका के राजाओं की भी अनेक कथाऐं मिलती हैं,[2] जिनके द्वारा वर्णनीय विषय को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण दिये गये हैं।

व्याख्या करते समय ग्रन्थकार पक्षान्तरों का उल्लेख 'अपरोनयो' इत्यादि शब्दों के साथ देते हैं। अपने कथन के प्रमाण स्वरूप वे प्रायः अट्ठकथा, आगमट्ठकथा, महाअट्ठकथा, दीघभाणक आदि को उद्धृत करते हैं। महासिवत्थेर का वे प्रायः थेरवादी सिद्धान्त से विभिन्नता रखने वाले के रूप में उल्लेख करते हैं। विपाकचित्तों के विषय में उन्होंने श्रीलंका के प्रकाण्ड विद्वान् थेरों के मत दिये हैं, जिनमें तिपिटक चूलनागत्थेर, मोरवापी महादत्तथेर तथा तिपिटक महाधम्मरक्खित थेर उल्लेखनीय हैं। कहीं-कहीं अन्य विद्वानों के मत 'केचि', 'अपरे' इत्यादि शब्दों के साथ उद्धृत किये गये हैं। अपनी व्याख्याओं में उन्होंने अधिकतर प्राचीन थेरवादी ग्रन्थों का ही आधार लिया है। इस कारण इस ग्रन्थ की व्याख्याऐं उनकी अन्य अट्ठकथाओं की व्याख्याओं से मिलती हैं और अधिकतर एक-सी ही हैं। फिर भी एक-दो स्थलों पर ऐसे भी कथन हैं, जो केवल इसी में हैं, अन्य अट्ठकथाओं में नहीं पाये जाते। उदाहरणार्थ अकुसल विनिच्छय[3] की व्याख्या में 'परेसु हि साधुकारं देन्ते सु चेलादीनि उपक्खिपन्तेसु हट्ठतुट्ठस्स, सीताहरण भारत युद्धादीनि कथनकाले सो सुखवेदनो होति'' तथा 'पठमं दिन्न वेतने' इत्यादि दो वाक्य पपंचसूदनी में उसी विषयकी व्याख्यामें नहीं पाये जाते।[4] इसी प्रकार 'दस पुञ्ञकिरिय

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद १६४।
२. ,, अध्याय ५, ,, १३०।
३. ,, अध्याय ८, ,, १५७–१६२।
४. पपंचसूदनी, भाग १, पृ० २०।

वत्थूनि' की व्याख्या में 'किं पनेवं... वुड्ढीयेव पन होती'ति वेदितव्वा' इस ग्रन्थ में मिलते हैं[1] किन्तु सुमंगलविलासिनी में नहीं मिलते।[2] इसी प्रकार समय शब्द की व्याख्या इस ग्रन्थ के अध्याय ३ में अनुच्छेद १४ से अनुच्छेद २४ तक चली है, किंतु इसका केवल चौदहवाँ अनुच्छेद ही सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी, सारत्थप्पकासिनी, मनोरथपूरणी, तथा समन्तपासादिका में पाया जाता है,[3] बाकी अनुच्छेद १५ से अनुच्छेद २४ तक का कुछ भी अंश उपरोक्त ग्रन्थों की समानान्तर व्याख्याओं में नहीं पाया जाता। ग्रन्थकार ने अपनी स्वतन्त्र व्याख्या के दो उदाहरण हैं। पहला 'चतुब्बिधं नामं'[4] की व्याख्या में तथा दूसरा 'भोजने मतञ्ञुता' की व्याख्या में, और दोनों ही विसुद्धिमग्ग की व्याख्या से भिन्न हैं। इसलिये ये दोनों क्षेपक भी हो सकते हैं।

ग्रन्थकार अट्ठकथा की प्रामाणिकता के ऊपर बहुत अधिक निर्भर हैं, और कहते हैं कि जिस बात के लिये अट्ठकथा का समर्थन प्राप्त न हो उसे बहुत अच्छी तरह सोच विचार कर ग्रहण करना चाहिए—'अट्ठकथायं पन अनागतत्ता वीमंसित्वा गहेतब्बा'[5], 'अट्ठकथायं पन थेरस्स मनोरथोनत्थि एतंति पटिक्खिपित्वा'[6], 'अट्ठकथासु आगतं'[7], 'अट्ठकथासु परिक्खितं'[8], 'अयमेव अट्ठकथासु नयो'[9], 'अयं पन नयो नेव पालीयं न अट्ठकथायं दिस्सति'[10] इत्यादि अट्ठकथाओं की प्रधानता को जताने

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ३१।

२. सुमंगलविलासिनी, भाग ३, पृ० ९९९–१०००।

३. सुमंगलविलासिनी, भाग १, पृ० ३१–३२। पपंचसूदनी, भाग १, पृ० ७–८; सारत्थप्पकासिनी, भाग १, पृ० ९–१०; मनोरथपूरणी, भाग १, पृ० ११–१२; समन्तपासादिका, भाग १, पृ० १०७।

४. अट्ठसालिनी, अध्याय ५, अनुच्छेद ११२–११३।

५. ,, अध्याय ३, ,, १४९।

६. ,, ,, ,, ५८६।

७. ,, अध्याय ६, ,, २१।

८. ,, ,, ,, २२।

९. ,, ,, ,, २४।

१०. ,, अध्याय ३, ,, ४६४।

वाले वाक्य स्थान-स्थान पर इस ग्रन्थ में आते हैं। इतना होने पर भी एकाध स्थान में अट्ठकथा के मत को भी ग्रन्थकार ने स्वीकार नहीं किया— 'अट्ठकथायं पन आपाथगतत्ता व आरम्मणं सम्पत्तं नाम। चन्दमण्डल सूरियमण्डलानं चक्खु पसदं घट्टेति। सो दूरेठत्वा पञ्ञायमानो'पि संपत्तो येव नाम इत्यादि 'ति वुत्तं। तत्थ......तस्मा असंपत्त (असंप्राप्त) गोचरानेव तानि'।[1] इसी प्रकार यदि कोई बात अट्ठकथा में नहीं बिचारी गई तो वे उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं—"अविचारितं एतं अट्ठकथायं। अयं पन युत्ति"[2] कभी-कभी वे अट्ठकथा के बाहर की बात को भी वैकल्पिक रूप में ग्रहण कर लेते हैं।[3]

अट्ठसालिनी में शास्त्रार्थ शैली को पूर्ण रूप से अपनाया गया है। विवादास्पद विषयों के पक्ष-विपक्ष की युक्तियां देकर अन्तिम निर्णय थेरवादी सिद्धान्त के पक्ष में ही दिया गया है।[4] अपनी व्याख्या में वे कहीं पर्याय देसनादि[5] का तथा कहीं प्रकरणानुसार व्याख्या ग्रहण करने का सहारा लेते हैं।[6] कहीं हंसी उड़ाकर,[7] कहीं कोसकर[8] विपक्षी को दबाना चाहते हैं। कहीं अपने दृष्टिकोण को प्रगट कर देते हैं जैसे ब्रह्मा देवों के मोह का वर्णन करके कहते हैं, 'किन्तु यह कामासव होने के लिये समर्थ नहीं'।[9]

इस ग्रन्थ की व्याख्याओं के मध्य में कहीं-कहीं आने वाले निर्देशों से हमको भारत और श्रीलंका की तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ४, अनुच्छेद ४३।
   ,, अध्याय ३, ,, १९५।
   ,, ,, ,, ६१।
   ग्रन्थकार और उसकी व्याख्याओं के बारे में विशेष सूचनाओं के लिये डा० बापट की अट्ठसालिनी (देवनागरी संस्करण) की भूमिका देखें।
५. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ३०४, ४८४, ८८।
६. ,, ,, ,, ३१।
७. ,, ,, ,, १३०-५३१।
८. ,, अध्याय १, ,, ७२।
९. ,, अध्याय ५, ,, ६३-७७

अवस्था के बारे में बहुत-सी सूचनाऐं मिलती हैं। रजत शब्द की व्याख्या करते समय आचार्य बुद्धघोष ने उस समय के प्रचलित काहापणों अथवा कार्षापणों तथा छोटे सिक्कों—मासकों आदि का उल्लेख किया है।[1] इसमें कूट सिक्कों ( मिण्ट के बाहर वाले खोटे सिक्कों ) के बारे में भी उल्लेख है।[2] इसमें आदासमण्डल का कंसमाय अर्थात् कांसा अर्थ किया गया है।[3] वैसे इसका अर्थ कांच से बना दर्पण होना चाहिए था। किन्तु इससे यह भी ज्ञात हो सकता है कि उस समय तक शायद कांच ज्ञात नहीं था। और चमकीला होने के कारण कांसा ही आदास ( आदर्श=दर्पण ) कहलाता हो। इस ग्रन्थ में दिये हुए विसुद्धिमग्ग के उद्धरण से ज्ञात होता है कि हाथी के दाँत का उद्योग और शिल्प उस समय बड़ी उन्नति पर था। वहाँ उल्लेख है कि हाथीदाँत के कारीगर अधोवस्त्र पहने हुए और उत्तरीय से अपने सिरों को ढके हुए थे, जिनके अंगों के ऊपर हाथीदांत का महीन बुरादा (चूर्ण) बिखरा रहता था।[4]

ग्रन्थकार इस ग्रन्थ में सिंगरफ के बिन्दुओं के निशानों का उल्लेख करते हैं, जिनमें से एक या अधिक बिन्दु छोटे बच्चे के माथे पर लगे हुए थे—"अथस्स नलाटे एकमेव मनोसिलाय विन्दुं करय्युं तस्स न एतावता चित्ततिलको नाम......विन्दूसु कतेसु चित्ततिलकोनाम"[5]। इससे ज्ञात होता है कि उस समय सिंगरफ से तिलक के लिये लाली बनती थी।

इस ग्रन्थ में हमें चित्रकला से सम्बन्धित कुछ सांकेतिक शब्द मिलते हैं,[6] जैसे लेखागहणं ( रेखाचित्र खींचना ), रंजनं ( रङ्ग भरना ), विज्जोतनं ( चमकाना ), वत्तनं ( गोल करना )। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार के समय में चरणं चित्तं ( तस्वीर अथवा पूर्ण चित्र खींचना), चित्त कम्मािण ( दीवालों पर चित्र खींचना ), पोत्थकं ( प्लास्टर की

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ४, अनुच्छेद ५४।
२. ,, अध्याय ३, ,, ४३५।
३. ,, अध्याय ४, ,, ५४।
४. ,, अध्याय ३, ,, ४४६।
५. ,, ,, ,, २७०।
६. ,, ,, ,, ३५।

मूर्तियाँ ), पटिमायो ( प्रतिमायें ), चेतियानि ( चैत्य आदि बनाना ) साधारण बातें हो गई थीं। इन उपरोक्त बातों का उल्लेख वे विहार पूजा के प्रकरण में करते हैं।[1] इसमें चेतिय के लिये दीपपूजा तथा अन्य विविध प्रकार की भेंटों का भी वर्णन है, जोकि बुद्ध भगवान् के रत्नत्रय ( बुद्धरतनत्तयानि ) को चढ़ाई जाती थीं।[2] इन भेटों में वण्णदान, सद्दान, गंधदान, रसदान, फोट्ठब्बदान, ओजदान,पानदान तथा जीवितदान हैं। वण्णदान ( वर्णदान ) से तात्पर्य है—बढ़िया चमकीले रंग की चादर अथवा कपड़ा देना। सद्दान ( शब्ददान ) से अभिप्राय है—बाजों, संगीत अथवा नाटक मण्डलियों का आयोजन तथा नाटक घरों का देना और गायन अथवा त्रिपिटक के पाठ करने वालों अथवा उपदेशकों का प्रबन्ध करना। गन्धदान से अभिप्राय है—सुगन्धित इत्र आदि द्रव्यों का देना। रसदान में स्वादिष्ट चीजों का और फोट्ठव्वदान से मतलब खाट आदि उपयोगी वस्तुओं का दान है। ओजदान से तात्पर्य है—घी मक्खन आदि का दान भिक्खुओं को देना। पानदान से अभिप्राय पीने की--शर्बत आदि पेय द्रव्यों अथवा दवाओं तथा पेय भोजन का देना है। जीवितदान में मछलियों को मछियारे के जाल से छुड़ाना, अथवा पशु-पक्षियों को व्याधों के जाल से छुड़ाना, अथवा सर्व प्राणियों के लिये जीवन की रक्षा की घोषणा करना आता है।[3]

दान इस अट्ठकथा के अनुसार तीन प्रकार से किया जाता है। अपनी इच्छा से किये जाने वाले दान को 'दानमय' दान कहते हैं। जो कुछ परम्परा से दान चला आता है वह 'शीलमय' दान कहलाता है। जो दान वस्तुओं की अनित्यता की भावना से किया जाता है वह 'भावनामय' दान कहलाता है। ये दान या तो 'कायकम्म' अर्थात् स्वयं किये जाते हैं अथवा 'वचीकम्म' अर्थात् स्त्री,पुत्र,नौकर आदि के द्वारा आदेश देकर कराये जाते हैं, अथवा 'मनकम्म' अर्थात् केवल मानसिक संकल्प से किये जाते हैं।

इस ग्रन्थ में सद्दान की व्याख्या बड़ी रोचक है। ग्रन्थकार इस

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ९८।
२. ,, ,, ,, २०४।
३. ,, ,, ,, ७४-९०।

की व्याख्या में कहते हैं कि इसके अन्तर्गत ढोल, मृदंगादि बजवाना अथवा संगीत के बाजों का प्रबन्ध करना— 'भेरिमुतिंगादिसु अञ्ञतरतुरियेन' अथवा धार्मिक पाठ अथवा व्याख्यान का प्रबन्ध करना है। इसमें धार्मिक उपदेशकों को अपनी आवाज़ को स्पष्ट और जोरदार रखने के लिये शहद अथवा गले को अच्छा करने वाला तेल अथवा दवाई भी सम्मिलित है— 'सरभेसज्जतेलफाणितादीनि'[२]। यहाँ ग्रन्थकार ऐसे उपदेश कराने वालों के देर से जाकर उपदेश को फिर से शुरू से कराने के अभ्यास अथवा आदत का, तथा इस तरह के अभ्यास से दुःखी हुए उपदेशक के द्वारा नम्रता के साथ दुबारा उपदेश प्रारम्भ करने की असुविधा की ओर संकेत करने का, कि इस प्रकार उपदेश में विघ्न पड़ने से उपदेश का तांता बिगड़ जाने से श्रोताओं के मन में गड़बड़ फैल जाती है, वर्णन करते हैं[३]— "पठमं दिन्नवेतनेन एकेन पच्छा आगन्त्वा आदितो पट्ठाय कथेहि'तिवुत्ते अननुसन्धिकंपकिण्णकथं कथेस्सामि नु खो नो'ति"। भारतीय मन्दिरों में आजकल भी इस प्रकार की बातें हुआ करती हैं।

एक अन्य स्थान पर ग्रन्थकार ने 'खन्धसिव' (स्कन्द तथा शिव) का उल्लेख किया है, जोकि मिथ्या विश्वास के कारण सबसे बड़े देवता समझे जाते हैं—"मिच्छादिट्ठिसह गतेन चेतसा खन्धसिवादयो सेट्ठा'ति"[४] यहाँ व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार 'खन्धसिवं' से उनकी प्रतिमाओं की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि 'मिच्छादिट्ठी'के द्वारा इनके आगे हाथ जोड़कर नमस्कार किये जाने, नैवेद्य चढ़ाये जाने तथा उनके सामने के स्थानों को साफ किये जाने का उल्लेख किया गया है। डा० बापट का कहना है कि शायद इन बातों का वर्णन ग्रन्थकार ने उन तमिल लोगों की हिन्दू मन्दिरों में पूजा इत्यादि को देख कर किया है, जोकि श्रीलंका के उत्तरी प्रदेश में बहुसंख्या में आये और उपनिवेश बनाकर रहने लगे थे। उनमें से बहुत से शिवजी के और स्कन्द (कार्तिकेय जी) के भक्त थे।[५]

---

१. अट्ठसालिनी, अध्याय ३, अनुच्छेद ७८।
२. ,, ,, ,, ७८।
३. ,, ,, ,, ७८।
४. ,, ,, ,, १३२।
५. डा० बापट—अट्ठसालिनी (देवनागरी संस्करण) की भूमिका।

महावंस में भी इनका निर्देश है।[1] उसमें श्रीलंकावासी और तमिल राजाओं के युद्धों का भी वर्णन है।[2]

इस अट्ठकथा में श्रीलंका के बहुत से प्रसिद्ध थेरों, राजाओं, पर्वतों, चेतियों, विहारों तथा नगरों आदि का भी उल्लेख मिलता है, जिनके बारे में अध्याय ३ और अध्याय ४ की अट्ठकथाओं के अन्तर्गत वर्णन आ चुका है।

अट्ठसालिनी में थेर चूलनाग का, जोकि दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य थे, उल्लेख आया है।[3] वहीं तिपिटक महाधम्मरक्खित के मत को आचरियवाद में सम्मिलित किया गया है।[4] इसी में थेर महादत्त के मत को भी आचरियवाद में सम्मिलित किया गया है।[5] दीघभाणक अभयथेर के बारे में यहाँ भी उल्लेख है कि इनकी स्मरण शक्ति तथा गालियों को सहने की शक्ति की बड़ी प्रसिद्धि थी। इनके बारे में यह भी उल्लेख है कि इन्होंने किस प्रकार चेतियपब्बतविहार को लूटने को आये हुए डाकुओं का आतिथ्य सत्कार किया था और उनको विहार का रक्षक बना दिया था।

अट्ठसालिनी में उल्लेख है कि वितण्डावादी कथावत्थु को अभिधम्म का ग्रन्थ नहीं मानते, किन्तु उसके स्थान में महाधम्महदय को मानते हैं। ★

१. महावंस, अध्याय ६३, पृ० ६–१०।
२. ,, अध्याय २१, पृ० १३; तथा अध्याय २५, पृ० ७, ६ इत्यादि।
३. अट्ठसालिनी, पृ० २६६।
४. ,, पृ० २७८।
५. ,, पृ० २८४–२८६।

## (२) सम्मोहविनोदनी

'सम्मोहविनोदनी' अभिधम्मपिटक के द्वितीय ग्रन्थ 'विभंग' के ऊपर अट्ठकथा है। इसको भी आचार्य बुद्धघोष ने भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर लिखा था। इसके कर्तृत्व के विषय में कोई विवाद नहीं है, अतएव यह निर्विवाद रूप से आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है। इसको विभंगट्ठकथा भी कहते हैं। यह पोराणट्ठकथा नाम की सिंहली अट्ठकथा के ऊपर आधारित है। इस अट्ठकथा के ऊपर 'सम्मोहविनोदनीलीनत्थ अट्ठकथा' नाम की एक अट्ठकथा भी है। सन् १९२३ ई० में श्री ए० पी० बुद्धदत्त थेर ने इस ग्रन्थ को पाली टैक्स्ट सोसाइटी के लिये सम्पादित किया था। बरमी लिपि में यह कितनी ही बार प्रकाशित हो चुकी है। सिंहली में भी यह प्रकाशित हो चुकी है[१]।

सम्मोहविनोदनी निश्चय पूर्वक अट्ठसालिनी के पश्चात् लिखी गई थी, क्योंकि आचार्य बुद्धघोष अट्ठसालिनी लिखते समय आगे रची जाने वाली इस विभंगट्ठकथा का निर्देश करते हैं और निश्चय दिलाते हैं कि अमुक शब्द अथवा विषय का ब्यौरेवार वर्णन विभंगट्ठकथा में दिया जायेगा[२]। इसके अतिरिक्त इस सम्मोहविनोदनी अट्ठकथा में अट्ठसालिनी के नाम को ही नहीं अपितु अध्यायों तथा अनुभागों को भी निर्दिष्ट किया गया है। अध्यायों के नाम के साथ हेट्ठा (अर्थात् ऊपर अट्ठसालिनी में) शब्द दिया हुआ है—"हेट्ठा चित्तुप्पादकण्डे रूपावचरनिद्देसे"[३] इत्यादि। अट्ठसालिनी में 'पटिच्च समुप्पाद विभंग' तथा 'बोज्झंग विभंग' का निर्देश है जिनके लिये ग्रन्थकार 'सम्मोहविनोदनी में वर्णन करेंगे' ऐसा निर्देश करते हैं[४]। इससे भी ज्ञात होता है कि अट्ठसालिनी लिखते समय आचार्य बुद्धघोष के मनमें सम्मोहविनोदनी को लिखने की योजना थी। ऊपर

१. डा० बी० सी० ला—हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर।
२. अट्ठसालिनी अध्याय ५, अनुच्छेद ५५, १४५।
३. सम्मोहविनोदनी, पृ० ३७१।
४. अट्ठसालिनी अध्याय ३, अनुच्छेद ७०।

दिये हुए अट्ठसालिनी के निर्देशों[1] से तथा विसुद्धिमग्ग को और इस ग्रन्थ की उन्हीं विषयों के ऊपर एक सी ही व्याख्या से सिद्ध होता है कि यह आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है और यह अट्ठसालिनी के पश्चात् ही लिखी गई थी।

इस अट्ठकथा में अठारह अनुभाग हैं,जिनमें पांच स्कन्ध—रूप,वेदना, सञ्ञा ( संज्ञा ), संखार ( संस्कार ) और विञ्ञाण ( विज्ञान ); छः आयतन—धातु, सच्च ( सत्य ), इन्द्रिय, पच्चयाकार ( परस्पराश्रित कारण ), सतिपट्ठान ( सम्यक् स्मृति ), सम्मप्पधान ( सम्यक् ध्यान ) और इद्धिपाद ( ऋद्धिपाद = अतिशय ) तथा सत्ताबोज्झंग ( सप्तबोध्यंग )— मग्ग ( अष्टांग मार्ग ), झाण ( ध्यान की अवस्थाऐं ), अप्पञ्ञा ( मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ भावनाओं का पूर्ण अभ्यास ), सिक्खापद ( गुरूपदेश ), पटिसंभिधा ( विश्लेषणात्मक ज्ञान ), ञाण ( सम्यकज्ञान ), खुद्दकवत्थु ( क्षुद्र बाते=छोटी-छोटी बातें ) तथा धम्महृदय (धार्मिक हृदय) इन अठारह विषयों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में सच्च के अनुभाग में चार आर्य सत्यों—दुःख, दुःखसमुदय ( दुःख के कारण ), दुःख निरोध तथा दुःख निरोधिनी संभिधा ( दुःखनिरोध करने वाले कारण ) का वर्णन है। पच्चयाकार वाले अनुभाग में अन्योन्याश्रित कारणों की व्याख्या है। इसके सतिपट्ठान विभंग को दीघनिकाय के महासतिपट्ठान सुत्तन्त के तथा मज्झिमनिकाय के सतिपट्ठान सुत्तन्त के साथ पढ़ना चाहिये। इस ग्रन्थ में अविद्या, काय, जाति, जरा, तण्हा ( तृष्णा ), दोम्मनस्स ( दौर्मनस्य ), निव्वाण, नाम, रूप, भाव, बोधि, मच्छरिय ( मात्सर्य ), मरण, माया आदि के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी हैं।

इस अट्ठकथा में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि आचार्य बुद्धघोष ने धातु के अनुभाग में शरीर रचना के बत्तीस भागों अथवा शरीर धातुओं का वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि वे शरीररचनाविज्ञान से भी पूर्ण रूप से परिचित थे। सम्मोहविनोदनी में इन बत्तीस भागों का रोचक वर्णन इस प्रकार है[2] :—

---

१. अट्ठसालिनी अध्याय ३, अनु० ७०; अध्याय ५, अनु० ५५, १४५।
२. सम्मोहविनोदनी ( सिंहली संस्करण ), पृ० ४९ से ६३ तक।

**केश और रोम**:—सबसे पहले वे सिर के केशों के बारे में कहते हैं कि केश रङ्ग, आकार और गंध में एक प्रकार की शरीर की गन्दगी है। लोम (रोम) सारे शरीर के ऊपर उगने वाले रोम अथवा बाल हैं। ये मिश्रित रंग के होते हैं। इनका रंग काले, ललौहे तथा पीले रंग का मिश्रण है।

**नाखून**:—शरीर के हाथ और पैरों में बीस नख या नाखून हैं। इनका रंग सफेद है और ये मछली की खाल के ऊपर के पत्तों के समान होते हैं।

**दांत**:— स्वभाविक तौर से मनुष्य के बत्तीस दांत होते हैं, परन्तु कहीं-कहीं इसका अपवाद भी मिलता है। नीचे के मसूड़े के चार दांत कोमल मिट्टी के गोले के ऊपर बोये हुए या गाड़े हुए लौकी के बीजों के समान होते हैं। इनके दोनों ओर दो दांत और होते हैं, जिनके एक-एक जड़ होती है और जो ऊपर नोकदार होते हैं। ये आकार में मल्लिका (चमेली) की कली के समान होते हैं। फिर इन दोनों दांतों के दोनों ओर दो दांत और होते हैं, जिनकी दो-दो जड़ें और दो-दो सिरे होते हैं और आकार में ये गाड़ी के टेकने या साधने के थूणों के समान होते हैं।

**खाल**:—शरीर की खाल सारे शरीर को ढके हुए है। यदि शरीर की सारी खाल सुकड़ कर एक ढेले के समान इकट्ठी हो जाये तो बेर की गुठली के समान दिखाई देगी। शरीर की खाल तलवार की म्यान के समान होती है। घुटनों की खाल चावल की तश्तरी अथवा ताड़पत्र के समान होती है। जांघ की खाल चावलों से भरे हुए थैले के समान होती है।

**मांस पेशियां और पुट्ठे**:—शरीर के मांस में नौसौ पेशियां होती है। सारी मांसपेशियाँ लाल रंग की होती हैं। शरीर के पिछले भाग का माँस (रंग में) मिट्टी के सिरे के समान होता है। पीछे (कटि) का माँस गुड़ की भेली के समान होता है। वक्षस्थल का मांस ढके हुए मिट्टी के लोंदे के समान होता है। सारे पुट्ठे सफेद रंग के होते हैं और आकार में तरह-तरह के होते हैं। शरीर में बीस बड़े पुट्ठे होते हैं—पांच दाईं ओर, पाँच बाईं ओर, पाँच पीछे की ओर तथा पाँच सामने की ओर। प्रत्येक हाथ में दस पुट्ठे होते हैं—पाँच ऊपर की ओर अथवा सामने की ओर तथा पाँच पीछे

या नीचे की ओर। सारे शरीर में साठ बड़े पुट्ठे होते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर में इनसे छोटे तथा उनसे भी और छोटे पुट्ठे होते हैं। शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के पुट्ठे आकार में भिन्न-भिन्न होते हैं।

**अस्थियां और अस्थिमज्जा:**—सारे मानव शरीर में तीनसौ अस्थियां होती हैं, जिनमें चौंसठ हाथों की, बासठ पैरों की, चौंसठ छोटी मांस में मिली हुई, दो हथेली की, चार एड़ियों की, दो टांगों की, दो घुटनों की, दो जाँघों की, दो कमर की, अठाहर रीढ़ की चौबीस पार्श्वभाग की, चौदह वक्षस्थल की, एक हृदयकी, दो आँखोंकी,दो भुजाओंकी, चार भुजाओंके ऊपरी भाग की, सात गर्दन की, दो जबाड़ों की, एक नाक की, दो हँसुलियों की, दो कानों की, एक माथे की, एक सिर की और नौ खोपड़ी की अस्थियाँ सम्मिलित हैं। इन तीन सौ अस्थियों की मज्जा होती है, जिसका रंग सफेद होता है।

**वक्षस्थल:**—वक्षस्थल में दो माँस पिंडों का एक जोड़ा है, जो एक डंठल से जुड़ा हुआ है। इसका रंग हल्का लाल है। यह हृदय के माँस के ऊपर चारों ओर रहता है। दो माँसपिण्ड एक बड़ी स्नायु या रग से जुड़े हुए हैं, जोकि गर्दन से नीचे आती है। यह बड़ी स्नायु दो भागों में बंटी हुई है। हृदय का भी माँस है। हृदय के भीतर एक अखरोट या सुपारी के समान छेद है। दोनों ओर की छातियों के बीच में हृदय है।

**फुसफुसे जिगर और तिल्ली:**—फुसफुसे ( फेफड़े ) की झिल्ली दो प्रकारकी है—ढकी हुई और बिना ढकी हुई। ढकी हुई झिल्ली शरीर के ऊपरी भाग के ऊपर है। बिना ढकी हुई झिल्ली ठीक खाल के नीचे, शरीर के चारों ओर फैली हुई है। फुसफुसों का माँस बत्तीस भागों में बंटा हुआ है। इसका भीतरी भाग सूखा है और यह दोनों छातियों के बीच में हैं।

जिगर दोनों ओर की छातियों के बीच में दांई ओर की छाती के समीप है तिल्ली हृदय के बांई ओर है और पेट के माँस के सबसे ऊपर के हिस्से के पास है।

**अंतडियां, पेट और पाचन संस्थान:**—अंतडियाँ इक्कीस स्थानों पर कुण्डली बनाती हुई, कण्ठ से लेकर गुदा तक फैली हुई हैं। शरीर में छोटी-छोटी अंतड़ियां भी हैं। ये उन-उन स्थानों से निकलती हैं,

जहाँ बड़ी अंतड़ियाँ कुण्डली बनाये हुए हैं। शरीर में कुछ चीजें ऐसी हैं जो खाने, पीने उपवास रखने आदि से पेट में इकट्ठी हो जाती हैं। बाहर से पेट बहुत चिकना है, किन्तु इसका भीतरी भाग बहुत खुरदुरा है। पेट में बत्तीस प्रकार के जीवाणु हैं। जो खाना पेट में रखा जाता है, वह पाँच प्रकार से काम में लाया जाता है। इसके एक भागको जीवाणु खा जातेहैं। एक भागको जठराग्नि भस्म कर देती है। एक भाग मूत्रमें परिणत हो जाता है। एक भाग विष्ठा बन जाता है और बाकी का बचा हुआ पाँचवाँ भाग रस में परिणत हो जाता है, जिससे रक्त और माँस बनते हैं।

**सिरः**—सिर की खोपड़ी के भीतर मल और मज्जा है।

**पित्त, बलगम आदिः**—शरीर में दो प्रकार का पित्त है, एक बन्द और दूसरा खुला हुआ। बन्द पित्त गाढ़े तेल के समान अथवा शहद के समान है। बन्द पित्त शरीर के ऊपर के भाग में रहता है और खुला पित्त शरीर के ऊपर के और नीचे के, दोनों भागों में रहता है। यदि खुला पित्त अधिक मात्रा में हो जाताहै ता आँखें पीली हो जाती हैं। यदि बन्द पित्तकी शरीर में अधिकता हो जाती है तो मनुष्य पागल हो जाता है, मस्तिष्क गम्भीरता को खो बैठता है और ऐसे पित्त की अधिकता वाले लोग उन कामों को करने लगते हैं जो नहीं करने चाहिए तथा उन बातों को सोचने लगते हैं, जो नहीं सोचनो चाहियें। मनुष्य के शरीर में बलगम है। यह शरीर के ऊपर के भाग में बढ़ता है और पेट के भीतर रहता है। शरीर में पीब है, जिसके पैदा होने का कोई निश्चित स्थान नहीं है। यह शरीर के सारे भागों में प्रगट हो जाता है। यह फोड़ों में प्रगट होता है जोकि शरीर के उन भागों में रक्त के इकट्ठे हो जाने से पैदा हो जाता है, जिनमें चोट लग जाती है, या जो जल जाते हैं।

**रक्त और रक्त संस्थानः**—शरीर में दो प्रकार का रक्त है—एक बहने वाला तथा दूसरा इकट्ठा रहने वाला। इकट्ठा रहने वाला रक्त शरीर के ऊपरके भागोंमें रहता है,तथा बहने वाला ऊपरी तथा नीचेके दोनों भागों में रहताहै। बहने वाला रक्त मांसरहित—सिरके केशों, शरीरके रोमों, त्वचा, नखों और सूखी तथा कठोर खाल के अतिरिक्त सारे शरीर में धमनियों के द्वारा बहता है। इकट्ठा हुआ रक्त जिगर या यकृत के नीचे है। बहता हुआ रक्त हृदय को, गुर्दे को, तथा फुसफुसों को गीला रखता है।

**स्वेद, अश्रु लार श्लष्मा आदि:**—स्वेदजल, जोकि त्वचा के रोम क्रोंप से बाहर निकलता है, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में पैदा होता है। इसके उद्गम का कोई निश्चित स्थान नहीं है। आँखों से जो अश्रुजल बाहर निकलता है, वह आँखों के गड्ढों में रहता है। शरीर के ऊपर और नीचे के दोनों भागों में एक प्रकार का तेल सदृश पतला पदार्थ रहता है। यह मुख्यतया हथेलियों में, हाथों के पिछले भाग में, पैरों के निचले भागों में, नथुनों में, माथे में और कन्धों आदि में रहता है। लार शरीर के ऊपर के भाग में रहती है। यह जिह्वा में और कपोलों के दोनों ओर की जगह में रहती है। मस्तिष्क का श्लेष्मा नाक के नथुनों को पूरी तरह से घेरता है। यह हमेशा नथुनों में नहीं रहता, किन्तु जब प्राणी रोते हैं, और शरीर तत्व कंपित होते या हिलते हैं, तो सड़ा हुआ मस्तिष्क का माद्दा तालु के छेदों से बाहर आता है और वहाँ इकट्ठा हो जाता है। शरीर के जोड़ों को तर रखने वाला पदार्थ शरीर के ऊपर-नीचे के दोनों भागों में रहता है। यह शरीर के अस्सी जोड़ों में रहता है और उनको तर रखता है। यदि यह मात्रा में कम हो जाता है, तो मनुश्य फुर्ती को खो बैठता है और थकान का अनुभव करता है। यदि यह मात्रा में अधिक हो जाता है तो मनुष्य अधिक कार्यशील और फुर्तीवाला हो जाता है।

**मूत्र, मूत्राशय:**—मूत्र शरीर के निचले भाग में रहता है और मूत्राशय में रहता है। यद्यपि मूत्राशय में प्रविष्ट होने के लिये कोई प्रवेश मार्ग नहीं दिखता, फिर भी यह वहाँ पहुँचता है और वह मार्ग, जिससे यह बाहर निकलता है चौड़ा है।

निकायों की अट्ठकथाओं के समान सम्मोहविनोदनी में भी श्रीलङ्का के बारे में पर्याप्त सूचनाऐं मिलती हैं। सम्मोहविनोदनी में थेर तिस्स दत्त के विषय में उल्लेख है कि ये थेर दीघनाग और थेर उत्तिय के समकालीन थे। ये मस्तिष्क की स्मरण शक्ति के लिये प्रसिद्ध थे और अठारह भाषाओं के निष्णात विद्वान् थे। इनको विश्लेषणात्मक दृष्टि ( पटिसंभिधा ) अपने विस्तृत ज्ञान के द्वारा प्राप्त हुई थी[1]। इसी प्रकार इस ग्रन्थ में थेर धम्मदिन्न का वर्णन आता है कि ये बहुत से भिक्खुओं के अध्यापक थे,

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० २७५।

और इनके पथप्रदर्शन में बहुत से भिक्खुओं ने आर्हन्त्य पद प्राप्त किया था। इनका यश चारों ओर दूर-दूर तक फैल गया था। तिस्स महाराम के भिक्खुओं ने इनकी महिमा को सुन कर इनको भिक्खु जीवन के उच्च धर्म के ऊपर उपदेश देने के लिये निमन्त्रित किया था। थेर धम्मदिन्न वहाँ अकेले नहीं, अपितु भिक्खु संघ से घिरे हुए ( भिक्खु संघ परिवुत्तो ) गये। उन्होंने वहां उच्च धर्म के ऊपर उपदेश दिया, किन्तु तिस्समहाराम विहार के भिक्खु उनकी महिमा को समझ नहीं सके थे। इन्होंने मार्ग में दो भिक्खुओं के भ्रम को बड़े रोचक ढङ्ग से दूर किया था कि वे अर्हन्त हैं[1]। सम्मोहविनोदनी के अनुसार इनमें से एक थेर टंकनवासी महादत्त तथा दूसरे निकपोन्नपधानघरनिवासी चूलसुम्म थे। इन दोनों थेरों को झूठा विश्वास था कि ये अर्हन्त हैं। इसी प्रकार इन्होंने उच्चाट लङ्का के निवासी अपने गुरू महानाग को भी समझाया था कि वे अर्हन्त नहीं हैं[2]। विसुद्धिमग्ग में इन्हीं थेर के बारे में कहा गया है कि इन्हें ऐसी ऋद्धि प्राप्त थी कि उपदेश देते समय वे अपने श्रोताओं को स्वर्ग और नरक के दर्शन करा देते थे[3]। इसी ग्रन्थ में उल्लेख आता है कि तलंगारविहारवासी थेर धम्मदिन्न के भानजे सुधम्म सामणेर ने अपने मामा थेर धम्मदिन्न से सुन-सुन कर तिपिटक याद कर लिये थे[4]।

मनोरथपूरणी के समान सम्मोहविनोदनी में राजा सद्धातिस्स के बारे में उल्लेख कि ये बड़े धर्मात्मा थे। एक बार ये रात भर खड़े रह कर बड़े ध्यान पूर्वक थेर कालबुद्ध रक्खित के उपदेश को सुनते रहे थे। ये बौद्ध सिद्धान्तों के पक्के अनुयायी थे और नियमों का बड़ी तत्परता के साथ पालन करते थे। एक बार इन्होंने तीतर के मांस खाने की अपनी बलवती इच्छा को तीन वर्ष तक मन में दबाये रखा, क्योंकि उनकी यह इच्छा यदि प्रगट हो जाती तो बहुत से पक्षी मारे जाते। अन्त में इन्होंने एक तिस्स नाम के व्यक्ति की परीक्षा करके कि यह प्राणों के ऊपर संकट आने पर भी किसी पक्षी को नहीं मारेगा, उससे अपनी इच्छा प्रगट की और ऐसे

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४८६।
२. „ पृ० ४८६।
३. विसुद्धि मग्ग भाग २, पृ० ३६२।
४. सम्मोहविनोदनी, पृ० ३८६।

तित्तिर-मांस को लाने को कहा, जो रखा हुआ हो और विशेष तौर से उनके लिये तीतर को मारकर प्राप्त न किया गया हो।[1] इसी अट्ठकथा में उल्लेख है कि अनुराधपुर विहार के भिक्खु राजा दुट्ठगामणि की उदारता के कारण अनुशासन में प्रमादी और असावधान हो गये थे, इसलिए राजा सद्धातिस्स ने उनके लिये दान देना बन्द कर दिया था और केवल चेतियपव्वत विहार वाले भिक्खुओं को दान देना प्रारम्भ कर दिया था। जब उनसे कारण पूछा गया तो अगले दिन उन्होंने अनुराधपुर के भिक्खुओं को भोजन देते समय कारण बताया कि ये लोग असन्तोष पूर्वक दान लेते थे।[2]

सम्मोहविनोदनी में वर्णन है कि राजा वट्टगामणि के समय रोहण के ब्राह्मणतिस्स ने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह इतना शक्तिशाली था कि राजा ने कुछ दिनों तक इसका सामना ही नहीं किया। इसी समय सात तामिल राजा भी दक्षिणी भारत से अपनी सेनाऐं लेकर श्रीलंका के ऊपर चढ़ आये थे। वहाँ यह उल्लेख है कि भिक्खुओं की परिषद् ने आठ भिक्खु इन्द्र के पास भेजे कि वह इस विद्रोही को भगावे। इन्द्र ने उन्हें उत्तर दिया कि "विद्रोही को भगाना सम्भव नहीं। आप लोग विदेश चले जावें। समुद्र में मैं आप लोगों की रक्षा करूंगा।" इससे इतना तात्पर्य निकलता है कि ब्राह्मणतिस्स इतना शक्तिशाली था कि चुने हुए भिक्खुओं की तपस्या और मन्त्र शक्ति उसके सामने व्यर्थ हो गई, और उसका आतङ्क इतना बढ़ा कि भिक्खुओं को श्रीलंका छोड़कर भारत जाना पड़ा। अथवा उनको पहाड़ी प्रदेशों में शरण लेनी पड़ी।[3] सम्मोहविनोदनी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के आतङ्क के कारण चारों ओर से भिक्खु लोग श्रीलंका के उत्तर पश्चिमी भाग के नागद्वीप के जम्बुकोलपट्टन ( बन्दरगाह ) में समुद्र पार भारत जाने के लिये एकत्रित हो गये। इनके प्रधान, संयुत्तभाणक चूलसिव, थेर इसिदत्त तथा थेर महासेन थे। थेर महासेन की भविष्य में धम्म की रक्षा कर सकने की सामर्थ्य को समझ कर अन्य दोनों थेरों ने उन्हें भारत जाने का परामर्श दिया और कहा

१. सम्मोहविनोदनी, (सिहंली संस्करण), भाग ३, पृ० ४९।
२. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४७३।
३. ,, पृ० ४४६-४४७।

कि आतङ्क के समाप्त हो जाने पर फिर श्रीलंका में आ जाना। किन्तु क्योंकि दोनों साथी थेर भारत नहीं गये, इसलिये थेर महासेन भी भारत नहीं गये और श्रीलंका में ही रहे। थेर चूलसिव ने थेर इसिदत्त से प्रार्थना की, कि थेर महासेन की वे रक्षा करें और स्वयं महाचेतिय की वन्दना को चले गये।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि महाविहार खाली पड़ा था, एरण्ड के वृक्ष महाचेतिय के आंगन में उग रहे थे, चेतिय के चारों ओर झाड़ियां उग आई थीं और स्वयं चेतिय के ऊपर भी काई जम गई थी। वहां से ये थेर, जग्गर नदी के पास एक खाली स्थान पर गये, जहाँ कि लोग पत्तियां खाकर जी रहे थे। थेर अच्छे समय के आने तक वहाँ रहे।[1] विसुद्धिमग्ग में इन्हीं थेर के विषय में उल्लेख है, कि इनके ऊपर विष का असर नहीं होता था, क्योंकि इन्होंने मेत्ति ( विश्वमैत्री ) भावना का अभ्यास कर रखा था। आगे सम्मोहविनोदनी में वर्णन है कि थेर इसिदत्त और थेर महासेन के ऊपर भी कड़ी बीती। घूमते हुए थे अड़ा ( अल़ा ) जनपद में पहुँचे। यहाँ एक स्थान पर लोगों ने महुए की गुठलियाँ खाकर उनके छिलके छोड़ दिये थे। थेरों ने उन्हें उठाकर खाया। इस सप्ताह में केवल यही आहार था जो उन्हें मिल पाया था। दूसरे अवसर पर उन्होंने केवल मृणाल पर निर्वाह किया और बाद में केले की छाल खाकर निर्वाह किया।[2]

सम्मोहविनोदनी में थेर वट्टव्व निग्रोध और उनके वृद्ध गुरू की और भी करुण कथा का उल्लेख है। वे बहुत ही थोड़े भोजन पर निर्वाह करते हुए घूमते रहे। इस समय अकाल ने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि लोग मनुष्यों को भी मार कर खाने लगे थे। वृद्ध गुरू थेर इन भूख से पागल हुए लोगों के शिकार हो गये, किन्तु थेर निग्रोध उनके चंगुल से किसी प्रकार बच निकले। इन्होंने अकाल के बीतने पर तीनों पिटक सीखे और प्रसिद्ध थेर हुए।[3] इस अकाल के बारे में

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४४७।
२. ,, पृ० ४४७-४४८।
३. ,, पृ० ४४६-४५७।

सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि इसमें असख्य भिक्खु और श्रावक भूख से मर गये।

सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि तिस्समहाराम बिहार तथा चेतिय पव्वतविहार में से प्रत्येक में तीन-तान वर्ष तक के लिये भोजन था, किन्तु सब चूहों ने खा लिया। उन दोनों विहारों से बारह-बारह हजार भिक्खु एक दूसरे की ओर चले, किन्तु मार्ग में एक दूसरे से वही समाचार सुन कर और यह जानकर कि विहारों में लौटना व्यर्थ है, जंगल में घुस गये और भूख से मर गये[१]। यहाँ चाहे संख्या में अतिशयोक्ति ही हो पर यह निश्चित है कि भोजन के अभाव के कारण भिक्खु अकाल के ग्रास बन गये थे।

सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि ब्राह्मणतिस्स अकाल के बीतने पर कालकगाम के लोगों ने बड़े पैमाने पर दान का आयोजन किया था और थेर तिस्सभूति को मुख्य आसन दिया था[२]। वहीं यह भी वर्णन है कि बारह वर्ष के अनन्त दुःखों और कष्टों के पश्चात् अकाल समाप्त हुआ और विद्रोही ब्राह्मणतिस्स मारा गया। उसके मरने पर वट्टगामणि सिंहासन पर बैठा। डा० आदिकरम कहते हैं कि इस प्रकार अट्ठकथाओं में इस अकाल के बारे में तो वर्णन है, किन्तु सात तामिल आक्रमणकारियों के बारे में वे चुप हैं। यह शायद इसलिये है कि अकाल पीड़ित होकर भिक्खु लोग दूर-दूर जंगलों और पहाड़ों अथवा भारत में भाग गये थे और उनको आक्रमणकारियों के बारे में कुछ पता न लगा हो[३]। किन्तु महावंस में वर्णन है कि ब्राह्मणतिस्स को तो सात तामिलों ने मार दिया और उनमें से एक वट्टगामणि को रानी सोमादेवी को लेकर भारत लौट गया और दूसरा भगवान् बुद्ध देव के पात्र को लेकर वापिस चला गया। शेष पांचों में से प्रत्येक ने अपने-अपने पूर्वाधिकारियों को मार डाला और अन्तिम को वट्टगामणि ने मार कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया[४]।

---

१. सम्मोहविनोदनी पृ० ४४५।
२. ,, पृ० ४४८।
३. डा० आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री आँफ बुद्धिज्म इन सीलोन।
४. महावंस अध्याय ३३, (५४–६१)।

सम्मोहविनोदनी में थेर चूलनाग के बारे में, जिनको कि अट्ठसालिनी में दीपविहारवासी थेर सुम्म का शिष्य कहा गया है, उल्लेख है कि राजा कूटकण्णतिस्स इनको बहुत मानते थे और इनसे बहुत स्नेह करते थे। जब ये मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे तो राजा स्वयं इनकी परिचर्या किया करते और इधर-उधर रो-रो कर कहते फिरते कि धर्मचक्र की धुरी अब टूटने को है[1]। सम्मोहविनोदनी में यह भी उल्लेख है कि इन थेर का इनके गुरू तथा तीन साथी थेरों के साथ मतभेद था[2]। अट्ठसालिनी[3] और पपंचसूदनी[4] में इनके गुरू का नाम दीपविहारवासी थेर सुम्म कहा गया है, किन्तु सम्मोहविनोदनी में 'दिव्यविहार के सुम्म' ऐसा कहा गया है[5]। पपंचसूदनी में इन्हीं का तिपिटक चुल्लसुम्म नाम से भी उल्लेख है[6]। यह भी उल्लेख है कि ये गिरिविहार ( सुमंगलविलासिनी ) अथवा गिरिगाम-कण्ण ( सम्मोहविनोदनी ) में भी रहे थे। राजा कूटकण्ण इनके भक्त थे। इन दोनों के प्रथम मिलन के बारे में सम्मोहविनोदनी में एक रोचक कथा दी गई है[7]। सम्मोहविनोदनी में थेर महादत्त तथा दीघभाणक अभयथेर के भी नामों का भी उल्लेख है[8]। दीघभाणक अभयथेर के बारे में सम्मोह-विनोदनी में यह भी उल्लेख है कि थेर धम्मरक्खित के साथ विभंग के एक शब्द के बारे में इनका शास्त्रार्थ हुआ था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि ये अभिधम्म के भी ज्ञाता थे। सम्मोहविनोदनी में राजा भातिकाभय के बारे में कहा गया है कि वह पशुघात के इतना विरुद्ध था कि गोमांस खाने के अपराध को उसने अर्थदण्ड के योग्य घोषित किया था[9]।

चेतियपब्बत की राजलेन के बारे में सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है

---

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४५२।
२. ,, पृ० ३४२।
३. अट्ठसालिनी, पृ० २६६।
४. पपंचसूदनी, भाग १, पृ० २३०।
५. सम्मोहविनोदनी, पृ० ३४३।
६. पपंचसूदनी, भाग १, पृ० २३०।
७. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४५२।
८. ,, पृ० ८१।
९. ,, पृ० ४४०।

कि राजा सद्धातिस्स ने इस गुफा में उपोसथ, शील तथा अष्टसम्पदा का पालन किया था और सारी रात पिण्डपातिक थेर का उपदेश सुना था। यहाँ के भिक्खुओं की जीवनचर्या से राजा इतना संतुष्ट और हर्षित हुआ था कि उसने यहाँ के भिक्खुओं को प्रतिदिन दान दिया और वह अनुराधपुर विहार के भिक्खुओं से उदास हो गया[१]। यहाँ के चेतियपव्वतविहार में राजा कूटकण्णतिस्स के समय में दीघभाणक अभयथेर रहे थे। थूपाराम विहार के बारे में सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि महाचेतिय और बोधिवृक्ष के साथ-साथ वन्दना करने योग्य वस्तुओं में तीसरा स्थान इसी का है[२]। इस अट्ठकथा में यह भी लिखा हुआ है कि चार बुद्धों के अवशेष इसी थूपाराम चेतिय के स्थान में स्थापित हैं,[३] और इसी में यह भी लिखा है कि बुद्ध भगवान् ने निरोध सम्पदा ध्यान के द्वारा इसे पवित्र किया था[४]। इसमें यह भी लिखा है कि ब्राह्मणतिस्स अकाल के बाद बहुत से भिक्खु इसकी वन्दना करने के लिये आये थे[५]। जम्बुकोलविहार और राजायतनचेतिय का भी सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है[६] और वहीं यह भी उल्लेख है कि बहुत दूर-दूर से, यहां तक कि योनरट्ठ (यवन राष्ट्रों) से भी यात्री लोग इस चेतिय की वन्दना करने आते थे[७]।

सम्मोहविनोदनी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के पश्चात् भारत से लौटे हुए भिक्खु यहीं जहाज से उतरे थे[८]। रोहण के चित्तलपव्वत विहार के बारे में सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि ब्राह्मणतिस्स अकाल के समय इस विहार में बारह हजार भिक्खु रहते थे[९]। इसी में लिखा

---

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४७३।
२. ,, पृ० ४५१।
३. ,, पृ० ८६।
४. ,, पृ० ८६।
५. ,, पृ० ४५१।
६. ,, पृ० ४४६।
७. ,, पृ० २८६।
८. ,, पृ० ३८६।
९. ,, पृ० ४४५।

हुआ है कि मलियदेव के समकालीन चूलसुम्म को बहुत दिनों तक भ्रम रहा था कि वे अर्हन्त थे[1]। तलंगार-विहार के बारे में इस अट्ठकथा में उल्लेख मिलता है कि यह प्रसिद्ध थेर धम्मदिन्न का निवास था[2]। इसमें भेरपासनविहार का भी उल्लेख है। सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि श्रावकों को पढ़ाने के अतिरिक्त उनके लिये धम्मदेसना ( धर्मोपदेश ) का भी आयोजन होता था। गाँवों और नगरों में उपदेश के लिये सन्थागार ( हाल ) बने हुए थे और लोग वहाँ जाकर उपदेश सुनते थे[3]। बोधिवृक्ष के बारे में इस अट्ठकथा में उल्लेख है कि बोधिवृक्ष की वन्दना ऐसे ही भाव से करनी चाहिये जैसे स्वयं बुद्ध भगवान् की कर रहे हों[4]। इसमें अलिन्दक वासी थेर पुस्सदेव की आर्हन्त्य प्राप्ति के समय चत्तारो महाराजानो ब्रह्मा के साथ श्रीलंका में आये थे। वे महाचेतिय की प्रतिष्ठा के अवसर पर भी श्रीलंका में आये थे[5]।



---

१. सम्मोहविनोदनी, पृ० ४८९।
२. ,, पृ० ३८९, ४८९।
३. ,, पृ० ३४८।
४. ,, पृ० ४७३।
५. ,, पृ० ३५२।

## २. पञ्चप्पकरणट्ठकथा

अभिधम्मपिटक के शेष पाँच ग्रन्थों की अट्ठकथा पंचप्पकरणट्ठकथा कहलाती है। ये पाँच ग्रन्थ—धातुकथा, पुग्गल पञ्ञत्ति, कथावत्थु, यमक तथा पट्ठानप्पकरण हैं। यह सामूहिक अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है, इसमें कोई भी विप्रतिपत्ति नहीं है। इन अट्ठकथाओं का क्रम से परिचय निम्न प्रकार है। यह सम्पूर्ण अट्ठकथा भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर लिखी गई थी।

**(क) धातुकथापकरणट्ठकथाः**—यह 'अभिधम्मपिटक' के तृतीय ग्रन्थ 'धातुकथापकरण' के ऊपर अट्ठकथा है। इसको भी भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर आचार्य बुद्धघोष ने लिखा था। इसमें चौदह अनुभाग हैं, जिनमें पाँच स्कन्धों, बारह आयतनों तथा सोलह धातुओं आदि का विस्तृत वर्णन है।

**(ख) पुग्गलपञ्ञत्ति अट्ठकथाः**—यह अभिधम्मपिटक के चतुर्थ ग्रन्थ 'पुग्गलपञ्ञत्ति' ( पुद्गल प्रज्ञप्ति ) के ऊपर आचार्य बुद्धघोष की लिखी हुई अट्ठकथा है। श्री जे० लेण्डसबर्ग तथा श्रीमती रायस् डेविड्स ने इसका सम्पादन 'पाली टैक्स्ट सोसाइटी' के लिये किया है। इसकी तीन पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं—पहली ताड़पत्र पाण्डुलिपि सिंहली लिपि में, श्री गूने रत्ने के द्वारा पाली टैक्स्ट सोसाइटी के लिये प्राप्त की हुई है; दूसरी सिंहली पाण्डुलिपि कागज पर है तथा तीसरी बरमी लिपि में प्याइ ग्याइ माण्डयने प्रेस संस्करण, रंगून की है।

इस अट्ठकथा में मनुष्य की पञ्ञत्तियों (प्रज्ञप्तियों अथवा धारणाओं) के ऊपर महत्वपूर्ण विवरण है। इस विवरण में पुग्गलों ( मनुष्यों ) की धारणाओं का वर्गीकरण तथा परिभाषायें, पालीनय, अट्ठकथानय तथा आचरियनय, इन तीन प्रकार के नयों के अनुसार की गई हैं। प्रथम, पालीनय के अनुसार पुग्गल ( मनुष्य ) की पञ्ञत्तियों ( धारणाओं ) का सच्च, खन्ध धातु, आयतन, इन्द्रिय तथा पुग्गल ( व्यक्ति विशेष ) की धारणाओं अथवा विचारणाओं या भावों के अनुसार वर्गीकरण है। इनमें अन्तिम 'पुग्गल'

तो ग्रन्थ का विषय ही है। दूसरे, अट्ठकथानय के अनुसार इन धारणाओं को छः-छः के दो समूहों में विभक्त करके इनके तर्क-पूर्ण अभिप्राय का विवेचन शास्त्रार्थ के ढंग पर किया गया है। तीसरे, आचरियनय के के अनुसार भी इन धारणाओं को छः-छः के दो समूहों में विभक्त करके विवेचन किया गया है। इन पञ्ञत्तियों का विषय विवेचन आचार्य बुद्धघोष के अनुसार ही धम्मत्थसंगह तथा इसकी अट्ठकथाओं में पूर्ण रूप से किया गया है।[1]

इस अट्ठकथा में श्रीलंका के थेर चूलनाग के बारे में उल्लेख है कि ये प्रश्नों का उत्तर बिना सावधानी के साथ विचार किये नहीं देते थे। इसी प्रकार इसमें तिपिटक थेर चूलाभय के बारे में भी उल्लेख है कि प्रश्नों का उत्तर ये प्रत्युत्पन्न मति के साथ ठीक-ठीक और संक्षेप में ही देते थे।[2]

(ग) **कथावत्थुप्पकरणट्ठकथाः**—यह अभिधम्म पिटक के पांचवे ग्रन्थ कथावत्थु के ऊपर आचार्य बुद्धघोष की लिखी हुई अट्ठकथा है। इसका सम्पादन श्री मिनयेफ्फ ने पाली टैक्स्ट सोसाइटी के लिये सन् १८८९ में किया था। इसका अनुवाद श्री बी० सी० ला ने 'डिबेट्स कॉमेण्टरी' नाम से अँग्रेजी में किया है, जिसको पाली टैक्स्ट सोसाइटी, लन्दन ने प्रकाशित किया है। इस अट्ठकथा का विषयवर्णन अट्ठसालिनी तथा सम्मोहविनोदनी से इतना साम्य रखता है कि श्री बी० सी० ला कहते हैं कि इन दोनों अट्ठकथाओं से कथावत्थुप्पकरणट्ठकथा का केवल इतना ही अन्तर है कि वहाँ यह अट्ठकथा अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ कथावत्थुप्पकरण के नाम को धारण नहीं करती।[3] 'कथावत्थु' के अध्ययन के लिये इस अट्ठकथा का पढ़ना अनिवार्य है, क्योंकि कथावत्थु के बहुत से अस्पष्ट विषयों को यह स्पष्ट करती है। इसमें बौद्धधर्मशास्त्र सम्बन्धी बहुत-सी गुत्थियों को सुलझाया गया है। इसके साथ-साथ इस अट्ठकथा में बहुत से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उल्लेख हैं।

---

१. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष', पृ० ८९।
२. पुग्गलपञ्ञत्ति अट्ठकथा, पृ० २२३।
३. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष' पृ० ८९।

इस ग्रन्थ में बौद्ध सम्प्रदाय के प्राचीन तथा पश्चात्कालीन विभिन्न पन्थों की परस्पर विरोधी मान्यताओं का परिचय मिलता है। इसमें यद्यपि उन पन्थों का अथवा साम्प्रदायिक परम्पराओं का नाम निर्देश नहीं किया गया है, किन्तु विरुद्ध विवादास्पद विचार रखने वाले व्यक्तियों के नाम अवश्य दिये गये हैं। ये विरोधी पन्थ केवल वे सत्रह विरोधी पन्थ ही नहीं हैं जोकि परम्परा के अनुसार सम्राट् अशोक के समय से पूर्व थेरवादी परम्परा के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे तथा जिनका सम्राट् अशोक के द्वारा महाथेर महातिस्स की अध्यक्षता में बुलाई गई तीसरी संगीति में निराकरण किया गया था, अपितु इसमें उनके समय के बाद में उठ खड़े हुए सम्प्रदायों का भी उल्लेख है। इसमें बतलाया गया है कि बाहुलिक लोग बहुश्रुतिक भी कहलाते थे। इस अट्ठकथा में स्पष्ट तौर से अशोकोत्तर-कालीन छः बौद्ध सम्प्रदायों का भी उल्लेख है, जिसके नाम—हेमवतिका, राजगिरिका, सिद्धत्थिका, पुव्वेसेलिया, अपरसेलिया तथा वाजिरिया हैं। जब आचार्य बुद्धघोष उत्तरपथक, अन्धकपथक, वेतुल्लक, हेतुवादिन तथा महासुञ्ञतावादिन की मान्यताओं का वर्णन करते हैं, तो वाजिरिय और हेमवतिक लोगों के विचारों का उल्लेख नहीं करते। वे वेतुल्लक और महासुञ्ञातावादिन को कुछ बातों के सम्बन्ध में समान समझते हैं। यद्यपि उन्होंने हेतुवादिन के विचारों का तो उल्लेख किया है, किन्तु यह नहीं बताया कि वे कौन थे। पुग्गलपञ्ञत्ति अट्ठकथा तथा उसके बाद की कथाओं की अट्ठकथा संघ के इतिहास के दृष्टिकोण से वास्तव में महत्वपूर्ण है।

इस अट्ठकथा के अनुसार बौद्धों के चार आर्य सत्यों में से पहला और दूसरा अर्थात् 'दुःख' और 'दुःख समुदय' तो संसार और पुनर्जन्म से सम्बद्ध हैं, तथा तीसरा और चौथा अर्थात् 'दुःख निरोध' और 'दुःख निरोधगामिनी पटिपद्दा' निर्वाण के मार्ग से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार इन्द्रियों में दस तो विषयों की वासना से, नौ अगले दो लोकों से तथा तीन निर्वाण मार्ग से सम्बन्ध रखने वाली हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि समयविमुत्त—सोतापन्न, सकदागामी और अनागामी के विषयमें लागू है, तथा असमयविमुत्त—सुक्ख, विपस्सक और खीनासव के। कुप्पधम्म, साधारण पुरुष के लिये, जिसने आठ समापत्तियों को प्राप्त कर लिया है, लागू है।

यह अन्तिम भव वाले तथा स्वर्ग से एक बार लौट कर निव्वाण प्राप्त करने वाले पुरुष के लिये भी लागू है। कुप्पधम्म से ऐसे पुरुष से तात्पर्य है, जो अस्थिर है तथा धम्म के मार्ग में अच्छी तरह से दृढ़ नहीं है। कुप्पधम्म पुरुष, कुप्पधम्म इसलिये कहलाता है, कि उसकी समाधि और विपस्सना की विरोधी मनोवृत्तियाँ न तो पूर्णरूप से रुद्ध हो गई हैं और न नष्ट हुई हैं। यही कारण है कि उनकी प्राप्ति या सफलता नष्ट हो जाती है और गिर जाती है। अकुप्पधम्म उस अनागामी पुरुष के लिये है, जिसने आठ समापत्तियों को प्राप्त कर लिया है, तथा खीनासव पुरुष के लिये भी लागू है। इसका तात्पर्य उस पुरुष से है, जो धम्म के मार्ग से विचलित नहीं होता है। वह धम्म के मार्ग में सुस्थिर और दृढ़ है। ऐसे पुरुष के हृदय से समाधि और विपस्सना की विघ्नकारी वृत्तियाँ पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती हैं। उसकी प्राप्ति या सफलता असावधानी के कारण किये गये अनुचित कार्यों तथा व्यर्थ की बातों के कहने से खण्डित या नष्ट नहीं होती। 'गोत्रभू' ऐसे पुरुष को कहा जाता है, जो ध्यान और निर्वाण के द्वारा साधारण पुरुषों की कौटुम्बिक परिधि से निकल कर अरिय (आर्य) लोगोंकी परिधि और पदको प्राप्त होचुका है। उभतोभागविमुत्त—वह पुरुष कहलाता है, जो अरूपता के ध्यान के द्वारा रूपकाय से तथा अष्टांग मार्ग के परिशीलन के द्वारा नामकाय से विमुक्त है।

इस अट्ठकथा में कहा गया है कि निव्वाण प्राप्त करने के लिये मनुष्य को ध्यान की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, तथा 'सोतापत्ति फलत्थ' से लेकर 'अरहत्मग्गत्थ' तक कायसक्खि की छः कक्षाओं अथवा श्रेणियों को पार करना पड़ता है।

इस ग्रन्थमें निम्नस्थ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या मिलती है:—

दिट्ठापत्तो—उस पुरुष को कहते हैं, जिसने चार आर्य सत्यों को जान लिया है। अर्थात् जो जानता है कि दुःख क्या है, दुःख के कारण क्या हैं, दुःख का निरोध क्या है और दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग कौन-सा है।

धम्मानुसारी—वह पुरुष कहलाता है, जो पवित्रता की पहली अवस्था को प्राप्त हो चुकता है, क्योंकि वह धर्म में श्रद्धा और विश्वास से चलता है।

सत्तक्खत्तुम्परमो—वह पुरुष कहलाता है, जो सातवें भव में अर्हत्पद प्राप्त कर लेता है। सोतापत्तिफल प्राप्त कर लेने के बाद प्राणी नीच कुल में जन्म नहीं लेता है। वह केवल छः बार देवों और मनुष्यों में पैदा होता है।

एकावीजी—उस भव्य पुरुष को कहते हैं जो केवल एक भव ही धारण करके निर्वाण प्राप्त करता है।

अन्तरापरिनिव्वायी—उस भव्य पुरुष को कहते हैं, जो अपनी आयु के मध्य भाग को प्राप्त करने से पहले ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

उपहच्चपरिनिव्वायी—उस भव्य पुरुष को कहते हैं जो आयु के मध्य भाग को तो प्राप्त कर चुके, किन्तु अन्त को प्राप्त न करके निव्वाण प्राप्त करता है।

असंखार परिनिव्वायी—उस भव्य पुरुष को कहते हैं, जो सम्पूर्ण मानसिक दोषों को दूर करने वाली अवस्था को प्राप्त करता है।

संखार परिनिव्वायी—उस भव्य पुरुष को कहते हैं, जो उपर्युक्त इस अवस्था को प्रेरणा, कष्ट तथा बड़े प्रयत्न से प्राप्त करना है।

अकनिट्ठगामी—अवीहा, अतप्पा, सुदस्सा तथा सुदस्सी इन चार मध्यवर्ती लोकों को पार करके सबसे ऊँचे ब्रह्मलोक में पहुँचता है।

कल्याण मित्त—का अर्थ भद्र ( नेक ) और आध्यात्मिक मित्र है।

हीनाधिमुत्तो—का अर्थ नीच प्रवृत्ति वाला है।

पणिताधिमुत्तो—का अर्थ नेक प्रवृत्ति वाला है।

इस ग्रन्थ में वर्णन है कि सात प्रकार के शिष्य और साधारण पुरुष, कष्ट, दण्ड तथा नरकादि गतियों के डर के कारण पापों से निवृत्त होते हैं। किन्तु खीनासव पुरुष का डर समूल नष्ट हो जाता है; इसलिये वह अभयुपरतो कहलाता है।

तेविज्जो ( त्रैविद्यो )—वह पुरुष कहलाता है, जो पहले पूर्व-जन्म के ज्ञान को, फिर देव-दृष्टि को और फिर अर्हत्पद को प्राप्त करता है। अर्थात् वह तीन विद्याओं--अर्थात् पुब्बेनिवासञाणं ( पूर्व जन्म स्थान ज्ञान ), दिव्वचक्खुञाणं ( दिव्य-दृष्टि ज्ञान ) तथा अरहन्तफलञाणं ( अर्हन्तपद ज्ञान ) का ज्ञाता होता है। वह पुरुष भी 'तेविज्जो' कहलाताहै,

जो पहले अर्हत्पद प्राप्त करके बाद में 'पुब्बेनिवास' ज्ञान और दिव्य-दृष्टि ज्ञान को प्राप्त करता है।

छळभिञ्ञो—वह पुरुष है, जो छः प्रकार की अलौकिक विद्याओं अथवा दिव्य ज्ञानों को प्राप्त करता है। वे छः अलौकिक विद्या इस प्रकार हैं:—इद्धिविधा (भिन्न-भिन्न प्रकार की मन्त्र शक्तियां), दिब्बसोत (दिव्य श्रोत), परचेतो ज्ञानं (परचित्त ज्ञान), पुब्बेनिवास ज्ञानं (पूर्व-जन्म का ज्ञान), दिब्बचक्खु (दिव्य चक्षु अथवा दिव्य दृष्टि) तथा आसवक्खय ज्ञानं (पाप प्रवृत्तियों के नाश का ज्ञान)।

पुब्बकारी—वह पुरुष है जो दूसरों से प्रत्युपकार की आशा से रहित होकर परोपकार करता है।

कतञ्ञाकतवेदी (कृतज्ञाकृतवेदी)—वह पुरुष है जो दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गये उपकार को जान कर उनका उपकार करता है।

संकित्तिसु—का अर्थ है, 'संकित्तेत्वा कतभत्तेसु' अर्थात् बिना पकाये भोजन को उसके इकट्ठे करने के उद्देश्य की घोषणा करके इकट्ठा करके पकाने वाला। अकाल के समय अचेलक लोग बिना पकाया अन्न इकट्ठा किया करते थे और उसके उद्देश्य की घोषणा करते जाते थे। बाद में उसको पकाकर साधुओं को बांट देते थे। किन्तु अच्छे अचेलक साधु इस प्रकार का कोई अन्न ग्रहण नहीं करते।

अनुसोतगामीपुग्गलो (अनुस्रोतगामी पुद्गल मनुष्य)—का अर्थ 'पुथुज्जनो' (पृथग्जन—साधारण पुरुष) है। अर्थात् जो पुरुष दूसरों को देखकर चलने वाला है।

इस अट्ठकथा के अनुसार पंचम पुरुष से अभिप्राय उस पुरुष से है, जिसने सम्पूर्ण पापवृत्तियों को दूर कर दिया है।

(घ) **यमकप्पकरणट्ठकथाः**—यह अभिधम्मपिटक के छठे ग्रन्थ यमक के ऊपर आचार्य-बुद्धघोष की अट्ठकथा है। मूलग्रन्थ के अनुसार यह भी—(१) मूल यमक, (२) खन्धयमक, (३) आयतन यमक, (४) धातु यमक, (५) सच्च यमक, (६) संखार यमक, (७) अनुस्सय यमक, (८) चित्तयमक, (९) धम्मयमक तथा (१०) इन्दिय यमक—इन दस अध्यायों में विभक्त है।

मूलयमक भगवान् गौतम बुद्ध के उपदेशों का सार है। मूल शब्द का अर्थ कारण है। इसलिये मूल यमक में कुसलधम्म और अकुसल-धम्मों का वर्णन है, क्योंकि कुसलधम्म निब्बाण के तथा अकुसलधम्म संसार के मूल कारण हैं।

दूसरा अध्याय खन्धयमक (स्कन्ध यमक) नाम का है। खन्ध (स्कन्ध) पाँच हैं—रूप, वेदना, विञ्ञाण (विज्ञान), सञ्ञा (संज्ञा) तथा संखार (संस्कार) इसलिये इसमें कुसल तथा अकुसल धम्मों का अपने-अपने स्कन्धों के अनुसार वर्णन है। यह अध्याय तीन प्रधान अनुभागों में विभाजित हैं—पञ्ञत्तिवार (प्रज्ञप्तिवार), पवत्तिवार (प्रवृत्तिवार) तथा परिञ्ञावार (परिज्ञावार)।

तीसरे अध्याय में कुसल तथा अकुसल धम्मों का बारह आयतनों के अनुसार वर्णन है। ये आयतन—चक्खु, सोत (श्रोत), काय, रूप, रस, फोट्ठब्ब इत्यादि बारह हैं।

चौथे अध्याय में इन कुसल और अकुसल धम्मों का अठारह धातुओं के अनुसार वर्णन है। यहां भी व्याख्या के तीन प्रकारों—पालीनय, अट्ठकथानय तथा आचरियनय—का अनुसरण किया गया है।

पाँचवे 'सच्चयमक' अध्याय में चार प्रकार के अरिय सच्चों (आर्य सत्यों) का कुसल तथा अकुसल धम्मों के अनुसार वर्णन है। इसीलिये इसका नाम सच्चयमक है।

छठे संखारयमक अध्याय में कुसल तथा अकुसल धम्मों का काय संखार (काय संस्कार), वचि संखार (वचन संस्कार), मनोसंखार (मनः संस्कार) आदि के अनुसार वर्णन है।

सातवें अनुस्सययमक अध्याय में कुसल तथा अकुसल धम्मों का कम्म, राग आदि अनुसयों (मनोभावों) के अनुसार वर्णन है।

आठवें चित्तयमक अध्याय में कुसल तथा अकुसल धम्मों का चित्त की अवस्थाओं के अनुसार वर्णन है।

नवमे धम्मयमक अध्याय में कुसल, अकुसल तथा अव्याकत धम्मों का तथा दसवें इन्दियमक अध्याय में इन्द्रियों का वर्णन है।

**(ङ) पट्ठानप्पकरणट्ठकथाः**—यह अभिधम्मपिटक के सातवें ग्रन्थ पट्ठानप्पकरण अथवा महापकरण के ऊपर अट्ठकथा है। इसे भी

पंचप्पकरणट्ठकथा की अन्य अट्ठकथाओं के समान आचार्य बुद्धघोष ने भिक्खु बुद्धघोष की प्रार्थना पर लिखा था। इसका सम्पादन श्रीमती रायस् डेविड्स ने पाली टैक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के लिये किया है।

अभिधम्म के ग्रन्थों में पट्ठान सबसे अधिक कठिन है। इसीलिये आचार्य बुद्धघोष के सैद्धान्तिक ज्ञान की गम्भीरता का इससे पता लगता है। इस ग्रन्थ के उद्देसवार तथा निद्देसवार नामक पहले दो अध्यायों में सबसे अधिक महत्व के चौबीस पच्चयों ( प्रत्ययों ) का विवेचन है। आचार्य बुद्धघोष की पच्चयों की व्याख्या कम से कम कुछ दृष्टिकोणों में आचार्य बसुबन्धु के संस्कृत ग्रन्थ अभिधर्मकोष की व्याख्या से भिन्न है। इस ग्रन्थ में आचार्य बुद्धघोष 'हेतु' शब्द की व्याख्या करते समय ठीक ही कहते हैं कि यहाँ 'हेतु' शब्द न तो न्याय वैशेषिक दर्शनों के प्रतिज्ञा हेतु उपनय निगमन इत्यादि अनुमान के अंगों वाला हेतु है, जिसका साध्य-साधक रूप व्याप्ति में होना अनिवार्य है और न ही यहाँ यह दार्शनिक अर्थ 'कारण' के अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ तो यह मानस नैतिक विज्ञान के अर्थ में प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ भाव अथवा कार्यों का उद्‌गम है। अर्थात् जिन भावों से कार्य की प्रेरणा उत्पन्न होती है[1]।

★★

---

१. श्री बी० सी० ला—'बुद्धघोष'।

# षष्ठम अध्याय

## आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का मूल्यांकन

अट्ठकथाओं को लिखते समय आचार्य बुद्धघोष का लक्ष्य केवल तिपिटक के ग्रन्थों की व्याख्या करना था। इसके लिये उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं कथाओं तथा देश में प्रचलित कहानियों का, तथा सामाजिक और भौगोलिक वातावरण का सहारा लिया था। साथ में प्रकरण-प्राप्त जनता के उत्सवों, त्यौहारों और खेलों आदि का भी उन्होंने पर्याप्त उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त अट्ठकथाओं में यत्र-तत्र बिखरा हुआ देश की राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति के वर्णनों के साथ-साथ जनता की भिन्न-भिन्न युगों में होने वाली मनोवृत्तियों का भी परिचय मिलता है। इन सब बातों का उपयोग उन्होंने केवल मूलग्रन्थों में आये हुए 'धम्म' के सिद्धान्तों तथा 'विनय' के नियमों के स्पष्टीकरण के लिये किया है और उपरिलिखित ब्यौरे उन्होंने केवल उदाहरणस्वरूप दिये हैं, ऐतिहासिक अभिलेखों के अथवा ऐतिहासिक तथ्यों के उद्धृत करने के उद्देश्य से नहीं। फिर भी ये ब्यौरे और वर्णन हमारे लिये बड़े भारी ऐतिहासिक महत्व के हैं। उनमें हमें केवल इतिहास की स्थूल-स्थूल बातें ही नहीं मिलती, किन्तु ऐसे ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा जनता, समाज तथा व्यक्तियों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक तथ्यों के दर्शन होते हैं, जिनका इतिहासों में मिलना दुर्लभ है। इसी कारण इतिहास के विद्वानों ने इन अट्ठकथाओं का उपयोग भारत और श्रीलंका के इतिहास लिखने में पर्याप्त मात्रा में किया है।

---

टिप्पणी:—इस अध्याय में अट्ठकथाओं के उद्धरणों के भाग और पृष्ठ संख्या का प्रायः उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि ये उल्लेख भिन्न-भिन्न अट्ठकथाओं के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं। पाठक वहाँ से उन्हें ज्ञात कर सकते हैं। जो उद्धरण पहले नहीं आये, केवल उनकी ही पृष्ठ संख्या टिप्पणियों में दी गई है।

इन अट्ठकथाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐतिहासिक महत्व की सूचनाऐं तो भरी पड़ी हैं, किन्तु उनका क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता और न इनमें घटनाओं की, राजाओं की तथा थेरों आदि की ठीक-ठीक तिथियां ही प्राप्त होती हैं। किन्तु फिर भी ये सूचनाऐं इतिहास की कड़ियों को जोड़ने तथा बीच-बीच के रिक्त स्थानों की पूर्ति करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं, और इसीलिये इतिहासकारों के लिये इनका बड़ा भारी ऐतिहासिक महत्व है। अपने विस्तृत ज्ञान के द्वारा आचार्य बुद्धघोष ने जो कथाऐं, कहानियाँ घटनाऐं तथा राजाओं और थेरों के ब्यौरेवार वर्णन अपनी अट्ठकथाओं की व्याख्याओं में संग्रहीत किये हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने आगामी पीढ़ियों में आने वाले लोगों के लिये एक ऐसा ऐतिहासिक विश्वकोष इन अट्ठकथाओं के रूप में तैयार करके रख दिया है जिसमें वे अतीतकाल की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भौगोलिक स्थिति के ही नहीं, अपितु उस काल के उत्सवों, खेलों, रीति-रिवाजों और लौकिक तथा धार्मिक प्रथाओं, धारणाओं, मनोभावों तथा प्रवृत्तियों के बारे में भी विशद वर्णन प्राप्त कर सकेंगे।

श्रीमती रायस् डेविड्स, श्री बी० सी० ला की प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्धघोष' के पूर्व शब्द ( फॉरवर्ड्स ) लिखती हुई कहती हैं, "मुझे आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ केवल सूचक ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक तथ्यों की खान प्रतीत होते हैं। इनको ( साहित्य से ) अलग कर देना, इतिहास के दृश्य-रूपों को तथा बौद्ध-दर्शन के महत्वपूर्ण पाठों को खो देना है।" डा० विण्टरनिज् भी अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर' के द्वितीय भाग में इन्हीं से मिलती हुई शब्दावली में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं, कि "आचार्य बुद्धघोष की रचनाऐं केवल उच्च श्रेणी की सूचक ही नहीं हैं, अपितु ऐतिहासिक रोचक कथाओं की खान हैं। यदि इनको अलग कर दिया जाये तो बौद्ध-दर्शन की प्रगति के ऐतिहासिक दृश्यरूप को नष्ट कर देना है। यदि आचार्य बुद्धघोष की कोई विशेष मौलिक देन नहीं भी होती तो भी प्राचीन परम्पराओं के यथार्थ रूप में संरक्षण के लिये हम उनके अत्यन्त आभारी होते।" आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का मूल्य आधुनिक इतिहास के विद्वानों के लिये, इसलिये और भी अधिक है,

कि उन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं के पाली में भाषान्तर करते समय मौलिकता और स्वतन्त्रता से काम नहीं लिया, अपितु प्राचीन अभिलेखों को जैसे का तैसा अट्ठकथाओं में सुरक्षित रखा है। इससे हमें इनमें प्राचीन इतिहास की झांकी यथार्थ रूप में मिल सकती है।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि आचार्य बुद्धघोष के अनुसार थेर महिन्द तिपिटक ग्रन्थों के साथ उनकी अट्ठकथाओं को भी अपने साथ श्रीलंका में लाये थे। ये अट्ठकथाऐं सिंहली भाषा में अनुवादित हुई थीं और तिपिटक ग्रन्थों के साथ-साथ आड़विहार की परिषद के द्वारा लिखित रूप में लाई गई थीं। समय-समय पर श्रीलंका के थेरों द्वारा इनमें परिवर्द्धन तथा संवर्द्धन भी होता रहा था। इनमें श्रीलङ्का की कथाऐं, घटनाऐं, कहानियाँ तथा अनेक राजाओं और थेरों से सम्बन्धित कथानक और साथ में श्रावकों तथा जनता के वर्णन भी जोड़ दिये गये थे। जिससे भारतीय इतिहास के साथ-साथ श्रीलङ्का के ऐतिहासिक ब्यौरे भी इनमें पर्याप्त रूप में मिलते हैं। बल्कि किसी-किसी अट्ठकथा में तो भारत की अपेक्षा श्रीलंका के बारे में अधिक ब्यौरे प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये 'अट्ठसालिनी' और 'सम्मोहविनोदनी' का उल्लेख किया जा सकता है। 'जातकट्ठकथा वण्णना' तथा 'धम्मपदट्ठकथा वण्णना' भारत में ही 'जातक' तथा 'धम्मपद' की गाथाओं के साथ बंधकर पूर्णरूप धारण कर चुकी थीं। श्रीलंका में आकर इनमें बहुत कम संवर्द्धन हो पाया है। इसीलिये इन दोनों में श्रीलंका के बारे में अन्य अट्ठकथाओं की अपेक्षा सूचनाऐं बहुत कम मिलती हैं। क्योंकि आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में भारत और श्रीलंका, दोनों के ऐतिहासिक ब्यौरे मिलते हैं, इसलिये मूल्यांकन करते समय दोनों देशों की परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी इस अध्याय में आवश्यक है। पहले इनमें भारत के बारे में दिये हुए इतिहास भूगोल आदि का सिंहावलोकन करते हैं।

**ऐतिहासिक:—बुद्ध** भगवान् का जन्म, बोधिप्राप्ति, उपदेशक के रूप में विहार और निर्वाण भारत में ही हुआ था, इसलिये अट्ठकथाओं में उनसे सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक, भौगोलिक सामाजिक तथा व्यक्तिगत ब्यौरे प्राप्त होते हैं। बुद्ध भगवान् के इन ब्यौरों को कहीं तो पौराणिक ढंग से वर्णन करके अतिरंजित कर दिया गया है तथा कहीं उनके यथार्थ तपस्वी

और उपदेशक रूप की झाँकी दी गई है। ऐसी जगह वे अपने यथार्थ रूप में अलौकिक रूप से भी अधिक उज्जवल प्रतीत होते हैं। पौराणिक और अतिरंजित वर्णन में से भी ऐतिहासिक तथ्य अलग चमकते जाते हैं। ऐसे वर्णन में से उनका पौराणिक रूप अलग करके ऐतिहासिक रूप ग्रहण कर लेना चाहिए और समझ लेना चाहिये कि ऐसे लोकोत्तर पौराणिक वर्णन के अंश केवल उनके महत्व को बढ़ाने के लिये ही दिये गये हैं, वे ऐतिहासिकता के लिये नही हैं।

बुद्ध भगवान् के जन्म के बारे में अट्ठकथाओं में अतिशयोक्ति तथा अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हैं। वे उत्पन्न होते ही सात पग चले थे और उन्होंने घोषणा की थी कि वे संसार में सबसे उत्कृष्ट और मुख्य हैं; यह उनका अन्तिम जन्म है और अब आगे वे और जन्म धारण नहीं करेंगे। उनके गर्भ में आने के समय से लेकर जन्म के समय तक चत्तारो महाराजानो ( अर्थात् चारों इन्द्रादिक लोक पालों ) ने उनकी माता की और गर्भ की रक्षा की थी। उनके जन्म के समय ब्रह्मादिक सर्व देवता उपस्थित हुए थे।

अट्ठकथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि बुद्ध भगवान् की संसार से विरक्ति के कारण उदासीनता को देख कर शाक्यों ने इनको अपनी कन्या विवाह में देनी नहीं चाही। वे सोचते थे कि ये उनकी लड़की का पालन पोषण नहीं कर सकेंगे, क्योंकि ये कोई कला या शिल्प नहीं जानते, किन्तु जब इन्होंने अपनी धनुर्विद्या का परिचय दिया तभी यशोधरा के साथ इनका विवाह हुआ। इनके पिता ने इनकी विरक्ति के भावों को देखकर इनके लिये भिन्न-भिन्न ऋतुओं के योग्य अलग-अलग स्थानों पर सुन्दर तथा सर्वसुख सामग्री से पूर्ण तीन महल बनवाये थे।

अट्ठकथाओं में यह भी वर्णन है कि देवताओं ने इनको वैराग्य दिलाने के लिये इन्हें पुरुष के बीमार, वृद्ध, मृत तथा सन्यासी—इन चार रूपों को दिखाया था। इनके घर छोड़ने को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा गया है और अट्ठकथाओं में उसका पौराणिक तथा अनुभूतिपूर्ण वर्णन है। बोधि प्राप्ति के पश्चात् ये उसके आनन्द में उनचास दिन तक मग्न रहे और ब्रह्मा सहंपति की प्रार्थना पर ही इन्होंने उपदेश दिया था[1]। इनका सर्व प्रथम

---

१. जातकट्ठकथा वण्णना भाग १, पृ० ८१।

उपदेश 'धम्मचक्क पवत्तन' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसको कि इन्होंने अपने इन पहले वाले पांच शिष्यों को खोज कर दिया था, जो इनके द्वारा कठोर तपस्या को छोड़ कर 'मध्यम मार्ग' अवलम्बन करने पर इनको छोड़ कर सारनाथ में आकर रहने लगे थे और इनको आता सुन इनसे शास्त्रार्थ करने आये थे, किन्तु इनके सामने आते ही नतमस्तक हो गये थे। इसके पश्चात् इनके संघ में लोग दीक्षित होते गये।

अट्ठकथाओं में वर्णन है कि यशोधरा ने राहुल को इन के पास उत्तराधिकार माँगने को भेजा था और इन्होंने उसको आठ वर्ष की अवस्था में ही सामणेर बनाकर अपने धम्म का उत्तराधिकार दिया था। यह बात जब राजा शुद्धोदन को मालूम पड़ी तो वे इनके पास आये और बहुत ही द्रवित होकर इनसे शिकायत की, कि इतनी छोटी उम्र में इन्होंने उसे क्यों दीक्षा दी। तब से इन्होंने बीस वर्ष की अवस्था से ऊपर वालों को ही दीक्षा देने का नियम बना लिया और वह भी तब, जब कि उस व्यक्ति को उसके माता पिता तथा स्वामी से दीक्षा लेने की अनुमति मिल जाये।

सुमंगलविलासिनी अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध आकाश मार्ग से भी गमन कर सकते थे और एक बार दो सहस्र भिक्खुओं के साथ थे, थेर सारिपुत्त के शिष्य, तिस्स सामणेर के पास आकाश मार्ग से तरित (त्वरित) गति द्वारा गये थे। इनकी दो प्रकार की गतियों—तरित तथा अत्तरित—का वर्णन इसी अट्ठकथा में मिलता है। जब ये कपिलवत्थु गये तो शाक्यों की झिझक को देख कर सबसे पहले राजा शुद्धोदन ने इन्हें नमस्कार किया, जिससे कि उनका अनुकरण करके सब लोग इनके अनुयायी बने। इसी अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि राजा बिम्बसार इनका बड़ा भक्त था, किन्तु देवदत्त के प्रभाव में आकर उसका पुत्र अजातशत्रु इनका विरोधी हो गया था। किन्तु जब अजातशत्रु को अपने किये हुए पर पश्चात्ताप हुआ और वह इनका उपदेश सुनने के लिये इनके पास आया तो परमकारुणिक भगवान् बुद्ध ने बड़े अनुग्रह के साथ क्षमा-भाव धारण करके इसको उपदेश दिया, जिससे अजातशत्रु को सान्त्वना प्राप्त हुई और उसने अपना पितृवध का अपराध स्वीकार किया।

अपने वस्सकार (वर्षकार) मन्त्री के द्वारा जब अजातशत्रु ने इनसे पुछवाया कि वज्जियों के ऊपर उसको विजय किस प्रकार प्राप्त हो

सकेगी, तो भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट कह दिया था कि वज्जियों को परास्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे सत्यपक्ष पर आरूढ़ हैं और उनमें संगठन और एकता है। जब उनमें फूट पड़ जावेगी, तभी उनके ऊपर कोई विजय प्राप्त कर सकेगा, अन्यथा नहीं। इससे तथा समन्तपासादिका के वर्णन से प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध गणतन्त्र राज्यों के पक्ष में थे। इसीलिये सम्राट अजातशत्रु की प्रशंसा न करके उन्होंने वज्जिभूमि और वज्जियों की तथा उनके संगठित शासन की प्रशंसा की है।

बुद्ध भगवान् को परोक्ष बातों का भी ज्ञान हो जाता था। बन्धुल सेनापति के द्वारा सन्तान न होने के कारण निष्कासित मल्लिका को उन्होंने गर्भवती जानकर वापिस भेजा था। अट्ठकथाओं में उनको तथागत तथा दशबलधी कहा गया है।

भगवान् बुद्ध पहले स्त्रियों को दीक्षा देने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु अपने उपस्थापक थेर आनन्द के अनुरोध करने पर ही उन्होंने महाप्रजापति गौतमी को दसवीं बार आने पर और प्रार्थना करने पर दीक्षा दी थी। वे स्त्रियों को दीक्षा देकर संघ में इसलिये प्रविष्ट नहीं करना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान से जान लिया था कि पांचसौ वर्ष बाद स्त्रियों के कारण संघ में भ्रष्टाचार आजावेगा। और उनकी बात सत्य निकली। दृढ़रथ, और बृहद्रथ के समय में संघाधिपति राजाओं को निमन्त्रित करते और युवती भिक्खुनियों को उनकी सेवा में रखते थे, जिससे उनको प्रसन्न करके वे हूणों तथा अन्य विदेशियों के लिये देश में प्रवेश प्राप्ति के लिये आज्ञापत्र प्राप्त करके उन्हें बौद्धधर्म में दीक्षित कर सकें। ये विदेशी बर्बर जल्दी से बौद्धधर्म स्वीकार कर लेते थे और वैदिक लोगों को सताते थे।

सुजाता की खीर का भोजन उनकी बोधिसत्वावस्था का अन्तिम भोजन था, जिसको प्राप्त करके उनको बोधि प्राप्त हुई थी तथा चुन्द का सूकरमद्दव का भोजन उनका अन्तिम भोजन था, जिसको प्राप्त करके उनको निर्वाण लाभ हुआ था।

सुमंगलविलासिनी से हमें भगवान् बुद्ध के पांच कर्त्तव्यों का तथा उनकी दिनचर्या का पता लगता है। इसमें बताया गया है कि भगवान् बुद्ध ने उनतीस वर्ष की आयु में घर-द्वार और संसार को छोड़कर अनोमा नदी

के किनारे दीक्षा ली थी। इसमें यह भी वर्णन है कि भगवान् ने सावत्थी ( श्रावस्ती ) के द्वार पर कदम्ब वृक्ष के नीचे यमक पाटिहारिय ( आश्चर्य युगल ) दिखलाये थे। इसमें उनका बोधिवृक्ष के नीचे 'मार' को परास्त करके बोधि प्राप्ति का पौराणिकता मिश्रित बड़ा रोचक तथा सुन्दर वर्णन है। इसमें इनके महापरिनिव्वाण का और निर्वाण के समय के तथा बाद के समय के कितने ही करुणापूर्ण दृश्यों का और लोगों की शोकपूर्ण अवस्थाओं का वर्णन है। इनको अन्त्येष्टि क्रिया और भस्मी के वितरण के बारे में कुछ-कुछ पौराणिकता मिश्रित वर्णन है कि थेर महाकस्सपने श्रीलंका के महाचेतिय के लिये इनकी भस्मी सुरक्षित रखा थी। बुद्ध भगवान् के बारे में अट्ठकथाओं में यह भी पौराणिक वर्णन मिलता है कि ये तीन बार श्रीलंका में पधारे थे। उपर्युक्त बातों का ब्यौरे-वार वर्णन उन-उन अट्ठकथाओं के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

सुमंगलविलासिनी में प्रथम संगीति के बुलाये जाने के कारण का और संगीति में ग्रन्थों के साथ अट्ठकथाओं के वाचन का भी उल्लेख मिलता है। इस संगीति का वर्णन विनयपिटक और महावंस में भी मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों के वर्णन का मिश्रण इस अट्ठकथा में दिया गया है। इसमें यह भो वर्णन है कि भिन्न-भिन्न तिपिटक ग्रन्थों की रक्षा भिन्न-भिन्न थेरों को सौंपी गयी थी और इन्हीं थेरों की परम्परा में से बाद में उन-उन ग्रन्थों के भाणकों का आविर्भाव हुआ था। इस अट्ठकथा में पौराणिक रूप में सम्राट अशोक के पैदा होने और छत्र धारण करके धम्मराजा होने का भी वर्णन है। इस अट्ठकथा में भगवान् बुद्ध के समकालीन प्रधान शिष्यों तथा शिष्याओं का जीवन वृत्तान्त भी मिलता है और उनके समकालीन अन्य राजाओं का भो वर्णन मिलता है। तक्षशिला के स्नातक और प्रसिद्ध महावैद्य जीवक कोमारभच्च की आश्चर्यकारी चिकित्साओं का भी इसमें वर्णन है। वाराणसी के राजा पसेनदि (प्रसेनजित्) और अजातशत्रु के विरोध का तथा बाद में पसेनदि के द्वारा अजातशत्रु के युद्ध में पकड़े जाने और फिर उसके साथ अपनी पुत्री वजिरा ( वज्रा ) का विवाह कर देने का तथा दहेज में काशी गाँव देने का वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है।

सुमंगलविलासिनी में अजातशत्रु के बारे में वर्णन मिलता है कि

गर्भ में आते ही उसकी माता को अपने पति की भुजा का रक्त पीने का दोहद हुआ था। उसकी माता ने बहुत चाहा कि ऐसे अनिष्ट बच्चे को मार डाले, किन्तु वह मार न सकी। अन्त में अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बसार सेनिय ( श्रेणिक ) को कैद में डाल दिया और अनेक यातनाएं दे-दे कर मार डाला। इस अट्ठकथा में यह भी वर्णन है कि जब अजातशत्रु के पुत्र पैदा हुआ तो उसका हृदय अपने पिता के प्रति स्नेह और दया से भर गया, किन्तु जब उसको ज्ञात हुआ कि उनका तो देहान्त हो चुका है, तो वह अपनी माता के सामने बिलख-बिलख कर रोया और उसने बहुत पश्चात्ताप किया। उसको सान्त्वना देने के लिये बुद्ध भगवान् ने उसको उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाई और धर्म का उपदेश दिया। इससे उसको शान्ति मिली।

इस अट्ठकथा में यह भी वर्णन है कि देवदत्त ने बिम्बसार के मरने पर अजातशत्रु को बुद्ध भगवान् का वध करवाने के लिये प्रेरणा दी और स्वयं भी उनके ऊपर गृद्धकूट पर्वत के ऊपर से पत्थर फेंका।

इसमें भिक्खुओं की दैनिक जीवनचर्या का वर्णन है कि किस प्रकार वे सवेरे से रात्रि तक अपने समय को विनय के नियमों का पालन करते हुए पवित्र विचारों और कार्यों में बिताते थे। बोधिवृक्ष, चेतिय और बिहारों की भूमि को साफ रखना भी उनकी दिनचर्या का अङ्ग था। समन्तपासादिका में भगवान् बुद्ध के प्रथम और अन्तिम उपदेश का भी अभिलेख मिलता है। इसमें वर्णन है कि वेरञ्जा में अकाल पड़ने पर भगवान् बुद्ध ने प्रयाग में गंगा को पार किया और वाराणसी पहुँचे। इसमें उल्लेख है कि अजातशत्रु के शासन के अष्टम वर्ष में भगवान् बुद्ध का महापरिनिब्बाण हुआ था। उनके निर्वाण के बारे में इस अट्ठकथा में वर्णन मिलता है कि मल्लों के गणतन्त्र राज्य कुसीनारा नगर के पास दो सालवृक्षों के बीच में वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन भगवान् ने निर्वाण लाभ किया था।

समन्तपासादिका में मगध के सम्राटों का वर्णन मिलता है। इसमें वर्णन है कि राजा बिम्बसार के पास चार प्रकार की सेना थी। अजातशत्रु ने मगध के ऊपर चौबीस वर्ष तक शासन किया और उसने राजगृह के अठारह विहारों की मरम्मत करवायी थी। इसके बाद उदयभद्द ने मगध

पर पच्चीस वर्ष तक, इसके पुत्र अनुरुद्ध ने अठारह वर्ष तक, और इसके पुत्र नागदासक ने चौबीस वर्ष तक, शासन किया। नागदासक अत्याचारी राजा था, इसलिये नगरवासियों ने इसे देश से बाहर निकाल दिया और मन्त्री सुसुनाग को गद्दी पर बैठा दिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रजा के सामने अत्याचारी सम्राट की शक्ति भी कुछ काम नहीं करती थी। नागदासक के अत्याचार से तंग आकर नगरवासियों ने उसे देश से बाहर निकाल दिया था। मगध के राजाओं में मुण्ड और कालाशोक का भी उल्लेख है। कालाशोक के दस पुत्र थे और उसने तेईस वर्ष मगध पर राज्य किया। इसके बाद इस अट्ठकथा में नन्दवंशोय राजाओं के मगध पर शासन करने का उल्लेख है। इन्होंने मगध पर तेईस वर्ष तक राज्य किया। नन्दवंश को सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीत कर समाप्त किया और चौबीस वर्ष तक राज्य किया। इनके उत्तराधिकारी सम्राट बिन्दुसार ने अठारह वर्ष तक मगध पर शासन किया। इसके बाद प्रसिद्ध सम्राट अशोक सिंहासन पर बैठे थे। इन्होंने अपने भाइयों को मार कर अपने राज्य के चौथे वर्ष में अपना राज्याभिषेक करवाया था। महावस के वर्णन के अनुसार चन्द्रगुप्त ने अपने अन्तिम जीवन में जैन धर्म धारण किया और अन्त में राज्य छोड़ कर दिगम्बर जैन दीक्षा धारण की। दिव्यावदान में अभिलेख मिलता है कि सम्राट बिन्दुसार ने साधु पिंगलवत्स को अशोक के सिंहासन के उत्तराधिकार के बारे में परामर्श करने के लिये आमन्त्रित किया था। महावंस में मज्झिमनिकाय की सिंहली अट्ठकथा के वर्णन के अनुसार कहा गया है कि आजीवक साधु जनसान बिन्दुसार के पुरोहित थे और वे दिगम्बर जैन साधु थे। महावंस की टीका में एक और निर्देश है कि ये साधु जनसान बिन्दुसार की साम्राज्ञी और अशोक की माता सुभद्रांगी के पथप्रदर्शक तथा परामशदाता थे। सुभद्रांगी श्रेष्ठिकन्या थी और दिगम्बर जैन मतावलम्बी थी।

सम्राट अशोक ने अपने पिता का अनुसरण करते हुए ब्राह्मणों को दान देना चालू रखा और उसने आजीवक साधुओं को निग्रोध और खलतिका की गुफाएं उनके रहने के लिये समर्पित की थीं। वह सिंहासन पर बैठने के तीन वर्ष तक जैन धर्मावलम्बी रहा और चौथे वर्ष में उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध उपासक बन गया। समन्तपासादिका में

उल्लेख है कि बौद्धमत स्वीकार करने से पहले सम्राट् अशोक बौद्धेतर संस्थाओं और साधुओं को दान देते रहे, किन्तु बाद में किसी कारण-वश उनसे नाराज होकर उनको दान देना बन्द कर दिया और केवल बौद्ध साधुओं और संस्थाओं को ही दान देने लगे। इस अट्ठकथा में अशोक की आय का भी वर्णन है। इसमें यह भी कहा गया है कि अशोक ने सारे जम्बू द्वीप में ८४००० विहार बनवाये थे। समन्तपासादिका में मोग्गलिपुत्त महातिस्स थेर के बारे में उल्लेख है कि ये अट्टोगंग नाम के पर्वत पर गये थे और प्रतिवादियों के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये इन्होंने कथावत्थुप्पकरण की रचना की थी। इसमें उन धर्मप्रचारक भिक्खुओं का भी उल्लेख मिलता है, जिनको महातिस्स थेर ने भिन्न-भिन्न देशों में धम्म के प्रचारार्थ भेजा था। इसमें लिच्छवियों के राजाओं का तथा सावत्थी के सेट्ठी (श्रेष्ठी) की सुन्दर पुत्री उप्पलवण्णा का भी उल्लेख है।

सुमंगलविलासिनी में वर्णन है कि देवदत्त के अनुयायी पाँचसौ भिक्खु थे। उसने भगवान् बुद्ध से पांच बातों को अपने भिक्खुओं के पलने के धर्मों में सम्मिलत करने के लिये आग्रह किया था। उन बातों में भिक्खु के लिये मांस भोजन ग्रहण करने, छत के नीचे सोने, निमन्त्रण स्वीकार करने, नये वस्त्र स्वीकार करने तथा पैसे रखने को वर्जित करना था। किन्तु भगवान् बुद्ध ने इन बातों को नहीं माना और इसी कारण वह उनका विरोधी हो गया था। उसके विरोध को अट्ठकथाओं में अत्युक्ति के साथ वर्णन किया गया प्रतीत होता है। विश्वास नहीं होता कि इतनी ऊँची वृत्तियों को पालन करने वाला साधु देवदत्त इतनी नीच प्रवृत्ति पर आ सकता था कि वह स्वयं बुद्ध भगवान् को ही मारने और उनका वध करवाने का प्रयत्न करता। अट्ठकथाओं में इसी प्रकार दिगम्बर जैन साधुओं का भी दुर्भावना तथा विरोधी भावना पूर्ण वर्णन मिलता है, जोकि केवल अपने धर्म की कट्टरता की भावना के अतिरेक के कारण मालूम पड़ता है। निर्ग्रन्थ साधुओं के लिये विसाखा के मुख से निर्लज्ज आदि शब्द बौद्ध धर्म की भावना तथा प्रतिष्ठा के कतई विरुद्ध हैं।

सारत्थप्पकासिनी में नाथपुत्त का उल्लेख है। नाथपुत्त जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी अथवा वर्द्धमान् का ही नाम है। दिगम्बर जैन साधुओं के लिये अट्ठकथाओं में णिग्गण्ठ ( निर्ग्रन्थ ) शब्द दिया गया है।

पंचप्पकरणट्ठकथा में उनके लिए अचेलक ( वस्त्र रहित ) शब्द भी आया है कि 'अचेलक साधु अकाल के समय साधुओं को देने के लिये पका कर बांटने के लिये बिना पका अन्न इकट्ठा करते थे। अच्छे अचेलक यह काम नहीं करते थे।' जैन साधुओं के लिये अट्ठकथाओं में आजीवक शब्द भी आया है। ये आजीवक साधु भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में थे। बुद्ध भगवान् ने घर-बार छोड़ने के बाद सबसे पहले आजीवक आचार्य से ही दीक्षा ली थी, किन्तु इनके द्वारा गृहस्थों से मांस भोजन स्वीकार करने के कारण आचार्य का आपत्ति हुई और इनको उनका संघ छोड़ना पड़ा।[1]

इस अट्ठकथा में एक प्रकार के पाखण्डी ब्राह्मण गुरुओं का भी वर्णन है। ये मंख अथवा मंखली अथवा संख्य ( गणक ) भी कहलाते थे। ये लोग उपदेश देते समय जनता को चित्रशाला द्वारा पुण्य और पाप कार्यों के फल के चित्र दिखा-दिखा कर कर्म सिद्धान्त का उपदेश दिया करते थे। उन चित्रों के नीचे पुण्य और पाप के फल को स्पष्ट करने वाले लेखों की चिप्पी भी लगी रहती थी। इस अट्ठकथा में लिखा हुआ है कि देव लोग भगवान् के उपदेश सुनने आदि के अवसर पर आने के लिये अपने देवरूप को छोड़कर और मनुष्य का रूप धारण करके मनुष्य लोक में आते थे और मनुष्यों के साथ मिलकर उनके बीच में बैठते थे। वे उस समय ऐसे विशिष्ट पुरुषों के समान मालूम पड़ते थे, जोकि नाटक देखने अथवा किसी गोष्ठी में विशिष्ट वेश-भूषा धारण करके जा रहे हों।

मनोरथपूरणी में बुद्ध भगवान् के प्रधान-प्रधान शिष्यों और प्रसिद्ध शिष्याओं का वर्णन है, जिसमें उनके पवित्र जीवन की झाँकी मिलती है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध थेर-थेरियों का वर्णन मनोरथपूरणी और धम्मपदट्ठकथा के अध्याय में दिया गया है। इसमें उपालि नाई की दीक्षा के वर्णन से मालूम होता है कि भगवान् बुद्ध के उपदेश ने शाक्य राजकुमारों को इतना निरभिमानी बना दिया था, कि उन्होंने बुद्ध भगवान् से सबसे पहले अपने नाई उपालि को दीक्षा दिलवाई और बाद में स्वयं दीक्षा ली। इन अट्ठकथाओं के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध की मान्यता

---

१. डा॰ जे॰ सी॰ जैन—'भगवान् महावीर'।

प्रारम्भिक जीवन में इतनी नहीं थी, बल्कि राजा लोग तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय इनके विरुद्ध थे, क्योंकि ये वर्ण व्यवस्था का बहिष्कार तथा सबके समानाधिकार का समर्थन करते थे। वे ऊँच-नीच, गरीब-अमीर इत्यादि के भेद को दूर करके सबको एक समान मानते थे। किन्तु बाद में इनके व्यक्तित्व का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि सर्वसाधारण जनता ने ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े राजा लोगों ने भी इनके आदेशों को शिरोधार्य किया। इनके प्रधानशिष्य प्रायः विद्वान ब्राह्मण ही थे। बिम्बसार जीवक कोमारभच्च की बहन सिरिमा के शव को इनके कहने पर जलाया नहीं, बल्कि प्रजा के लोगों को उसे जाकर देखने का आदेश दिया था, जिससे कि लोग ससार और शरीर की अनित्यता की शिक्षा ग्रहण करें। इसी प्रकार बुद्ध भगवान् के आदेश को शिरोधार्य करके कोसल के राजा पसेनदि ने कुमारकस्सप का पालन किया और इन्हीं के कहने पर उसने शाक्यों की दासो कन्या से उत्पन्न दासी पुत्र को भी उत्तराधिकारी बनाया। इनके पवित्र व्यक्तित्व के सामने अजातशत्रु ने अपने पितृघात के अपराध को स्वयं स्वीकार किया और इनका भक्त बन गया। इसी अजातशत्रु ने पहले सेट्ठी अनाथपिण्डक से जंतवन में बौद्ध विहार बनवाने के लिये भूमि की इतनी अधिक कीमत मांगी थी, जिससे कि उस जमीन के ऊपर सोने के सिक्के बिछ जावे। सेट्ठी ने अपने सारे सिक्के बिछा दिये, किन्तु फिर भी उस भूमिका में कुछ भाग शेष बच गया और उस शेष भाग को अजातशत्रु ने स्वयं विहार के लिये दे दिया।

जातकट्ठकथा वण्णना तो विविध सूचनाओं की खान है। इसमें केवल बौद्ध-कालीन भारत का ही नहीं, अपितु उससे बहुत पूर्व का भी इतिहास मिलता है। इसकी बहुत-सी कथाओं में तो ऋग्वेद और उपनिषद् काल के भी उल्लेख मिलते हैं। पूर्व बुद्धकालीन कथाओं के बारे में तो योरोपीय विद्वानों का मत है कि जातकट्ठकथा के लेख ब्राह्मण ग्रन्थों से भी अधिक विश्वसनीय हैं, क्योंकि वे उन ग्रन्थों के समान परिवर्तित और अतिरिंजित नहीं हैं, जबकि ब्राह्मण-ग्रन्थों के लेख बढ़ती हुई संस्कृति और सभ्यता के कारण परिवर्तित, परिवर्धित और अतिरंजित होते रहे हैं। उनका कहना है कि शाक्य, कोलेय और लिच्छिवि वंशों की उत्पत्ति की तथा दशरथजातक की कथा अधिक सत्य प्रतीत होती है। उस युग में

अपने वंश के रक्त को पवित्र रखने के लिये ऐसे विवाह होने सम्भव हैं; बहन-भाइयों के विवाह बाद में जाकर बन्द हुए हैं। किन्तु यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है कि यदि ये कुल ऋग्वेद से पहले स्थापित हुए हों तब तो इनकी इस प्रकार उत्पत्ति मानी जा सकती है, किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। दशरथजातक के बारे में तो लेख सत्य नहीं माने जा सकते, क्योंकि राजा दशरथ एक तो ऋग्वेद से बहुत बाद के हैं, दूसरे इक्ष्वाकु वंश हिन्दू संस्कृति का आदर्श है, जिसके राजा लोग ऋषियों के पथ-प्रदर्शन पर चलते थे और आर्य संस्कृत और मर्यादा के पोषक और रक्षक थे।

जातकट्ठकथा वण्णना में प्राचीन देशों के नाम और उनके राजाओं के नाम ठीक उसी रूप में आते हैं, जैसे कि अन्य हिन्दू और जैन ग्रन्थों में। प्राचीन देशों में—कुरुदेश, कासी ( काशी ), कोसल ( कौशल ), पांचाल, विदेह आदि हैं। राजाओं में—महागोविंद, मान्धाता, महासम्मत, सिवि ( शिव ), सगर, भागीरस ( भागीरथ ), पृथु ( प्रथु ), दुर्दिप ( दिलीप ), द्रुपद, राम, दशरथ, मखादेव, निमि, उसीनर ( उशीनर ), धतरट्ठ ( धृतराष्ट्र ), अज्जुन ( अर्जुन ), युधिट्ठल ( युधिष्ठिर ), वसुदेव, कन्ह ( कृष्ण ), कंस, इत्यादि ऐतिहासिक महापुरुषों के वर्णन इसमें मिलते हैं। प्राचीन ऋषियी में वेस्सामित्त ( विश्वामित्र ), यमतग्गी अथवा यमदग्गी ( यमदग्नि ), लोमपाद, कृष्णदीपायन आदि ऋषियों के इसमें उल्लेख हैं। प्राचीनकाल के राजाओं के शासन, उनकी शिक्षा, दीक्षा, राज्याभिषेक, दिग्विजय तथा प्रजा पालन की प्रणाली का वर्णन भी इसमें मिलता है। राज्यों और साम्राज्यों के साथ बहुत से गणतन्त्र राज्यों के उल्लेख भी इसमें हैं। नगरों में स्थानीय शासन भी था, ऐसा भी इसमें उल्लेख है। इसमें वर्णन है कि राजाओं और मन्त्रि परिषदों के चुनाव भी होते थे। राजकुमारों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये तक्षशिला भेजा जाता था। प्राचीनकाल में राजाओं के पुरोहित धार्मिक कार्यों में सलाह देने के लिये होते थे। राज्य के शासन में सलाह देने के लिए मन्त्रिपरिषद् और लोकसभा का भी उल्लेख इसमें मिलता है। इसमें राजाओं के रनिवास का भी वर्णन है कि वहाँ कैसा प्रबन्ध और अनुशासन होता था। जब राजा अत्याचार करता था तो प्रजा में विद्रोह हो जाता था और राजा

को देश से निकाल दिया जाता था तथा मार डाला भी जाता था। राजा वीरता आदि के पुरस्कार में जागीर तथा गाँव भी देता था। राजाओं के न्यायाधिकरण ( कोर्ट या कचहरी ) भी होते थे। राजा स्वयं भी न्याय करते थे तथा अपनी ओर से विद्वानों को भी न्यायाधीश नियुक्त करते थे; किन्तु सर्वोपरि न्यायाधीश वे स्वयं ही होते थे। साक्षी की गवाही के ऊपर न्याय किया जाता था और साक्षी भी सच्ची गवाही देना अपना धर्म समझता था। अपराधों के दण्ड कठोर थे। दण्डों में—अर्थ दण्ड, शूली, अंग-भंग, कारावास, शमशान में आधा जमीन में गाड़ देना आदि थे।

सेना के मुख्य अंग— रथ, हाथी, घोड़े और पैदल थे। समुद्र के किनारे नौसेना भी होती थी। युद्ध के समय कई प्रकार की व्यूह रचना ( मोर्चाबन्दी ) का भी इसमें उल्लेख मिलता है।

**शिक्षा प्रणाली:**—शिक्षा ब्राह्मण और क्षत्रियों को ही मिलती थी। उस समय तक्षशिला सबसे बड़ा और एक ही विश्वविद्यालय था, जहाँ अपने-अपने वर्णों के अनुसार केवल ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही शिक्षा दी जाती थी। ब्राह्मणों को शास्त्र तथा शस्त्र दोनों विद्याओं की शिक्षा मिलती थी। राजकुमार दूर-दूर से आकर वहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे। विद्यार्थी दो प्रकार के होते थे। पहले प्रकार के विद्यार्थी वे होते थे जो गुरु को एक सहस्र कार्षापण का शुल्क (फीस) देते थे। ये गुरू के पुत्रों के समान रहते थे। इनको कुछ कार्य नहीं करना पड़ता था और ये लोग दिन में ही पढ़ते थे। दूसरे प्रकार के वे विद्यार्थी होते थे जो बिना शुल्क दिये पढ़ते थे। किन्तु ये लोग गुरू के कुटुम्ब का तथा फीस देने वाले विद्यार्थियों की रसोई आदि का कार्य करते थे। इनकी शिक्षा रात के समय होती थी।

शिक्षा के पठन क्रम में तीन वेद तथा अठारह विद्याओं के नाम आते हैं। इससे ज्ञात होता है कि उस समय अथर्व वेद या तो था ही नहीं या इस वेद को मान्यता नहीं दी गई थी। शस्त्र विद्या में अनेक प्रकार के शस्त्रों के साथ धनुर्विद्या मुख्य थी। धनुर्विद्या के प्रकारों में सरभंग जातक में अक्खणवेधी, बलवेधी, सद्दवेधी, तथा सरवेधी नाम आते हैं। साथ में धनुर्विद्या के अनेक प्रकार के कौशलों का भी उल्लेख इस जातकट्ठकथा में

आता है। जैसे चार दिशाओं में खड़े किये हुए चार केले के खम्भों को एक ही वाण से वेधना तथा एक साथ छोड़े हुए तीस-तीस वाणों को नाराच से एक साथ वारण कर देना। बोधिसत्व के द्वारा वाणों के छोड़ने की फुर्ती और कौशल से सरलट्ठि ( शरयष्टि ), सर रज्जु ( शररज्जु ), सरवेणी, सरपासाद ( शरप्रासाद ), सरसोपान, सरपोक्खरणी ( शर पुष्करणी ), सरवस्सम् ( शरवर्ष ) आदि बनाये जाने का उल्लेख भी इसी जातकट्ठकथा में मिलता है। आठ अंगुल मोटी लोहे की चादर को बोधिसत्व के द्वारा वाण से पार करने का भी इसमें उल्लेख है। अच्छे कुशल विद्यार्थी पढ़ चुकने के पश्चात् पढ़ाने के लिये वहीं नियुक्त भी कर लिये जाते और गुरू लोग ऐसे कुशल विद्यार्थियों को अपनी पुत्री भी विवाह में दे देते थे। एक बार स्नातक होनेके पश्चात् बोधिसत्व ने पांचसौ विद्यार्थियों को शिक्षा भी दी थी,और बनारस जाकर वाणविद्या के उपर्युक्त सारे कौशल दिखलाये थे। सरभङ्ग जातक में उल्लेख है कि गुरू ने जाते समय बोधिसत्व को खड्ग रतन, संधियुत्त मेण्ढकसिङ्गधनु ( मेढ़े के सींग का बना हुआ जोड़युक्त धनुष ), संधियुत्त उण्हीरम ( तूणीर ), सन्नाह कंचुकं (कवच) तथा उण्हीसार (पगड़ी) भेंट में दिये थे।

तक्षशिला में लोग शिल्पकला सीखने भी जाते थे। देश में अनेक प्रकार के शिल्प और उद्योग भी प्रचलित थे। इनमें—कपड़ा बुनना, सूत कातना, कपड़ा रंगना, मिट्टी के और धातुओं के बर्त्तन बनाना, सोने चांदी के नग जड़े गहने या आभूषण बनाना आदि का उल्लेख जातकों में मिलता है। किसान लोग खेती के साथ बगीचों में फल और फूल भी उगाते थे। उद्योगों में शिकार, मुर्गीपालन तथा मछली पकड़ने का भी उल्लेख है। वणिक् संघ तथा श्रमिक संगठनों का भी इसमें उल्लेख है। जातकों में विभिन्न यज्ञों का और वृक्षों की बलिपूजा का भी उल्लेख है। जब कोई यात्रा पर जाता था तो वृक्ष-देवता को बलि चढ़ाता था। ज्योतिष और वैद्यक विद्या के साथ समुद्र व्यापार का भी उल्लेख जातकों में जगह-जगह मिलता है। उस समय क्षत्रियऔर ब्राह्मण को अपने ऊँचे वर्ण का अभिमान था तथा दास प्रथा भी खूब प्रचलित थी। भाषाओं में—संस्कृत, पाली ( प्राकृत ) तथा चाण्डाल भाषा का; विद्याओं में—वेद, वेदांग, आक्खान तथा गाथा, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, चिकित्सा, पशु चिकित्सा,

धनुर्विद्या, हत्थि सुत्तम्, रूप सुत्तम् आदि का तथा कलाओं में—लेखन, वाचन, संगीत, नृत्य, वीणा वादन, चित्रकला, मूर्ति कला, वास्तु कला, का उल्लेख जातकों में मिलता है।

जातकों में सक्क, ब्रह्मा, चत्तारो महाराजानो ( चार लोकपालों ), चन्द, सुरिय, अथवा सुरय ( सूर्य ), अग्गिदेव ( अग्निदेव ), वायुदेव, वरुण, वारुणि आदि अच्छे देवों का, तथा यक्ख—कुम्मण्ड, रुक्ख देवता, सुपर्ण, उदक रक्खसों का नाम आता है। 'मार' का बड़े भयङ्कर देवता के रूप में वर्णन किया गया है। इसके आते ही ब्रह्मा, सक्क आदि सारे देवता भाग जाते थे। शायद इसकी इस प्रकार की भयङ्करता का वर्णन बुद्ध भगवान् के माहात्म्य को दिखाने के लिये पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है कि उन्होंने इसे भी जीत लिया था।

**व्यवसाय और व्यापार:**—किसानों को गहपति कहते थे। बड़े-बड़े व्यापारी सेट्ठी कहलाते थे। इनके अतिरिक्त निम्नस्थ पेशे वाले भी उस समय में थे—वड्ढकी ( बढ़ई और राज ) पाषाणकोट्टक ( संगतराश ), इट्ठिकावड्ढकी ( ईंट बनाने वाला ), गहपति ( किसान ), सिप्पिकार, महावड्ढकी ( बड़े मिस्त्री या राज ), कुम्भकार ( कुम्हार ), लोहकार ( लुहार ), दुस्सीका ( कपड़े बेचने वाले ), जालबालिसा मछियारे ), रजका ( धोबी और रंगरेज ), सुवर्णकार, मणिकार। इसके साथ-साथ मकान बनाने के उदुक्खण ( चूना ), इट्ठिका मट्टिका ( ईंट गारा ) उल्लोक ( सीमेण्ट ), पोट्ठक ( प्लास्टर ) आदि का, बढ़ई के खरकच ( आरा ) का, कुम्हार के चक्क ( चक्र ) का, तथा उक्का, अलातम् ( मशाल ), अम्बिल ( तेजाब ), कपास-पोट्ठन-धनुका ( रुई धुनने की धुनकी ) तथा कासी कोसेय्य ( रेशमी कपड़ों ) का भी उल्लेख जातकों में मिलता है। अलंकारों में, जातकों में हत्थत्थरण ( कड़े ), मुद्दिका मुद्रिका (=अंगूठी ), माला, कुण्डल, कायूर ( केयूर ), चूड़ामणि, बन्धनम् मेखला आदि का वर्णन है। इनके अतिरिक्त अम्बिल-धोतेन ( तेजाब से धोये हुए ), अंगारक पल्ले ( कोयलों को जलाने का वर्त्तन ), सूना ( कसाईघर या कसावखाना ), रजक वीथि ( धोबियों और रंगरेजों की गली ) आदि का उल्लेख जातकों में मिलता है।

जातकों में गान्धार, कम्बोज, बवेरू ( बेबीलोनिया )[1], तप्वपण्णि द्वीप ( श्रीलंका ), सुवण्णभूमि ( सुमात्रा ) आदि अन्य देशों का, काबीर पट्टन बन्दरगाह का, अस्सक ( अश्वक ), अवन्ति आदि प्रान्तों का वर्णन है। जातकों के अनुसार जम्बूद्वीप के उत्तरापथ, दक्षिणापथ, अपरान्त, तथा प्राच्य ये चार भाग थे। मज्झिम देश की राजधानी विदेह थी, अरंजा मध्यप्रदेश में तथा अवन्ति दक्षिणापथ में वर्णन की गई है।[2]

**सामाजिक** :—जातकों में तथा अट्ठकथाओं में स्त्रियों की अवस्था बहुत ऊँची वर्णन नहीं की गई है। साधारण तौर से वे मनुष्य को संसार में फँसाने वाली कही गई हैं। वे कमजोर, चंचल तथा अदृढ़ समझी जाती रही थीं और इसीलिए भगवान् बुद्ध ने भी प्रारम्भ में स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी थी। महा प्रजापति गौतमी, जिन्होंने कि बुद्ध भगवान का माता की जगह पालन-पोषण किया था, दस बार उनके पास दीक्षा लेने आई, किन्तु उन्होंने दीक्षा नहीं दी। दसवीं बार अपने उपस्थापक थेर आनन्द के अनुरोध पर उन्होंने उनको दीक्षा दी थी। वे भी स्त्रियों को पिछली परम्परा के अनुसार दुर्बल, अस्थिर और विकारों से युक्त समझते थे। फिर भी वे स्त्रियों के ऊपर दयालु तथा सहानुभूति पूर्ण रहते थे। वे भिक्खुनियों में अनुशासन की दृढ़ता चाहते थे और श्राविकाओं में पति भक्ति। श्रेष्ठ और भक्त उपासिका-रानी मल्लिका को भी पति को धोखा देने के कारण अवीचि नरक में जाना पड़ा है। इसीलिये उन्होंने भिक्खुनियों का दर्जा हमेशा भिक्खुओं से नीचा रखा है। भिक्खुनी चाहे

---

१. बवेरु बेबीलोनिया का पाली में नाम है। महेन्जोदेड़ो की खुदाई में बेबीलोनिया के सिक्के मिले हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस देश के साथ भारत का व्यापार बहुत प्राचीनकाल से चला आता था।

२. जातकट्ठकथा में दी हुई तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति के बारे में विशेष विवरण के लिये डा० रतिराम की पुस्तक 'प्रिबुद्धिस्टिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' देखें।

जितनी पुरानी दीक्षित हो वह नये दीक्षित भिक्खु को पहले प्रणाम करेगी। पढ़ते समय भी भिक्खुनियाँ भिक्खुओं से एक हाथ पीछे बैठती थीं। किन्तु अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि दीक्षा लेने के पश्चात् भिक्खुनियों ने दिखा दिया कि वे ज्ञान में, संयम में, तपस्या में तथा व्रतों की दृढ़ता में, हमेशा भिक्खुओं के बराबर ही रहीं।

उस समय के समाज में पुरुष कितनी ही स्त्रियों से शादी कर सकता था, किन्तु स्त्री एक ही पति से शादी कर सकती थी। पति के मर जाने पर उसको विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

बुद्ध भगवान् के समय के समाज में वेश्या गमन को बुरा नहीं समझा जाता था। स्त्री अपने पति के लिये वेश्याओं को वेतन देकर भी रखती थी। सिरिमा को श्राविका उत्तरा ने अपने पति की सेवा में एक सहस्र कार्षापण प्रतिदिन देकर रखा था। वेश्याओं को उस समय बहुत नीचा नहीं समझा जाता था। भगवान् बुद्ध ने भी आम्रपाली वेश्या के निमन्त्रण को स्वीकार किया था।

अट्ठकथाओं में साधारण धार्मिक तथा सामाजिक विवाह के अतिरिक्त स्वयम्बर तथा गान्धर्व विवाह का भी वर्णन है। अट्ठकथाओं में स्त्रियों के जीवन के उज्जवल और हीन दोनों तरह के पक्षों का वर्णन है। थेरियों के जीवन के उज्ज्वल तथा आदर्शरूप पक्ष का अट्ठकथाओं में जगह-जगह वर्णन मिलता है। इसी प्रकार मल्लिका विसाखा आदि आदर्श श्राविकाओं के भी अट्ठकथाओं में उल्लेख भरे पड़े हैं। किन्तु साथ में हीन चरित्र वाली स्त्रियों के वर्णन की भी कमी नहीं है।

धम्मपदट्ठकथा के अनुसार श्वसुर के घर जाने के पहले कन्या को दस शिक्षाऐं दी जाती थीं, जिससे वह आदर्श गृहिणी बने, और घर को शान्त और स्निग्ध रखे। इस अट्ठकथा में दहेज की प्रथा का भी उल्लेख है। सावत्थी के कोषाध्यक्ष मिगार श्रेष्ठी ने अपनी पुत्री विसाखा[1] के

१. मिगार श्रेष्ठी की पुत्रवधू, जोकि धनञ्जय श्रेष्ठी की पुत्री थी, का नाम भी विसाखा था। इस पुस्तक के पृष्ठ ३०६-३०७ में इन दोनों का वर्णन है।

विवाह में पचास करोड़ रुपये का खजाना दहेज में दिया था तथा राजा पसेनदि ने अपनी लड़की 'वजिरा' के अजातशत्रु के साथ विवाह में कासीगाम उसके स्नान और सुगन्धित अनुलेपन के खर्च के लिये दिया था। इस अट्ठकथा से मालूम पड़ता है कि उस समय भी स्त्रियों में पर्दे की प्रथा थी और स्त्रियां खोटे पुरुषों की कुदृष्टि से बचने के लिये पर्दा करती थीं। साथ में इसके अपवाद भी मिलते हैं। विसाखा विवाह के बाद जब सावत्थी में आई तो खुले रथ में अपने को सारे नगर के सामने दिखाती हुई आई थी।

**शास्त्रीय** :—समन्तपासादिका में तीनों संगीतियों के बुलाये जाने के कारण और संगीतियों के कार्यों तथा उनकी कार्य प्रणालो का वर्णन है। इसमें भगवान् के प्रथम और अन्तिम वचनों (उपदेशों) के पाठ का अभिलेख भी दिया हुआ है। इसमें विनय, सुत्त और अभिधम्म पिटक का भिन्न-भिन्न प्रकार से ब्यौरेवार वर्गीकरण का वर्णन दिया है। इसमें यह भी वर्णन है कि किस प्रकार विनयपिटक तीसरी संगीति तक आया और फिर तीसरी संगीति में किस प्रकार इसका संगायन हुआ। कथावत्थु के बारे में अट्ठकथाओं (समन्तपासादिका तथा अट्ठसालिनी) में उल्लेख है कि इसको मोग्गलिपुत्त महातिस्स थेर ने लिखा था, किन्तु इसमें बुद्ध भगवान् के ही वचन होने के कारण इसको अभिधम्मपिटक के ग्रन्थों में सम्मिलत किया गया। इसमें 'गुह्यसिद्धान्त' के 'गूढ़विनयं', 'गूढ़वेस्सन्तरं, वण्णपिटकं, अंगुलिमालपिटकं, रट्ठपालगज्जितम्, वेदुल्लपिटकं, इन छः ग्रन्थों का बहिष्कृत ग्रन्थों के रूप में उल्लेख है तथा कुलुम्ब सुत्त, राजोवाद सुत्त, तिकिखान्दय सुत्त, चतुपरिवट्ट सुत्त, नन्दोपनन्द सुत्त, पंचकथावत्थु (धातु कथा, अरम्मण कथा, असुभ कथा, ञाणवत्थक तथा मग्गकथा), विज्जाकदम्बक, बोधिकरण्डक, इन गुह्य ग्रन्थों को स्वीकार किया गया है।

**लेखनकला** :—लेखनकला के विषय में भी हमें पपंचसूदनी में उल्लेख मिलता है कि कोसल के राजा ने, राजा पुक्कुसाति को एक पत्र भेजा था, जिसमें उसने धम्म की व्याख्या की थी। इससे प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध के समय लेखनकला प्रचलित थी। महावग्ग में भी इसका प्रमाण मिलता है। भगवान् बुद्ध कहते हैं कि थेर उपालि लेख को

सिखायेंगे ( सचेखो उपालि लेखम् सिक्खिस्सति ) डा० मललसेकर के अनुसार, क्योंकि उस समय धार्मिक ग्रन्थों के मौखिक याद करने को अधिक महत्व दिया जाता था, और उपयुक्त लेखन सामग्री का अभाव भी था, इस कारण तिपिटक ग्रन्थ मौखिक परम्परा से चलते रहे थे। थेर महेन्द्र भी अट्ठकथाओं को मौखिक रूप में ही श्रीलंका में लाये थे और आलुविहार की परिषद तक उनका प्रचार मौखिक रूप में ही होता रहा था। लेखनकला का ठेकों, वसीयतनामां और पत्रों ( Contracts, deeds and agreements ) के लिये जाने में हो मुख्य रूप से प्रयोग होता था। श्रीलङ्का में लेखनकला की विद्यमानता के बारे में श्री विक्रम सिंह अपने केटेलाग, पृ० १० में कहते हैं कि आलुविहार की परिषद या संगीति से कम से कम एक शताब्दी पहले श्रीलंका में लेखनकला प्रचलित थी। इस बात को वे महावंस में लिखी हुई कितनी ही घटनाओं को उद्धृत करके सिद्ध करते हैं। राजा गामणि के समय १५० ईसवी पूर्व में पुस्तकों का उल्लेख है। महावंस में सिहलट्ठकथामहावंस का उल्लेख है, इससे भी सिद्ध होता है कि यह अट्ठकथामहावंस अवश्य ही लिखित रूप में होगा। वे कहते हैं कि १६१ से १३७ ईसवी पूर्व के वस्सगिरि के शिलाशेखों में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग है, और इन शिलालेखों का समय, उनके अनुशार, इससे नीचे नहीं हो सकता।

**मुद्रा शास्त्रः**—इन कट्ठकथाओं में हमें प्राचीन सिक्कों के बारे में बहुत से उल्लेख मिलते हैं। अट्ठसालिनी में 'रजत' शब्द की व्याख्या में कहा गया है कि इस शब्द के अर्थ के अन्दर काहापण ( काषपिण ), लोहमासक, दारूमासक, जतुमासकादि सिक्के, जिनसे व्यवहार होता है, सब संग्रहीत किये गये हैं[1]। समन्तपासादिका में कहा गया है कि काहापण सर्वमान्य सिक्का था और यह सोने अथवा चांदी का बना हुआ होता था। यह सीसे का बना हुआ साधारण भी होता था। इससे तात्पर्य निकलता है कि कार्षापण बड़े सिक्के का नाम था जो सोने, चाँदी और सीसे का बनता था और अपनी धातु के अनुसार मूल्यवान् होता था। छोटा सिक्का मासक होता था और वह लोह ( तम्बलोह ) अर्थात् ताम्बे का,

१. अट्ठसालिनी अध्याय ४, अनुच्छेद ५४।

काष्ठ का तथा दारू का बनता था। इनको सर्वमान्य करने के लिये इनके ऊपर किसी विशेष प्रकार की मुहर या ठप्पा लगा रहता था—( रूपंसमुट्ठापित्वा इत्यादि )। शायद ये भी अपनी धातु के अनुरूप मूल्य के होते थे। समन्तपासादिका से हमें यह भी ज्ञात होता है कि बिम्बसार सेनिय ( श्रेणिक ) के समय काहापण बीस माशे के बराबर होता था, क्योंकि चौथाई काहापण पांच मासक का बताया गया है। समन्तपासादिका के रचयिता हमें यह भी बताते हैं कि यह मूल्य प्राचीन समय के नील काहापण का था ( पोरांणस्स नील काहपणस्स वसेन ), अन्य रुद्रदमक काहापण का नहीं, जोकि खालिस चांदी का होता था। जातकट्ठकथा में भी उल्लेख मिलता है कि चार मासक, पादकाहापण से कम कीमत के हैं। डा० बापट का विचार है कि इस काहापण का मूल्य बाद में गिर गया था और यह सोलह मासक के बराबर रह गया था। काहापण से छोटे सिक्कों में अड्ढकाहापण, पादकाहापण अथवा चत्तारोमासका, तयोमासका, द्वेमासका, एकमासक, अड्ढमासक का भी उल्लेख है। विनयपिटक में काहापण और मासक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि ये दोनों प्रकार के सिक्के बुद्ध भगवान् के समय से पूर्व प्रचलित थे। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि भगवान् राम और उनके पिता दशरथ के समय सिक्कों का प्रचलन नहीं था और इसी कारण रावण उत्तर भारत में अपना साम्राज्य स्थापित नहीं कर पाया था।

**मनोरंजन और खेल**:—अट्ठकथाओं में उस समय खेले जाने वाले निम्न प्रकार के खेलों का वर्णन मिलता है। सुमंगलविलासिनी में—अट्ठपदम्, आकासम्, घतिकम्, परिहारपथम्, अक्खरिका आदि खेलों तथा आमन्तिकम्, गोणकम्, कोसेयम्, कुट्टकम्, पल्लंकम्, पटलिका, विक्कटिका आदि आसनों का उल्लेख है।

**चित्रकला और मूर्तिकला**:—सारत्थप्पकासिनी में पाखण्डी साधुओं की, जिनको कि उसमें मंख अथवा मख कहते थे, चित्रशालाओं का वर्णन है। बुद्ध भगवान् के समय में भी चरणचित्त अर्थात् चलचित्रों का उल्लेख है। अट्ठसालिनी में चित्रकला का ब्यौरेवार वर्णन है, जिससे ज्ञात होता है कि इस कला के अंगों में रेखाचित्र, रंजन ( पेण्टिंग ), विज्जोतनं ( चमकीले रंग भरना ) तथा वत्तनं ( वर्त्तुलाकर चित्र बनाना ) इत्यादि

प्रचलित थे। इसी अट्ठकथा में चरणं चित्तं—तस्वीर अथवा पूर्ण चित्र, चित्तकम्माणि—दीवारों पर चित्र बनाना, पोत्थकं—प्लास्टर की मूर्तियाँ बनाना, पटिमायो—प्रतिमा ( मूर्ति ) बनाना, तथा चेतिय—चैत्य बनाना आदि का उल्लेख है।

**गृह उद्योगः**—इस अट्ठकथा में सिंगरफ के बिन्दुओं के बच्चे के मस्तक पर लगे हुए होने का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि सिंगरफ से माथे की लाली बनती थी। इसी ग्रन्थ में हाथी दाँत के उद्योग का वर्णन है कि इस उद्योग वालों के सिर हाथी दांत के बुरादे से भरे हुए थे। बनारस के तन्तुवायों और बुनाई उद्योग का भी अट्ठकथाओं में वर्णन है।

**आदिम प्रथाऐं**:—सुमंगलविलासिनी में अत्थिधोपन नाम की एक विचित्र प्रथा का भी वर्णन है, जो आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलंका जाते समय दक्षिण में देखी थी। सारत्थप्पकासिनी में गोघातक शब्द के उल्लेख से मालूम पड़ता है कि उस समय गौ का माँस खाया जाता था और गौ इतनी पवित्र नहीं मानी जाती थी जितनी कि अब।

मनोरथपूरणी में सस्समेध, पुरिसमेध, सम्मापासमेध तथा वाजपेय्य-मेध इन-चार यज्ञों का धार्मिक कार्यों के रूप में उल्लेख है। सस्समेध से शायद अस्समेध ( अश्वमेध ) का तात्पर्य है।

**विविधः**—समन्तपासादिका में अनेक प्रकार के गर्भों का वर्णन है। अट्ठसालिनी में लिंगों के वर्णन में उभयलिंगियों का वर्णन है, जिनमें स्त्री उभयलिंगी प्राणी तो गर्भ धारण और गर्भाधान दोनों कर सकते थे, किन्तु पुरुष उभयलिंगी गर्भ धारण नहीं कर सकते थे, केवल गर्भाधान ही कर सकते थे।

**कृषि और सिंचाईः**—अट्ठकथाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के पालिबद्ध आदि खेतों का वर्णन है। कृषि उस समय का प्रमुख व्यवसाय था। इनमें बाँध का भी उल्लेख मिलता है कि रोहिणी नदी पर शाक्य और कोलेयों के द्वारा बाँध बाँधे जाने के कारण दोनों किनारे के देशों में सिंचाई अच्छी होती थी और दोनों देशों के लोग खुश-हाल थे।

अट्ठकथाओं में णिग्गन्थ, आजीवक, अचेलक, भिक्खु, मंखलि आदि सन्यासियों के नामों के अतिरिक्त, मुण्ड सावक, जटिलक, मगण्डिक,

तेदण्डिक, अविरुद्धक, गोतमक तथा देवधम्मिक साधुओं का भी उल्लेख मिलता है।

**भौगोलिकः**—इन अट्ठकथाओं से भगवान् बुद्ध के समय का भौगोलिक वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। सुमंगलविलासिनी में अग, राजगह, कोसल, गन्धार आदि देशों के नाम पड़ने के कारण का तथा घोसिताराम के नाम पड़ने के कारण और बनाये जाने का वर्णन है। इसमें उजुञ्ञानगर, कण्णत्थल स्थान, मिगदायवन, जेतवन, गिज्झकूट पर्वत आदि का उल्लेख है। इसमें खरस्सरा, खण्डस्सरा, मग्गस्सरा तथा काकस्सरा आदि सरोवरों का वर्णन भी मिलता है।

इसी प्रकार पपंचसूदनी में कुरुदेश, सावत्थी, चम्पा और वेसाली नगरियों तथा गिरिव्वज तथा गग्गरा सरोवर के नाम पड़ने के कारणों का उल्लेख है। इसमें गंगा-यमुना के अतिरिक्त वाहुका, सुन्दरी, सरस्सति तथा बाहुमती नदियों के नाम आते हैं। इसमें बोधिवृक्ष और लुम्बिनी उद्यान का तथा तावतिंस स्वर्ग और सक्क ( शक्र ) के वेजयन्त प्रासाद तथा सुधम्म नाम की उसकी विशाल सभा का भी वर्णन है। इसमें हिमालय की चौड़ाई तीनसौ योजन की बताई गई है। इसमें उसके चौरासी सहस्र शिखर तथा अनोतत्त आदि सात सरोवरों का उल्लेख है। अनोतत्तसरोवर को सुदस्सन, चित्तकूट, कालकूट, गन्धमादन, और केलास इन पांच पहाड़ों से घिरा हुआ कहा गया है। इसमें दस सहस्र योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप का वर्णन है।

इसी प्रकार सारत्थप्पकासिनी में पोक्खरिणी ( पुष्करिणी-सरोवर ) का वर्णन है। इसमें केलास ( कैलाश ) पर्वत को नागदन्त देवता का स्थान बताया गया है। मनोरथपूरणी है जम्बूद्वीप, अनोतत्त सरोवर तथा उसके चार नदी मुखों—सीहमुख, हत्थिमुख, अस्समुख तथा उसभमुख ( वृषभमुख )—का वर्णन है। इस अट्ठकथा में कुमार सिद्धार्थ के तीन सरोवरों और तीन महलों का वर्णन भी है, जो कि अलग-अलग तीन ऋतुओं के लिये बनाये गये थे।

समन्तपासादिका में वज्जिभूमि तथा वज्जियों के महत्व का वर्णन है। उनके सभा-भवन और शासन-प्रणाली का भी वर्णन है। भरुकच्छ बन्दरगाह की विशेषता और महत्व का वर्णन भी इसमें मिलता है। वैशाली

के महावन की कुटागारशाला, राजगह, चम्पा, गग्गरा, वेरंजा, सावत्थी तम्बपण्णि ( बन्दरगाह ), सुवण्णभूमि ( सुमात्रा ), उत्तरापथक ( घोड़ों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध ), उत्तरकुरू, कपिलवत्थु, कम्मासनगर, भद्दियनगर, कोलियनगर, बाराणसी, सोरेय्य, वेसाली और महावन तथा वेलुवन का भी उल्लेख मिलता है। इसमें अंगुत्तर, उत्तरकुरु, पुब्बविदेह, कासी और कोसल देशों का, कीटागिरि जनपद का, गिज्झकूट पर्वत का, गगा नदी का, राजा उत्तर के द्वारा निर्मापित सुनहरे चेतिय का, घोसित सेट्ठी के द्वारा बनवाये हुए घोसिताराम विहार का भो वर्णन है। पाटलीपुत्र नगर के बारे में वर्णन है कि इसे सम्राट अजातशत्रु ने बसाया था। बाद में सम्राट चन्द्रगुप्त ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इस नगर के बारे में समन्तपासादिका में पौराणिक ढंग का वर्णन है कि इसमें धम्माशोक पैदा होकर सारे जम्बूद्वीप पर शासन करेगा।

**पशु-पक्षी:**—अट्ठकथाओं में पशु पक्षियों के बहुत से उल्लेख हैं, जिनमें जहाजों को दिशा बताने वाले कौवे का भी उल्लेख है। यह जहाज के मस्तूल पर बैठा रहता था और उड़-उड़कर समुद्र के किनारे की टोह लगाता था। इनमें एक हत्थिलिंग पक्षी का भी उल्लेख मिलता है। जिसमें पाँच हाथियों का बल होता था और जो उड़ते समय अपने पीछे के रास्ते को देखता जाता था। यही पक्षी राजा परंतप की रानी को लेकर उड़ गया था। सारत्थप्पकासिनी में कदलिमृग का उल्लेख है। इसका चर्म पोशाक बनाने के काम में आता था। इसमें चार प्रकार के सिंहों का वर्णन है, जिनमें काले सिंह भी हैं और घास खाने वाले सिंह भी हैं। इसी में चार प्रकार के सर्पों का भी उल्लेख है, जिनमें से अग्निमुख के काटने पर शरीर जल जाता था, पूतिमुख के काटने पर शरीर सड़ जाता था, काष्ठमुख के काटने पर काठ के समान निर्जीव हो जाता था और शस्त्रमुख के काटने पर बिजली गिरे हुए शरीर की तरह नष्ट हो जाता था।

**वृक्ष और पुष्प:**—इन अट्ठकथाओं में गदम्ब ( कदम्ब ), पुचिमन्द ( नीम ), कण्णिकार, एलण्ड ( एरण्ड ), जम्बु आदि वृक्षों का वर्णन है। जातकों में एक ऐसे वृक्ष का भी वर्णन है, जिसके फल आम के समान सुन्दर होते थे, किन्तु जिनको खाने पर आदमी मर जाता था। सारत्थप्पकासिनो में एक मुदुरुक्ख का उल्लेख है, जो गंगा के टापुओं में उगता

था। इसी में एक ऐसे वृक्ष का भी वर्णन है, जिसके फूल कज्जल के समान काले होते थे। इसमें और पपंचसूदनी में लाल फूल वाले बन्धुजीवक तथा रंग-बिरंगे फूलों वाली चित्रपाटली ( शेफाली ) का भी वर्णन है।

**पाली भाषाः**—आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में पाली भाषा का भी मूल्यांकन प्रकरण प्राप्त है। पाली भाषा के इतिहास में उन्होंने अपना निराला स्थान बना लिया है। तिपिटकों की सीधी-सादी भाषा और शैली का बिल्कुल अनुसरण करते हुए भी उन्होंने पाली भाषा में प्रौढ़ता तथा उसकी भाव व्यजन की शैली में साहित्यिक कुशलता तथा क्षमता लाकर उसे बहुत ही परिष्कृत करके आगे बढ़ा दिया है और इस प्रकार वे आगे के अट्ठकथाकारों के लिये आदर्श तथा पथ-प्रदर्शक बन गये हैं।

श्रीलंका के लिये तो आचार्य बुद्धघोष की देन और भी अधिक है, क्योंकि डा० मललसेकर के अनुसार उन्होंने श्रीलंका के बौद्ध लेखकों की साहित्यिक क्षमता के विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। उन्होंने पाली के अध्ययन के लिये जो उत्साह श्रीलंका में उत्पन्न किया है, वह बहुत अधिक है। उनको अट्ठकथाओं के बाद सिंहली लोगों ने धार्मिक ग्रन्थ लिखने के लिये पाली को अपना लिया और फलतः पाली भाषा के सामने धार्मिक ग्रन्थों के लिखने के प्रयोग के लिये सिंहली भाषा बिल्कुल दब सी गई और ओझल हो गई है। पश्चात्कालीन धार्मिक लेखकों ने इनका अनुसरण करके सिंहली के स्थान पर पाली को ही अपनाया है। उन लोगों के लिये, अपने ग्रन्थ लिखने में इनके ग्रन्थ पथ-प्रदर्शन ही नहीं करते, अपितु आदर्श रूप हैं और ऐसा प्रतीत होता है, मानो इनकी शैली की उनके लेखों पर छाप लगी हो। श्रीलंका के पाली साहित्य में वे सर्वोपरि हैं, इसीलिये आलोचकों ने कह दिया है—

> बुद्धघोसे पतिट्ठन्ते पञ्ञावन्तोपि ये जना।
> तेसं पञ्ञापभा नत्थि राहु मुखेव चन्दिमा ॥[1]

अर्थात् आचार्य बुद्धघोष के सामने बड़े-बड़े विद्वानों की प्रतिभा की चमक इस तरह विलीन हो जाती है जिस प्रकार राहु के मुख में चन्द्रमा की चान्दनी लुप्त होती है।

---

१. बुद्धघोसुप्पत्ति, पृ० ६६।

**ब्रह्माण्ड रचनाः**—सुमंगलविलासिनी[1] के अनुसार सारे विश्व में दस सहस्र ब्रह्माण्ड हैं। और सबमें ऐसे ही लोकपाल हैं और उनके ये ही नाम हैं। बौद्ध शास्त्रों के अनुसार हमारा ब्रह्माण्ड तीन भागों में बटा हुआ है। ( १ ) कम्मलोक ( २ ) रूपलोक ( ३ ) अरूपलोक। कम्मलोक में ग्यारह लोक आते हैं:—चार अपायलोक एक मनुस्सलोक तथा छः सग्गलोक। चार अपाय लोकों में ( १ ) तिरच्चाना ( तिर्यंच ) लोक ( २ ) निरयलोक ( नरकलोक ) ( ३ ) पेतलोक तथा ( ४ ) असुरलोक हैं।

निरयलोक के आठ भाग हैं:—( १ ) संजीव ( २ ) कालसुत्त ( ३ ) संघात ( ४ ) रोरुव ( ५ ) महारोरुव ( ६ ) तपन ( ७ ) पतापन तथा ( ८ ) अवीचि। इनमें से प्रत्येक के प्रभाग ( उस्सद निरया ) हैं।

चार अपाय लोकों के ऊपर मनुस्सलोक है और मनुस्सलोक के ऊपर छः स्वर्ग लोक हैं:— ( १ ) चतुम्महाराजिक लोक ( चार लोकपालों का लोक ) ( २ ) तावतिंस लोक ( इन्द्रलोक ) ( ३ ) यामलोक ( ४ ) तुसित लोक ( जिसमें आगामी बुद्ध मेत्तेय वर्त्तमान समय में हैं ) ( ५ ) निम्माणरति लोक ( ६ ) परनिम्मित वसवत्ति लोक ( मार का लोक )।

उपरोक्त चार अपायलोक एक मनुस्सलोक तथा छः स्वर्गलोक मिल करके ये ग्यारह लोक कम्मलोक कहलाते हैं। कम्म लोक से ऊँचा रूपलोक है। इसके पन्द्रह भाग हैं:— ( १ ) ब्रह्म परिसज्जा ( २ ) ब्रह्म पुरोहित, ( ३ ) महाब्रह्म ( ४ ) परित्ताभ ( ५ ) अप्पमाणाभ ( ६ ) आभस्सर ( ७ ) परित्तसुभ ( ८ ) अप्पमाणासुभ ( ९ ) सुभकिण्ण ( १० ) वेहप्फल ( ११ ) अविह ( १२ ) अतप्प ( १३ ) सुदस्स ( १४ ) सुदस्सी ( १५ ) अकणिट्ठ। ये पन्द्रह रूपलोक रूप ब्राह्माओं के लोक हैं। इनमें अन्तिम चार सुद्धवासा अर्थात् शुद्ध-आत्माओं के अथवा शुद्ध ब्रह्माओं के निवास लोक हैं। इनसे ऊपर चार गुने अरूपलोक हैं, जोकि अरूप ब्रह्माओं के निवास लोक हैं। अट्ठकथाओं में इन उपर्युक्त सारे लोकों में से बहुतों के नाम आते हैं।

---

१. सुमंगलविलासिनी, भाग २, पृ० ६८७।

**देवी देवता** :—बौद्ध-शास्त्रों में अरूप ब्रह्माओं का, जैसा कि उनका नाम है, शरीर नहीं होता और शायद वे रूपलोक में आते भी नहीं। रूपब्रह्मा महाब्रह्मा भी कहलाते हैं।[1] ये कितने-ही होते हैं। इनके शरीर होता है और ये ब्रह्मचर्य पूर्वक पवित्र जीवन बिताते हैं। ये देवों में सबसे बड़े देव होते हैं और भगवान् के जन्म, बोधि-प्राप्ति आदि अवसरों के उत्सवों में उपस्थित होते हैं।

अट्ठकथाओं में ब्रह्मा बुद्ध भगवान् का भक्त और अनुयायी हैं। जातकट्ठकथा के अनुसार इसने सुजाता की रसोई में भगवान् बुद्ध के लिये पकाई जाने वाली खीर के ऊपर छत्र धारण किया था और चार लोकपालों ने उसके ऊपर पहरा दिया था। भगवान की बोधिप्राप्ति के पहले उनको विचलित करने के लिये जब मार अपने भयङ्कर योद्धाओं के साथ आया तो भगवान् तो अडिग और अचल होकर ध्यानस्थ रहे, किन्तु ये ब्रह्मादिक सारे देव उसे देखते ही भयभीत हो गये और इधर-उधर भाग गये। सक्क ( शक्र ) अपने विजयुत्तर शंख को पीठ पर डाल कर भागा और ब्रह्माण्ड के छोर तक नहीं रुका। महाब्रह्मा भी अपने श्वेतछत्र का मोह छोड़कर भाग गया। जातकट्ठकथा के अनुसार बुद्ध भगवान् के जन्म के समय महाब्रह्मा ने उनको सुवर्णजाल में लिया था।[2] इसी में उल्लेख है कि महानिष्क्रमण के बाद महाब्रह्मा घातिकर ने उन्हें सन्यासी के योग्य आठ वस्तुऐं लाकर दी थीं।[3] इसी के अनुसार ब्रह्मा सहंपति ने बोधिप्राप्ति के पश्चात् भगवान् से उपदेश देने के लिये प्रार्थना की थी।[4] 'सम्मोह-विनोदनी' में कहा गया है कि इन्हीं ने उन्हें सिनेरू ( सुमेरू ) के बराबर माला दी थी। 'सम्मोहविनोदनी' तथा 'परमत्थजोतिका' के अनुसार

---

१. जैन शास्त्रों में इनके समकक्ष लौकान्तिक देव हैं, जो ब्रह्मचारी होते हैं और केवल भगवान् के दीक्षा कल्याण के समय उन्हें सम्बोधने तथा दीक्षा के लिये उनका अनुमोदन करने के लिये आते हैं।

२. जातकट्ठकथा वण्णना, पृ० ५२।

३. ,, ,, पृ० ६५।

४. ,, ,, पृ० ८१।

महाब्रह्मा चत्तारो महाराजानो के तथा सक्क के साथ श्रीलंका में थेर पुस्सदेव की आर्हन्त्य प्राप्ति के समय आया था। सुमंगलविलासिनी के अनुसार जैसे सक्क सब देवों में मुख्य है, वैसे ही ब्रह्मा हारीत सब ब्रह्माओं में मुख्य हैं। ब्रह्मा सननकुमार देवों में उपदेशक हैं।

सक्क अट्ठकथाओं में सबसे अधिक आता है। इसी को पुरन्दद (पुरन्दर) भी कहते हैं। इसका वैदिक नाम इन्द्र है। देवलोक में यह पवित्र और धार्मिक बौद्ध राजा माना जाता है। यह सच्चे धर्म का रक्षक कहलाता है। जब कभी किसी धर्मात्मा मनुष्य पर आपत्ति आती है तो इसका सिंहासन तपने लगता है। (जैन शास्त्रों के अनुसार सिंहासन चलायमान होने लगता है।) अभयत्थेरजातक में यह सन्यासियों को नष्ट करने के लिये षड्यन्त्र रचता है। सुमंगलविलासिनी के अनुसार यह द्रोण के हाथ से जब कि वह सबको बुद्ध भगवान की भस्मी बांट रहा था, बुद्ध दन्तावशेष को चुरा लेता है और अजातशत्रु को धोका देने के लिये भिक्खुओं को उकसाता है। मनोरथपूरणी के अनुसार श्रीलंका में दुट्ठगामणि ने जब महास्तूप का निर्माण करवाया था, तो इसने अपने विस्सकम्म (विश्वकर्मा) को ईंटें बनाने के लिये भेजा था। इसी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के समय जब चुने हुए आठ भिक्खु इसके पास आये और उन्होंने ब्राह्मणतिस्स को नष्ट करने के लिये प्रार्थना की तो यह उसका कुछ नहीं कर सका, और उस समय उसने भिक्खुओं को भारत जाने का परामर्श दिया। सुमंगलविलासिनी के अनुसार प्रायः वर्षाकाल के अन्त में आने वाली पवारणा के लिये यह पियंगुदीप में निमन्त्रण देने आता था। इसी के अनुसार यह नेक आदमियों के पुण्य कार्यों का लेखा रखता है। सुमंगलविलासिनी अट्ठकथा में यह रोचक वर्णन है कि इसके चतुम्महाराजानो, उनके पुत्र तथा मन्त्री लोग क्रम से पूर्णिमा, द्वितीया और चतुर्दशी के दिन स्वर्ग से रवाना होते हैं और सुनहरी पुस्तक में मनुष्यों के पुण्य कार्यों को लिखते हैं। वे लोग उसी पुस्तक को पञ्चसिख गन्धब्ब को और वह उसे मातली को देता है। मातली उसको सक्क के सामने प्रस्तुत करता है। तब सक्क देवसभा में उसे पढ़ता है। यदि मनुष्यों ने बहुत से पुण्य कार्य किये हों तो वे बहुत खुश होते हैं।

जातक के अनुसार विस्सकम्म, पञ्चसिख और मातली के अतिरिक्त

सक्क ( शक्र ) के परिवार में इसकी चार पुत्रियाँ—आसा, सद्धा, सिरि और हिरि हैं। ये चित्त की चार दशाओं की प्रतीक प्रतीत होती हैं। सक्क के हाथी का नाम एरावन ( ऐरावत ) है। परमत्थजोतिका के अनुसार यह देवों की कामरूपी श्रेणी का है और इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है। सुमंगलविलासिनी तथा परमत्थजोतिका के अनुसार जब इन्द्र उद्यान में जाता है तो यह ऐरावत हाथी का रूप धारण कर लेता है। ( जैन ग्रन्थों में भी इसे ठीक ऐसा ही मानते हैं )।

चत्तारो महाराजानो सक्क के आधीन चार दिशाओं के चार लोकपाल हैं। इनके नाम—धातरट्ठ, विरुल्ह (विरूढ़), विरूपाक्ष तथा वेस्सवण हैं। इनका उल्लेख दीघनिकाय के आटानाटिय सुत्त में भी है। किन्तु अट्ठकथाओं में इसका बढ़ा-चढ़ा कर कथन किया गया है। डा० आदिकरम के अनुसार दीघनिकाय में स्वयं भगवान् बुद्ध की कल्पना अट्ठकथाओं की इस कल्पना का आधार है। अट्ठकथाओं में इनके बारे में रोचक लेख हैं। उनका अनुमान है कि अट्ठकथाओं की रचना के समय उपर्युक्त विश्वास श्रीलंका में प्रचलित थे। दीघनिकाय में भी यह कल्पनांश बाद का प्रक्षिप्तांश मालूम पड़ता है; यद्यपि है यह भारत की ही उपज।

वेस्सवण यक्खों ( यक्षों ) का राजा है। सुमंगलविलासिनी के अनुसार यह भगवान् बुद्ध का भक्त और प्रेमी था। यह भाषणकला में बहुत प्रवीण था। इसी के अनुसार इसका दूसरा नाम कुबेर भी प्रसिद्ध है। सक्क के समान इसमें भी परिवर्तन बौद्ध होने के पश्चात् ही आया था। परमत्थजोतिका के अनुसार यह बौद्ध होने के पहले अपनी गदा से हजारों कुम्मण्डों को मार डाला करता था। समन्तपासादिका में भी लिखा है कि सोतापन्न होने से पहले यह अपनी तेज निगाह से घूरने मात्र से कुम्मण्डों को मारने की आदत वाला था। बौद्ध होने के बाद यह धार्मिकों और सज्जनों का रक्षक बन गया। जातकट्ठकथा में उल्लेख है कि जब एक वेस्सवण मर गया तो सक्क ( इन्द्र ) ने दूसरा उसके स्थान पर नियुक्त किया। इससे ज्ञात होता है कि बौद्धों के दृष्टिकोण के अनुसार देवताओं की सरकार और नैतिक स्तर मनुष्य लोक के समान ही हैं। स्वर्ग में इन्द्र राजा है और वही लोकपालों की नियुक्ति करता है।

धातरट्ठ गन्धव्वों ( गन्धर्वों ) का राजा है। गन्धव्व, 'दीघनिकाय' के 'महासम्मत सुत्त' तथा 'आटानाटिय सुत्त' के अनुसार स्वर्गीय गायक हैं। पपंचसूदनी तथा सुमंगलविलासिनी में इसे हंसराज भी कहा गया है। इसका नब्वे हजार का परिवार है। हिन्दु पुराणों में गन्धर्वों का राजा हंसराज कहलाता है, इसी कारण शायद बौद्धों में भी इसका यह नाम बाद में प्रचलित हो गया हो।

विरुल्ह ( विरूढ़ ) और विरूपाक्ष का अधिक उल्लेख अट्ठकथाओं में नहीं मिलता। जातक के अनुसार चत्तारो महाराजानो ने बुद्ध भगवान की रक्षा गर्भ से लेकर जन्म तक की थी। इसी के अनुसार इन्होंने सुजाता की खीर पकते समय उसका पहरा दिया था। तथा बोधि के बाद बुद्ध भगवान को चार मिट्टी के पात्र दिये थे, जोकि आश्चर्य के साथ फिर एक बन गये थे। सम्मोहविनोदनी के अनुसार अलिन्दक वासी थेर पुस्सदेव की आर्हन्त्य प्राप्ति के समय ये, सक्क तथा महाब्रह्मा के साथ श्रीलंका में आये थे तथा महाचेतिय के उत्सव समारोह में भी उपस्थित हुए थे। सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि दस सहस्र ब्रह्माण्डों में ऐसे ही लोकपाल हैं और सब में उनके ये ही नाम हैं।[1] नेत्तिप्पकरणट्ठकथा में इनके इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर नाम हैं। ये नाम जैन तथा हिन्दु पुराणों के अनुसार लिखे गये मालूम पड़ते हैं। इनमें इन्द्र सक्क का ही दूसरा नाम है। यम नाम अंगुत्तरनिकाय के 'देवदूत सुत्त' में भी आया है, जोकि डा० आदिकरम के अनुसार सम्भवतः क्षपकांश प्रतीत होता है। जातकट्ठकथा में उसे वेसायी कहा गया है।[2]

उपर्युक्त 'देवदत्त सुत्त' में यह भी कहा गया है कि नरक में निरयपाल नाम के रक्षक ( गार्ड ) हैं, जो कि यम को लोगों के कर्मों का फल देने में सहायता देते हैं। मनोरथपूरणी और सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है कि श्रीलंका में कुछ थेर थे जो निरयपालों को नहीं मानते थे और कहते थे कि जीव को फल देने में उसके 'कम्म' ( कर्म ) ही पर्याप्त रूप से शक्तिशाली हैं। किन्तु थेरवादी सम्प्रदाय पहले मत का ही अनुयायी

१. सुमंगलविलासिनी, भाग २, पृ० ६८७।
२. जातकट्ठकथा, ,, पृ० १८।

है। मनोरथपूरणी के अनुसार जब कोई प्राणी नरक में जाता है तो निरयपाल उसे अन्तिम निर्णय के लिये यम के पास ले जाता है। घोर पापी को यमराजा के पास ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उसे तो अपने पापों का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

यम न्यायी राजा है। हिन्दु शास्त्रों में भी वह यमराज और धर्मराज कहलाता है। यह प्राणी को जहाँ तक होता है नरक से बचाने का प्रयत्न करता है। यदि प्राणी अन्तिम समय में भी अपने पुण्य कार्य को स्मरण कर ले तो वह नरक की यातना से बचकर स्वर्ग में चला जाता है। मनोरथपूरणी में ऐसा ही एक उल्लेख है कि तामिल दीघजन्तु नाम के एक व्यक्ति को नरक में जाकर वहाँ की अग्नि की लाल ज्वाला को देखकर अपने सुमनगिरि विहार के आकास चेतिय पर चढ़ाये हुए लाल कपड़े की याद आ गई थी। यद्यपि वह नरक में पहुँच गया था, तो भी उस पुण्य कार्य के स्मरण से वह नरक की ज्वालाओं से बचकर स्वर्ग में पहुँच गया। यदि प्राणी स्वयं अपने पुण्य कार्य को स्मरण नहीं कर पाता तो यम उसको स्मरण करने में भी सहायता देता है। पपंचसूदनी में ऐसी ही एक रोचक कथा का उल्लेख है। एक बार एक मन्त्री ने मल्लिका के पुष्पों का एक गुलदस्ता महाचेतिय पर चढ़ाया था और श्रीलंका की रिवाज के अनुसार उसके पुण्य को यम के साथ बांट लिया था। जब वह नरक पहुँचा और उसको नरक से बचाने के यम के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए तो अन्त में यम ने उसे स्वयं उस गुलदस्ते के चढ़ाने का स्मरण करा दिया—'क्या तुमने महाचेतिय पर गुलदस्ता नहीं चढ़ाया था ? और मेरे साथ उसके पुण्य को नहीं बांटा था ?' मन्त्री ने तुरन्त उस घटना को स्मरण किया और नरक की यातना से बच गया। डा० आदिकरम के अनुसार यम के साथ पुण्य बांटने का प्राचीन विश्वास श्रीलंका में अब भी है।

मनोरथपूरणी के अनुसार यम वेमानिक पेतों ( वैमानिक प्रेतों ) का राजा है। कभी वह स्वर्गीय सुखों का आस्वादन करता है, कभी नरक यातना का। इस अट्ठकथा में यम का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया गया है। इसके अनुसार यम एक ही है। परमत्थजोतिका में कहा गया है कि इसका क्रोध बहुत तीव्र होता है। जब वह क्रुद्ध होता है तो असंख्यों

कुम्मण्डों को घूर कर देखने मात्र से मार डालता है।[1] डा० आदिकरम कहते हैं कि इस प्रकार का विश्वास श्रीलंका के प्राचीन और नवीन विश्वासों का सम्मिश्रण है और इसी कारण अट्ठकथाओं में उनके संवर्द्धन के साथ चला आया है।

सुयम ओर सन्तुसित का भी उल्लेख अट्ठकथाओं में बुद्ध भगवान की वन्दना के लिये आने वाले देवताओं के साथ में आया है। महावंस के अनुसार ये अनुराधपुर के महाथूप के पूजोत्सव समारोह में सम्मिलित हुए थे।

मार बौद्धमत में ब्रह्मा से भी अधिक शक्तिशाली देव समझा जाता है। जैनमत में भी यह जगद्विजयी कहलाता है, किन्तु मोह का किंकर माना गया है। बौद्धमत में यह पौराणिकता और कल्पना के साथ पाप और मृत्यु का मिश्रीकरण है। यद्यपि यह तिपिटक ग्रन्थों में भी आता है, किन्तु अट्ठकथाओं में इसके स्वभाव का वर्णन बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है। सर चार्ल्स इलियट कहते हैं कि बौद्धों का मार वैदिक देवता मृत्यु से मिलता जुलता है, किन्तु बौद्ध शास्त्रों में इसे बढ़ाकर पूर्णरूप से विकसित कर लिया गया है, जिससे कि यह प्रसिद्ध पौराणिक देव बन गया है।[2] भिन्न-भिन्न अट्ठकथाओं में मार के भिन्न-भिन्न नामों का उल्लेख मिलता है। सारत्थप्पकासिनी में इसे अधिपति, अन्तक, कण्ह, नमुचि, पमत्तबन्धु, वसवत्ति; सुमंगलविलासिनी में—कण्ह, नमुचि, पमत्तबन्धु; परमत्थ-जोतिका में—कण्ह, मच्चु, मच्चुराज, मरण; पपंचसूदनी में—पजापति; उदान अट्ठकथा में—काल, नमुचि, पमत्तबन्धु, तथा नेत्तिप्पकरणट्ठकथा में—महासेन कहा गया है। नेत्तिप्पकरणट्ठकथा में इसकी सेना में मृत्युकारक विष, शस्त्र, सर्प, बिच्छु आदि बताये गये हैं। इसके नामों की

---

१. परमत्थजोतिका, भाग २, पृ० २२५।

२. 'हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म' भाग १, पृ० ३३७।
'मार' के बारे में विशेष विवरण के लिये श्री विण्डिश की पुस्तक 'मार एण्ड बुद्ध' और श्री बी० सी० ला की पुस्तकें—'हैविन एण्ड हैल इन बुद्धिस्ट पर्स्पेक्टिव' तथा 'लाइफ ऑफ बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री' देखें।

व्याख्या से प्रतीत होता है कि यह मृत्यु और पाप का मिश्रित रूप है। इन्द्र की पुत्रियों के समान इसकी भी तण्हा ( तृष्णा ), अरति तथा रागा ये तीन पुत्रियाँ हैं और ये उन-उन मनोभावों की प्रतीक हैं। इसकी महत्वाकांक्षा सर्वदा रहती है कि अच्छे पुण्य और धर्म के कार्यों में विघ्न पहुँचावे और उन्हें होने न दे और इसीलिये इसने भगवान बुद्ध की तपस्या और बोधि प्राप्ति में बार-बार विघ्न डाले थे। जातकट्ठकथा में जब कि मार के किये हुए सारे प्रयत्न बुद्ध भगवान को विचलित करने में व्यर्थ हो गये तो वह भयङ्कर योद्धाओं के साथ भगवान बुद्ध के साथ अपने प्रसिद्ध 'मार युद्ध' के लिये आया था। सुत्तनिपातट्ठकथा में मार के योद्धाओं में इन्द्रियों के विषय, लोभ, वासना अहङ्कारादि हैं। भारतीय परम्परा में 'मार युद्ध' यद्यपि आलङ्कारिक है, किन्तु अट्ठकथाओं में आलङ्कारिक रूप को लुप्त करके वास्तविक युद्ध के रूप में वर्णन किया गया है। इस युद्ध में मार भगवान बुद्ध से उनके मेत्ति ( मैत्री ) तथा विश्वप्रेम के गुणों से हार गया था।

सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी, सारत्थप्पकासिनी तथा धम्मपदट्ठकथा में मार के योद्धा लोग एक से वर्णन किये गये हैं। मार भी कितने-ही हैं। बोधि पल्लङ्क में भगवान बुद्ध ने देवपुत्त, मच्चु तथा किलेस ( क्लेश ) इन तीन मारों को हराया था। किन्तु इन तीनों के अतिरिक्त खन्ध ( स्कन्ध=शरीर और मन का समूह रूप ) और अभिसंखार इन दो हारने वाले मारों का वर्णन अट्ठकथाओं के पश्चात्कालीन ग्रन्थों में और आता है।

इन देवों के अतिरिक्त कुछ अन्य देव भी हैं। उदान अट्ठकथा में सिव ( शिव ) और खन्द ( स्कन्ध ), इन दो देवताओं का उल्लेख उनकी पूजा की व्यर्थता के दिखाने के लिये आता है। सारत्थप्पकासिनी में तथा पपंचसूदनी में राहु का वर्णन है कि इसका शरीर सारे देवताओं से भारी है और यह भी भगवान् बुद्ध के सामने व्यर्थ सिद्ध हुआ था। पपंचसूदनी में सुमनकूट के सुमनदेव का भी स्थानीय देवता के रूप में उल्लेख है।

१. सर चार्ल्स इलियट—'हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म' भाग १, पृ० ३२७।

इसकी पुत्री काली का विवाह राजगह के दीघतफल वृक्ष-देवता के साथ हुआ था। आगामी बुद्ध मेत्तेय के बारे में डा० आदिकरम कहते है कि अट्ठकथाओं में उनके बारे में कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु महावंस में कितने ही स्थानों में है। राजा जेट्ठतिस्स द्वितीय ने इनकी हाथी-दांत की मूर्ति बनवाई थी। चुल्लवंस में आचार्य बुद्धघोष के वर्णन में आया है कि भिक्खु लोगों ने उनके विसुद्धिमग्ग को सुनकर कहा था कि निःसन्देह ये तो 'मेत्तेय बुद्ध' हैं।

**श्रीलंका सम्बन्धी :**—यह लिखा जा चुका है कि थेर महिन्द के द्वारा लाई गई पाली अट्ठकथाऐं सिंहली भाषा में अनुवादित की गई थीं और आलु विहार की परिषद् तक मौखिक रूप में चलती रही थीं। यह स्वाभाविक है कि व्याख्यात्मक होने के कारण इन अट्ठकथाओं के मौखिक रूप में तथा आलु विहार परिषद् के पश्चात् लिखित रूप में भी परिवर्द्धन और संवर्द्धन निरन्तर होते रहे। और यह भी स्वाभाविक है कि श्रीलंका में होने वाले ये परिवर्द्धन भी श्रीलंका के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक तथा राजनैतिक वातावरण के दृष्टान्तों का सहारा लेकर ही हुए। इस कारण जहाँ इन अट्ठकथाओं का ऐतिहासिक अध्ययन भारत के दृष्टिकोण से आवश्यक था, वहाँ श्रीलंका के वातावरण के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है, क्योंकि इनमें थेर महेन्द्र के पश्चात्कालीन श्रीलंका के ही नहीं अपितु उनके पूर्वकालीन श्रीलंका के इतिहास की झाकियां भी मिलती हैं। परिणामतः अनेक विद्वानों ने इन अट्ठकथाओं के वर्णन का सहारा लेकर श्रीलंका के बारे में इतिहास ग्रन्थ लिखे हैं।

डा० आदिकरम ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन' में अट्ठकथाओं की ऐतिहासिक उपयोगिता के ऊपर प्रकाश डालते हुए ठीक ही कहा है कि पाँचवीं शताब्दी की इन अट्ठकथाओं में ऐतिहासिक सूचनाओं का एक ऐसा अमूल्य भण्डार भरा पड़ा है जोकि महावंस और दीपवंस में वर्णन किये हुए श्रीलंका के इतिहास के बीच-बीच के रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है। अट्ठकथाऐं ऐतिहासिक अभिलेखों को सुरक्षित रखने के प्रयोजन के दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई थी, इनमें आये हुए अभिलेखों का तो उपयोग केवल तिपिटक ग्रन्थों के मूल पाठ की व्याख्या के उदाहरण मात्र देना था। इसी कारण इनमें हमको कोई ऐतिहासिक

क्रम नहीं मिलता और जो ऐतिहासिक निर्देश हमें मिलते हैं वे भी दूर-दूर और बहुत अन्तर से उनमें बिखरे हुए मिलते हैं। इस प्रकार वे दीपवंस और महावंस के रिक्त स्थानों की पूर्ति करके, इनके ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाते हैं और श्रीलंका के बौद्ध-जीवन के प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। इसी प्रकार डा० मललसेकर भी इन अट्ठकथाओं के ऐतिहासिक मूल्य का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक 'पाली लिटरेचर आफ सीलोन' में लिखते हैं कि जो कथाऐं तथा लोककथाऐं आचार्य बुद्धघोष ने अपने विस्तृत ज्ञान के कारण भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से लेकर अट्ठकथाओं में संग्रहीत की हैं, वे आगामी पीढ़ियों की जनता के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाओं की एक अमूल्य निधि होंगी।

समन्तपासादिका से हमें थेर महिन्द के श्रीलंका में आगमन से पूर्व के श्रीलंका के वातावरण के बारे में ज्ञात होता है कि श्रीलंका में उस समय अनेक मतावलम्बी थे। उस समय इस द्वीप में ब्राह्मण धर्म था तथा यक्षों और वृक्ष देवताओं की पूजा होती थी। उस समय यहाँ जैन साधु आजीवक भी थे। महावंस के अनुसार अभयगिरि विहार के स्थान पर पहले णिग्गन्थ (निर्ग्रन्थ) साधुओं का तित्थाराम बना हुआ था। वट्टगामणि की हार पर इनके नेता अथवा प्रधानाचार्य प्रगट तौर पर खुश हुए थे, इसलिये उनसे चिढ़कर अपना बदला लेने के लिये उसने तित्थाराम के स्थान पर बौद्ध भिक्खुओं के लिये अभयगिरिविहार बनवा दिया था। इसी प्रकार इस अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि महियंगन थूप के स्थान पर पहले यक्षों का सुरम्य उद्यान था। वहाँ यह भी पौराणिक वर्णन है कि पहले वहाँ यक्ष लोग रहते थे, किन्तु भगवान् बुद्ध ने उन्हें युक्तिपूर्वक गिरि द्वीप में भेज दिया था और श्रीलंका को यक्षों से मुक्त करा दिया था। थेर महिन्द के बारे में इस अट्ठकथा में वर्णन है कि वे बुद्ध निर्वाण के एकसौ तीसवें वर्ष में श्रीलंका में आये थे। उन्होंने श्रीलंका में धम्म का प्रचार किया और जगह-जगह उपदेश दिये। महाविहार और महाचेतिय उन्हीं के संकेत पर देवनांपियतिस्स ने बनवाये थे। इसमें धम्माशोक अथवा पियदस्सी महाराजा अशोक और देवानांपियतिस्स की परोक्ष मित्रता का तथा एक दूसरे को भेटें देने का वर्णन है। इसमें थेरी संघमित्ता के श्रीलंका में आने और भिक्खुनी संघ का संगठन करने के बारे में तथा

भारत से बोधिवृक्ष की पौध श्रीलंका में लाकर स्थान-स्थान पर लगवाये जाने का भी विस्तृत वर्णन है। इसमें उल्लेख है कि थेर महिन्द और उनके साथी थेर आकाश मार्ग से आकर मिस्सकपर्वत पर उतरे थे। यह पर्वत बाद में चेतियपव्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ। थेर महिन्द के निर्वाण के बाद यही महिन्तले ( महिन्द स्थल ) नाम से प्रसिद्ध हुआ और उनके रहने की गुफा महिन्दगुहा कहलाई। थेर की यादगार में यहाँ अब भी जेठ की पूर्णिमा के दिन महामहिन्दोत्सव मेला लगता है। थेर महिन्द के उपदेश स्थान-स्थान पर हुए और बहुसंख्या में लोगों ने बौद्धधर्म धारण किया। श्रीलंका की जनता के द्वारा इनके उपदेशों को समझ लेने से डा० आदिकरम निष्कर्ष निकालते हैं कि उस समय उत्तर भारत की तथा श्रीलंका की भाषाऐं बिना किसी विशेष अन्तर के एक-सी ही होंगी, अन्यथा साधारण जनता उनके उपदेश को एक दम कैसे समझ सकती थी। इस बात की पुष्टि उस समय के श्रीलंका तथा उत्तरी भारत के शिलालेखों की एक-सी ही भाषा से भी होती है। इसमें उल्लेख है कि राजा देवनांपिय तिस्स ने चेतियपव्वत पर अड़सठ गुफाऐं भिक्खुओं के रहने के लिये बनवाई थीं। उनके भाई मत्ताभय ने भी बौद्ध दीक्षा ली थी। इनके और अरिट्ठ तथा महाअरिट्ठ के दीक्षा लेने से बौद्धधर्म का खूब प्रचार हुआ। इसमें वर्णन है कि श्रीलंका में थेर महिन्द के द्वारा धम्म की जड़ जमाने के लिये पाँचसौ भिक्खुओं की संगीति सभा बुलाई गई थी, जिसमें थेर महाअरिट्ठ प्रधान आचार्य बने और पाँचसो भिक्खुओं ने राजा के छोटे भाई मत्ताभय के साथ 'विनय' सीखी। भिक्खुनी संघ में सबसे पहले दीक्षित होने वाली महिला देवनांपियतिस्स की साली और अरिट्ठ की भानजी अनुला थी। राजा तिस्स ने अस्सी वर्ष तक शासन किया। उनके बाद उनके छोटे भाई उत्तिय सिंहासन पर बैठे। इनके शासन के आठवें वर्ष में थेर महिन्द का तथा अगले वर्ष थेरी संघमित्ता का निर्वाण हुआ। राजा मातिकाभय पशुघात का बड़ा विरोधी था। इसने गौमांस खानेपर अर्थदण्ड लगाया था।

राजा दुट्ठगामणि के बारे में कई अट्ठकथाओं में वर्णन है कि यह राजा बड़ा धार्मिक था और धर्म के नियमों के पालन करनेमें बड़ा दृढ़ था। इसका नियम था कि बिना भिक्खुओं को दान दिये यह भोजन नहीं करता था। एक बार इसने एक लम्बी मिर्च बिना किसी भिक्खु को दिये, खा ली

थी। इस नियमभंग के प्रायश्चित्त स्वरूप इसने मरीचिविहार बनवाया और उसके समर्पण के लिये एक महापूजा महोत्सव बड़े धूम-धाम से करवाया था, जिसमें एक लाख भिक्खु तथा नव्वे सहस्र भिक्खुनियाँ एकत्रित हुई थीं। दुट्ठगामणि के शासनकाल में अथवा कुछ पहले श्रीलंका में अकाल पड़ा था, जिसको लोग अक्खक्खायिका अकाल कहते थे, क्योंकि इसमें लोग कुछ न मिलने पर अक्खों को खा गये थे।

सुमंगलविलासिनी में वर्णन मिलता है कि दुट्ठगामणि के ऊपर तामिलों ने चढ़ाई की थी। इनके ऊपर विजय प्राप्त करने के हर्षातिरेक के कारण इसको एक माह तक नींद नहीं आई। जब भिक्खुओं को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने उसे अभिधम्मपिटक के 'चित्तयमक' का पाठ सुनाया, जिससे उसको नींद आ गई। दुट्ठगामणि ने दूसरे दिन बहुत प्रसन्न होकर कहा था कि मेरे पितामह के बच्चे, ये भिक्खु,ऐसा कोई इलाज नहीं, जिसको न जानते हों। दुट्ठगामणि के उदार दानों के कारण श्रीलंका में धम्म की बड़ी उन्नति हुई। अक्खक्खायिका अकाल के समय इसी राजा ने अपने कानों के मूल्यवान् कुण्डल देकर ज्वार का खट्टा दलिया प्राप्त किया था और अपने नियम के अनुसार थेर धम्मदिन्न आदि को पहले देकर फिर स्वयं खाया था।

राजा सद्धातिस्स भी बड़ा धर्मात्मा राजा था। अट्ठकथाओं में वणन है कि इसने रात-रात भर खड़े रह कर थेर कालबुद्धरक्खित का उपदेश सुना था। यह भी धम्म के नियमों का बड़े अनुशासन के साथ पालन करता था। एक बार तित्तिर मांस खाने की तीव्र इच्छा को इसने तीन वर्ष तक दबाये रखा था और अन्त में तिस्स नाम के एक धार्मिक पुरुष की परीक्षा करने के बाद कि यह प्राणों के संकट आने पर भी कभी किसी जीव को नहीं मारेगा, उसको ऐसा तित्तिर मांस लाने को कहा जो रखा हुआ हो और उसके लिये नहीं मारा गया हो। उस मांस को भी इसने पहले एक सामणेर को देकर फिर स्वयं खाया था। यह भिक्खुओं के अनुशासन का पक्षपाती था। एक बार इसने महाविहार के भिक्खुओं की अनुशासनहीनता देख कर उनको दान देना बन्द कर दिया था और चेतियपब्बतविहार वाले भिक्खुओं के नियम-पालन की दृढ़ता देख कर उनको दान देना प्रारम्भ कर दिया था।

राजा वट्टगामणि के समय ब्राह्मणतिस्स के विद्रोह का भी अट्ठकथाओं में विस्तृत वर्णन है। यह इतना शक्तिशाली था कि पहले तो वट्टगामणि ने इसका सामना ही नहीं किया और जब किया तो हार गया। इससे आतंकित होकर भिक्खुओं ने आठ भिक्खु, इन्द्र ( सक्क ) के पास भेजे, किन्तु इन्द्र भी इसका कुछ नहीं कर सका और उसने भिक्खुओं को भारत जाने का परामर्श दिया। इसी समय बारह वर्ष के एक भारी अकाल के भी पड़ने का उल्लेख है, जिसको ब्राह्मणतिस्स अकाल कहा गया है। इस अकाल की भीषणता का अट्ठकथाओं में बड़ा रोमांचकारी वर्णन है। विहारों के अन्न को चूहे खा गये और भिक्खु लोग भोजन के अभाव के कारण द्वीप को छोड़ कर भारत चले गये तथा बहुत से जंगलों और पहाड़ों में जाकर पेड़ की पत्तियों और छाल को खाकर जीवन निर्वाह करने लगे। इस भीषण अकाल में लोग भूख से इतने सताये गये थे कि मनुष्यों को मार-मार कर खाने लगे थे। थेर वट्टव्वक निग्रोध के गुरू को लोग मार कर खा गये थे और थेर निग्रोध बड़ी मुश्किल से उनके चंगुल से बच पाये थे।

इधर ब्राह्मणतिस्स ने विद्रोह किया और उधर भारत से सात तामिल राजा श्रीलंका पर चढ़ आये। इनमें से एक तो वट्टगामणि की रानी सोमादेवी को लेकर और दूसरा भगवान् बुद्ध के पात्र को लेकर भारत वापिस चला गया। शेष पाँचों में से प्रत्येक ने अपने-अपने पूर्वाधिकारी को मार डाला और अन्तिम को वट्टगामणि ने मारकर सिंहासन पर अधिकार किया। अट्ठकथाओं में वर्णन है कि इस अकाल के समय भिक्खुओं ने बड़ी तत्परता के साथ तिपिटक ग्रन्थों की रक्षा की थी।

अकाल के समय के पश्चात् भारत से लौटे हुए थेरों से श्रीलंका के थेरों ने तिपिटक ग्रन्थों के पाठ मिलाये और ठीक पाये। मनोरथपूरणी में वर्णन है कि इसी समय 'धम्म' और 'विनय' के बारे में ( परियत्ति और पटिपत्ति की प्रधानता के बारे में ) विवाद उठ खड़ा हुआ और अन्त में 'धम्म' की परियत्ति के ( अभिधम्म का ज्ञान के ) पक्षपाती अभिधम्मिक विजयी हुए और विनय की पटिपत्ति ( विनय के नियमों का पालन ) के पक्षपाती पांसुकूलिक हार गये। अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि अकाल के कारण अभयगिरि विहार वालों में कुछ शिथिलता आ गइ

थी। इस कारण बहुत-सी बातों में वे महाविहार वालों से भिन्न मत के हो गये थे।

अट्ठकथाओं में श्रीलंका के बहुत से प्रसिद्ध थेरों के भी उल्लेख हैं, जिन्होंने स्थान-स्थान पर सुत्तों के उपदेश दिये। इनमें महापदुम, महासुम्म, महासुमन, उपतिस्स, तथा पुस्सदेव का उल्लेख समन्तपासादिका में आता है। समन्तपासादिका में थेर पुस्सदेव के बारे में उल्लेख है कि इनको बुद्धरमणपीति ध्यान द्वारा जो आनन्द प्राप्त हुआ था उसे मार ने नष्ट करना चाहा। इनको एक चेतिय को झाड़ने के समय अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार सुमंगलविलासिनी में तिपिटक महासिव, लोकुत्तर गोणारविय, सुम्म, वृकव्हाण आदि का उल्लेख है। अट्ठसालिनी में बहुत से थेरों के मतों को उद्धृत किया गया है। इनमें थेर चूलनाग को राजा कूटकण्ण बहुत मानता था। इसने इनके अन्तिम समय में इनकी परिचर्या की थी और रो-रो कर कहते फिरते थे कि धम्म चक्क की धुरा अब टूटने को है। ये थेर बड़े विद्वान् और प्रभावशाली उपदेशक थे। ये दीपविहारवासी थेर सुम्म के शिष्य थे। इनकी अपने गुरू तथा साथी थेरों से मतविभिन्नता थी। इनके साथी थेर तिपिटक चूलाभय थे, जिन्होंने अपने गुरू के कहने पर थेर महाधम्मरक्खित से अट्ठकथाऐं पढ़ी थीं। ये स्मरणशक्ति, भिक्खुओं के मुकद्दमों के निष्पक्ष तय करने और प्रश्नों के संक्षिप्त तथा ठीक-ठीक उत्तर देने के लिये प्रसिद्ध थे। थेर महादत्त तथा महाधम्मरक्खित के मतों को आचार्य बुद्धघोष ने आचरियवाद में सम्मिलित किया है। थेर दीघभाणक अभय अपनी स्मरणशक्ति तथा गालियों की सहनशक्ति के लिये प्रसिद्ध हो गये हैं। इन्होंने चेतियपब्बतविहार को लूटने के लिये आने वाले डाकुओं को अपने आतिथ्य-सत्कार से विहार का रक्षक बना दिया था।

सुमंगलविलासिनी में दीघभाणक थेर के बारे में उल्लेख है कि लोहपासाद के पश्चिम में स्थित अम्बलट्ठिक में 'महासुदस्सन सुत्त' के ऊपर इनके उपदेश करने की बात को सुन कर राजा बसभ बहुत प्रसन्न हुए थे। समन्तपासादिका में थेर महापदुम के बारे में उल्लेख है कि ये औषधि ज्ञान के लिये प्रसिद्ध थे, किन्तु विनय के नियम के अनुसार वे अपने इस ज्ञान को व्यक्तिगत लाभ के लिये प्रयोग में नहीं लाते थे। थेर

महामलियदेव के बारे में प्रसिद्धि थी कि वे मनुष्यों को देख कर उनको ध्यान की भिन्न-भिन्न विधि देने में निपुण थे। दुट्ठगामणि के ज्वार के खट्टे दलिया के दान को लेने वाले पाँच थेर धम्मदिन्न, मलियदेव, खुज्जतिस्स, धम्मगुत्त और महाव्यग्घ थे। इनमें खुज्जतिस्स इतने एकान्तप्रिय थे कि इन्होंने एक बार राजा को भी अपने विद्वान् होने के बारे में धोखा दे दिया था। धम्मगुत्त के बारे में जातक और महावंस दोनों में उल्लेख है कि ये पृथ्वी को चलायमान कर देते थे। धम्मदिन्न बड़े विद्वान् उपदेशक थे। इन्होंने अपने गुरू तथा कई अन्य थेरों के मिथ्या विश्वास को कि वे अर्हन्त हैं, युक्तिपूर्वक दूर किया था। इनको ऐसी ऋद्धि प्राप्त थी कि ये स्वर्ग और नरक के साक्षात् दर्शन करा देते थे। प्रसिद्ध थेरों में उपरिमण्डलवासी धम्मरक्खित तथा मलयवासी महासंघरक्खित थेरों का भी उल्लेख है। महासंघरक्खित निर्मोह और बिल्कुल क्रोधरहित थे। सम्मोहविनोदनी में सुधम्म सामणेर का भी उल्लेख मिलता है कि इन्होंने अपने मामा थेर धम्मदिन्न से सुन-सुनकर तीनों पिटक याद कर लिये थे। राजा सद्धातिस्स के समय के प्रसिद्ध थेर कालबुद्धरक्खित दुट्ठगामणि के किसी मन्त्री के पुत्र थे। ये बड़े निपुण उपदेशक थे। इस समय के अन्य प्रसिद्ध थेरों में मण्डलाराम के तिस्सभूति सुमनदेव, पुस्सदेव और उपतिस्स हैं। महारक्खित थेर की स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। इन्होंने एक अनाचारी थेर से एक ग्रन्थ सीखा था जो केवल उसी को आता था।

अट्ठकथाओं में विहारों, चेतियों तथा प्रसिद्ध धार्मिक स्थानों का भी, उनके बनवाने के इतिहास तथा उनकी प्रसिद्धि के कारणों के साथ उल्लेख मिलता है। इसमें अनुराधपुर के महाविहार, थूपाराम विहार, इस्सरसमणाराम, वेस्सगिरिविहार तथा चेतियगिरिविहार प्रसिद्ध हैं। समन्तपासादिका के अनुसार इनमें से अनुराधपुर के महाविहार में ज कि सबसे बड़ा विहार था, सबसे अधिक भिक्षु यात्री दक्षिण से आते थे। राजा वट्टगामणि ने णिग्गण्ठों के तित्थाराम की जगह अभयगिरिविहार बनवाया था। पहले यह विहार थेरवादी ही था, किन्तु ब्राह्मणतिस्स अकाल के पश्चात् इनके सम्प्रदाय में शिथिलता अधिक आ गई थी और यह विहार शिथिलपंथियों का हो गया। समन्तपासादिका में इस विहार के

बारे में उल्लेख मिलता है कि राजा भातिय के समय इस विहार वालों का महाविहार वालों से विनय के नियम के ऊपर विवाद हो गया, जिसका राजा के मन्त्री ने अभयगिरिविहार वालों के पक्ष में निर्णय दिया था। यह विहार दक्षिण के वेतुल्लकों के प्रभाव में था।

अट्ठकथाओं में राजा महादाठ्ठिक महानाग के द्वारा भंडगिरिविहार के बनवाये जाने और उसके भारी पूजा महोत्सव का भी उल्लेख है। इसी पूजा महोत्सव के सम्बन्ध में लोणगिरि के प्रसिद्ध थेर तिस्स का भी उनके पवित्र जीवन बिताने के बारे में उल्लेख है। अनुराधपुर के महाविहार की थेरवादी सम्प्रदाय के ग्रन्थों के अध्ययन के लिये इतनी प्रसिद्धि थी कि दूर-दूर से बौद्ध भिक्खु यहाँ पढ़ने के लिये आते थे। समन्तपासादिका में उल्लेख है कि एक थेर पुनब्बसुकुटुम्बी का पुत्र तिस्स नाम का योनक, धम्मरक्खित थेर से यहाँ पढ़ने आया था। आचार्य बुद्धघोष ने भी इसी विहार में अट्ठकथाऐं पढ़ीं और बाद में इसी के गन्धागार में उन्हें पाली में भाषान्तर किया था। इस विहार को राजा देवानांपियतिस्स ने थेर महिन्द के श्रीलंका में आगमन के थोड़े समय बाद ही बनवाया था। इसमें पियंगुपरिवेण, महापरिवेण आदि अनेक परिवेण थे। यहाँ एक पञ्हमण्डप (प्रश्न मण्डप) था, जिसमें धम्म के अनेक विषयों पर शास्त्रार्थ होते थे। जो यात्री विदेशों से महाबोधि और महाचेतिय की वन्दना करने आते थे, वे इसी विहार में ठहरते थे।

यहाँ की परम्परा पवित्र थेरवादी थी, जिसमें शिथिलता और पाखण्ड बिल्कुल नहीं था। आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाऐं और विसुद्धिमग्ग यहीं की परम्पराओं के ऊपर आधारित हैं। इसी विहार के साथ घनिष्ठता से सम्बधित लोहपासाद, महाचेतिय, महाथूप (जोकि सोण्णमाली चेतिय भी कहलाता है) तथा महाबोधिट्ठान (महाबोधि स्थान) भी हैं। इस के बारे में अट्ठकथाओं में उल्लेख आता है कि थेर महिन्द ने इसके बनने से पहले इसके स्थान की वन्दना की थी, क्योंकि यहां पर यह विहार बनाये जाने वाला था। अम्बलट्ठिक तथा पंचनिकाय मण्डल भी इसी से सम्बन्धित हैं। अम्बलट्ठिक में दीघभाणकों के द्वारा 'ब्रह्मजाल सुत्त' तथा राजा बसभ के समय में 'सुदस्सन सुत्त' के उपदेश हुए थे। सुमंगलविलासिनी में उल्लेख है कि यहाँ त्रिपिटक का

शुद्ध पाठ हुआ करता था और अशुद्धि फौरन पकड़ ली जाती थी। यहां थेर मलियदेव ने 'छछक्क सुत्त' का उपदेश दिया था।

महाचेतिय लोह पासाद से भी अधिक मजबूत बनवाया गया था। पपंचसूदनी में इसे असदिस चेतिय कहा गया है। इस चेतिय का प्रमाण ( साइज ) भी सब चेतियों से बड़ा है। सुमंगलविलासिनी के अनुसार बौद्ध परम्परा कहती है कि थेर महाकस्सप ने इस चेतिय के लिये बुद्ध भगवान् के अवशेष सुरक्षित रखे थे। यह भी कहा जाता है कि अपने श्रीलंका विहार के समय इसके स्थान को बुद्ध भगवान् ने अपने बैठने के द्वारा पवित्र किया था और थेर महिन्द ने इसके स्थान पर इसीलिए फूल चढ़ाये थे। सुमंगलविलासिनी और पपंचसूदनी में उल्लेख है कि यह महाचेतिय उन स्थानों में से एक है, जहाँ धातुपरिणिव्वाण से पहले सारे बुद्धावशेष ( अथवा धातु ) एकत्रित होंगे। ब्राह्मणतिस्स अकाल के समय इसकी अवहेलना होने के कारण यहाँ अरण्ड के वृक्ष और झाड़ियाँ उग गई थीं। मनोरथपूरणी तथा पपंचसूदनी के अनुसार एक मन्त्री ने इसके ऊपर मल्लिका के पुष्प चढ़ाये थे और इस पुण्य को उसने यम के साथ बांटा था, जिससे वह नरक की यातना से छूट गया और देवलोक में गया था। सारत्थप्पकासिनी के अनुसार इसकी वन्दना से हृदय में पवित्र भाव उत्पन्न होते हैं और उन भावों के ध्यान से बहुत से भिक्खुओं ने अर्हत्त्व पद लाभ किया है।

बोधिवृक्ष के बारे में समन्तपासादिका में वर्णन है कि इसको थेर महिन्द के समय में देवानांपियतिस्स ने सम्राट् अशोक से मँगवाया था और यह अनुराधपुर के मेघवन में बड़े उत्सव के साथ आरोपित किया गया था। तामिल आक्रान्ताओं ने यद्यपि विहारों को नष्ट किया, किन्तु इसे छुआ तक नहीं था। वहीं यह भी लिखा है कि महाचेतिय तथा बोधिवृक्ष के बाद पूज्य स्थानों में तीसरा स्थान थूपाराम का है। उसी के अनुसार इस स्थान को बुद्ध भगवान ने निरोध सम्पदा ध्यान द्वारा पवित्र किया था तथा चार बुद्धों के अवशेष इसी चेतिय के स्थान में स्थापित हैं। सम्मोहविनोदनी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के समाप्त हो जाने पर बहुत से भिक्खु इसकी वन्दना को आये थे। बोधिवृक्ष के आरोपण से इसकी पवित्रता और भी बढ़ गई थी।

अनुराधपुर में इस्सर समणाराम तथा वेस्सगिरिविहार ये दो विहार और थे। यहाँ देवनांपियतिस्स ने बोधि-वृक्ष की पौध लगाई थी। चेतियपब्बत के बारे में समन्तपासादिका आदि अट्ठकथाओं में वर्णन है कि थेर महिन्द के आने के पहले यह पर्वत, मिस्सकपब्बत कहलाता था और उनके बाद में महिन्तले कहलाया था। यहीं पर थेर महिन्द भारत से आकाश मार्ग से आकर उतरे थे। चेतियपब्बतविहार में थेर महिन्द के रहने की महिन्द गुहा तथा पियगु गुहा का अट्ठकथाओं में उल्लेख आता है। यहाँ पर वह पत्थर की पटिया भी मौजूद है, जिस पर थेर महिन्द सोया करते थे। इसी पर्वत पर थेर महिन्द ने प्रथम वर्षा का चातुर्मास बिताया था और इस पर थेरी संघमित्ता के द्वारा लाये गये बोधिवृक्ष की पौध भी लगाई गई थी। थेर मलियदेव ने यहाँ 'छछक्क सुत्त' का उपदेश दिया था, जिससे साठ भिक्खु अर्हन्त बन गये थे। राजा सद्धातिस्स के समय यहाँ राजा के पूज्य थेर कालबुद्धरक्खित रहते थे। सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि राजा सद्धातिस्स ने यहाँ राजलेन (राजगुहा) में उपोसथ, सील अथवा अष्ट सम्पदाओं का पालन किया था और सारी रात थेर पिण्डपातिक का उपदेश सुना था। यहाँ के भिक्खुओं के जीवन से राजा इतना प्रसन्न हुआ था कि उसने यहाँ के भिक्खुओं को प्रतिदिन दान दिया और अनुराधपुर वालों से उनकी अनुशासनहीनता देखकर उदास हो गया था। यहाँ के चेतियविहार में राजा कूटकण्ण के समय दीघभाणक थेर अभय रहे थे। इन्हीं थेर ने अपने आतिथ्य सत्कार से इसे लूटने को आये हुए डाकुओं को इसका रक्षक बना दिया था। देवनांपियतिस्स के छोटे भाई अभय थेर ने यहीं दीक्षा ली थी।

मरीचवट्टिविहार को राजा दुट्ठगामणि ने प्रायश्चित्त स्वरूप बनवाया था, क्योंकि उसने एक लम्बी मिर्च को किसी भिक्खु को बिना बांट कर अपने नियम के विरुद्ध खा लिया था। इसके समर्पण के अवसर पर इसने बड़ा भारी पूजामहोत्सव करवाया था, जिसमें एक लाख भिक्खु तथा नब्बे सहस्र भिक्खुनियाँ सम्मिलत हुई थीं। मनोरथपूरणी के अनुसार दक्खिनगिरिविहार सांगलिय सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र था। इसी विहार के पास थेर कालबुद्धरक्खित की जन्मभूमि थी और उन्होंने इसी विहार में दीक्षा ली थी तथा वातकसितपब्बत पर कठोर ध्यान के

द्वारा आर्हन्त्य पद प्राप्त किया था। छातपब्बतविहार के बारे में समन्त-पासादिका में उल्लेख है कि इसी जगह देवनांपियतिस्स को वह खजाना मिला था, जिसको इसने भारत के सम्राट् अशोक के पास भेंट स्वरूप भिजवा दिया था। कलम्बतित्थविहार में सारत्थप्पकासिनी के अनुसार पचास भिक्खुओं ने एक बार चातुर्मास किया था और आर्हन्त्य प्राप्त करने तक एक दूसरे से न बोलने का व्रत ले लिया था। फलतः तीन महीने के भीतर सब अर्हन्त हो गये थे। कुटेलीतिस्सविहार का सम्मोहविनोदनी में तथा प्राचीनखण्डराजीविहार का सुमंगलविलासिनी और मनोरथपूरणी में उल्लेख हैं।

'पंचमचेतिय' अनुराधपुर के पूर्व में उस स्थान पर है जहाँ थेर महिन्द और उनके साथी थेर पहले-पहल श्रीलंका में पधारे थे। नागदीप, जैसा कि इसके नाम से ही प्रगट है, नाग जाति का निवास स्थान था। जातकट्ठकथा के अनुसार यह यक्खों और सुपर्णों की भी निवास भूमि थी। वणिक् लोगों के जहाज यहाँ ईंधन और पानी लेने के लिये लंगर डाला करते थे। यहाँ देवनांपियतिस्स ने राजायतनचेतिय तथा जम्बुकोलविहार बनवाये थे, ऐसा कई कट्ठकथाओं में उल्लेख मिलता है। समन्तपासादिका में यह भी उल्लेख है कि तिस्सदत्त जम्बुकोलविहार में आया था और उसने एक ऐसे भिक्खु को यहाँ झाड़ू लगाते देखा था जो सब पापोंसे रहित और पवित्र था सम्मोहविनोदनी के अनुसार ब्राह्मणतिस्स अकाल के बाद भारत से लौटे हुए भिक्खु यहीं उतरे थे।

कल्याणचेतिय में, समन्तपासादिका के अनुसार भगवान् बुद्ध निरोध समापत्ति में प्रविष्ट हुए थे। पपंचसूदनी के अनुसार थेर मलियदेव ने राजा दुट्ठगामणि के समय में यहाँ कल्याणी के नागमहाविहार तथा कलकच्छगाम में छछक्क सुत्त का उपदेश दिया था। थेर महातिस्स और थेर गोधा इस विहार में रहे थे। थेर गोधा समय की पाबन्दी के लिये प्रसिद्ध थे।

मलय प्रान्त में सामणगिरि पर समणगिरि विहार है। मनोरथ-पूरणी के अनुसार इसके आकासचेतिय पर तामिल दीघजन्तु ने लाल रङ्ग का रेशमी वस्त्र चढ़ाया था। मुतियंगनविहार के स्थान पर समन्त-पासादिका के अनुसार भगवान् बुद्ध निरोध समापत्ति को प्राप्त हुए

थे। इसी कारण यहाँ बाद में विहार बनाया गया। यहाँ थेर मलियदेव ने 'छछक्क सुत्त' का उपदेश दिया था। पंगुरविहार में पपंचसूदनी के अनुसार एक युवा भिक्खु ने 'महाधम्मसमादान सुत्त' का उपदेश दिया था।

रोहण प्रान्त के तिस्स महाराम में सुमंगलविलासिनी के अनुसार भिक्खु लोग चातुर्मास के लिये आते थे और अपने सीखे हुए तिपिटक ग्रन्थों को तथा अट्ठकथाओं को दुहराते थे। सम्मोहविनोदनी के अनुसार यहां बारह हजार भिक्खु रहते थे। इस विहार में पपंचसूदनी के अनुसार थेर मलियदेव ने 'छछक्क सुत्त' का तथा थेर धम्मदिन्न ने 'अपण्णक सुत्त' का उपदेश दिया था।

मलयगाम दुट्ठगामणि की जन्मभूमि थी। यहाँ के लोग बड़े धार्मिक थे। यहाँ जब दीघभाणक थेर अभय ने महाअरियवंसपटिपदा का उपदेश दिया तो सारा गाँव सुनने के लिये आया था। रोहण प्रान्त का दूसरा विहार चित्तलपब्बतविहार था। यहाँ सम्मोहविनोदनी के अनुसार बारह हजार भिक्खु रहते थे। पपंचसूदनी में भी इसे अत्यन्त भीड़ वाला ( अच्चन्त संघिको ) वर्णन किया है। यहाँ के भिक्खु लोग बड़े तपस्वी थे। यहाँ के पधानिय थेर शरीर पीड़ा को सहन करते हुए भी निश्चल शान्त और ध्यानस्थ रह सकते थे। पिंडपातिय थेर ने अपने साथी भिक्खु के क्रोध को शान्त करने के लिये उसे अपना कीमती पात्र दे दिया था।

काजरगाम विहार में देवानांपियतिस्स ने बोधिवृक्ष की पौध लगवायी थी। गामेण्डल विहार के थेर चूलपिंडपातिकतिस्स ने एक शिकारी को दीक्षा दी थी। भिक्खु होने पर यह बड़ा संयमी हुआ और इसने पाचीन पब्बत पर 'अरुणवत्ति सुत्त' सुनने के बाद ध्यान लगाया और अनागामी होकर अर्हन्त हो गया।

तलंगारविहार के बारे में कई अट्ठकथाओं के उल्लेख हैं कि यह प्रसिद्ध थेर धम्मदिन्न का निवास था। दीघवापी में सद्धातिस्स ने एक विहार और चेतिय बनवाया था। समन्तपासादिका के अनुसार यहाँ भी बुद्ध भगवान् आये थे। रोहण के भेरपासन्नविहार का तथा कुटुम्बिय विहार का भी अट्ठकथाओं में उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अट्ठकथाओं में अन्य बहुत से विहारों और चेतियों का उल्लेख है, जिनमें हत्थिकुच्छि

विहार तथा वजिरगिरिविहार उल्लेखनीय हैं। वजिरगिरिविहार के थेर कालदेव की दिनचर्या का वर्णन है कि वे वर्षा के चातुर्मास में घण्टा बजाया करते थे और इस कार्य में इतने सधे हुए थे कि उनको घण्टा घड़ी भी देखनी नहीं पड़ती थी—( नचयामयन्तनालिकं पायोजेति )। ये भोजन के बाद पात्र को विहार में रखकर भिक्खुओं के 'दिवाविहारट्ठान' में जाकर ध्यान लगाया करते थे। ये जब ध्यान में मग्न हो जाते तो भिक्खु लोग कालत्थम्भ में देखकर इनको बुलाने जाते थे, किन्तु ये समय के ज्ञान में इतने चतुर थे कि बुलाने को आने वाले भिक्खु इनको रास्ते में मिलते थे। इस रोचक वर्णन से हमको ज्ञात होता है कि कम से कम पन्द्रह शताब्दी पहले यामयन्त ( घण्टा घड़ी अर्थात् एलार्म क्लोक ) तथा कालत्थम्भ ( सूर्यघड़ी ) सिंहल द्वीप में प्रचलित थे।

उपर्युक्त अट्ठकथाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि अट्ठकथाओं के समय तक श्रीलंका में बौद्धधर्म पूर्व में दीघवापी से पश्चिम में कल्याणी तक तथा उत्तर में नागद्वीप से लेकर दक्षिण में महागाम तक फैला हुआ था और सिंहली जनता के प्रत्येक विभाग में छाया हुआ था। क्या राजा क्या प्रजा, क्या सामन्त, क्या साधारण गरीब जनता सभी धर्माचरण पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे और सभी भिक्खुओं को भोजन वस्त्रादि सर्व प्रकार की आवश्यक वस्तुओं को देना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। इसी प्रकार भिक्खु लोग भी अपना परमकर्त्तव्य समझते थे कि जनता के ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन को उन्नत करें और उनके परलोक को सुधारें।

अट्ठकथाओं से श्रीलंका के श्रावकों के धार्मिक जीवन पर, चाहे वे राजा हों, सामन्त हों, धनवान् हों, चाहे साधारण गरीब किसान और मजदूर हों, पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजाओं के बारे में काफी वर्णन हो चुका है कि वे कितने धर्मात्मा, धर्म के नियमों के पालन करने में दृढ़ तथा धर्म के फैलाने में दत्तचित्त और क्रियाशील थे। यही नहीं, वे भिक्खुओं के अनुशासन को भी ढीला नहीं होने देते थे। देवानांपियतिस्स ने अनुराधपुर के महाविहार आदि के अतिरिक्त सारे श्रीलंका के द्वीप में विहार और चेतिय बनवाये थे तथा बोधिवृक्ष की पौध भारत से मंगवा कर सारे द्वीप में स्थान-स्थान पर बोधिवृक्ष आरोपित करवाये थे।

थेर महिन्द के संकेत पर उसने थूपारामविहार में विनय के संगायन के लिये संगीति बुलाई, जिसमें थेर अरिट्ठ के द्वारा विनय का संगायन हुआ और जिसमें राजा के छोटे भाई थेर मत्ताभय के साथ पांच सौ भिक्खुओं ने विनय सीखी। इस संगीति में राजा अपनी परिषद् के लोगों के साथ विद्यमान था और राज घराने के लोगों के साथ-साथ हजारों लोग 'धम्म' में दीक्षित हुए थे।

इन्हीं के समय थेरी संघमित्ता की अध्यक्षता में भिक्खुनी संघ की स्थापना हुई और अनुला के साथ बहुत सी स्त्रियों ने भिक्खुनी दीक्षा ली। भिक्खुनियों के लिये अलग विहार बनाया गया, जिसका नाम उपासिका विहार रखा गया। राजा भातिय ने गौमांस भक्षण वर्जित कर रखा था। सम्मोहविनोदनी के अनुसार अमण्डगामणि ने किसी भी जीवधारी को मारने की मनाही कर रखी थी और इस प्रकार सारे श्रीलंका को शाकाहारी बना दिया था। राजा वट्टगामणि ने अभयगिरिविहार बनवाया और इन्हीं के समय तिपिटक ग्रन्थों और अट्ठकथाओं को आलुविहार की परिषद में लिखित रूप दिया गया। राजा दुट्ठगामणि ने मरीचिविहार बनवाया और उसका बड़ी धूमधाम से पूजा महोत्सव किया। इस राजा के नियम था कि बिना भिक्खुओं को दिये कुछ नहीं खाता था। सद्धातिस्स नियम के पालने में इतना दृढ़ था कि तित्तिर का मांस खाने की इच्छा को तीन वर्ष तक दबाए रखा। इसने चेतियपब्बत पर उपोसथ किया था।

इसी प्रकार श्रीलंका में श्रावकों ( सावकों ) की भी धर्म में दृढ़ता के अनेकों उदाहरण इन अट्ठकथाओं में मिलते हैं। सारत्थप्पकासिनी के अनुसार सद्धातिस्स ने तिस्स नाम के श्रावक की परीक्षा की थी, और प्राणों की भी परवाह न करके उसने तित्तिर को मार कर लाने की राजाज्ञा का उल्लंघन कर दिया था, किन्तु तित्तिर को मृत्यु की सजा के भय दिखाने पर भी मारना स्वीकार नहीं किया था। उत्तरवड्ढमान गाँव के किसान श्रावक ने अपने पास हथियार होने पर भी सर्प को नहीं मारा और उसके द्वारा काटे जाने पर मृत्यु को अंगीकार किया, क्योंकि उसने पंचसम्पदा ले रखी थी, ऐसा उल्लेख सारत्थप्पकासिनी, पपंचसूदनी तथा अट्ठसालिनी में आया है। इन्हीं में चक्कण श्रावक के बारे में उल्लेख है कि इसने अपनी माता का जीवन बचाने के लिये पकड़े हुए खरगोश को

भी छोड़ दिया था। महाजातक भाणक के द्वारा 'महावस्सन्तर जातक' के उपदेश के समाचार सुन कर एक सामणेर नौ योजन पैदल चल कर आया था और इसी प्रकार एक स्त्री पाँच योजन से अपने दुधमुंहे बच्चे को लेकर दीघभाणक अभय के 'अरियवंसपटिपदा' के उपदेश को सुनने को आई थी। इसी प्रकार राजा कूटकण्ण के समय की मनोरथपूरणी में एक गरीब किसान की कहानी है कि उसने अपने गाढे पसीने की कमाई से थेर पिण्डपातिय को भोजन दिया था और थेर ने भी उसको अधिक पुण्य लाभ हो इसलिये घोर प्रयत्न के द्वारा आर्हन्त्य पद प्राप्त किया था।

इसी प्रकार अट्ठकथाओं में भिक्खु जीवन की पवित्रता और नियम पालन की दृढ़ता के बारे में कितने ही दृष्टान्त भरे पड़े हैं। गरवालअंगन का भिक्खु विच्छु के काटने की पीड़ा को रात भर उपदेश के समय दृढ़ता के साथ इसलिये सहन करता रहा कि अन्य श्रोताओं को विघ्न न हो। थेर पुस्सदेव ने उन्नीस वर्ष तक 'गतपच्चागतवत्त' का अभ्यास किया था। इसी प्रकार थेर महानाग ने सात वर्ष तक खड़े रहने और चलने की केवल दो ही मुद्रा धारण की थीं और बाद में सोलह वर्ष तक 'गतपच्चागत-वत्त' का अभ्यास किया था। सोसाणिक महाकुमार के बारे में कहा जाता है कि वे सात वर्ष तक स्मशान में ध्यान लगाते रहे। इसी प्रकार चेतिय पब्बत पर एक दूसरे भिक्खु ने पचास वर्ष तक 'एकसतिकधुतांग' का पालन किया था।

भिक्खुओं के कठोर अनुशासन के अतिरिक्त उनके ग्रन्थों के अभ्यास के तथा स्मरण करने के बारे में भी अनेक दृष्टांत हमें अट्ठकथाओं में मिलते हैं। उनकी इसी स्मरणशक्ति के कारण तिपिटक ग्रन्थ तथा उनकी अट्ठकथाएं अक्षुण्ण रूप से चलती रहीं। श्रीलंका में भिक्खुओं की प्रचुरता के बारे में तो अट्ठकथाओं में कितने ही उल्लेख मिलते हैं। मनोरथपूरणी में लिखा है कि यदि साधारण भिक्खुओं के भी थूप बनवाये जाते तो सारा द्वीप भी पर्याप्त न होता। सम्मोहविनोदनी के अनुसार श्रीलंका में ऐसा कोई भिक्खु नहीं था जिसने मुक्ति मार्ग नहीं प्राप्त किया हो। एक बार एक महाथेर ने कहा था कि अनुराधपुर के महाचेतिय के आंगन में इतने बालू के कण नहीं होंगे जितने कि भिक्खुओं ने यहाँ आर्हन्त्य पद प्राप्त किया है। सारत्थप्पकासिनी में उल्लेख है कि गाँवों के उपाश्रयों में ऐसा कोई

स्थान नहीं था जहाँ बैठ कर भिक्खुओं ने आर्हन्त्य प्राप्त न किया हो। इसी में कहा गया है कि इस द्वीप में इतने विहार थे कि 'नानामुख' से 'लिच्छि-कलि' तक घण्टों के शब्द की परम्परा लम्बी चली जाता थी। सुमंगल-विलासिनी में कहा गया है कि अभयगिरि, चेतियपव्वत तथा चित्तलपव्वत सरीखे कितने ही विहार थे, जहाँ बारह-बारह हज़ार भिक्खु रहते थे।

यद्यपि संघ में कभी-कभी शिथिलता आ जाती थी, किन्तु सर्वदा उसको दूर करने के प्रयत्न किये जाते थे और संघ धम्म की ऊँची परम्परा को सुरक्षित रखता था। अट्ठकथाऐं थेरों की रचना हैं, इसलिये उन्होंने भिक्खुओं के दोषों को छोड़ कर गुणों को ही वर्णन किया हो, ऐसी बात नहीं है। अट्ठकथाओं के लिखने में इतिहास लिखने का उद्देश्य नहीं था, किन्तु धम्म और विनय की बातों को स्थानीय उदाहरण देकर पुष्ट करना था, इसलिये उदाहरणों में हमें भिक्खुओं और श्रावकों के गुण और दोष दोनों बिना किसी छिपाव के मिलते हैं। इस प्रकार श्रीलंका में बुद्ध भगवान् के धम्म के विश्वास पूर्वक पालने की निरतर परम्परा से संघ की पवित्रता ज्ञात होती है। भिक्खुओं के हृदय में धम्म के ऊपर कितना विश्वास था और उसकी परम्परा को अखंडित रूप से चालू रखने की कितनी लगन थी, यह हमको इसी से ज्ञात हो सकता है कि ब्राह्मणतिस्स सरीखे भीषण अकाल की बारह वर्ष की कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने धम्म ग्रन्थों को प्रयत्नपूर्वक स्मरण रखा और तिपिटक ग्रन्थों को ही नहीं उनकी अट्ठकथाओं को भी अक्षुण्ण रूप में रखा। वेतुल्यवादी सिद्धान्तों के न मानने पर राजा के द्वारा भोजन बन्द कर देने पर भी भिक्खुओं ने जंगलों में जाकर मर जाना पसन्द किया, किन्तु थेरवादी सिद्धान्तों को छोड़ना स्वीकार नहीं किया[१]। विकृत विचार आने पर भिक्खु लोग अपने आपको धम्म के मार्ग पर दृढ़ रखने के लिये स्वयं अपने आपको शिक्षा देते थे कि 'तुम राजा शुद्धोदन के पौत्र और राहुल के छोटे भाई हो। तुम राजा महासम्मत की परम्परा में तथा इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुए हो।' इस प्रकार महापुरुषों के रिश्ते को स्मरण करके वे अपने आपको विकारों से विचलित न होने देते थे। उनका धम्म में पक्का और दृढ़ विश्वास था, अन्ध विश्वास

१. आदिकरम—अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन।

नहीं। वे भगवान् के धम्म पर चलकर सत्य की खोज करते और आदर्श भिक्खु का जीवनयापन करने का प्रयत्न करते थे।

कई अट्ठकथाओं से उस समय की भिक्खुओं की शिक्षा परिपाटी का भी पता चलता है। इन अट्ठकथाओं में महाचेतिय की कक्षा का वर्णन है कि भिक्खु लोग आगे बैठते थे और उनसे एक हाथ की दूरी पर पीछे भिक्खुनियाँ बैठती थीं। पढ़ने की प्रणाली गुरू-मुख से पाठ को सुनने के द्वारा होती थी। प्रत्येक भिक्खु के पास मुट्ठिपोत्थक ( बुद्ध भगवान् के गुणों तथा उनके धम्म को वर्णन करने वाली पुस्तक ) होती थी। इस पुस्तक का मुख्य प्रयोजन यह होता था कि जब कभी उनके मन में विकृत विचार उठें तो उसको पढ़कर उन्हें दूर कर दें।

अट्ठकथाओं से भिक्खुओं की दिनचर्या का भी पता लगता है। उनके कर्त्तव्यों में विहार को साफ-सुथरा रखना, बोधिवृक्ष तथा चेतिय के आंगन को स्वच्छ रखना, झाड़ू को ठीक रखना, तथा भिक्खुओं के उपयोग में आने वाले पानी को ठीक रखना भी सम्मिलित था। ऐसे विहारों में भिक्खु लोग प्रेम, शान्ति तथा सहयोग का जीवन बिताते थे। भिक्खु लोग कभी-कभी चेतिय में सफेदी भी करते थे। उनका काम विहार की टूट-फूट की मरम्मत की निगरानी करना भी था। बोधिवृक्ष को सींचना भी उनका धार्मिक कर्त्तव्य समझा जाताथा। भिक्खु लोग निम्नस्थ सामान अपने साथ रख सकते थे। मुट्ठिपोत्थक, आग जलाने के लिये अरणि इत्यादि, सिपाटिका ( उस्तरा ), अरकण्टक ( अंगुलित्राण ), सूची ( सुई )। यह सब सामान उनकी थविका ( झोले ) में रखा रहता था।

अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म ने वर्ण व्यवस्था के दुर्गुणों और दुष्परिणामों को बहुत कम कर दिया था और अस्पृश्यता देश में नहीं रही थी। किन्तु फिर भी यह बिल्कुल नष्ट नहीं हुई थी। चाण्डाल अस्पृश्य समझे जाते थे और दास प्रथा भी प्रचलित थीं। अनुराधपुर में केवट्टवीथि तथा वेस्सगिरिविहार आदि नामों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि वर्णविभिन्नता के संस्कार देश में थे। समन्तपासादिका के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मालिक का दास के ऊपर ही नहीं, किन्तु उसकी सन्तान के ऊपर भी अधिकार होता था और दीक्षा लेने के लिये दास या

दासी की सन्तान को विनय के नियमानुसार मलिक की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी।

बौद्ध धर्म श्रीलंका द्वीप वासियों के जीवन में इतना घुल-मिल गया था कि गीत भी श्रीलङ्का में धार्मिक विचारों से भरे हुए होते थे। सारत्थप्पकासिनी और परमत्थजोतिका में उल्लेख मिलता है कि खेत की रखवाली करती हुई एक कृषक बालिका के गीत को सुन कर साठ भिक्खुओं को आर्हन्त्य पद प्राप्त हो गया था। डा० आदिकरम कहते हैं कि आजकल भी जब लोगों को छींक अथवा जम्भाई आती है तो वे लोग 'नमोबुद्धाय' उच्चारण करते हैं।

यद्यपि बुद्ध भगवान ने भिक्खुओं के लिये नियम बनाया हुआ था, कि वे वर्ष में आठ महीने घूम-घूम कर जनता को उपदेश दें, फिर भी भिक्ख लोग स्वयं भी अपना कर्तव्य समझते थे, कि अपने उपदेशों द्वारा वे जनता के धार्मिक तथा नैतिक जीवन को उन्नत करें और उनके लोक-परलोक दोनों को सुधारें। पपंचसूदनी और सम्मोहविनोदनी में उल्लेख है कि गाँवों तक में सन्थागार ( उपदेश भवन ) बने हुए थे, और लोग वहाँ जाकर धम्मदेसना अर्थात् धर्मोपदेश सुना करते थे। मनोरथपूरणी में इस धम्म-देसना का वर्णन इस प्रकार है कि दिवाकथिक थेर अर्थात् दिन के उपदेशक अपने उपदेश को शाम तक समाप्त कर देते थे। इसके बाद पदभाणक आते थे और अन्त में मुख्य उपदेशक रात भर उपदेश देते थे। ऐसे आयोजन वर्षा के चातुर्मास में होते थे, और उपदेशों की सूचना ढोल बजाकर दी जाती थी।

अट्ठकथाओं से हमें इस द्वीप की शिक्षा के बारे में भी पर्याप्त सूचनाएें मिलती हैं। मनोरथपूरणी के दुट्ठगामणि के समय के वर्णन से ज्ञात होता है कि इस द्वीप की शिक्षा की व्यवस्था पूर्ण और सन्तोषजनक थी। राजा लोग भिक्खुओं को पुस्तकादि पढ़ने का सामान दिया करते थे। विद्वान् भिक्खु लोगों का, राजा और प्रजा दोनों बहुत आदर करते थे। समन्त-पासादिका के अनुसार विद्वान् भिक्खुओं को, भिक्खुओं के ही नहीं, श्रावकों के भी मुकद्दमे तय करने के लिये राजा नियुक्त करते थे। भिक्खु लोग अपना निर्णय निष्पक्ष और बिल्कुल ठीक-ठीक देते थे। अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि भिक्खु लोग प्रायः राजनीति से दूर रहते थे, क्योंकि अट्ठकथाओं

में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता। किन्तु डा० आदिकरम् का कहना है कि महावंस में उल्लेख मिलता है कि भिक्खुओं की सहायता से थूलधन अपने भाई लज्जातिस्स के सिंहासन पर बैठा था। बाद में जीतने पर लज्जातिस्स ने थूलधन को ही नहीं मारा, बल्कि महाविहार के भिक्खुओं को भी काफी तंग किया था। महावंस में यह भी वर्णन है कि उपतिस्स जब रानी के द्वारा मरवा दिया गया और महानाम भिक्खु-वेश छोड़ कर उपतिस्स की पत्नी के साथ विवाह करके सिंहासन पर बैठा तो इस अनुचित कार्य के ऊपर महाविहार वालों ने नाराजी प्रगट की थी। इसीलिये महानाम और रानी ने महाविहार वालों से नाराज होकर उन्हें दान देना बन्द कर दिया और अपने अनुमोदक अभयगिरिविहार वालों को दान देना प्रारम्भ किया था।

बौद्ध धर्म में बीमारों की परिचर्या और सेवा सुश्रूषा का बड़ा महत्व है। समन्तपासादिका में वर्णन है कि भिक्खु किन-किन की सीधी और किन-किन की दूसरे के द्वारा औषधि आदि दिलवा कर परिचर्या कर सकता है। विहार में आये हुए बीमार या घायल राजा, सामन्त, ग्रामीण—सबकी परिचर्या की जाती थी। यदि डाकू भी आवे तो उसके लिये भी विहार का द्वार आतिथ्य के लिये खुला हुआ था। दीघभाणक थेर के ऊपर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने विहार की सम्पत्ति से डाकुओं का आतिथ्य करके उसका दुरुपयोग किया, किन्तु उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि यह विहार की सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं था, बल्कि सदुपयोग था और विहित था।

बौद्ध धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में महाविहार के थेरवादी सम्प्रदाय के तथा अभयगिरिविहार के धम्मरुचिक के अतिरिक्त सांगलिय और महिंसासक इन दो सम्प्रदायों के श्रीलंका में पाये जाने का भी उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि सांगलिय और महिंसासकों की थेरवादियों से अधिक भिन्नता नहीं थी। महिंसासक सम्प्रदाय के थेर बुद्धदेव ने तो आचार्य बुद्धघोष से जातकट्ठकथा लिखने की प्रार्थना की थी और सांगलिय विहार में थेर धम्मरक्खित के दीक्षा लेने का उल्लेख है। इन चार के अतिरिक्त वेतुल्लक अथवा वितण्डावादी, ( विदग्धवादी ) सम्प्रदाय का भी अट्ठकथाओं में विरोधी सम्प्रदाय के रूप में बहुधा उल्लेख मिलता है और

उनकी युक्तियों का परिहास करते हुए सुमंगलविलासिनी और मनोरथ-पूरणी में कहा गया है कि उनकी युक्तियाँ प्रायः इस प्रकार की हुआ करती हैं कि "कौवा सफेद है, क्योंकि उसकी हड्डियां सफेद हैं। सारस लाल है, क्योंकि उसका रक्त लाल है।" इनका मूल पाठ में तो कोई भेद नहीं होता, किन्तु उसकी अर्थसंगति में भेद होता है। पपंचसूदनी में कहा गया है कि वे लोग शब्द के ऊपर अधिक चिपटते हैं और अभिप्राय की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। ये लोग अपने मत की पुष्टि में उसी पाठ को उद्धृत करते हैं, जिसको थेरवादी करते हैं। अट्ठकथाओं में उनके हार जाने पर उनका हास्यास्पद रूप में वर्णन है। ये लोग कथावत्थु को अभिधम्म का ग्रन्थ न मान कर महाधम्महृदय को उसके स्थान पर अभिधम्म का ग्रन्थ मानते हैं।

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त अट्ठकथाओं में लोकुत्तरवादी सम्प्रदाय का भी वर्णन है। ये लोग भगवान् बुद्ध को लोकोत्तर मानते थे, और भगवान् बुद्ध को देवता रूप में मानते थे, किंतु बहुत-सी बातों में थेरवादी भी उनको ऐसा ही समझने लगे थे। उदाहरण के रूप में सारत्थप्पकासिनी में कहा गया है कि बुद्धों के शरीर में वृद्धावस्था में भी झुर्रियाँ नहीं पड़ती जबकि सुत्तनिकाय के जारसुत्त में स्पष्ट तौर से उल्लेख है कि उनके शरीर में शिथिलता आ गई थी और झुर्रियाँ पड़ गई थीं। इसी प्रकार मज्झिम-निकाय में उल्लेख है कि उपदेश देते समय उनकी कमर में दर्द होने लगा था, किन्तु पपंचसूदनी उसको अन्यथा वर्णन करती हुई कहती है कि उनके दर्द नहीं हुआ था, किंतु वे तो इससे यह दिखाना चाहते थे कि वे सन्थागार को लेट कर भी प्रयोग कर सकते थे। इसी प्रकार बुद्ध भगवान् के जन्म समय का भी वर्णन लोकोत्तर रूप में हैं।

गुह्य ग्रन्थों के बारे में मनोरथपूरणी और समन्तपासादिका के विवरणों में विशेष रूप से लिखा जा चुका है कि बुद्ध भगवान् के उपदेश सबके लिये बिना किसी अपवाद के खुले हुए थे, किंतु बाद में थेर सम्प्रदाय में गुह्य ग्रन्थ भी रचे जाने लगे और उन ग्रन्थों के अध्ययन के लिये भिक्खु को विशेष विनयादि की योग्यता प्राप्त करनी पड़ती थी। समन्तपासादिका और मनोरथपूरणीमें स्वीकृत और अस्वीकृत गुह्य ग्रन्थों की सूची दीगई है। डा० आदिकरम ठीक ही कहते हैं कि 'यद्यपि प्रारम्भ में थेरवादी सम्प्रदाय

में इन गुह्य ग्रन्थों का बहिष्कार किया गया था, किंतु बाद में थेरवादियों ने अनजाने में ही उनको स्वीकार कर लिया, क्योंकि उनमें बुद्ध भगवान और उनके जीवन की घटनाओं को अलौकिक रूप में वर्णन किया गया है। फाह्यान ने श्रीलंका में जब भारतीय थेर को बुद्ध भगवान के बारे में किसी गुह्य ग्रन्थ को उद्धृत करके उनके पात्र के विषय में भूत और भविष्य के बारे में वर्णन करते सुना और उसने उसे लिखना चाहा तो थेर ने उससे कहा था कि यह धम्म ग्रन्थों में नहीं है किंतु मैंने मौखिक रूप में सीख कर स्मरण किया है।' इससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार गुह्य विचारों का प्रभाव थेरवादियों मे भी अनजाने में आकर स्थायी हो गया था।

तिपिटक के ग्रन्थों के इतिहास के बारे में भा अट्ठकथाओं से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। डा० आदिकरम का कहना है कि परिवार ग्रन्थ की रचना—चाहे पूरे की अथवा प्रस्तावना सहित कुछ भाग की—श्रीलङ्का में हुई है। इसी प्रकार बुद्धवंस में भी इसी प्रकार का संवर्द्धन हुआ है। किंतु अन्य ग्रन्थों के बारे में ऐसा नहीं है, क्योंकि जब कभी मूल ग्रन्थों में संवर्द्धन हुआ तो अट्ठकथाओं में भी उस संवर्द्धन का उल्लेख करके वृद्धि की गई है। इसका उदाहरण सुमंगलविलासिनी में मिलता है। इसमें कहा है कि 'अट्ठदानम् चक्खुमतो सरीरम्' से प्रारम्भ होने वाली दीघनिकाय के 'महापरिनिब्बाण सुत्त' की गाथाऐं श्रीलङ्का के थेरों द्वारा रची गई हैं। इसी प्रकार खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में 'रतन सुत्त' की व्याख्या करते समय भी सम्पूर्ण 'रतन सुत्त' के अथवा केवल पाँच सुत्तों के बुद्ध भगवान् के द्वारा रचे जाने के भिन्न-भिन्न थेरों के मतों का पहले उल्लेख कर दिया गया है, तब उस सम्पूर्ण सुत्त की व्याख्या की गई है। इसी प्रकार कथावत्थु को भी स्पष्ट लिख दिया गया है कि वह थेर महातिस्स की रचना है। इस कारण से तथा अन्य कारणों से अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि सारे तिपिटक ग्रन्थ थेर महिन्द से पहले के हैं, जिन्हें वे भारत से तीसरी संगीति के संगायन के बाद लाये थे।[1] दूसरी ओर सिंहली अट्ठकथाऐं प्रथम

---

१. विशेष विवरण के लिये देखें—प्रो० रायस् डेविड्स की पुस्तक 'बुद्धिस्ट इण्डिया', पृ० १७७।

शताब्दी ईसवी पश्चात् तक श्रीलंका में धीरे-धीरे रची जाती रहीं, किंतु उनमें वृद्धि पांचवीं शताब्दी ईसवी पश्चात् तक अर्थात् पाली में अनुवाद होने तक नहीं रुकी। इसलिये इनमें संवर्धित अंश, जोकि मूल ग्रन्थों में नहीं हैं, श्रीलङ्का में जोड़े गये हैं।

प्राचीनकाल में श्रीलङ्का के बौद्धों में चेतिय और बोधिवृक्ष की पूजा होती थी। प्रतिमाओं की पूजा बाद में प्रचलित हुई और इसका उत्तर-दायित्व भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों पर है, क्योंकि, यद्यपि भगवान् ने मूर्ति पूजा का बहिष्कार किया था, किंतु सुमंगलविलासिनी तथा धम्मपदट्ठकथा के अनुसार थेर सारिपुत्त और थेर मोग्गलान के अवशेषों के स्तूप अथवा चेतिय सबसे पहले बुद्ध भगवान् ने ही बनवाये थे। सर चार्ल्स इलियट 'हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म' पुस्तक में लिखते हैं कि "यह भाग्य का व्यंग है कि बुद्ध भगवान् और उनके अनुयायी ही मूर्ति पूजा की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी हैं। बुद्ध भगवान ने यज्ञों का उपहास किया और केवल दो प्रकार की ही धार्मिक क्रियाऐं रखीं—सुत्त तथा ध्यान। भिक्खुओं के लिये यह पर्याप्त था, किंतु श्रावक लोग कुछ और बाहरी पूजा का रूप चाहते थे, और यह श्रावकों की विशेष रुचि भगवान् की, उनके अवशेषों की, तथा शरीर की स्मृति के रूप में प्रगट हुई, यद्यपि हिन्दु धर्म में अवशेषों की पूजा नहीं होती।"

डा० आदिकरम कहते हैं कि अट्ठकथाओं में केवल 'सरीर चेतिय' तथा 'परिभोग चेतिय' के ही उल्लेख मिलते हैं, 'उद्दिस्स चेतिय' ( मूर्ति ) का उल्लेख नहीं मिलता। उद्दिस्स चेतिय केवल धम्मपदट्ठकथा में क्षेपक के रूप में मिलता है, क्योंकि 'पाली टैक्स्ट सोसाइटी' की कई मूल पाण्डु-लिपियों में यह शब्द नहीं हैं। बोधिवृक्ष की परिभोग चेतिय में गणना है, क्योंकि इसके नीचे भगवान् बुद्ध को बोधि प्राप्त हुई थी।

चेतिय के इतिहास के बारे में मनोरथपूरणी तथा सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि यह शब्द पहले यक्खों के निवास स्थान के अर्थ में आता था और बुद्ध भगवान् अपनी बुद्धावस्था के प्रारम्भ के बीस वर्ष तक प्राय: चेतियों में रहा करते थे। गोतमक, चापाल, सारनन्द और बहुपुत्त नाम के

---

१. सर चार्ल्स इलियट—'हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म', भाग २, पृ० ५८३-८४।

चेतिय इन नामों वाले यक्षों के निवास स्थान थे। बाद में अग्गलाव तथा गोतमक जैसे बहुत से चेतिय विहारों में परिवर्तित कर दिये गये, किन्तु मूल नाम को वे अब भी धारण किये हुए हैं। मल्ल राजा का वस्त्र-भवन ( ड्रेसिंगहाल ) भी चित्रित होने के कारण चित्तक अथवा चेतिय कहलाता था। सुमंगलविलासिनी में आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि थेर सारिपुत्त और थेर मोग्गलान के स्तूपों के बाद बुद्ध भगवान् के अवशेषों के स्तूप थेर कस्सप की प्रार्थना पर सम्राट अजातशत्रु ने बनवाये थे। उस समय थेर का अभिप्राय उनकी पूजा से था या नहीं, यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया, किन्तु बाद में वे पूजे जाने लगे। श्री कनिंघम का कहना है कि चेतिय पूजा सर्व प्रथम भारतवर्ष में ही प्रारम्भ हुई, जैसा कि सांची के स्तूपों से प्रतीत होता है[1]। दीघनिकाय के अनुसार चेतियों में बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, भगवान् बुद्ध के शिष्यों तथा चक्रवर्त्ती राजाओं के ही अवशेष रखे जा सकते हैं[2]। सुमंगलविलासिनी के अनुसार केवल अर्हन्त शिष्यों के ही चेतिय बन सकते हैं। किन्तु धम्मपदट्ठकथा में उल्लेख है कि "कहा जाता है कि स्वयं बुद्ध भगवान् ने मन्त्री सन्तति का स्तूप बनवाया था, जिससे लोग उसकी वन्दना करके पुण्य भागी होंगे ( महाजनो वन्दित्वा पुञ्ञभागी भविस्सति )[3]।

समन्तपासादिका में उल्लेख है कि श्रीलंका में सबसे पहले महाचेतिय का निर्माण थेर महिन्द के चेतिय की वन्दना के अभिप्राय को समझ कर देवानांपियतिस्स ने अनुराधपुर में करवाया था। इसके बाद उसने एक-एक योजन पर स्तूप बनवाये और राजा दुट्ठगामणि ने तो तामिलों पर चढ़ाई करने के समय अपने भाले और झण्डे पर भी स्तूप बनवा लिये थे। सम्मोहविनोदनी तथा पपंचसूदनी के अनुसार "बुद्ध भगवान् के अवशेषों के स्थित होने पर स्वयं बुद्ध भगवान् स्थित होते हैं, ऐसा समझना चाहिये।" सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि "बुद्धों के अवशेष अभिन्न रूप से इकट्ठे रहते हैं, किन्तु बुद्ध भगवान् के अवशेष भिन्न-भिन्न परिमाण

---

१. श्री कनिंघम—हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म भाग ३, पृ० १३।
२. दीघनिकाय भाग २, पृ० १४२।
३. धम्मपदट्ठकथा भाग ३, पृ० ८३।

में पृथक हो गये थे, क्योंकि बुद्ध भगवान् जानते थे कि उनका परिनिब्बाण उनके 'सासन' के प्रत्येक दिशा में फैलने के पूर्व ही हो जावेगा, इसलिये वे प्रत्येक प्राणी को सुप्राप्य होने चाहियें, जिससे भक्त लोग उनके स्तूप चाहे वे सरसों के बराबर ही क्यों न हो, बनवा सकें और उनकी वन्दना करके परलोक में सुखी जीवन प्राप्त कर सकें।"

सुमंगलविलासिनी में चेतिय और बोधिवृक्ष की वन्दना करने जाने को 'मेत्तंकायकम्म' तथा वन्दना का प्रस्ताव करने को 'मेत्तंवाचिकम्म' कहा गया है। अट्ठकथाओं में चेतिय के नष्ट करने का उल्लेख बड़े भारी पापों ( अनन्तरिय कम्मों ) में किया गया है। समन्तपासादिका में उल्लेख है कि श्रीलंका में भगवान् बुद्ध की हंसली के ऊपर देवानांपियतिस्स ने थूपाराम तथा कित्तिसिरि मेघवण्णा ने उनके दाँत के ऊपर स्तूप बनवाया था। पपंचसूदनी में धातुपरिनिब्बाण ( अर्थात् समस्त अवशेषों के निर्वाण ) का पौराणिक ढंग से वर्णन किया गया है कि पहले ये सारे अवशेष श्रीलङ्का के महाचेतिय में तथा अन्त में भारत में महाबोधिपल्लंक में एकत्रित होंगे, जहाँ कि उनको सारे ब्रह्मलोक में फैलने वाली ज्वाला वाली अग्नि भस्मसात् कर देगी।

बौद्धों में मन्त्र-तन्त्र तो बाद में आये और उनका उद्गम पहले महायानी सम्प्रदाय में हुआ और फिर बाद में उसी के विशेष रूप वज्रयानी, सहजयानी आदि सम्प्रदायों में उनका प्रचार बहुत ही वृद्धि को प्राप्त हुआ, किन्तु थेरवादी सम्प्रदाय में भागवान् के सुत्त ही मन्त्रों का कार्य करते थे। ऐसे सुत्तों की संज्ञा परित्तसुत्त ( रक्षासुत्त ) है। परमत्थजोतिका के अनुसार स्वयं बुद्ध भगवान् ने महामारी ( प्लेग ) के आतंक को दूर करने के लिये 'रतनसुत्त' का पाठ किया था। राजा उपतिस्स ने भी अकाल के दुष्परिणामों को दूर करने के लिये इसी सुत्त का पाठ करवाया था। ऐसे परित्त सुत्त मंगलसुत्त, रतनसुत्त, मेत्तसुत्त, धाजग्गसुत्त तथा आटानाटिय सुत्त हैं। वहाँ यह भी वर्णित है कि सुत्तपाठ करने वाले को अन्न तथा माँस भोजन नहीं करना चाहिये और पाठ करने वालों को भूताविष्ट व्यक्ति के पास अथवा स्थान में ढालों से संरक्षित करके ले जाना चाहिये। सुत्त का पाठ बन्द मकान में करना चाहिये।

अट्ठसालिनी के अनुसार श्रीलङ्का में हाथी दांत का उद्योग तथा सिंगरफ से माथे की लाली बनाने का उद्योग प्रचलित था। इसमें हाथी दांत के बुरादे से ढके हुए और तहमद बाँधे हुए कारीगरों का, तथा माथे पर सिंगरफ के बिन्दु वाले बालक का उल्लेख है, जोकि एक बिन्दु से नहीं बल्कि कई बिन्दुओं के माथे पर होने से ही चित्ताक कहलावेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य बुद्धघोष की सारी अट्ठकथाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाऐं संग्रहीत हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उनका ज्ञान कितना विस्तृत था। भले ही इनमें क्रमबद्ध इतिहास न मिले, किन्तु इनके उल्लेखों और उद्धरणों के ऐतिहासिक मूल्य को कौन मना कर सकता है। इनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के कारण ही इतिहास लेखकों ने अपने इतिहासों के लिखने में इनका पूर्ण रूप से उपयोग किया है।

★★

# सहायक ग्रन्थ सूची

अंगुत्तरनिकाय ( हिन्दी अनुवाद )
अट्ठसालिनी ( अंग्रेजी अनुवाद )—सं० श्री ई मुल्लर
अट्ठसालिनी ( देवनागरी संस्करण )—डा० बापट
अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन—डा० आदिकरम
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स
कङ्खावितरिणी ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
कथावत्थुप्पकरणट्ठकथा ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
कारमाइकेल एन्शिएण्ट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स लेक्चर्स
केटेलॉग—श्री डी० जोयसो
केटेलॉग—श्री विक्रमसिंह
गन्धवंस ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
चरियपिटक ( ,, )
चुल्लवग्ग ( ,, )
चूळनिद्देस ( ,, )
जातकट्ठकथा वण्णना (अंग्रेजी अनुवाद)—फॉसबोल संस्करण
जॉर्नल ऑफ पाली टैक्स्ट सोसाइटी
जॉर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
जॉर्नल ऑफ सीलोन ब्राञ्च ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
डिबेट्स कॉमेण्ट्री—श्री बी० सी० ला
तैस्को यूनिवर्सिटी पत्रिका, १९३०
दीघनिकाय ( हिन्दी अनुवाद )
दीपवंस एण्ड महावंस ( अंग्रेजी अनुवाद )—श्री हरमन ओल्डनबर्ग
धम्मपदट्ठकथा ( अंग्रेजी अनुवाद )—प्रो० एस० सी० हरमन
नेत्तिप्पकरण ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
पपंचसूदनी ( ,, )
पपंचसूदनी ( सिंहली संस्करण )

परमत्थजोतिका ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
परिवार ग्रन्थ ( „ )
पुग्गलपञ्ञत्तिअट्ठकथा—श्री जे० लेण्ड्सबर्ग
पाली लिटरेचर ऑफ सीलोन—डा० मललसेकर
पाली लिटरेचर एण्ड स्प्रेशे—श्री गाइगर
पाली साहित्य का इतिहास—डा० भरतसिंह उपाध्याय
बुद्धघोष—श्री बी० सी० ला
बुद्धघोसुप्पत्ति
बुद्धचरिय अट्ठकथा
बुद्धदत्त मैनुअल
बुद्धिज्म पत्रिका ( रंगून )
बुद्धिस्ट इण्डिया—प्रो० रायस् डेविड्स
बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज़—प्रो० रायस् डेविड्स
बुद्धिस्ट लिटरेचर—श्री नरीमेन
बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स—श्री ई० डब्लू बुर्लिङ्गम
बुद्धिस्ट स्टडीज़—श्री बी० सी० ला
बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन—डा० भरतसिंह उपाध्याय
भगवान महावीर—डा० जे० सी० जैन
भारहुत इंस्क्रिप्शन्स—सर्वश्री बरुआ और सिंह
मज्झिमनिकाय ( हिन्दी अनुवाद )
मनोरथपूरणी—डा० मक्सवलेस्सर
मनोरथपूरणी ( सिंहली संस्करण )
मार एण्ड बुद्ध—श्री विण्डिश
मैनुअल ऑफ बुद्धिस्ट साइकॉलोजी—श्रीमती रायस् डेविड्स
लाइफ ऑफ बुद्ध एज़ लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री—श्री बी० सी० ला
विनयपिटक ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
विनयपिटक ( हिन्दी अनुवाद )
विसुद्धिमग्ग—प्रो० कोसम्बी
विसुद्धिमग्ग ( हिन्दी अनुवाद )—तिपिटकाचार्य धर्मरक्षित
वीमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर—श्री बी० सी० ला

वीमेन लीडर्स ऑफ बुद्धिस्ट रिफॉर्मेशन—श्री बी० सी० ला
वेदिसिज्म इन पाली ( सिद्ध भारती )—डा० बापट
स्प्रेड ऑफ बुद्धिज्म एण्ड बुद्धिस्ट स्कूल—श्री एन० दत्त
संयुत्त निकाय ( हिन्दी अनुवाद )
सम एन्शियेण्ट ट्राइब्स ऑफ इण्डिया—श्री बी० सी० ला
सम्मोहविनोदनी ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
समन्तपासादिका ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
समन्तपासादिका ( सिंहली संस्करण )
सारत्थप्पकासिनी ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
सिखावलंदि ( सिंहली )—श्री डी० बी० विजयतिलक
सीलोन एण्टिक्स एण्ड रेगुलर लिटरेचर—सर रॉबर्ट
सुमंगलविलासिनी ( पाली टैक्स्ट सोसाइटी )
श्रीलङ्का विश्वविद्यालय पत्रिका
हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म—सर चार्ल्स इलियट
हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर—श्री एम० विण्टरनिज़
हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर—श्री बी० सी० ला
हिस्ट्री ऑफ प्रिबुद्धिस्टिक इण्डिया—डा० रतीराम
हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन—डा० वालपोल राहुल
हैवन एण्ड हैल इन बुद्धिस्ट पर्स्पेक्टिव—श्री बी० सी० ला

परिशिष्ट

# ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की सूची

## मूल पाली ग्रन्थ

**तिपिटक ग्रन्थ :—**



**निकाय ग्रन्थः—**



**खुद्दक निकाय के ग्रन्थः—**

**गुह्य ग्रन्थ—थेरवाद में स्वीकृत**



**गुह्य ग्रन्थ—थेरवाद में अस्वीकृत**



**भाणक :—**



**अन्य पाली ग्रन्थ**

## सिंहली अट्ठकथायें

## आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ

अट्ठकथा ग्रन्थ :—

**अन्य ग्रन्थः—**



## सन्स्कृत ग्रन्थ

**बौद्धग्रन्थः—**



**बौद्धेतर ग्रन्थः—**

## अन्य विद्वान और उनके ग्रन्थ

# अशुद्धि--पत्र

| पृष्ठ संख्या | पंक्ति संख्या | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३ | २३ | बिषय | विषय |
| ५ | २ | पुस्नक | पुस्तक |
| ५ | ८ | निर्लज | निर्लज्ज |
| ५ | १८ | महाथे | महाथेर |
| ६ | १६ | किन- | किन्तु |
| १० | १६ | अमिधम्म | अभिधम्म |
| ११ | १७ | घम्मसंगह | धम्मसंगह |
| १२ | ७ | बौध्द | बौद्ध |
| १४ | २७ | बुद्धदत्त | बुद्धमित्त |
| १५ | २७ | राजग्रह | राजगृह |
| १६ | ६ | टीक | ठीक |
| २३ | २ | वात | बात |
| २३ | १५ | अन्तरग | अन्तरंग |
| २३ | २० | कर्णन | वर्णन |
| २६ | १२ | थेरे | थेर |
| २५ | १५ | पतिट्ठुता | पतिट्ठिता |
| २८ | २३ | पदावियाँ | पदवियाँ |
| २९ | १ | ने | के |
| ३३ | ५ | अठ्ठकथाओं | अट्ठकथाओं |
| ३४ | १८ | मे | से |
| ३५ | ५ | नहां | नहीं |
| ३९ | २२ | को | इनको |
| ३६ | २६ | अध्याय ४ | अध्याय ५ |
| ४१ | ५ | बौद्ध | बौद्ध |
| ४५ | १ | प्रथम | द्वितीय |

| पृष्ठ संख्या | पंक्ति संख्या | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ४६ | ३० | पाठ क | पाठ की |
| ५१ | १५ | आर्ष | आर्य |
| ५३ | १६ | अट्टकथा | अट्ठकथा |
| ६० | १० | मे | से |
| ६१ | ५ | त पिटक | तिपिटक |
| ६४ | ११ | अ.र | और |
| ८८ | ३ | थौर | और |
| ९१ | १५ | महायंस | महावंस |
| ९१ | १९ | थेर | भदन्त |
| ९६ | ६ | वेने | देने |
| ९६ | २१ | थम्मपदट्ठकथा | धम्मपदट्ठकथा |
| ९९ | १ | के | से |
| १०० | ८ | याव | यावं |
| १०० | १४ | सअस्याओं | समस्याओं |
| १०५ | १७ | रचना केवल उच्चयें | रचनायें केवल उच्च |
| ११२ | ९ | महानाम | महायान |
| १२१ | २१ | वर्ण का | वर्णन का |
| १२५ | २४ | सइ | इस |
| १३१ | २३ | बोद्ध | बौद्ध |
| १३१ | २७ | समन्तपासादिसा | समन्तपासादिका |
| १३२ | २० | मैं | में |
| १३३ | १६ | इतिथ्य | इत्थिय |
| १३५ | ३ | परिवंतन | परिवर्तन |
| १३६ | ५ | मण्डुक | मण्डुक |
| १३६ | २९ | अगुत्तानिकाय | अंगुत्तरनिकाय |
| १४३ | १७ | धारा | द्वारा |
| १४४ | ११ | अभाव कारण | अभाव के कारण |
| १६० | ७ | लोकत्थचरिय | लोकत्थचरिय |
| १६१ | ६ | विषयोक | विषय को |

| पृष्ठ संख्या | पंक्ति संख्या | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १७० | २१ | जस | जिस |
| १७४ | ६ | माररे | मारने |
| १८६ | १६ | योग | योग्य |
| १८७ | २८ | ंगलविलासिनी | ६. सुमंगलविलासिनी |
| १९१ | ६ | महादस्सन | महासुदस्सन |
| १९९ | २६ | सथिलधनितं | सिथिलधनितं |
| २०३ | १५ | ऋषि | ऋषि |
| २०५ | १० | थ | थीं |
| २१४ | १ | मल्लका | मल्लिका |
| २१५ | २० | वडढमान | वड्ढमान |
| २२२ | १३ | टेक्सट | टैक्स्ट |
| २२४ | २६ | साररत्थप्पकासिनी | सारत्थप्पकासिनी |
| २२६ | ९ | नह | नहीं |
| २२६ | २६ | सारत्थप्पकासिनी | समन्तपासादिका |
| २२८ | ११ | वेदुल्लपिटकं | वेदुल्लपिटकं'ति |
| २२८ | १५ | भगवान क | भगवान को |
| २२९ | ७ | " | " |
| २४२ | २१ | येर | थेर |
| २४३ | १३ | ासहासन | सिंहासन |
| २४४ | २० | बोद्धधर्म | बौद्धधर्म |
| २४५ | २५ | बुद्धसासनस्य | बुद्धसासनस्स |
| २४६ | २२ | पपचसूदनी | पपंचसूदनी |
| २५३ | २ | अट्ठकथाय | अट्ठकथायें |
| २५३ | ६ | भिर | फिर |
| २५६ | २ | वुद्धिमानी | बुद्धिमानी |
| २५९ | २५ | लम्बी- म्बा | लम्बी-लम्बी |
| २६० | ९ | नहा | नहीं |
| २७३ | ५ | पश्चात्त्कालीन | पश्चात्कालीन |
| २७४ | २८ | लिटररेचर | लिटरेचर |

| पृष्ठ संख्या | पंक्ति संख्या | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २७६ | २४ | सार | सारी |
| २८६ | २७ | रंगन | रंगून |
| २८७ | २२ | उद्धृत | उद्धृत हैं |
| २९१ | १६ | माषा | भाषा |
| ३०६ | ८ | प्रवेश में करती | प्रवेश करती |
| ३२२ | ४ | आत्तारियों | आचरियों |
| ३२८ | २८ | था | रहा था |
| ३३५ | १ | बड़ी | बड़ा भारी |
| ३४७ | १७ | वित्थारित | वित्थरितं |
| ३५६ | १४ | अट्ठाइमसे | अट्ठाइस |
| ३६३ | ८ | ने | की |
| ३७१ | ९ | स्वभाविक | स्वाभाविक |
| ३७४ | १ | अश्रु लार श्लष्मा | अश्रु, लार, श्लेष्मा |
| ३७४ | २ | कूोंप | कूपों |
| ३७४ | १५ | मनुश्य | मनुष्य |
| ३९१ | २३ | मैं | में |
| ३९२ | ८ | आड़विहार | आड़ु विहार |
| ४०० | ८ | का | को |
| ४०१ | ७ | बिम्बसार | बिम्बसार ने |
| ४०१ | १६ | जतवन | जैतवन |
| ४०८ | १० | प्रणाला | प्रणाली |
| ४०९ | ८ | लिये | लिखे |
| ४०९ | १९ | कट्ठकथाओं | अट्ठकथाओं |
| ४१२ | २३ | मनोरथपूरणी है | मनोरथपूरणी में |
| ४१९ | २० | क्षपकांश | क्षेपकांश |
| ४२० | ७ | म | में |
| ४२३ | ६ | नि सन्देह | निःसन्देह |
| ४२९ | २५ | ज | जो |